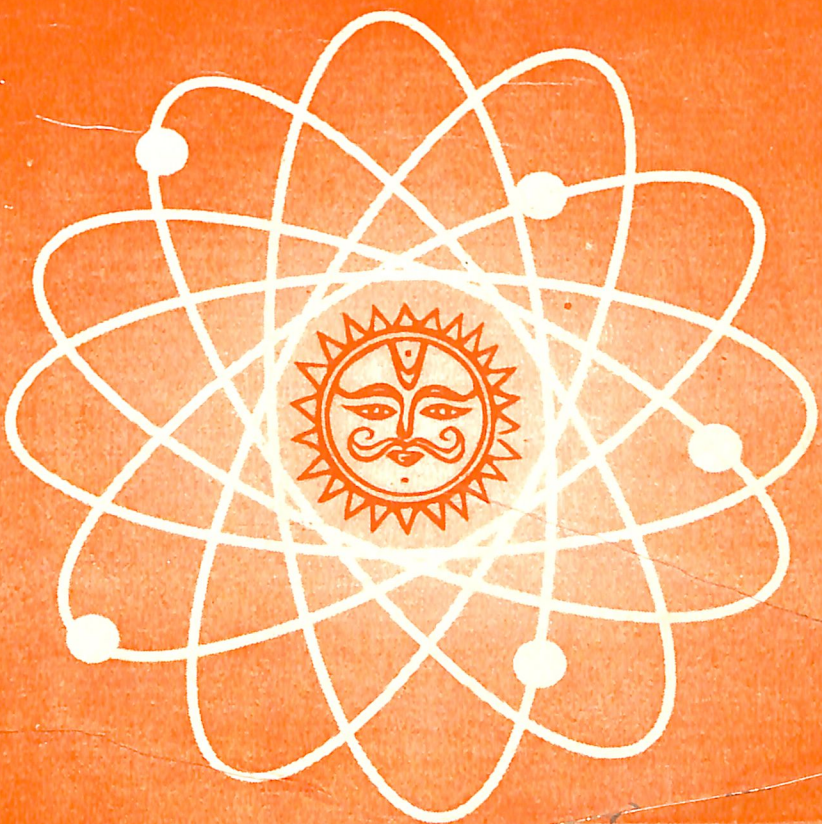
ताजिकनीलकण्ठी



डॉ० रामचन्द्र पाठक

चौखम्भा संस्कृत भवन

पोस्टबाक्स नं० ११६०, चौक, वाराणसी – १

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा संस्कृत भवन ग्रन्थमाला

१८

श्रीनीलकण्ठदैवज्ञविरचिता

ताजिकनीलकण्ठी

'कुन्तला'-संस्कृत-'ज्योति'-हिन्दी-व्याख्यासहिता

सम्पादक

डॉ० रामचन्द्र पाठक

ज्यौतिषाचार्य, पी० एच० डी०,

पञ्चांग विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता

पोस्ट बाक्स नं० ११६०

चौक (दि बनारस स्टेट बैंक बिल्डिंग)

वाराणसी – २२१००१ (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
मुद्रक : चारु प्रिंटर्स, वाराणसी
संस्करण : प्रथमतः, वि० सं० २०५५
मूल्य : रु० १५०.००

ISBN-81-86937-06-4

© चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी
इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल पाठ
एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशन के अधीन है ।

फोन : ३२०४१४, ३३५६२६

प्रधान कार्यालय :-

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
पोस्ट बाक्स नं० ११३६
के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी – २२१००१ (भारत) फोन : ३३३४४५, ३३५६३०

कम्प्यूटर टाइपसेटर
मालवीय कम्प्यूटर्स, लंका, वाराणसी

The
Chaukhambha Sanskrit Bhavan Series
18

TĀJIKA NĪLAKANṬHĪ

By

Śrī Nīlakaṇṭha Daivajña

With the Sanskrit commentary **Kuntalā**
and **Jyoti** Hindi Translation

By
Dr. RĀM CHANDRA PĀṬHAK
Jyotiṣācārya, Ph.D.
Pañcāṇga Vibhāga,
Sanskrit Vidyā Dharmavijñān Saṅkāya
Banaras Hindu University
Varanasi - 5

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAVAN
Sanskrit, Āyurveda & Indological Publishers and Distributors
POST BOX NO. 1160
Chowk, (The Banaras State Bank Building)
Varanasi - 221001 (INDIA)

© *Chaukhambha Sanskrit Bhavan*
Post Box No. 1160
Chowk (The Banaras State Bank Building) Varanasi.
Phone : 320414, 335929
Edition : First, 1998

ISBN-81-86937-06-4

Head-Office :
CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Post Box No. 1139
K. 37/116, Gopal Mandir Lane (Golghar Near Maidagin)
VARANASI - 221001
Phone : 333445, 335930

Computer Type-Setter :
Malaviya Computers, Lanka, Varanasi - 5

भूमिका

ज्योतिष को वेदाङ्ग स्वीकार करने में सभी आचार्यों का मत एक है । वेद के छः अंग है जिनकी नामावली निम्नलिखित है – १. शिक्षा २. कल्प ३. निरुक्त ४. व्याकरण ५. छन्द ६. ज्योषित । श्री भास्कराचार्य ने कहा है –

शब्दशास्त्रमुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं कल्पः करौ ।
यातु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पाद पद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ।।

वेद पुरुष के अङ्गों में ज्योतिष को नेत्र माना गया है ।

वेदस्य चक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं,
मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते । {सिद्धान्त शिरोमणि}

वेद पुरुष के चक्षु रूप ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध माने गए हैं ।
(१) सिद्धान्त ज्योतिष (२) ग्रहगणित खगोल ज्योतिष (३) फलित ज्योतिष ।

सिद्धान्त संहिता होरा रूपस्कन्ध त्रयात्मकम् ।
वेदस्य निमलं चक्षुर्ज्योतिष शास्त्रमकल्मषम् ।।

सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा भास्कराचार्य ने स्पष्ट लिखा है –

त्रुट्यादि प्रलयान्तकाल कलनां मानप्रमेदस्तथा ।
चारश्च द्युसदा द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथासोत्तराः ।
भूधिष्ण्य ग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते ।
सिद्धान्त स उदाहृतोऽत्र गणित स्कन्ध प्रबन्धे बुधैः ।

होरा शास्त्र के अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष के फलित में ५ विभाग आते हैं –

१. जातक ज्यौतिष
२. ताजिक ज्यौतिष
३. मुहूर्त्त ज्यौतिष
४. प्रश्न ज्यौतिष, स्वर–शकुन ज्यौतिष
५. संहिता ज्यौतिष

१– **जातक ज्यौतिष** – जातक के जन्म से मृत्यु पर्यन्त समग्र जीवन का भविष्यज्ञानप्रतिपादक फलित ज्योतिष का नाम जातक ज्योतिष है ।

२– **ताजिक ज्यौतिष** – जातक के जीवन में प्रत्येक नवीन वर्ष का प्रवेश का ज्ञान का तदनुसार वर्ष कुण्डली द्वारा वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास, प्रत्येक दिन तथा दिनार्ध से भी सूक्ष्म समय का शुभाशुभ ज्ञान ताजिक ज्यौतिष है ।

३— **मुहूर्त्त ज्यौतिष** — हमारे धर्मशास्त्रों में वर्णित १६ संस्कारों के शुभ समय ज्ञापक फलित ज्योतिष का नाम मुहूर्त्त ज्योतिष है । इसके प्रधान ग्रन्थ रामाचार्य का मुहूर्त्त चिन्तामणि, तथा इसके भी पूर्व मूहुर्त्त मार्तण्डादि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध माने जाते थे । आज मुहूर्त्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका, प्रमिताक्षरा टीका आदि प्रचलित है । जो मुहूर्त्त के निर्धारण में नियामक माने जाते हैं ।

४— **प्रश्नज्योतिष** — प्रश्नकाल से प्रश्न लग्न निकाल कर तत्कालीन ग्रहस्थिति के अनुसार फल कथन की विधि का नाम प्रश्न ज्योतिष है । इसके ग्रंथ प्रश्न भूषणादि कई ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है ।

५— **संहिता ज्योतिष** — त्रिस्कन्ध ज्योतिष का संहिता प्रसिद्ध विभाग है । संहिता में सूर्य, चन्द्र, मं, बु०, बृ०, शु०, श०, रा०, के०, सप्तर्षिचार, कूर्म नक्षत्र, व्यूह, युद्ध, वर्षाज्ञान, सन्ध्यालक्षण अग्निदाह वर्णन, भूकम्प, उल्का, परिवेश, इन्द्र, धनुष, रजोलक्षण, द्रव्यनिश्चयाध्याय, उत्पाताध्याय, पुण्यस्नानाध्याय, राज्याभिषेक में उपयुक्त अंगविद्या (सामुद्रिक शास्त्र) वास्तु, जलस्त्रोत ज्ञान, वृक्षायुर्वेद, प्रसादलक्षण बज्रलेप (छत बनाने का मसाला), गो, महिष, कुत्ता, घोड़ा, हाथी, आदि पशुओं के बोलना, रोदन करने आदि का विचार तथा रत्न परीक्षा, काक शकुन, श्वान, शृगाल, हाथी प्रभृति पशुओं की चेष्टाएँ आदि विविध विषयों का जिस शास्त्र के द्वारा ज्ञान किया जाता है, फलित ज्योतिष में उसका नाम संहिता ज्योतिष कहा गया है । यह फलित ज्योतिष का प्रधान अङ्ग कहा गया है ।

इसके अतिरिक्त स्वर, स्वप्न, दूरानुभूति श्वास, अङ्गदर्शन (Face reading) आदि से भी अनेक विचित्र परम्पराएँ हैं जो विशेषत: आजकल भी प्रचलित है; और कुछ प्राय: लुप्त सा भी हैं ।

इस ग्रन्थ में ताजिक ज्योतिष की चर्चा आवश्यक है । इसी पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है । फलादेश विषय को लेकर सदियों से लोगों के मन में सत्यासत्य पर विचार होता रहा है । बहुत सी भविष्यवाणियाँ शतप्रतिशत सत्य प्रमाणित हुई हैं । परन्तु काल का प्रभाव सम्पूर्ण जगत् पर है । उसी जगत् में ज्योतिषी भी है । अत: कभी फलादेश में संशय भी हुआ है जिसके विषय में केशवी जातक पद्धति का यह श्लोक ध्यान देने योग्य है ।

अथ क्वचिज्जातक फलव्यभिचारे कर्त्तव्यतामाह —

जीवेत् क्वापि विभङ्गरिष्टाज शिशुरिष्टं विनामीयतेऽ—
थाद्योऽब्दः शिशु दुस्तरोऽपि च परौ कार्येषु नो पत्रिका ।
कार्या प्रश्न निमित्त पूर्वशकुनैः रक्षन्स्वमानं धिया,
होराज्ञेन सुबुद्धिना हि बहुधोदर्कश्च कालो बली ।।

आशय यह है कि बुद्धिमान गणक को अपनी बुद्धि से अपने मान की रक्षा करनी चाहिए । काल सर्वोपरि है । ज्यौतिष द्वारा पूर्ण दीर्घायु प्राप्त जातक की अल्पायु और अत्यन्त अल्पायु जातक की दीर्घायु भी देखी गई है ।

ज्योतिषशास्त्रज्ञ भले अपूर्ण हो उसको ज्ञान में कही न्यूनता संभव है; परन्तु ज्योतिष पूर्ण है । इसको जानकर निश्चय ही बड़े–बड़े चमत्कार दिखाए गए हैं । आज की भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को बताने में यह शास्त्र सक्षम है ।

यह बात अकाट्य है कि ज्योतिष में लग्नादि १२ भावों की समीक्षा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर हुई है । इसमें सौर मण्डल का चित्र हुआ है । यह कल्पना नहीं खगोल शास्त्र की देन है । गणितागत ग्रह की आकाशीय स्थिति यथास्थान इस द्वादश भावात्मक ग्रह कुण्डली में दृश्य है ।

इस समग्र ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाली एक शक्ति है जो इस ब्रह्माण्ड के पिण्डों को गतिशील करती है । जिसके कारण जगत् के क्रिया–कलाप हुआ करते है । इसका सम्यक् ज्ञान खगोल ज्ञान से है । इस प्रसंग में इस विषय पर भी विचार कर लेना उचित है।

इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ब्रह्मशक्ति विद्यमान है । ज्योति शास्त्र ग्रह नक्षत्रों का शास्त्र है जो ब्रह्म शक्ति के बिना गतिमान हो ही नहीं सकते । इसी विषय को गोल परिभाषा में कहा गया है –

विन्दोः रेखा ततो वृत्तं वृत्तैर्गोल प्रजायते ।
एभिर्व्याप्तं जगतस्मात्स्वरूपं निरूप्यते ।।

अर्थात् बिन्दु से रेखा, रेखा से वृत्त, तथा वृत्तों से गोल की उत्पत्ति होती है । इन्हीं बिन्दु रेखा तथा गोलों से सार जगत् व्याप्त है । इसी आधार पर गोल का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित है । –

य एवादिः स एवान्तो यस्य मध्य स एव हि ।
आदि मध्यान्तहीनो वा स गोलः परिकीर्तितः ।।

जिसका जो आदि, मध्य तथा अन्त एक ही स्थान है । इसलिए इसके उत्पादक परम ब्रह्म परमेश्वर को विज्ञजनों ने अखण्ड मण्डलाकार (पूर्णगोलाकृति) बताया है । यथा – **अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्** । इसी प्रकार अन्य विज्ञजनों ने भी ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित किया है अर्थात् सबसे छोटा बिन्दु और सबसे बड़ा खगोल ये दोनों निर्गुण और निराकार एक ही ब्रह्मशक्ति से सम्बोधित होते है । जिसके अन्तर्गत अनन्तानन्त गोल विद्यमान है । जो विश्व नाम से व्यवहृत है । इसी विश्व को ब्रह्माण्ड से जाना जाता है ब्रह्माण्ड का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए किसी आचार्य ने कहा है कि –

''स्वशक्त्याभूमिगोलोऽयं निराधारोस्ति खे स्थितः '' ।

अर्थात् इस प्रकृति में एक ऐसी शक्ति है जिससे पृथ्वी (ब्रह्माण्ड) निराधार आकाश में स्थित है । इसके, ऊपर आकाशीय पिण्ड अपना गुरुत्वाकर्षण बनाए हुए है । हम देखते हैं कि डाली से अलग हुआ फल सीधी रेखा में भूतल पर आ गिरता है । बाण भी वेग के अभाव में भूतल पर ही आ जाता है । ये सभी पदार्थ पृथ्वी पर क्यों गिरते है ? कौन सी शक्ति इन्हें

गिराती है । इस प्रश्न का उत्तर यही है कि पृथ्वी उन्हें अपनी ओर खींचती है । पृथ्वी में विद्यमान आकर्षणशक्ति ही उस वस्तु को भूतल पर गिराती है । प्राचीन भारतीय आचार्य यह तथ्य इस भाषा में व्यक्त करते है कि सम्पूर्ण आकाशीय पिण्ड ब्रह्माण्ड के केन्द्र की ओर आकृष्ट हो रहे हैं । यह केन्द्र पृथ्वी का मध्य बिन्दु है । इस घटना का कारण पृथ्वी में विद्यमान आकर्षण शक्ति में ही मानते हैं । भास्कराचार्य ने लिखा है –

''आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यद् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यन्ते तत् पततीव भाति समे समान्तात क्व पतत्वियं खे ।।

इन विषय को न्यूटन ने आकर्षण के गणितीय स्वरूप का पता लगाकर ब्रह्माण्ड के रहस्य को संसार के सामने प्रकट किया । इस सम्बन्ध में प्रमाणित हो गया है कि आकर्षण एक व्यापक पदार्थ है, आकर्षण एक व्यापक शक्ति है जो केवल पृथ्वी में ही नहीं किन्तु सभी आकाशीय पिण्डों में है ।

कोपरनिकस और केपलर ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि आकाशीय पिण्ड आकर्षण शक्ति सम्पन्न हैं । इससे दोनों में यह भी निर्धारित किया है कि आकर्षण सम्प्रति आकाशीय पिण्डों को परस्पर सम्मेलन की ओर प्रवृत्त करती है । केपलर ने अपने ग्रन्थ एष्ट्रोनोमिया नोवा में लिखा है कि आकर्षण दो सजातीय पदार्थों का वह पारस्परिक खीचाव है जो उन्हें मिलने की ओर प्रवृत्त करता है । इनका कहना है कि सूर्य सौर परिवार के सदस्यों की संस्था के केन्द्र में है । वह सूर्य उनकी गति के लिए एक नियत अभिनय का सूत्रधार है । यह मानते हुए कि सूर्य और सभी ग्रह आकर्षण शक्ति वाले हैं । कोपरनिकस ने ग्रहों के ऊपर सूर्य के प्रभाव की सत्यता को स्वीकृत किया है । ग्रह गति के विषय में सूर्याकर्षण की नियत क्रियाशीलता केप्लर के तीनों नियमों में स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं । केपलर स्वयं यह विश्वास करते थे कि ग्रहों की गति सूर्य के द्वारा नियन्त्रित होती है । उन्होंने कहा है कि आकाश स्थित दो पिण्ड एक दूसरे की ओर चुम्बक की भाँति प्रवृत्त होते हैं ।

केपलर के अनुसार आकर्षण शक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है । इसके बाद गैलेलियो ने आकर्षण की व्यापकता को सिद्ध किया । उसके अनुसार किसी भी पिण्ड के चारो ओर आकर्षण का व्यापार वैसे ही होता है जैसे प्रकाश प्रकाशक वस्तु चतुर्दिक फैलता है किन्तु बड़े पिण्डों में ही बड़ा आकर्षण होने के कारण छोटे पिण्डों के आकर्षण का प्रभाव उस पर नहीं के बराबर होता है ।

इस प्रकार न्यूटन के विश्वव्यापी आकर्षण शक्ति का सिद्धान्त ही ग्रह गति का कारण है । आकाशीय पिण्डों के परस्पराकर्षण से ही ग्रहों में अनेकधा गतियाँ उत्पन्न होती है। इसी के कारण ग्रहों की कक्षाओं के समतल भिन्न–भिन्न समतलों में विद्यमान है तथा उनकी कक्षाओं की नीच्योच्च रेखायें भी चल हैं । और ग्रह कक्षाओं में समतलों के द्वारा क्रान्तिवृत्त के समतलों की छेदन रेखायें (पात रेखाएँ) भी चलती रहती है । हमारे भारतीय आचार्य भी यह जानते थे कि उच्च और पातों की गति का कारण ग्रहों का आकर्षण शक्ति ही है । सूर्य सिद्धान्त में

लिखा है कि काल की अदृश्य मूर्तियाँ ग्रहों के उच्च और पातों के परिक्रमण रूप में ग्रहों की गति का कारण होती है और वे ग्रह वातरश्मि (आकर्षणरूपी रस्सी) से वद्ध होकर दाहिने और बायें की ओर से पूर्व और पश्चिम की ओर खींचे जाते हैं जैसे –

अदृश्यरूपाकालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः ।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गति हेतवः ।।

तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथा सन्नं स्वदिङ्मुखम् ।।

प्रवहाख्यो मरुत तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत ।
पूर्वापराकृष्टास्ते गति यान्ति पृथग्विधाम् ।।

सूर्य सिद्धान्त का यह अभिप्राय है कि ग्रह वातरश्मि (आकर्षण रस्सी) में बँधे हुए पृथ्वी के चारो ओर गतिशील है । यदि यह आकर्षण रज्जू न रहे तो चन्द्रमा आदि ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा वैसे ही नहीं करेंगे जैसे भिन्दिवाल (ढेलवांस) में रस्सियो से बँधा हुआ पत्थर का टुकड़ा । वह बाँधने वाली रस्सी के आकर्षण के कारण ही चक्कर लगाता है । किन्तु एक रस्सी के बन्धन के टूटते ही चक्करदार मार्ग की स्पर्शी दिशा में सीधी रेखा में अत्यन्त वेग से भागता है । चन्द्रमा पर से भी पृथ्वी का आकर्षण किसी क्षण हट जाय तो वह अपनी कक्षा की स्पर्श रेखा की दिशा में ठीक वैसे ही वेग से भागेगा जैसे रस्सी टूटने पर भिन्दिपाल का पत्थर ।

यह समस्त ब्रह्माण्ड काल प्रवाह से प्रभावित है । उस विराट् पुरुष की अदृश्य मूर्ति काल शक्ति ही है । अतः ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाएँ , उल्का, सोम, सूर्य एवं चलाचल पिण्ड सभी काल जन्य है । काल वह शक्ति है जो इन पिण्डों को उत्पन्न करता है और वही अन्त में इन्हें विलीन भी कर लेता है । यथा –

'कालः पचति भूतानि'
'कालोस्मि लोकः क्षयकृत प्रवृत्तः'
'काले सर्वं प्रतिष्ठितम्'

इन सूक्तियों में कालशक्ति की महिमा का आख्यान है । यह कालशक्ति संहारक होने के कारण अनन्त और अखण्ड है एवं कलनात्मक होने के कारण त्रुटि आदि अवयवों में पठित है ।

हमारे ज्योतिष शास्त्र में व्यक्ताव्यक्त गणित अर्थात् बीजगणित, अंकगणित की कल्पना है । ब्रह्म निर्गुणं होता है । अव्यक्त गणित भी निर्गुण ज्याचापरहित होता है । उसी प्रकार व्यक्त गणित को भी गुणन भजन क्रिया द्वारा ब्रह्म अपना स्वरूप प्रकट करता है । अतः व्यक्ताव्यक्त गणित और बह्म शक्ति में भी साम्य सिद्ध है । अतः हमारे व्यक्ताव्यक्त गणित में भी ब्रह्मशक्ति का आभास सुस्पष्ट होता है ।

सूर्य सिद्धान्त के सृष्टिक्रम में भी ब्रह्मशक्ति का वर्णन किया गया है । यथा –

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः ।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ।।
प्रकृत्यान्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः ।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्यादौ तासु वीर्यमवासृजत ।।

वह ब्रह्मशक्ति 'एकोऽहं बहुस्यामिति' श्रुति वचनानुसार सृष्टि का क्रम शुरू किया । उसने मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई । वह ब्रह्म अपने दोनों नेत्रों से सूर्य को बनाया । जैसा कि वेदो में भी कहा गया है — चन्द्रमा मनसोजातः चक्षोः सूर्योऽजायत् ।।

इसके बाद पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई ।

मनसः खं ततो वायुरग्निधरा क्रमात् ।
गुणैकवृध्या पञ्चेति महाभूतानि जज्ञिरे ।।

अर्थात् उस ब्रह्म के मन से आकाश, आकाश से वायु वायु से अग्नि, अग्नि से जल, । इस प्रकार पञ्चभूतोत्पत्ति हुई । पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति के बाद पञ्चतारा ग्रह जैसे मं०, बुध, गुरु, शुक्र, शनि आदि ग्रहों की उत्पत्ति हुई । अग्नि तत्व से मंगल, पृथ्वी तत्व से बुध, आकाश तत्व से गुरु, जल तत्व से शुक्र वायु तत्व से शनि की उत्पत्ति हुई । यथा सूर्य

सिद्धान्ते ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देव पूर्वकम् ।
उर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्तोत्रेभ्यः प्रकृति सृजन् ।

इस ब्रह्मशक्ति द्वारा ही हमारें सभी ग्रह निर्मित हैं और द्वादशराशि और २७ नक्षत्रों की भी रचना की गई । यथा सूर्य सिद्धान्ते —

पुनर्द्वादशधाऽऽत्मानं व्यभजत् राशि संज्ञकम् ।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ।।

इन्ही पञ्चभूतात्मक ग्रहों एवं नक्षत्रों के आधार पर शुभाशुभ फलों की भी विवेचन हमारे ज्यौतिष शास्त्र में किया गया है ।

इस प्रकार ग्रहगणित से सिद्ध भूमण्डल के प्रत्येक देशीय, सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त, रात्र्यर्ध, द्वितीय सूर्योदय, समय के मापक घटी यन्त्र प्रत्यक्ष प्रमाण है । लोक जागृति के लिए सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि मापक यन्त्र फलित का काम करते है । सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण ग्रहयुति, वेध, ग्रस्तोदयास्त्, वक्र आदि प्रत्यक्ष दृग्योग्य है । विश्व के समस्त महान् व्यावहारोपयुक्त फलित ज्योतिष है ।

इस प्रकार द्वादश भावों की युक्तियुक्त कल्पना के साथ आकाशीय ग्रह की नियत स्थिति भी द्वादश भावचक्र रूपग्रह चित्र में स्थापित कर देना प्राचीन आचार्यों की अमूल्य सूझ व देन है । आज विकसित वैज्ञानिक भी इससे आगे नहीं पहुँचा पाए हैं ।

फलित ज्योतिष में सृष्टि के आरम्भबिन्दु मेषादि सम्पात् के ग्रहों की स्थिति को समझकर, तदनुसार ही सदा के लिए स्थिर एक रूप फलित शास्त्रों का निर्माण किया गया है, आज के खगोल से २३ दिसम्बर को दिन वृद्धि, २३ जून को रात्रिवृद्धि (उत्तरायण सूर्य), २३ मार्च को एवं २३ सितम्बर को दिन और रात्रि की तुल्यता सूर्य की भूमध्यगत स्थिति एवं २३ जून को दिनमान की परमाधिकता दक्षिणायन एवं रात्रिवृद्धि प्रारंभ होने लगती है । किन्तु फलित ज्योतिष तथा तदाधारिता भारतीय धर्म व्यवस्था, मीमांसक धर्म ग्रन्थ १३ या १४ जनवरी से उत्तरायण और १५–१६ जुलाई से दक्षिणायन कहते है । इसी सृष्टि प्रारंभ की उत्तरायण गोलादि स्थिर ग्रह स्थिति से फलित ज्योतिष मानव का शुभाशुभ भविष्य एवं भारतीय धर्मशास्त्रीय मीमांसा भी इसी के आधार पर धर्म, कर्म, पर्व आदि व्यवस्था देती है ।

भारत के अलावा अन्य देशों में सायन लग्न एवं सायन ग्रह स्थितिवश २३ दिसम्बर को ही उत्तरायण मानकर भारतीय अनुभव गम्य फलित ज्योतिष भी परिष्कृत होने जा रहा है । धर्मशास्त्र के अनुसरण के लिए सायन पञ्चाङ्ग की निरयण गणित परम्परा के अनुसार १४ जनवरी को ही उत्तरायण जो फलित और धर्मशास्त्र के निर्णय से होना चाहिए । यही पद्धति आज भी चल रही है ।

सायन निरयन की बात अयनांश से है । अत: इसी प्रसंग मे सूर्य सिद्धान्तीय अयनांश की चर्चा की जाती है । अयनांश ज्योतिष जगत् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है । गणित ज्योतिष में एक क्षण का भी महत्व बहुत अधिक है । सन् १९९० में रवीष्टाब्द आरम्भ के दिन रात्रि १२ बजे १ सेकेन्ड एलेक्ट्रानिक घड़ी में कम किया गया था । वस्तुत: आज के वैज्ञानिकों ने हजारों – हजार वर्षों के क्षण को मापने के लिए सुपर घटिका यन्त्र का निर्माण कर लिया है । यह घड़ी अहर्निश चलती हुई कभी १ क्षण भी आगे–पीछे नहीं होती । उक्त वर्ष में पृथ्वी की गति में सूर्य परिक्रमा के द्वारा १ क्षण की न्यूनता आई है । यदि इस एक क्षण की न्यूनता को संशोधित नहीं किया जाय तो हजारों वर्ष बाद इसका प्रभाव ऋतु पर अवश्य पड़ता ।

हमारे महिर्षियों ने जिस समय सिद्धान्त का प्रणयन किया, उस समय अयनांश का सर्वथा अभाव था । लगभग छठी शताब्दी में भारतीय आचार्यों ने महसूस किया कि नाड़ी वृत्त और क्रानिवृत्त का सम्पात् स्थान भी चल है । गणित के द्वारा जो ग्रह लाया जा रहा था, वह सम्पात् चलन के अन्तर तुल्य अर्थात् अयनांश के बराबर दृश्य ग्रह से अन्तरित था । इस प्रकार यदि अयनांश का संस्कार ग्रह में नहीं किया जाता तो वर्षमान एवं ऋतुओं में काफी अन्तर आ जाता । आज भी यदि अयनांश का संस्कार न किया जाय तो दृश्य ग्रह लाने में इतना अन्तर पड़ेगा, जो बढ़ते–बढ़ते छ: हजार वर्षों के आस–पास ऋतु में भारी फेर बदल कर देगा । इस गणित से चैत्र मास में वर्षा होने लगेगी । वस्तुत: ऋतुओं का सीधा सम्बन्ध सूर्य से है । यदि सूर्य इतना अन्तरित होने लगे, जिससे वर्षमान एवं संक्रान्ति में भारी अन्तर होने लगेगा तो सब कुछ बदल जायेगा । आज भी सायन सूर्य और निरयन सूर्य के मध्य १० दिन से २३ दिन का अन्तर है । यदि यही अन्तर दो महीना आने लगे तो सूर्य से उत्पन्न होने वाली ऋतुएं

अन्तरित हो जायेगी । यह कोई नई बात नहीं है । वेदाङ्ग काल से लेकर अद्यावधि विषुव सम्पात् के न जाने कितने नक्षत्र बदल चुके हैं । अब प्रश्न उठता है कि क्या सायन के लिए समग्र धर्म शास्त्र परिवर्तित कर दिया जाय । नहीं । आवश्यकता इस बात की है कि इस अन्तर को आत्मसात करके धर्मशास्त्र के अनुरूप बनाया जाय । १८०९ शकाब्द में ग्रहलाघव और केरोपन्तीय पञ्चाङ्ग के सूर्य में २२ अंश का अन्तर था । ग्रह लाघव का अयनांश २२ अंश ४५ कला था, जबकि क्रेरोपन्त १८ अंश १८ कला था । परन्तु उस दिन दोनों पञ्चाङ्गों में दिनमान घटी बराबर थी । इस प्रकार छायादिक् द्वारा आनीत सूर्य और ग्रन्थागत सूर्य के अन्तर तुल्य अयनांश को अन्तरित कर गणेश दैवज्ञ ने आर्षमत की उपयोगिता को बनाए रखा ।

सूर्य सिद्धान्त आर्षग्रन्थ है । इसके प्रति हजारों शताब्दियों से भारतीय जनमानस की आस्था है । इसी आस्था को देखते हुए महामनाजी ने विश्वपञ्चाङ्ग का सौरमत से प्रणयन प्रारम्भ किया, तथा इसकी भूमिका में धार्मिक कृत्यों के लिए सौर आनीत ग्रहों को ही स्वीकार किया । आज भी सूर्य सिद्धान्त द्वारा आनीत अयनांश सूक्ष्म अयनांश से मात्र ४ कला अधिक है ।

'त्रिंशत्कृत्यो युगेभानां चक्रं प्राक् परिलम्बते''।

इस श्लोक में एक महायुग में ६०० अयनांश भगण बताया गया है । एक अयनांश भगण में १०८ अंश माना गया है । इस प्रकार ६०० × १०८ = ६४८०० अंश एक महायुग में हुए । इसकी कला ३८८८००० हुई । इसमें युगीन सौरवर्ष में भाग देने पर —

$$\frac{३८८८०००}{४३२०,०००} = ५४ \text{ विकला}$$

यही सूर्य सिद्धान्तीय अयनांश की वार्षिक गति है। आधुनिक अयनांश की वार्षिक गति ५०.२ विकला है । इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि हजारों वर्ष से प्रचलित यह सूर्यसिद्धान्त आजं भी अत्यन्त उपयुक्त है ।

पं० मुरारी लाल शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध में सूर्यसिद्धान्त के अयनांश पर गहन विचार किया है । सूर्यसिद्धान्त एवं आधुनिक सिद्धान्त में ४ कला का जो अयनांशान्तर आता है वह वर्षमान के कारण है । सूर्यसिद्धान्त का वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३१ विपल २४ प्रतिविपल है । जबकि आधुनिक वर्षमान ३६५।१५।४०।६ है । दोनों का अन्तर मात्र ८ पल एवं ३५ विपल होता है । सूर्य सिद्धान्त का वर्ष मान अधिक है । इसलिए आधुनिक अयनांश ५०.२ में ८।३५ का संस्कार करने पर ५८.६ अयन गति आती है ।

आज भी प्रत्येक भारतीय पञ्चाङ्गों में मध्यम गतिमान से अयनांश की गति ६० विकला मानी गई है जो सर्वथा समुचित है । इस प्रकार सूर्य सिद्धान्त का अयनांश आचार्य की सूक्ष्म दृष्टि का प्रतीक है ।

हमारे फलित ग्रन्थों में उच्चादि बताए गए है जो आज गणितागत मान से नहीं मिलते, परन्तु फलादेश में सूर्य का उच्च मेष में, चन्द्र का वृष में कहा गया है । परन्तु

पञ्चाङ्गकार जब इन सभी ग्रहों के उच्चानयन करता है तो अन्तर आता है । यद्यपि फलित ज्योतिष का आधार तो गणित ज्योतिष ही है । ये सभी विवाद आज विद्यमान हैं । कुछ लोगों का कहना है कि फलित में काल को पुरुष माना गया है । वह काल नित्य हैं । अत: नित्यत्व के कारण उसके उच्चादि मान में विकृति नहीं होगी । जो कुछ भी हो यह शास्त्र विचार और अनुसंधान का शास्त्र है । समयानुसार नए विचार तथा अनुभव भी सही दिशा देने में समर्थ हो सकते हैं ।

ताजिक नीलकण्ठी में ३ तंत्र है । ताजिक नीलकण्ठी के विषय –

१. संज्ञातंत्र
२. वर्ष तंत्र
३. प्रश्न तंत्र

१. संज्ञातंत्र में राशियों का स्वरूप, वर्षप्रवेश, इष्टकालीन ग्रह, भयातभभोग, स्पष्टचन्द्र, नत साधन, ससन्धि, द्वादशभावसाधन, राशीश द्रेष्काण, ग्रहों के उच्च नीच पंचवर्गीबल साधन, बल विभाग, द्वादशवर्गी साधन, भावों का शुभाशुभफलनिर्णय, लग्नादि द्वादश भावों का विचार–केन्द्रादि संज्ञा, त्रिराशीश विचार, पंचाधिकारी, वर्षेश निर्णय, मुथहासाधनादि का वर्णन है । इसके अलावे दृष्टिफलाध्याय में ग्रहस्वरूप ग्रह में भी विचार तथा योगाध्याय में १६ योगों और सहमाध्याय में ५० सहमों का वर्णन, साथ ही पात्यायिनी दशा का वर्णन किया गया है ।

२. वर्षतन्त्राध्याय में भी वर्षेश्वर निर्णय, मुथहाफलाध्याय, वर्षारिष्ट विचार तथा अरिष्टभङ्ग विचार, भाव विचार, पुन: दशाक्रम विचार, मासदिन प्रवेश विचार किया गया है । इसमें संज्ञातंत्र की बहुत सी बातें पुनरुक्त भी हैं ।

३. प्रश्न तंत्र में प्रश्न पूछने का प्रकार, ज्योतिष लक्षण, प्रश्नकर्ता का परिचय, प्रश्नों के उत्तर के प्रकार, कार्यसिद्धि विचार, जीवन मरण विचार जय पराजय विचार, चोरी से गए धन का विचार, भोजन, स्वप्न, कलह, बन्धन–मोक्ष, नौका यात्रा, लोकोपवाद क्रय विक्रय और कृषि सम्बन्ध से अनेकों प्रश्नों का शुभाशुभ विचार किया गया है । इसके अलावा परिशिष्ट में मुद्दादशासाधन, त्रिपताकी चक्र, विदेश कुण्डली निर्माण विधि, योगमालिका संग्रह आदि विषय दिए गए हैं । जो विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है । इस प्रकार ताजिक ग्रन्थों में जातक ग्रन्थों से बहुत हद तक एकरूपता है । जो कुछ भी भेद है वह अत्यन्त न्यून है ।

ग्रन्थकार नीलकण्ठाचार्य :

नीलकण्ठी ग्रन्थ के निर्माता श्री नीलकण्ठ दैवज्ञ विदर्भदेश (कश्मीर) में १४६६ शकाब्द में गर्ग गोत्र में उत्पन्न हुए थे । ये चिन्तामणि दैवज्ञ के पौत्र अनन्तदैवज्ञ के पुत्र और रामदैवज्ञ के अनुज थे । इनके पुत्र गोविन्द दैवज्ञ १४९१ शकाब्द में उत्पन्न अपने पितृव्य रामदैवज्ञ रचित मुहूर्त्तचिन्तामणि की 'पीयूषधारा' नामक टीका की और १५२५ शकाब्द में नीलकण्ठी की 'रसाला' नामक टीका की है ।

इस प्रकार दैवज्ञ परम्परा में उत्पन्न नीलकण्ठाचार्य का ज्योतिष जगत् में एक सम्मानित स्थान है । नीलकण्ठी के अतिरिक्त ताजिक ग्रन्थों की नामावली भी टीकाकारों ने दिया है जैसे हायन रत्न, हायन सुन्दर, इन ग्रन्थों से नीलकण्ठी आज भी विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है । मैंने विद्यार्थियों की सुगमता के लिए, परिशिष्ट में उदाहरण सहित कुण्डली निर्माण की विधि और योगमालाशतक भी दिया है । इतने बड़े ग्रन्थ में अशुद्धि होना स्वाभाविक है अत: पाठक गण त्रुटि के लिए क्षमा करेंगे ।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में चौखम्बा संस्कृत संस्थान के संचालकों का मैं हृदय से आभारी हूँ । साथ ही मैं श्रीरामरञ्जन मालवीय [Malaviya computers] का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अनवरत परिश्रम कर अपने कम्प्यूटर में इसे वर्तमान भौतिक स्वरूप प्रदान किया । मैं इनके मङ्गल भविष्य के लिए भगवान् विश्वनाथ से शुभकामना करता हूँ ।

विद्वद्वशंवदः
डॉ० रामचन्द्र पाठकः

विक्रमसंवत् २०५४
मकर संक्रान्ति, बुधवार (१४.१.१९९८)
ज्योतिष विभाग,
संस्कृत विद्या धर्म–विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अथ नीलकण्ठ्याः विषयानुक्रमणिका

अथ संज्ञातन्त्रम्

अथ ग्रहाध्यायः	१— ६९
मङ्गलाचरणम्	१
द्वादशराशिस्वरूपकथनम्, तत्रादौ मेषराशिस्वरूपम्	१
अथ वृषराशिस्वरूपकथनम्	२
अथ मिथुनराशिस्वरूपकथनम्	२
अथ कर्कराशिस्वरूपकथनम्	३
अथ सिंहराशिस्वरूपकथनम्	३
अथ कन्याराशिस्वरूपकथनम्	४
अथ तुलाराशिस्वरूपकथनम्	४
अथ वृश्चिकराशिस्वरूपकथनम्	५
अथ धनुराशिस्वरूपकथनम्	५
अथ मकरराशिस्वरूपकथनम्	५
अथ कुम्भराशिस्वरूपकथनम्	६
अथ मीनराशिस्वरूपकथनम्	६
राशिस्वरूपमुक्त्वेदानीं राशिनां मित्रामित्रविभागकथनम्	७
राशिस्वरूपस्य फलकथनार्थं संक्षेपेण किञ्चित्स्वरूपकथनम्	७
राशियों के स्वरूपबोधक चक्र	८
अथ वर्षप्रवेशसाधनार्थं वर्षप्रवृत्तिसमयकथनम्	१०
जन्मकालिकस्पष्टग्रहाः	११
अथ तिथिसाधनम्	१३
ग्रहस्पष्टीकरणे पंक्तिस्थग्रहाणामिष्टकाले चालनगणितक्रियाकथनम्	१५
स्पष्टचन्द्रानयन	१९
प्रसङ्गानुसार जन्मकालिक इष्टकाल, भयात एवं भभोग आनयन की विधि	२०
भयात एवं भभोग का आनयन	२३
वर्ष प्रवेशकालि स्पष्टग्रहाः	२७
दशमलग्नसाधनार्थनतकालसाधनकथनम्	२८
अथ लग्नानयनकथनम्	२९
पलभानय	३०
अथदशमलग्नसाधनकथनम्	३४
नत आनयन की दूसरी विधि	३६
ससन्धिद्वादशभावसाधन	४०
ससन्धिद्वादशभाव चक्र	४२
चलित चक्र	४३
अथ सूर्यस्य भुक्तमथवाभोग्यमुक्तरीत्याचानीतं तद्यदीष्टकालघटीपलेभ्यो न शुद्ध्येत् तदा केनोपायेन लग्नसाधनं कर्त्तव्यमित्याह	४३
अथ भावस्थग्रहफलम्	४५
अथ ग्रहाणां विंशोपकात्मकभावफल— कथनम्	४५
अथ राशीशद्रेष्काणेशानाह	४६
राशिस्वामी चन्द्र	४६
अथ द्रेष्काण चक्र	४७
अथ ग्रहाणामुच्चनीचान्याह	४७
अथोच्चनीचचक्रम्	४७
अथ ग्रहाणांनीचस्थामुच्चबलानयनं नवांशस्वामिनश्चाह	४८
अथ नवांशबोधकचक्र	४९

अथ षड्भिश्लोकैर्मेषादिद्वादशराशिषु हद्देशानाह ५०
हद्देशचक्र ५०
अथ ग्रहाणां स्वभवनादि भिन्नस्थलेषु बलकथनम् ५१
पञ्चवर्गीचक्र ५३
द्वादशवर्गीयबलकथनम् ५३
अथ होरेश चक्रम् ५४
द्रेष्काणेशचक्रम् ५४
चतुर्थांशेशा ५५
अथ पञ्चमांशेशद्वादशांशेशानाह ५५
द्वादशांशचक्र ५६
अथ एकादशांशेशानाह ५६
अथ द्वादशवर्ग्युपसंहारं तत्फलं चाह ५८
अथ ग्रहफलनिर्णयकथनम् ५९
अथ क्षेत्रभेदने ग्रहस्य शुभपापत्वकथनम् ५९
द्वादशभावानां शुभाशुभफलकथनम् ६०
अथ तन्वादिद्वादशभावानां द्वादशवर्गीयचक्रम् ६०
अथ लग्नात् किं विचार्यमित्याह ६०
धनभावे सहजभावे च किं किं विचार्थमित्याह ६१
चतुर्थपंचमभावविचारकथनम् ६१
षष्ठसप्तमभावविचारकथनम् ६१
अथाष्टमभवनविचारकथनम् ६२
अथ धर्मकर्मभावविचारकथनम् ६२
एकादशभावविचारकथनम् ६३
अथ व्ययभावविचारकथनम् ६३
अथ बलीग्रहलक्षणम् ६३
अथ त्रैराशिकस्वामिन आह ६५
अथैतस्य प्रयोजनकथनम् ६६
अथ वर्षेशनिर्णयार्थंपञ्चाधिकारिण आह ६६
दृष्टिसाम्ये व्यवस्थाकथनम् ६७
केषाञ्चिन्मतेन दृष्टिबलसाम्ये वर्षेश निर्णयकथनम् ६७
अथ मुन्थानयनकथनम् ६८
राहोर्मुख पृष्ठपुच्छानां लक्षणकथनम् ६८

अथ दृष्टिफलाध्यायः (ग्रहाणां स्वरूपम्)

तत्रादौ सूर्यस्य स्वरूपकथनम् ७०
अथ चन्द्रस्वरूपम् ७१
अथ कुजस्वरूपकथनम् ७१
अथ बुधस्वरूपकथनम् ७१
अथ गुरुस्वरूपकथनम् ७२
अथ शुक्रस्वरूपकथनम् ७२
अथ ग्रहाणां स्वरूपबोधकं चक्रम् ७३
अथ शनिस्वरूपकथनम् ७४
अथ राहुस्वरूपकथनम् ७४

अथ दृष्टिप्रकरणम्

तत्रादौ प्रत्यक्षस्नेहगुप्तदृष्टिकथनम् ७५
अथेष्टदृष्टिकलासाधनकथनम् ७६
दृष्टि ध्रुवाङ्काः ७८
सूर्यादि ग्रहों के दीप्तांश ७९

अथ षोडशयोगाध्यायः

अथ ईसराफयोगलक्षणकथनम् ८४
अथ नक्तयोगलक्षणकथनम् ८५
अथ नक्तयोगस्योदाहरणम् ८५
अथ यमयायोगलक्षणकथनम् ८६
अथ यमयायोगोदाहरणकथनम् ८७
अथ मणऊयोगलक्षणकथनम् ८७
अथ मणऊयोगोदाहरणम् ८८

अथवा मणऊयोगोदाहरणभेदकथनम् ८९
अथोदाहरणम् ८९
अथ कबूलयोगस्य सामान्यलक्षणकथनम् ९०
तत्रोत्तमोत्तमकबूलकथनम् ९०
अथ मध्यमोत्तमस्य, उत्तमस्य च लक्षणकथनम् ९१
अथोत्तमाधमकंबूलमध्यमोत्तमकंबूलमध्य–मध्यमकंबूललक्षणकथनम् ९२
अथ मध्यमकबूललक्षणकथनम् ९३
अथापरमुत्तमकबूललक्षणकथनम् ९४
अथ पुनर्मध्यमकबूललक्षणकथनम् ९४
अथोत्तमोत्तमकबूलयोगोदाहरणकथनम् ९७
अथाधमाधमकंबूलस्योदाहरणम् ९८
अथ प्रकारान्तरेण कम्बूलयोगस्य लक्षणकथनम् ९९
अथ गैरिकम्बूलं वक्तुकामस्तदुपयोगि–शून्याध्वलक्षणकथनम् १००
अथ गैरिकम्बूललक्षणकथनम् १०१
अथ गैरिकम्बूलस्योदाहरणकथनम् १०१
अथ खल्लासरयोगलक्षणकथनम् १०२
अथ रद्दयोगलक्षणकथनम् १०३
अथ रद्दयोगस्यैव स्थितिवशेन फलभेदकथनम् १०३
अथ दुफालिकुत्थयोगलक्षणकथनम् १०४
अथ दुत्थोत्थदिवीरयोगकथनम् १०४
अथ कुत्थयोगलक्षणकथनम् १०५
अथ दुरुफलक्षणकथनम् १०७
अथान्यानशुभप्रकारानाह १०७
अथान्यदुरुफं चन्द्रस्याह १०८
अथ हर्षस्थानान्याह १०९

अथ सहमाध्यायः

तत्र तावत्पञ्चाशत्सहमनामान्याह ११२
तत्रादौ पुण्यसहमसाधनकथनम् ११२
अथ गुरुविद्यायशःसहमानां साधनकथनम् ११३
अथ मित्रसहमसाधनकथनम् ११४
अथ महात्म्याशासहमयोः साधनकथनम् ११४
अथ सामर्थ्यसहमभ्रातृसहमयोः साधनकथनम् ११४
अथ गौरवराजतातसहमसाधनकथनम् ११५
अथ मातृसुतजीविताम्बुसहमसाधनकथनम् ११६
अथ कर्मरोगमन्मथसहमानयनकथनम् ११६
अथ कलिक्षमाशास्त्रसहमानयनकथनम् ११७
अथ बन्धुबन्दकमृत्युसहमानयनकथनम् ११७
अथ देशान्तरसहमार्थसहमयोः साधनकथनम् ११८
अथ परदाराऽन्यकर्मवणिक्सहम–साधनकथनम् ११८
अथ कार्यसिद्धिविवाहसहमयोः साधनकथनम् ११९
अथ प्रसवसन्तापसहमयोः साधनकथनम् ११९
अथ शत्रुशौर्योपायदरिद्रगुरुतासहमा–नामानयनकथनम् १२०
जलपथबन्धनसहमानयनकथनम् १२१
अथ कन्याऽश्वसहमयोः साधनकथनम् १२२
अथ सहमफलप्राप्तिसमयसाधनकथनम् १२२
अथ सहमफलानि व्याख्यायन्ते १२३
अथ निर्बलग्रहलक्षणकथनम् १२३
अथ सहमबलविवेककथनम् १२४
अथान्यत्सहमासम्भवलक्षणकथनम् १२४

वर्षे बलिष्ठसहमस्यैव विचार: कार्यस्तदाह १२५
अथ पुण्यसहमविचारकथनम् १२५
अथ पुण्यसहमस्याशुभफलत्वं सापवादकथनम् १२५
शुभपापग्रहसम्बन्धेन युतिदृष्ट्ये: फलकथनम् १२६
अथ कार्यसिद्धिसहमशुभा–शुभफलकथनम् १२७
अथ कलिसहमस्य शुभाशुभकथनम् १२७
अथ विवाहसहमस्य शुभाशुभ–फलकथनम् १२८
अथ यश:सहमस्य फल कथनम् १२८
अथाशासहमविचारकथनम् १२९
अथ रोगसहमशुभाशुभविचारकथनम् १२९
अथ अर्थसहमविचारकथनम् १३०
अथ शत्रुमित्रदृष्ट्ये: फलकथनम् १३१
अथ पुत्रसहमविचारकथनम् १३१
अथ पुन: पुत्रसहमविचारकथनम् १३१
अथ पित्र्यसहमशुभाशुभविचारकथनम् १३२
पुनरपि पितृसहमशुभाशुभविचारकथनम् १३२
अथ बन्धनसहमविचारकथनम् १३३
अथ गौरवसहमस्य शुभाशुभ–विचारकथनम् १३३
अथ पुनर्गौरवसहमविचारकथनम् १३३
अथ कर्मसहमविचारकथनम् १३४
अथ पुनरपि कर्मभावसहमा–धिपाशुभविचारकथनम् १३४
अथ केषांचित्सन्दिग्धार्थानां सहमानां नि:सन्दिग्धार्थकथनम् १३४

अथ पात्यायिनीदशानिरूपणम्

अथ दशानयनकथनम् १३७
अथ शुद्धांशसाम्ये दशानिर्णयकथनम् १३८
अथान्तर्दशानयनकथनम् १३९
अथ मासदिनप्रवेशानयनकथनम् १३९
अथ मासप्रवेशघटिकाद्यानयनकथनम् १४०
अथ वर्षेशानयनकथनम् १४१

॥ इति संज्ञातन्त्रम् ॥

—☆—

अथ वर्षतन्त्रम्

अथ वर्षतन्त्राध्याय १४३
अथ वर्षफलद्योतकं वर्षपत्रकरणप्रयोजन कथनम् १४३
अथ वर्षप्रवेशोपकरणान्याह १४४
अथ प्रश्नलग्नात् वर्षपत्रानयनकथनम् १४४
अथ वर्षेश्वरनिर्णयकथनम् १४५
अथ केषाञ्चिन्मतकथनम् १४५

अथ वर्षफलाध्याय:

अथ बलानुसारेण वर्षेश्वरफलकथनम् १४६
अथ सूर्यस्य वर्षेशत्वफलं, तत्र पूर्णबलिनो वर्षेशसूर्यस्य फलकथनम् १४६
अथ मध्यबलसूर्यस्य वर्षेशफलम् १४६
अथ हीनबलसूर्यस्य वर्षेशफलकथनम् १४६
अथ चन्द्रस्य वर्षेशफलकथनम् १४७

अथ पूर्णबलचन्द्रस्य वर्षेशत्व–
फलकथनम् १४७
अथ मध्यबलचन्द्रस्य वर्षेशबलकथनम् १४८
अथ क्षीणबलचन्द्रस्य वर्षेशफलकथनम् १४८
अथपूर्णबलभौमस्य वर्षेशफलकथनम् १४८
अथ मध्यबलभौमस्य वर्षेशफलकथनम् १४९
अथ क्षीणबलकुजस्य वर्षेशफलकथनम् १४९
अथ पूर्णबलस्य बुधस्य वर्षेश–
फलकथनम् १५०
अथ मध्यबलबुधस्य वर्षेशफलकथनम् १५०
अथ हीनबलबुधस्य वर्षेशफलकथनम् १५०
अथ गुरोरुत्तमबलिनो वर्षेशफलकथनम् १५१
अथ मध्यबलगुरोर्वर्षेशफलकथनम् १५१
अथ हीनबलस्य गुरोर्वर्षेशफलकथनम् १५१
अथ पूर्णबलस्य शुक्रस्य वर्षेश–
फलकथनम् १५२
अथ मध्यबलस्य शुक्रस्य वर्षेश–
फलकथनम् १५२
अथ हीनबलस्य शुक्रस्य वर्षेश–
फलकथनम् १५३
अथ पूर्णबलस्य शनेर्वर्षेशफलकथनम् १५३
अथ मध्यबलस्य शनेर्वर्षेशफलकथनम् १५३
अथ हीनबलशनेर्वर्षेशफलकथनम् १५४
अथ विशेषकथनम् १५४
हद्दे यादृशीत्यादि सोदाहरणं स्पष्टयति १५६
अथोपसंहरन्नाह १५७

—★—

अथ मुथहाफलाध्यायः

तत्र तावन्मुथहाऽऽनयनकथनम् १५७
अथ मुथहाया दैनिकमासिकगती आह १५८
अथ सामान्यतो मुथहाफलकथनम् १५८
अथ स्थानवशेन मुथहायाः फलकथनम् १५९
अथ मुथहाभावफलम्, तत्रादौ
तनुभावस्थमुथहाफलम् १५९
अथ धनभावस्थमुथहाफलम् १५९
अथ सहजभावस्थमुथहाफलम् १५९
अथ चतुर्थभावस्थितमुथहाफलम् १६०
अथ पञ्चमभावस्थमुथहाफलम् १६०
अथ षष्ठस्थानस्थितमुथहाफलम् १६०
अथ सप्तमभावगतमुथहाफलम् १६१
अथाष्टमभावगतमुथहाफलम् १६१
अथ धर्मभावगतमुथहाफलम् १६१
अथ कर्मभावस्थितमुथहाफलम् १६२
अथैकादशभावगतमुथहाफलम् १६२
अथ व्ययस्थानस्थितमुथहाफलम् १६२
अथ मुथहाविशेषफलम् १६३
अथ स्थानवशेन मुथहाफलम् १६३
अथ सूर्ययुतदृष्टतद्राशिंस्थमुथहाफलम् १६५
अथ चन्द्रयुतदृष्टतद्राशिस्थमुथहाफलम् १६५
अथ कुजयुक्तदृष्टतद्रस्थमुथहाफलम् १६६
बुधशुक्रयोराह १६६
अथगुरोराह १६६
अथ शनेराह १६७
अथ राहोर्मुखपृष्ठपुच्छसंज्ञालक्षणकथनम् १६७
अथ मुथहेशफलकथनम् १६९
अथ मुथहेशफलमेवाह १६९

—★—

अथारिष्टाध्यायः

तत्र लग्नेशाद्यरिष्टकथनम् १७०
अथ चन्द्रारिष्टं सापवादकथनम् १७५
अथ मुथहाकृतारिष्टकथनम् १७६

अथारिष्टभंगाध्यायः

अथ राजयोगभंगकथनम् १८०

—☆—

अथ भावविचाराध्यायः

तत्रादौ तनुभावस्य विचारः १८१
वर्षलग्न का फल १८३
अथ द्वितीय (धन) भावविचारः १८४
अथ तृतीय (सहज) भावविचारः १८९
अथ चतुर्थ (सुख) भावविचारः १९३
अथ पञ्चम(सुत) भावविचारः १९५
अथ षष्ठ (रिपु) भावविचारः १९७
अथ शनिकृतारिष्टकथनम् १९९
अथ सप्तम (स्त्री) भावविचारः २०३
अथाष्टम (मृत्यु) भावविचारः २०७
अथ नवम (भाग्य) भावविचारः २१४
अथ दशम (राजव्यापार) भावविचारः २१८
अथैकादश (आय) भाव विचारः २२१
अथ द्वादश (व्यय) भाव विचारः २२२

—☆—

अथ दशाफलाध्यायः

तत्र दशाक्रमविचारः २२७
लग्नदशाफलम् २२७
अथ सूर्यदशाफलं, तत्र तावत् पूर्णबलस्य दशाफलम् २२८
अथ स्वल्पबलसूर्यस्य दशाफलम् २२९
अथ मध्यबलकुजदशाफलम् २३१
अथ हीनबलकुजस्य दशाफलकथनम् २३१
अथ नष्टबलकुजस्य दशाफलकथनम् २३१
अथ विशेषफलकथनम् २३२
अथ बुधदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य बुधस्य दशाफलम् २३२
अथ मध्यबलस्य बुधस्य दशाफलकथनम् २३२
अथ स्वल्पबलस्य बुधस्य दशाफलम् २३३
अथ हीनबलस्य बुधस्य दशाफलकथनम् २३३
अथ गुरुदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य गुरोर्दशाफलम् २३४
अथ मध्यबलस्य गुरोर्दशाफलम् २३४
अथ स्वल्पबलस्य गुरोर्दशाफलम् २३४
अथ हीनबलस्य गुरोर्दशाफलम् २३५
अथ विशेषकथनम् २३५
अथ शुक्रदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् २३५
अथ मध्यबलस्य भृगोर्दशाफलम् २३६
अथाल्पबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् २३६
अथ हीनबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् २३६
अथ विशेषकथनम् २३६
अथ शनिदशाफलानि लिख्यन्ते, तत्रादौ पूर्णबलस्य शनेर्दशाफलम् २३७
अथ मध्यबलशनेर्दशाफलम् २३७
अथ हीनबलशनिदशाफलम् २३७
अथ नष्टबलस्य शनेर्दशाफलम् २३८
अथ विशेषफलकथनम् २३८
अथ लग्नदशाफलकथनम् २३८
अथान्तर्दशासाधनं तच्छुभाशुभफलं चाह २३९
अथ लग्नस्थग्रहाणां फलानि २४०
अथ धनभावस्थितसकलग्रहफलम् २४१
अथ तृतीयभावस्थितसकलग्रहफलम् २४१
अथ चतुर्थभावस्थसकलग्रहफलम् २४१
अथ पञ्चमभावस्थसकलग्रंहफलम् २४२
अथ षष्ठभावस्थसकलग्रहफलम् २४२

अथ सप्तमभावस्थसकलग्रहफलम् २४२
अथाष्टमभावस्थसकलग्रहफलम् २४२
अथ नवमभावगतसकलग्रहफलम् २४२
अथ दशमस्थानस्थितसकलग्रहफलम् २४३
अथ लाभभावस्थसकलग्रहफलम् २४३
अथ व्ययभावस्थसकलग्रहफलम् २४३

—☆—

अथ मासदिनफलाध्यायः

तत्रादौ मासप्रवेशवेलासाधनकथनम् २४४
अथ मासप्रवेशे मासेशसाधनकथनम् २४५
अथ मासफलकथनम् २४६
अथानिष्टफलकथनम् २४६
अथ मासलग्नस्य शुभाशुभफलकथनम् २४७
अथ प्रकारांतरेण भावस्य सौख्यकथनम् २४७
अथ लग्ननवांशोत्पन्नभावस्य शुभाशुभफलकथनम् २४८
अथ दिनेशफलकथनम् २४९
अथ दिनस्वामिनिर्णयकथनम् २५०
अथ फलकथनम् २५०
अथाष्टमभावफलकथनम् २५२
अथ कर्त्तरीयोगकथनम् २५३
अथ चन्द्रकृतानिष्टकथनम् २५३
अथान्यदरिष्टयोगकथनम् २५३
अथ शुभफलकथनम् २५४
अथ दिनप्रवेशे चन्द्रावस्थावशेन फलकथनम् २५४
अथ चन्द्रावस्थासाधनकथनम् २५४
अथावस्थाफलकथनम् २५५
अथ मृगयाविचारकथनम् २५५
अथान्यदाह २५६
अथ भोजनचिन्ताविचारकथनम् २५६
अथ भोजनविवरणमेवकथनम् २५७
अथ ग्रहभेदेन भोजनपदार्थभेदकथनम् २५९
अथ स्वप्नचिन्ता २६०

—☆—

अथ प्रश्नतन्त्रम्

अथ प्रश्नविचाराध्याय २६२
तत्र प्रश्नविचारस्य प्रयोजनमाह वराह २६२
अथोत्तमफलितज्ञज्योतिज्ञेलक्षणकथनम् (उत्पलः) २६३
एतच्छास्त्रं विनीतेभ्यो दीयमानं सत्सफलं भवति तदाह २६३
स्मृतिरप्याह २६३
अथ प्रष्टुः परिचयकथनम् २६४
अथ यत्र बहवः प्रश्ना युगपत् सम्भवन्ति तत्र निरूपणप्रकारश्चण्डेश्वरप्रश्न विद्यायाम् २६५
अत एवोक्तं प्रश्नचिन्तामणौ २६५
अथ ग्रहाणामवस्था आह २६६
अथ तद्वशेन फलान्याह २६७
अथ रविग्रहस्वरूपकथनम् २६७
अथ चन्द्रस्वरूपकथनम् २६८

अथ कुजस्वरूपकथनम् २६८
अथ बुधस्वरूपकथनम् २६८
अथ गुरुस्वरूपकथनम् २६९
अथ शुक्रस्वरूपकथनम् २६९
अथ शनिस्वरूपकथनम् २६९
अथ राहुग्रहस्वरूपकथनम् २७०
अथ द्वितीयभावाद्विचारणीयकथनम् २७०
अथ तृतीयभावे विचारणीयकथनम् २७१
अथ चतुर्थभावे विचारणीयकथनम् २७१
अथ पञ्चमभावात् किं किं विचारणीयं ?
तदाह २७१
अथ षष्ठभावाद्विचारणीयकथनम् २७२
अथ सप्तमभावाद्विचारणीयकथनम् २७२
अथाष्टमभावाद्विचारणीथकथनम् २७२
नवमभवात् विचारणीयकथनम् २७३
अथ दशमभावाद्विचारणीयकथनम् २७३
अथैकादशभावाद्विचारणीयकथनम् २७३
अथ व्ययभावाद्विचारणीयकथनम् २७४

—☆—

अथ भावप्रश्नाध्यायः

अथ साधारणतया सकलभावविषयकवृद्धिहानी
आह (षट्पञ्चाशिकायाम्) २७४
अथ कार्यसिद्धियोगानाह (भुवनप्रदीपे) २७५
अथ कार्यसिद्धियोगस्य न्यूनाधिकत्व—
कथनम् २७५
अथानिष्टयोगकथनम् २७६
अथ कार्यसिद्धिप्रश्नविचारकथनम् २७७
अथ प्रत्येकभाव प्रश्ननिरूपणं
ताजिकशास्त्रोक्ततन्त्रे २७८
तत्रादौ लग्नप्रश्ननिरूपणम् २७८
अथ द्वितीयस्थानपृच्छा तत्रैव २७९
प्रश्नदीपके द्वितीयभावपृच्छाकथनम् २७९
अथ तृतीयभावपृच्छाकथनम्
ताजिकोक्तप्रश्नतन्त्रे २८०
अथ चतुर्थस्थानपृच्छा २८१
अथ पञ्चमस्थानपृच्छा २८३
अथ पञ्चमभावपृच्छायां चन्द्रवशेन
विचारः २८४
अथ पञ्चमभावपृच्छायामेव
गर्भसम्भवप्रश्नकथनम् २८५
अथ गर्भनाशयोगकथनम् २८५
अथ पञ्चमभावपृच्छायामेवसन्तानजीवित—
मरणयोः प्रश्नकथनम् २८५
अथ पञ्चमभावप्रश्ने
तावत्प्रसवकालज्ञानप्रश्नमाह २८६
अथवा गर्भमासज्ञानकथनम्
(भवन प्रदीपे) २८६
अथ दिनरात्र्योः कदा प्रसवसम्भवस्तदाह २८७
अथापत्यप्राप्तिप्रश्नकथनम् २८८
अथ षष्ठस्थानपृच्छा २८८
अथ रोगिणः प्रश्नान्मरणयोगकथनम् २८९
अथ रोगिरोगविषयप्रश्नकथनम् २९०
अथ स्वामिभृत्यचतुष्पादप्रकरणम् २९१
अथ वर्त्तमानप्रभुप्रकृतिज्ञानार्थं प्रश्नः २९२
अथ भृत्यचतुष्पदलाभप्रश्नविचारकथनम् २९३
अथ सप्तमस्थानपृच्छाकथनम् २९३
अथ स्त्रीस्नेहप्रश्नः २९४
अथ रुष्टाऽऽगमनप्रश्नविचारः २९५
अथ कन्याचरित्रज्ञानाय प्रश्नः २९६
अथ स्वपरप्रसूतिपरीक्षाप्रश्नः २९७
अथ गर्भसन्देहपृच्छाकथनम् २९८
अथ पातिव्रत्यपरीक्षा २९८

अथाष्टमस्थानपृच्छायां तावन्नृपसङ्ग्राम—
प्रश्नकथनम् ३००
अथ युद्ध्यतो राज्ञोर्जयादियोगकथनम् ३००
अथ नवमस्थानपृच्छायां गमनप्रश्नकथनम् ३०२
अथ कार्यसिद्ध्यसिद्धियोगकथनम् ३०४
अथ कार्ये कुतः कुतो भयसम्भवस्तदाह ३०४
अथ नगरप्रवेशे लाभालाभप्रश्नः ३०५
इति नवमस्थानपृच्छाविचारः — ३०६
अथ दशमस्थानपृच्छायां
तावद्राज्याप्तिप्रश्नकथनम् ३०६
अथ कार्यसिद्धिप्रश्नकथनम् ३०७
अथैतद्राज्यलाभेन मम कीदृशः परिणामः
स्यादिति प्रश्ने विचारकथनम् ३०७
अथ मन्त्रिविषयकपृच्छायाकथनम् ३०९
अथैतद्राज्यं चरं स्थिरं वा भवेदिति
प्रश्ने विचारः ३०९
अथैकादशस्थानपृच्छा ३१०
मम मित्रेण समं प्रीतिर्भविष्यति न वा ?
इति प्रश्ने विचारः ३११
अथ गुप्तकार्यसिद्धिपृच्छाकथनम् ३११
अथ द्वादशस्थानपृच्छाविचारः ३१२
अथ व्ययविषयपृच्छा ३१२

—☆—

अथ विशेषप्रश्नाध्यायः

तत्र*पथिकागमनकथनम्, ताजिके
समरसिंहेन ३१३
अथ प्रश्नचिन्तामणौ पथिकागमनप्रश्नः ३१४
अथ दूरस्थो जीवति मृतो वेत्थं
यदा प्रश्नः ३२१
अथ परचक्रागमनपृच्छा
(षट्पञ्चशिकायाम्) ३२२
अन्यत्रापि प्रश्नप्रदीपे ३२४
अथ प्रश्नचिन्तामणौ दुर्गप्रश्नः ३२६
अथ रोगिणः शुभाशुभविचारः ३२७
अथ देवदोषज्ञानम् ३२९
(त्रैलोक्यप्रकाशे) नृपसेवकशुभा—
शुभप्रश्नः ३३०
अथान्य ईशो मम भविष्यति न वा ?
इति प्रश्ने ३३१
अथ नष्टद्रव्यलाभप्रश्नः । तत्र धनप्राप्तौ
प्रश्नचिन्तामणौ ३३२
अथ षट्पञ्चाशिकायाम् ३३५
प्रश्नतन्त्रे ३३५
अथ चौरोऽयं न वे ति प्रश्ने विचारः ३४२
अथ विशेषतः सन्तानप्रश्नः ३४३
तथाच पुत्रविचारः प्रश्नचिन्तामणौ ३४६
अथ भोजनचिन्ता (प्रश्नचिन्तामणौ) ३४७
प्रश्नतन्त्रे भोजनचिन्ता ३४८
अथ भोजनचिन्तामेवाह ३४९
अथ स्वप्नविचारः ३५२
अत्रोत्पलः ३५३
अथाखेटकविचारः ३५३
अथ कलहविचारः—भुवनदीपके ३५४
अथ प्रवासिस्थितिविचारः — भु० दी० ३५६
अथ बद्धमोक्षप्रश्नः प्रश्नदीपके ३५७
अथ नौकाप्रश्नः ३६०
तथाचोक्तं यवनाचार्यैः ३६२
अथ किंवदन्ती (जनश्रुतिः) किं सत्या
भवति ? न वा ? इति प्रश्ने ३६२
अथ क्रयविक्रयिणोर्विचारः ३६३
अथ सस्यनिष्पत्तिविचारः ३६३

अथ प्रकीर्णकाध्यायः (भुवनप्रदीपे)

अथ सामान्यतो भावविचारः ३६७
अथ लाभादौ कालावधिनिर्णय उक्तो भट्टोत्पलेन ३६८
अथ मानसचिन्तामाह पृथुयशाः ३७०
उत्पलः ३७१
अथ पृथुयशाः (षट्पञ्चाशिकायाम्) ३७३
मया का स्त्री उपभुक्ता, मनसि चिन्तिता कीदृशी वा इति प्रश्ने ३७३
अथ सुरतप्रश्नः ३७४
अथ महर्घ चिन्ता ३७५
अथ मनुष्याणां जन्मलग्नात् प्रतिवर्ष शुभाशुभज्ञानम् ३७७
अथ ताजिकमतानुसारेण प्रश्नाद्युपयोगिन इत्थशालादयो योगाः कतिपया निरूप्यन्ते ३७८
अथेत्थशालयोगोदाहरणकथनम् ३८०
अथोदाहरणम् ३८१

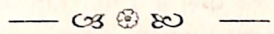
—☆—

परिशिष्टम्

१ — मुद्दादशा एवं त्रिपातकीचक्रः ३८३
मुद्दादशा का आनयन ३८३
मुद्दादशानयन ३८४
२ — विदेशकुण्डलीनिर्माणप्रकरणम्
३ — अथ ज्यौतिषयोगमाला संग्रहः ३९५

***

ताजिकनीलकण्ठी



अथ संज्ञातन्त्रम्

मङ्गलाचरणम्

प्रणम्य हेरम्बमथो दिवाकरं गुरोरनन्तस्य तथा पदाम्बुजम् ।
श्रीनीलकण्ठो विविनक्ति सूक्तिभिस्तत्ताजिकं सूरिमनः प्रसादकृत् ॥१॥

कुन्तला — श्रीनीलकण्ठः = श्रीनीलकण्ठ नामक, आचार्यः, हेरम्बं = विघ्नविनाशक–गणेशं, प्रणम्य = नमस्कृत्य, अथो = अथानन्तरं, दिवाकरं = सूर्यं; कालस्य प्रवर्तकः सूर्यः तथा विघ्नविनायकगणेशं च उभयोः प्रणम्य, अथानन्तरं अनन्तस्य = अनन्त दैवज्ञनामकस्य, गुरोः, पादाम्बुजम् = चरणकमलं प्रणम्य, सूरिमनः प्रसादकृत् = पण्डितानां अन्तःकरणं प्रसन्नाय अर्थात् एतद् ग्रन्थावलोकनेन पण्डितानां, मनः प्रसन्नं भवतीत्यर्थः । तत् = पूर्वाचार्योक्तं, ताजिकम् = तात्कालिकवर्षफलबोधकपुस्तकम् । सूक्तिभिः = उत्कृष्टवचनैः, विविनक्ति = प्रकटीकरोति, रचयति, प्रकाशयति इत्यर्थः ॥ १ ॥

ज्योति — मैं (नीलकण्ठनामक आचार्य) सर्व प्रथम गणेश जी और कालप्रवर्त्तक सूर्य भगवान् को प्रणाम कर इसके बाद अनन्त दैवज्ञ नाम के गुरु (पिता) के चरण कमलों को प्रणाम कर विद्वानों के अन्तःकरण को प्रसन्न करने वाले पूर्वाचार्यों (समरसिंह आदि आचार्यों) द्वारा बनाये हुए ताजिक ग्रन्थ (वर्षफल का ज्ञान कराने वाले) को अच्छी उक्तियों (वचनों) द्वारा प्रकाशित करता हूँ ॥ १ ॥

द्वादशराशिस्वरूपकथनम्—तत्रादौ मेषराशिस्वरूपम्—

पुमांश्चरोऽग्निः सुदृढ़श्चतुष्पाद्रक्तोष्णपित्तोऽतिरवोऽद्रिरुग्रः ।
पीतो दिनं प्राग्विषमोदयोऽल्पसङ्गप्रजो रूक्षनृपः समोऽजः ॥ २ ॥

कुन्तला — अजः = मेषराशिः, पुमान् = पुरुषराशिः, वा नरराशिः, चरः = चरसंज्ञकः, अग्निः = अग्नितत्त्वात्मकः, सुदृढ़ः = पुष्टाङ्गः, चतुष्पात् = चतुष्पदः, रक्तः = रक्तवर्णः, ऊष्णः = ऊष्णस्वभावः, पित्तः = पित्तप्रकृतिः, अतिरवः = महाशब्दकरः, अद्रिः = पर्वतचारी, उग्रः = क्रूरः,

पीतः = पीतवर्णः, दिनं = दिवाबली, पाक् = पूर्वदिक्स्वामी, विषमोदयः = वक्रोदयः, अल्पसङ्गप्रजः = स्वल्पसन्ततियुक्तः, रूक्षः = कान्तिरहितः, नृपः = क्षत्रिणवर्णः, समः = सामाङ्गः भवति ।। २ ।।

ज्योति — ज्यौतिषशास्त्र में १२ राशियों का नाम सर्वत्र आया है जिसके अनुसार फलादेश किए जाते हैं । अब १२ राशियों के स्वरूप को बताते हुए पहले मेषराशि का स्वरूप कहते हैं— मेषराशि पुरुष जाति की राशि है । चर संज्ञक अर्थात् सदा चलने वाली राशि है । अग्नितत्त्व है । इसके अङ्ग अत्यन्त सुदृढ़ हैं । इसके चार चरण हैं । रक्तवर्ण है । ऊष्ण स्वभाव है । पित्तप्रकृति है । गम्भीर शब्द करने वाली है । यह पर्वतचारी है । स्वभाव का क्रूर है । दिन में विशेष बलवान् रहती है । पूर्व दिशा का मालिक है । यह वक्र उदय होता है । कम सन्तानोत्पत्ति करने वाली है । यह कान्तिहीन रहती है । इसका वर्ण क्षत्रिय है तथा इसके सभी अङ्ग समान हैं । इस प्रकार उपरोक्त मेष राशि को जानने चाहिए ।। २ ।।

विशेष — जिसकी जन्मराशि मेष तथा जन्म लग्न मेष हो उसका स्वभाव, प्रकृति, वर्ण इत्यादि भी मेष राशि के स्वरूप में बताए गए निर्देशानुसार विद्वानों को कहना चाहिए । अर्थात् उस जातक में अग्नितत्त्व अधिक होगा, वर्ण रक्त तथा स्वभाव ऊष्ण पित्त प्रकृति इत्यादि मेष राशि के स्वरूपानुसार फल भी कहना चाहिए । इसका विचार जन्मराशि और प्रश्न लग्न दोनो से होता है ।। २ ।।

अथ वृषराशिस्वरूपकथनम्—

वृषस्थिरः स्त्रीक्षितिशीतरूक्षो याम्येट् सुभूर्वायुनिशाचतुष्पाद् ।
श्वेतोऽतिशब्दो विषमोदयश्च मध्यप्रजासङ्ग शुभोऽपि वैश्यः ।। ३ ।।

कुन्तला — वृषः = वृषराशिः, स्थिरः = स्थिर संज्ञकः, स्त्री = स्त्रीराशिः, क्षितिः = भूमिचरः, शीतः = शीतल स्वभावः, रूक्षः = क्रान्तिहीनः, याम्येट् = दक्षिणदिक्स्वामी, सुभू = सुष्ठुभूमिचारी, वायु = वायुतत्त्वः, निशा = रात्रिबली, चतुष्पाद् = चतुष्पदः, श्वेतः = शुभ्रवर्णः, अतिशब्दः = उच्चस्वरः, विषमोदयः = अल्पोदयः, मध्यप्रजासङ्ग = साधारणपरिजनपरिवृत्तः, शुभः = सौम्यः, वैश्यः = वैश्यवर्णः, ईदृशः वृषराशेः स्वरूपो ज्ञेयः ।। ३ ।।

ज्योति — वृषराशि, स्थिर संज्ञकः, स्त्री राशि, पृथ्वीतत्त्व, शीतल प्रकृति, दक्षिण दिशा का स्वामी, सुन्दर भूमि में चलने वाला, वातात्मक, रात्रि में बली, चतुष्पद स्वच्छवर्ण, जोर से शब्द करने वाला, साधारण संतति वाला, विषम उदय वाला, शुभराशि और जाति का वैश्य है ।। ३ ।।

अथ मिथुनराशिस्वरूपकथनम्—

प्रत्यक् समीरः शुकभा द्विपान्नाद्वन्दं द्विमूर्त्तिर्विषमोदयोष्णः ।
मध्यप्रजासङ्ग—वनस्थशूद्रो दीर्घस्वनः स्निग्धदिनेट्तथोग्रः ।। ४ ।।

कुन्तला — द्वन्दं = मिथुनराशिः, प्रत्यक् = पश्चिमदिक्स्वामी, समीरः = वायुतत्त्वः, शुकभा = शुककान्ति हरितवर्ण इत्यर्थः । द्विपात् = द्विपदः मनुष्य इति । ना = पुरुषराशिः, द्विमूर्तिः = द्विःस्वभावसंज्ञः । विषमोदयः, ऊष्णः = ऊष्णस्वभावः । मध्यप्रजासङ्गः = परिमितसन्ततियुक्तः, वनस्थः = वनचारी, शूद्रः = शूद्रजातिकः, दीर्घश्वनः = ऊच्चशब्दकरः, स्निग्धः = चिक्कण क्रान्तिः। दिनेट् = दिवाबली, तथा उग्रः = क्रूरः, ईदृशः मिथुनराशेः स्वरूपो ज्ञेयः ॥ ४ ॥

ज्योति — मिथुन राशि पश्चिम दिशा का स्वामी है, वायुतत्त्व, हरितवर्ण, द्विपद्, पुरुष राशि, द्विस्वभावसंज्ञक, विषमोदय, गर्म प्रकृति, सामान्य जनन, वन में विचरणशील, जोर से शब्द करने वाला, चिकनी कान्ति वाला दिन में बलवान् तथा क्रूर संज्ञक है ॥ ४ ॥

अथ कर्कराशिस्वरूपकथनम्—

बहुप्रजासङ्ग पदः कुलीरश्चरोऽङ्गना पाटलहीनशब्दः ।
शुभः कफी स्निग्ध जलाम्बुचारी समोदयः विप्रनिशोत्तरेशः ॥ ५ ॥

कुन्तला — कुलीरः = कर्कराशिः, बहुप्रजासङ्गपदः = बहुसंततिसहितोऽधिकचरणश्च; चरः = चरसंज्ञकः । अङ्गना = स्त्रीराशिः, पाटलः = श्वेतरक्तमिश्रितवर्णः, हीनशब्द = मन्दस्वरः, शुभः = सौम्यः, कफी = कफात्मकः, स्निग्धः, = चिक्कणक्रान्ति, जलम् = जलतत्त्वात्मकः, अम्बुचारी = जलचरः, समोदयः = नात्यल्पनात्यधिकोदयः, विप्रः = ब्राह्मणवर्णः, निशा = रात्रिबली, उत्तरेशः = उत्तरदिक्स्वामी ईदृशो बोध्यः ॥ ५ ॥

ज्योति — कर्कराशि बहुत संतान वाला, बहुत चरण वाला, चरसंज्ञक, स्त्रीराशि, पाटल वर्ण, मन्दस्वर, सौम्यराशि, कफात्मक, चिकना, जलतत्त्व, जलचारी समोदयः ब्राह्मणवर्ण, रात्रिबली, उत्तर दिशा का स्वामी ऐसा समझना चाहिए ॥ ५ ॥

अथ सिंहराशिस्वरूपकथनम्—

पुमान् स्थिरोऽग्निर्दिनपीतरूक्षः पित्तोष्ण — पूर्वेश दृढ़चतुष्पात् ।
समोदयः दीर्घरवोऽल्पसङ्गप्रजो हरिः शैल—नृपोग्रधूम्रः ॥ ६ ॥

कुन्तला — हरिः = सिंहराशिः, पुमान् = पुरुषराशिः, स्थिरः = स्थिरसंज्ञकः, अग्निः = अग्नितत्त्वात्मकः, दिनम् = दिवाबली, पीतः = पीतवर्णः, रूक्षः = क्रान्तिरहितः, पित्तः = पित्तप्रकृतिः, ऊष्णः = ऊष्णस्वभावः, पूर्वेशः = पूर्वदिकस्वामी दृढ़ः = पुष्टाङ्गः, चतुष्पाद् = चतुश्चरणः, समोदयः = मध्यमोदयः, दीर्घस्वरः = महाशब्दः, अल्पसङ्गप्रजः = स्वल्पसन्ततिः, शैलः = पर्वचारी, नृपः = क्षत्रियवर्णः, उग्रः = क्रूरः, धूम्रः = धूम्रवर्णः, ईदृशः बोध्यः ॥ ६ ॥

ज्योति — सिंह राशि, पुरुषराशि, स्थिर संज्ञक, अग्नितत्त्वात्मक, दिवाबली, पीतवर्ण, कान्तिहीन, पित्तप्रकृति, ऊष्ण स्वभाव पूर्वदिशा का स्वामी, पुष्ट शरीर, चार पैर वाला समोदयी, महाशब्दकारी, अल्प सन्तान और पर्वतचारी, क्षत्रियवर्ण, क्रूरसंज्ञक धूमवर्ण वाला है ॥ ६ ॥

विशेष — मेष राशि के तरह इसके भी धूम्र और पीत वर्ण हैं ॥ ६ ॥

अथ कन्याराशिस्वरूपकथनम्—

पाण्डुर्द्विपात्स्त्री द्वितनुर्यमाशा निशा मरुतच्छीतसमोदयक्ष्मा ।
कन्याऽर्धशब्दा शुभभूमिवैश्यारूक्षाऽल्पसङ्गप्रसवा शुभा च ॥ ७ ॥

कुन्तला — कन्याराशिः एतादृशः ज्ञेयः । पाण्डुः = पिङ्गलवर्णा, द्विपात् = द्विचरणा, स्त्री = स्त्रीराशिः, द्वितनुः = द्विःस्वभावसंज्ञका, यमाशा = दक्षिणादिक्स्वामी, निशा = रात्रिबली, मरुत् = वायुतत्त्वात्मिका, शीतः = शीतलप्रकृतिः। समोदयः = मध्यमोदयः, क्ष्मा = भूमिचारी अर्द्धशब्दा = अण्डितरवा, शुभभूमि = शुभभूमिचारिणी, वैश्या = वैश्यवर्णा, रूक्षा = क्रान्तिरहिता, अल्पसङ्गप्रसवा = स्वल्पसंततिसंगा, शुभा = शुभ राशिः ज्ञेयः ॥ ७ ॥

ज्योति — कन्याराशि पिङ्गलवर्ण, दो चरण वाली, स्त्रीराशि, द्विःस्वभाव संज्ञक, दक्षिणदिक्स्वामी, रात्रिबली, वायुतत्त्व, शीतल स्वभाव, समोदय, भूमिचारी, थोड़ा शब्द करने वाला, पवित्र भूमि में रहने वाला, शुभराशि वैश्यवर्ण, क्रान्तिहीन, थोडी संतान वाली है ॥ ७ ॥

अथ तुलाराशिस्वरूपकथनम्—

पुमांश्चरश्चित्रसमोदयोष्णः प्रत्यङ्मरुत्स्निग्धरवोनवन्वः ।
स्वल्पप्रजासङ्गमशूद्र उग्रस्तुलोद्युवीर्यो द्विपदः समानः ॥ ८ ॥

कुन्तला — पुमान् = पुरुषराशिः, चरः = चरसंज्ञकः, चित्रः = नानाविधवर्णः, समोदयः, ऊष्णः = ऊष्णस्वभावः, प्रत्यक् = पश्चिमदिक्स्वामी, मरुत् = वायुतत्त्वः, स्निग्धः = चिक्कणः, खोनः = निःशब्दः वन्यः = वनचारी, स्वल्पप्रजासङ्गमः = परिमित सन्तति— सहितः, शूद्रः = शूद्रवर्णः, उग्रः = क्रूरः द्युवीर्यः = दिवाबली, द्विपदः = द्विचरणः, मनुष्यराशि इत्यर्थः । समानः = नातिदीर्घः — नातिह्रस्वः । ईदृशो तुलाराशि भवति ॥ ८ ॥

ज्योति — पुरुषराशि, चरसंज्ञक, बहुरङ्गावर्ण, समोदयी, ऊष्ण प्रकृति, पश्चिम दिशा का स्वामी, वायु प्रकृति, चिकना, शब्दरहित, वनचारी, अल्प सन्तान और अल्पसङ्ग वाला शूद्रवर्ण क्रूरस्वभाव, दिवाबली, दो चरणों वाला, सम अङ्गो से युक्त अर्थात् न तो बहुत बड़ा, न तो बहुत छोटा ऐसा तुला राशि है ॥ ८ ॥

अथ वृश्चिकराशिस्वरूपकथनम्—

स्थिरः सितः स्त्री जलमुत्तरेशो निशारवोनो बहुपात्कफी च ।
समोदयो वारिचरोऽतिसङ्गप्रजः शुभः स्निग्धतनुर्द्विजोऽलिः ।। ९ ।।

कुन्तला — अलिः = वृश्चिकराशिः, स्थिरः = स्थिर संज्ञकः, सितः = शुभ्रवर्णः, स्त्री = स्त्रीराशिः, जलम् = जलतत्त्वयुक्तः, उत्तरेशः = उत्तरदिक्स्वामी । निशा = रात्रिबली, रवोनः = हीनशब्दः, बहुपात् = बहुचरणः, कफी = कफप्रकृतिः, समोदयः = समानोदयः, वारिचरः = जलचरः । अतिसङ्गप्रजः = बहुप्रजासङ्गः, शुभः = शुभराशिः, स्निग्धतनुः = चिक्कणदेहः, द्विजः = ब्राह्मणवर्णः एतादृशो ज्ञेयः ।। ९ ।।

ज्योति — वृश्चिकराशि स्थिर संज्ञक, शुभ्रवर्ण, स्त्रीराशि, जलतत्त्व, उत्तर दिशा का स्वामी, रात्रिबली, शब्दरहित, बहुत चरणों से युक्त, कफ प्रकृति समोदयी, जलचारी, बहुतसन्तान वाला, शुभराशि, चिकने शरीर वाला, और ब्राह्मण वर्ण का है ।। ९ ।।

अथ धनुराशिस्वरूपकथनम्—

ना स्वर्णभा शैलसमोदयोऽतिशब्दोदिनं प्राग्दृढरूक्षपीतः ।
राजोष्णवित्तो धनुरल्पसूतिसङ्गो द्विमूर्ति र्द्विपदोऽग्निरूग्रः ।। १० ।।

कुन्तला — ना = पुरुषराशिः, स्वर्णभा = कनकवर्णः, शैलः = पर्वतचारी, समोदयः = मध्यमोदयः अतिशब्दः = दीर्घध्वनिकरः, दिनं = दिवाबली; प्राक् = पूर्वदिक्स्वामी, दृढ़ः = दृढाङ्गः, रूक्षः = कान्तिहीनः, पीतः = पीतवर्णः । राजा = क्षत्रियः, ऊष्णम् = ऊष्णस्वभावः, पित्तः = पित्तप्रकृतिः, अल्पसूतिसङ्गः = स्वल्पसन्तानसंयुतः, द्विमूर्त्तिः = द्विस्वभावः, अग्नि = अग्नितत्त्वात्मकः, उग्रः = क्रूरस्वभावः धनुराशिरेतादृशो ज्ञेयः ।। १० ।।

ज्योति — धनुराशि पुरुष है सोने के समान वर्णवाला है । पर्वतचारी, समोदयी, अतिघोर शब्दकारी, दिवाबली, पूर्वदिशा का स्वामी, दृढ़ शरीर, कान्तिरहित, पीतवर्ण, क्षत्रियजाति, ऊष्ण स्वभाव, पित्त प्रकृति, अल्पसन्तान और अल्प सङ्ग वाला चरस्थिर द्विस्वभावात्मक, दो चरणों वाला अग्नि तत्त्व और क्रूर स्वभाव हैं ।। १० ।।

अथ मकरराशिस्वरूपकथनम्—

मृगश्चरः क्ष्मार्धरवो यमाशास्त्रीपिङ्गरूक्षः शुभभूमिशीतः ।
स्वल्पप्रजासङ्गसमीररात्रिरादौ चतुष्पाद्विषमोदयो विट् ।। ११ ।।

कुन्तला — मृगः = मकरराशिः, चरः = चरसंज्ञकः क्ष्मा = भूमितत्त्वात्मकः । अर्धरवः = अर्द्धशब्दः, यमाशा = याम्य दिक्स्वामी, स्त्री = स्त्रीराशिः, पिङ्ग = पिङ्गलवर्णः, रूक्षः = कान्तिहीनः, शुभः = शुभराशिः, भूमिः = भूमिचारी, शीतः = शीतप्रकृतिः, स्वल्पप्रजासङ्गः =

न्यूनसंततियुतः, समीरः = वायुतत्त्वात्मकः, रात्रि = रात्रिबली, आदौ चतुष्पाद् = पूर्वार्द्धेचतुष्पदत्वं ज्ञेयम् । विषमोदयः, विट् = वैश्यजातिः, इति ।। ११ ।।

ज्योति —— मकरराशि चरसंज्ञक, भूमितत्त्व, अल्पशब्दप्रिय, दक्षिण दिशा का स्वामी, स्त्री राशि, पिङ्गलवर्ण, कान्तिरहित, सौम्य, भूमिचारी शीतलस्वभाव थोड़ा सन्तान, और वायु तत्त्व, रात्रिबली, चार पैर वाला, विषमोदयी, वैश्य वर्ण और शिथिल शरीर है ।। ११ ।।

अथ कुम्भराशिस्वरूपकथनम्—

कुम्भोऽपदो ना दिनमध्यसङ्गप्रसूः स्थिरः कर्बुरवन्यवायुः ।
स्निग्धोष्णखंडस्वर तुल्यधातुशुद्रः प्रतीची विषमोदयोग्रः ।। १२ ।।

कुन्तला —— कुम्भराशिः, अपदः, = चरणहीनः, ना = पुरुषराशिः, दिनं = दिवाबली, मध्यप्रसू = मध्यमप्रजः, स्थिरः = स्थिर संज्ञः कर्बुर = चित्रवर्णः, वन्यः = वनचरः, वायुः = वायु तत्त्वात्मकः, स्निग्धः = चिक्कणः ऊष्णः = ऊष्णप्रकृतिः = खण्डस्वरः = हीनशब्दः, तुल्यधातुः = समवात पित्तकफश्च । शूद्रः = शूद्रवर्णः, प्रतीची = पश्चिमादिक् स्वामी; विषमोदयी, उग्रः = क्रूरराशिः, इति ज्ञेयः ।। १२ ।।

ज्योति —— कुम्भराशि चरणहीन, पुरुषराशि, दिवाबली, मध्यम स्त्री सङ्ग, और मध्यम संतान वाला बहुरङ्गा, वनचारी, वायुराशि, चिकना, ऊष्ण स्वभाव, अर्द्धस्वर, सम बात–पित्त कफ प्रकृति, शूद्रवर्ण, पश्चिम दिशा का स्वामी, विषमोदयी, और क्रूर स्वभाव वाला है ।। १२ ।।

अथ मीनराशिस्वरूपकथनम्—

मीनोऽपदः स्त्री कफवारि रात्रि निःशब्दबभ्रूर्द्वितनुर्जलस्थः ।
स्निग्धोऽतिसङ्गप्रसवोऽपि विप्रः शुभोत्तराशेड् विषमोदयश्च ।। १३ ।।

कुन्तला —— मीनः = मीनराशिः, अपदः = चरणहीनः, स्त्री = स्त्रीराशिः, कफः = कफात्मकः, वारि = जलतत्त्वात्मकः, रात्रि = रात्रिबली, निःशब्दः = हीनशब्दः, बभ्रूः = नकुलवर्णः, द्वितनुः = द्विःस्वभावसंज्ञकः । जलस्थः = जलचरराशिः । स्निग्धः = चिक्कणदेहः, अतिसङ्ग प्रसवः = अधिकसंततियुक्तः, विप्रः = ब्राह्मणवर्णः, शुभः = शुभराशिः, उत्तराशेट् = उत्तरदिक्पतिः, विषमोदयश्च भवति ।। १३ ।।

ज्योति —— मीनराशि चरण सहित है । स्त्री राशि कफात्मक, जलतत्त्व, रात्रिबली, शब्दहीन, न्योले के समान भूरावर्ण, द्विःस्वभाव, जलचर, चिकना और सन्तान युक्त, ब्राह्मणवर्ण, शुभराशि, उत्तर दिशा का स्वामी, विषमोदय जानना चाहिए ।। १३ ।।

राशिस्वरूपमुक्त्वेदानीं राशिनां मित्रामित्रविभागकथनम्—

धराम्बुनोरग्निसमीरयोश्च वर्गेसुहृत्वं परतोऽरिभावः ।
चापान्त्यभागस्य चतुष्पदत्वं ज्ञेयं मृगान्त्यस्य जलेचरत्वम् ।। १४ ।।

कुन्तला — धराम्बुनोः = पृथ्वीराशिजलराश्योः वर्गे, सुहृत्वं = मित्रत्वं ज्ञेयम् । परतः = एतद्भिन्न तत्त्वयोः यथा अग्निजलयोः (मेषकर्कयोः) भूमिवाय्योः (वृषमिथुनयोः); अरिभावः = शत्रुत्वं ज्ञेयम् । चापान्त्यभागस्य धनुरुत्तरार्धभागस्य चतुष्पदत्वं तथा मृगान्त्यस्य = मकरोत्तरार्धस्य जलेचरत्वं विज्ञेयम् ।। १४ ।।

ज्योति — यहाँ पर द्वादश राशियों के स्वरूप (जो पृष्ठ–८ और ९ पर उद्धृत है) कहकर उनके परस्पर मित्र–शत्रु विभाग करते हुए कहते हैं —

पृथ्वी तत्त्व और जलतत्त्व वाली राशियों में परस्पर मित्रता रहती है । इसी तरह अग्नि तत्त्व और वायु तत्त्व वाली राशियों में परस्पर मैत्री रहती है । इसके विपरीत पृथ्वी तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व वाली राशियों में, जल तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व वाली राशियों में एवं जल तत्त्व तथा वायु तत्त्व वाली राशियों में परस्पर शत्रुता (अरिभाव) रहती है । इस प्रकार राशियों में मित्र शत्रु का विचार पिता–पुत्र, स्वामी– सेवक और स्त्री पुरुष अथवा जिस किसी भी दो राशि के लोगों में किया जा सकता है । यदि दो व्यक्तियों की एक ही तत्त्व की राशियाँ हों तो दोनों में अत्यन्त प्रीति समझनी चाहिए । धनुराशि का उत्तरार्धभाग चतुष्पद और मकरराशि का उत्तरार्धभाग जलचर माना जाता है ।। १४ ।।

राशिस्वरूपस्य फलकथनार्थं संक्षेपेण किञ्चित्स्वरूपकथनम्—

पित्तानिलौ धातुसमः कफश्चत्रिर्मेषतः सूरिभिरूहनीयाः ।
राजन्य–विट्शूद्रधरासुराश्च सर्वफलं राश्यनुसारतः स्यात् ।। १५ ।।

कुन्तला — मेषतः = मेषराशिसमारम्य ततः, त्रिः = त्रिरावृत्या, सूरिभिः = विज्ञजनैः, पित्तानिलौ धातुसमः कफः एते, ऊहनीया = ज्ञातव्याः इत्यर्थः । यथा मेषः पित्तात्मकः, वृषो वातात्मकः, मिथुनं धातुत्रययुक्तम् । कर्कः कफात्मकः । इत्येकावृत्तिः पुनः सिंहः पित्तात्मकः । कन्या = वायुतत्त्वात्मकः, तुला धातुत्रययुक्ता, वृश्चिकः कफात्मकश्च । इत्थं द्वितीयावृत्यानुसारेण धनुः पित्तात्मकः, मकरः वातात्मकः, कुम्भः धातुत्रययुक्ता, मीनः कफात्मकश्च । एवमेव तृतीयावृत्यानुसारेण पूर्वदिक्पतयो वृषकन्यामकराशयः वैश्याः वायु तत्त्वात्मकाः । पश्चिकदिक्पतयः मिथुन तुला, कुम्भराशयः कफ पित्तवातेतिदोषत्रयात्मकाः शूद्राः । कर्क वृश्चिक मीनराशयः उत्तरदिक्पतयोविप्राः कफात्मकश्चेति । तथा राजन्य विट्शूद्रधराशुराश्च मेषतः त्रिरावृत्या विज्ञेयाः । यथा मेष क्षत्रियः, वृषो वैश्यः, मिथुनराशिः शूद्रः, कर्के ब्राह्मणः, एवं शेषेष्वपि । एतेषां सर्वं फलं राश्यनुसारतो राशिस्वरूपसदृशं फलं स्यादित्यर्थः ।। १५ ।।

राशियों के स्वरूपबोधक चक्र —

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
चरादिसंज्ञा	चर	स्थिर	द्विःस्वभाव	चर	स्थिर	द्विःस्वभाव
तत्त्व	अग्नि	पृथ्वीतत्त्व	वायुतत्त्व	जलतत्त्व	अग्नितत्त्व	पृथ्वीतत्त्व
पित्तादिदोष	पित्त	वायु	त्रिदोष	कफ	पित्त	वायु
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य
चतुःपादि–संज्ञा	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	बहुपद जलचर	चतुष्पद	द्विपद
पुरुषस्त्री संज्ञा	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
अशुभशुभ संज्ञा	क्रूर	शुभ	क्रूर	शुभ	क्रूर	शुभ
शरीरक्रम	दृढाङ्ग	दृढाङ्ग	अदृढाङ्ग	अदृढाङ्ग	दृढाङ्ग	अदृढाङ्ग
वर्ण	रक्तवर्ण पीतवर्ण	श्वेत	हरित	पाटल	पीतवर्ण धूम्रवर्ण	रूक्षपाण्डु
प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति
शब्दभेद	अतिशब्द	अतिशब्द	अतिशब्द	हीनशब्द	दीर्घरव	अर्धशब्द
चारण स्थल	पर्वतचारी	सुभूमि चारी	वनचारी	जलचारी	पर्वतचारी	भूचारी
दिनरात्रि बली	दिनबली	रात्रिबली	दिनबली	रात्रिबली	दिनबली	रात्रिबली
दिक्स्वामी	पूर्वदिक् स्वामी	दक्षिणदिक् पति	पश्चिम स्वामी	उत्तर स्वामी	पूर्वस्वामी	दक्षिण स्वामी
उदयभेदा	विषमोदय	विषमोदय	विषमोदय	समोदय	समोदय	समोदय
प्रजाभेदा	अल्पप्रज	मध्यप्रज	मध्यप्रज	अधिकप्रज	अल्पप्रज	अल्पप्रज
कान्ति	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध	रूक्षवर्ण	रूक्षवर्ण

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
चरादिसंज्ञा	चर	स्थिर	द्वःस्वभाव	चर	स्थिर	द्विःस्वभाव
तत्त्व	वायुतत्त्व	जलतत्त्व	अग्नितत्त्व	पृथ्वीतत्त्व	वायुतत्त्व	जलतत्त्व
पित्तादिदोष	त्रिदोष	कफ	पित्त	वायु	त्रिदोष	कफ
जाति	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र
चतुःपादि–संज्ञा	द्विपद	बहुपद जलचर	पू०अ०द्वि० उ०अ०चतु०	पू०अ०च० उ०अ०ज०	अपद जलचर	जलचर
पुरुषस्त्री संज्ञा	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
अशुभशुभ संज्ञा	क्रूर	शुभ	क्रूर	शुभ	क्रूर	शुभ
शरीरक्रम	म० शरीर	अद्दढाङ्ग	दृढाङ्ग	दृढाङ्ग	अद्दढाङ्ग	अद्दढाङ्ग
वर्ण	चित्रवर्ण	श्वेतवर्ण	स्वर्ण कान्ति	पिङ्गलवर्ण	कर्बुरवर्ण	बभ्रुवर्ण
प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति	ऊष्ण प्रकृति	शीत प्रकृति
शब्दभेद	हीनशब्द	हीनशब्द	अधिकशब्द	खण्डस्वर	खण्डस्वर	हीनशब्द
चारण स्थल	वनचारी	जलचारी	पर्वतचारी	भूमिचारी जलचारी	स्थलचारी जलचारी	जलचारी
दिनरात्रि बली	दिनबली	रात्रिबली	दिनबली	रात्रिबली	दिनबली	रात्रिबली
दिक्स्वामी	पश्चिम स्वामी	उत्तर स्वामी	पूर्वस्वामी	दक्षिण स्वामी	पश्चिम स्वामी	उत्तर दिकपति
उदयभेदा	समोदय	समोदय	समोदय	विषमोदय	विषमोदय	विषमोदय
प्रजाभेदा	स्वल्पप्रज	बहुप्रज	अल्पप्रज	स्वल्पप्रज	मध्यप्रज	बहुप्रज
कान्ति	चिक्कण	चिक्कण	रूक्ष	रूक्ष	स्निग्ध	स्निग्ध

ज्योति — मेष से तीन आवृत्ति के क्रम से पित्त, वायु, सम–कफ, पित्त वायु और कफ ज्योतिषियों को समझना चाहिए । जैसे मेष पित्त, वृष वायु, मिथुन सम (अर्थात् वात पित्त कफ बराबर) कर्क कफ इस प्रकार पुनः सिंह पित्त, कन्या वायु, तुला सम (अर्थात् वात पित्त कफ बराबर) वृश्चिक का कफ, इस तरह मेष, सिंह, धनु ये राशियों

का दोष पित्त और जाति क्षत्रिय है । वृष कन्या मकर ये सभी वायु दोष वाले हैं । और वैश्य जाति के हैं मिथुन, तुला, कुम्भ ये तीन बात, पित्त और कफ तीनों से युक्त हैं; और शुद्र जाति के है । कर्क, वृश्चिक, मीन ये तीन कफात्मक ब्राह्मण वर्ण हैं । इस प्रकार बारह राशियों का स्वरूप, गुण, जाति, दिशा, काल तथा स्थान आदि बताया गया है । उसी के अनुसार भी कहना चाहिए ।। १५ ।।

अथ वर्षप्रवेशसाधनार्थं वर्षप्रवृत्तिसमयकथनम्—

गतासमाः पादयुताः प्रकृतिघ्नसमागणात् ।
खवेदाप्तघटी युक्ता जन्मवारादिसंयुताः ।
अब्दप्रवेशे वारादि सप्ततष्टेऽत्र निर्दिशेत् ।। १६ ।।

कुन्तला —— गताः समाः = गतवर्षाणि । पादयुता = स्वचतुर्थांश युक्ताः कार्याः । प्रकृतिघ्नसमागणात् = एकविंशतिं गुणित गतवर्षगणः तस्मात्, खवेदाप्त घटी युक्ताः चत्वारिंशताभक्तात् घट्यादि यल्लब्धं तेन चतुर्थांश युक्त समायुता कार्याः । ततः, जन्मवारादिसंयुताः = जन्मकालिकदिन दण्डपलैर्युताः कार्याश्च । सप्ततष्टे = सप्तभक्तेसति । अत्र अब्दप्रवेशे = अग्रिमवर्षप्रदेशे । वारादि = दिनादि फलम् । निर्दिशेत् = कययेत् ।। १६ ।।

ज्योति —— गतवर्ष संख्या में उस संख्या के चतुर्थांश (१/४) जोड़ना चाहिए । तब २१ से गुणे हुए गतवर्ष को चालिस से भाग देकर जो घटी पल मिले उसे चतुर्थांश युक्त गतवर्ष रूप दिनादि फल में जोड़ना । जब जन्मवारादि (जन्म दिन इष्ट घटी पल) जोड़कर दिन के स्थान पर सिर्फ ७ से भाग देना जो शेष होगा, वह वर्ष प्रवेश वारादि होगा ।। १६ ।।

उदाहरण —— जैसे शुभ संवत् १९८१ शक १८४६ वैशाख कृष्ण पञ्चमी मूल नक्षत्र में सूर्योदय से ५ घड़ी ० पल पर वृष लग्न में किसी का जन्म हुआ । जन्म कालिक सूर्य ०। १०। ५७। ५८ खिष्टाब्द २४ अप्रैल सन् १९२४ ई० को प्रातः ७। ३६ बजे जन्म है । जन्म स्थान — गोरखपुर । जन्मलग्नम् = १। १५। २२। ० भभोग = ५६। ९० भयात = ४६। ५५ । इस जातक का २०४८ में वर्ष प्रवेश ज्ञात करना है ।

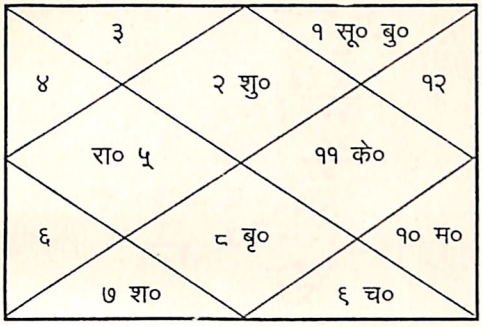
यहाँ वर्तमान संवत् २०४८ में जन्म संवत् १९८१ घटाया ——

$$\begin{array}{r} २०४८ \\ १९८९ \\ \hline ६७ \end{array}$$

६७ गतवर्ष में इसी का चतुर्थांश अर्थात् ——

$$\begin{array}{l} ४) ६७ (१६ \\ \quad ४ \\ \quad \overline{२६} \\ \quad २४ \\ \quad \overline{३ \times ६०} \end{array}$$

॥ जन्माङ्गम् ॥



जन्मकालिकस्पष्टग्रहाः

सू०	च०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०	के०	ग्र०
०	८	९	०	७	१	६	४	१०	रा०
१०	१२	८	२९	२८	२८	८	८	८	अं०
५७	३९	२२	४५	५३	४७	४७	१८	१८	ध०
५८	४६	५०	५९	५१	१०	५०	४६	४६	दि०
५८	७२८	३३	०	४	५३	४	३	३	ग
२०	५७	२५	३३	१३	७	५१	११	११	ति

४) १८० (४५
१६
२०
२०
×

१६ । ४५ = चतुर्थांश । इसको गतवर्ष ६७ + १६ । ४५ =

१६ । ४५	चतुर्थांश
६७ । ०	वा० व
८३ । ४५	चतुर्थांश सहित गतवर्ष

६७ गतवर्ष × २९ = १४०७ ÷ ४० =

४०) १४०७ (३५
१२०
२०७
२००
७
× ६०
४२० (१०
४०
२०
× ६०
१२०० (३०
१२०
×××

= ३५ । १० । ३० ।

अब चतुर्थांशसहित ग० व० ८३ । ४५ । + ३५ । १० । ३०

= ८३ । ४५ । ० । ०
३५ । १० । ३०
८४ । २० । १० । ३० इसमें जन्म वारादि जोडने से

८४ । २० । १० । ३०
५ । ५ । ० । ०
८९ । २५ । १० । ३० । इसमें ७ का भाग देने पर

७) ८९ । २५ । १० । ३० (१२
७
१९
१४
५

यहाँ पर ५ शेष बचा अर्थात् रविवार से ५ वाँ दिन बृहस्पतिवार को २५।१०। ३० इष्टकाल पर वर्ष प्रवेश हुआ । यह अग्रिम प्रवेश का इष्ट हुआ । यह दिनमान से थोड़ा है अत: दिन में ही वर्ष प्रवेश हुआ । यदि इष्ट दिनमान से अधिक रहता तो रात्रि में वर्ष प्रवेश हुआ है ऐसा समझना चाहिए ।

द्वितीय विधि—

गताब्दापञ्चयुग्माङ्गनिघ्नावेदविभाजिता: ।
दिनाद्यं जन्मवारादि युक्तं वर्षप्रवेशनम् ।।

गतवर्ष को ५ दिन २ घड़ी ६ दण्ड से गुणाकर ४ का भाग देने से लब्ध दिनादि होगा । उसमें जन्म वारादि जोड़ देने से दिनादि वर्ष प्रवेश होगा ।

जैसे ग० व० = ६७

स्थिरांक = ५ । २ । ६
६७
३३५ । १३४ । ४०२
२ । ६ । ३६०
३३७ । १४० । ४२
१२०
२०

४) ३३७ । २० । ४२ (८४
३२
१७
१६
१ × ६० = ६०
२०
८० (२०
८०
×
= ८४ । २०

८४ । २० । १०
५ । ५ । ०
८९ । २५ । १०

इष्टकाल

इसमें वार लाने के लिए ७ का भाग दिया ।

७) ८९ । २५ । १० (१२
७
१९
१४
५

५ शेष होने से रविवार से ५वां दिन बृहस्पतिवार को २५ । १० इष्टकाल पर वर्ष प्रवेश हुआ ।

अथ तिथिसाधनम्—

शिवघ्नोऽब्दः स्वखाद्रीन्दुलवाढ्यः खाग्निशेषितः ।
जन्मतिथ्यन्वितस्तत्र तिथावब्दप्रवेशनम् ।। १७।।

कुन्तला — अब्दः = वर्षसमूहः, शिवघ्नः = एकादशगुणितः, स्वाखाद्रीन्दुलवाढ्यः = स्वसप्तत्यधिक शतभागयुक्तः, जन्मतिथ्यन्वितः = शुक्लप्रतिपदामारभ्यः जन्मकालीनवर्तमान तिथिभिरन्वितः युक्तः कार्यः । खाग्निशेषितः = (ख = ० अग्नि = ३) त्रिंशद् भक्तः । तत्र यः शेषः तत्संख्यके शुक्लप्रतिपदादिगणिततिथौ, अब्दप्रवेशनम् = अग्रिमवर्षारम्भो भवतीति बोध्यम् ।। १७ ।।

वर्षप्रवेशसारणी (जन्मवारेष्टघटीपल में प्रतिवर्ष क्षेपकवारादि)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	ग.ब.
१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	४	५	वा.
१५	३१	४६	२	१७	३३	४८	४	१६	३५	५०	६	२१	३७	५२	८	२३	३९	५५	१०	२६	४१	५७	१२	२८	४३	५९	१४	३०	४५	१	१६	घ.
११	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६	७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८	प.
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	वि.
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	ग. व.
६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	वा.
३२	४७	३	१८	३४	४६	५	२१	३६	५२	७	२३	३८	५४	९	२५	४०	५६	११	२७	४२	५८	१३	२९	४४	०	१५	३१	४७	२	१८	३३	घ.
१६	५१	२२	५४	२५	५७	२८	०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६	प.
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	वि.
६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	ग. व.
४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	वा.
४६	४	२०	३५	५१	६	२२	३७	५३	८	२४	३९	५५	१०	२६	४२	५७	१३	२८	४४	५९	१५	३०	४६	१	१७	३२	४८	४	१९	३४	५०	घ.
७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८	१९	५१	२२	५४	२५	५७	२८	०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	प.
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	वि.

ज्योति — गतवर्ष की संख्या को ११ से गुणाकर दो स्थानों मे रखें । एक स्थान में १७० का भाग दें । जो अंक लब्ध हो उसको दूसरे स्थान में जोड़ दें । फिर जन्मकालिक तिथि को शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से गिनने पर जो संख्या हो उसे भी उसी में जोड़कर ३० का भाग दें । जो शेष बचे उसी संख्या की तिथि में वर्ष प्रवेश होगा ।। १७ ।।

उदाहरण — पूर्वोक्त गत वर्ष संख्या = ६७

६७ × ११ = ७३७ इसको दो जगह रखा ।

(१) ७३७ (२) ७३७

७३७ ÷ १७० = लब्धि ४

द्वितीय स्थान का ७३७ + ४ = ७४१ इसमें जन्म काल की तिथि २० जोड़ने से

७४१ + २० = ७६१

इसमें ३० का भाग देने पर ११ शेष बचा ।

३०) ७६१ (२५

६०

१६१

१५०

११

अर्थात् शुक्ल प्रतिपदा से एकादशी तिथि को ६८वाँ वर्ष प्रवेश हुआ ।

यहाँ पर तिथि साधन गणित अत्यन्त स्थूल है । इस बात को सभी टीकाकारों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।

विशेष—जन्मकालीन स्पष्ट रवि के तुल्य स्पष्ट रवि जिस वर्ष के जिस पक्ष की जिस तिथि को होगा, वही तिथि और वार वर्ष प्रवेश का भी तिथि वार होगा, ऐसा वर्ष दशाध्याय श्लोक ५ में लिखा है ।। १७ ।।

ग्रहस्पष्टीकरणे पंक्तिस्थग्रहाणामिष्टकाले चालनगणितक्रियाकथनम्—

गतैष्यदिवसाद्येन गतिर्निघ्नी खषड्हृता ।
लब्धेनांशादिना शोध्यं योज्यं स्पष्टो भवेद् ग्रहः ।। १८।।

कुन्तला — गति = ग्रहाणां स्वगतिः, गतैष्यदिवसाद्येन = मिश्रेष्टान्तरेण दिनादिकेन, निघ्नी = गुण्या, खषड्हृता = षष्टिभक्ता, लब्धम् = प्राप्तम् । लवादिकम् = अंशादिकम् । पंक्तिस्थग्रहे शोध्यं योज्यं तदा ग्रहः = इष्टकालिकः भवेत् ।। १८ ।।

ज्योति — ग्रहस्पष्ट करने के लिए सबसे पहले चालन का आनयन करना चाहिए । पञ्चाङ्गों में मिश्रमान कालिक तथा सूर्योदय कालिक ग्रह प्रायः दिये रहते हैं । यदि मिश्रमान कालिक ग्रह दिया गया हो तो मिश्रमान ± इष्टकाल = चालन होता है अर्थात् यदि मिश्रमान इष्टकाल से अधिक हो तो मिश्रमान में इष्टकाल घट जायेगा घटने पर ऋण चालन होगा । यदि इष्टकाल में मिश्रमान में इष्टकाल घटजाय तो धन चालन होगा ।

अब पञ्चाङ्गस्थ ग्रह (जन्मकालिक या वर्ष प्रवेश कालिक) को दो दिन का अन्तर करने पर ग्रहगति निकल आता है । अब ग्रहगति को चालन से गुणा करने पर चालन फल होता है । इस चालन फल को उस दिन के पञ्चाङ्गस्थ ग्रह में ± करने से स्पष्ट ग्रह हो जाता है । यदि चालन धन हो तो जोड़ना तथा यदि चालन ऋण हो तो घटाना चाहिए ।

यदि पञ्चाङ्ग में सूर्योदय कालिक ग्रह दिए हो तो इष्टकाल को गति से गुणा करने पर चालन फल होता है। यह चालन फल सदैव धन ही होगा, क्योंकि इष्टकाल से गुणा हुआ है और इष्टकाल सूर्योदय से जितना घटी, पल पर जन्म होता है या वर्ष प्रवेश होता है; उसी का मान स्वरूप होता है ॥ १८ ॥

विशेष — वक्री ग्रह में चालन धन हो तो चालन फल का संस्कार ऋणात्मक होगा; तथा यदि चालन ऋण हो तो चालन फल का संस्कार धनात्मक होगा ।

उदाहरण — पूर्वोक्त वर्ष प्रवेश २५ अप्रैल १९९१ दिनांक २५। १० इष्टकाल सूर्यादिग्रहों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित विधि से होता है । निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा । ५ अप्रैल १९९१ को ४७ । २१ मिश्रमान कालिक स्पष्ट सूर्य ० । ११ । १७ । ५१ है । "दिनद्वयान्तरं गतिः" के अनुसार दो दिनों के पञ्चाङ्गस्थग्रहों का अन्तर गति होती है । अतः २४ अप्रैल १९९१ और २५ अप्रैल १९९१ के पञ्चाङ्गस्थ सूर्य का अन्तर =

०। ११। १७। ५१
०। १०। १९। ३१
५८। २० सूर्य गति

मिश्रमान ४७। २१
वर्ष प्रवेशकालिक इष्ट २५। १०
२२। ११ ऋण चालन

गति और चालन से गुणा करने पर

५८। २०
२२। ११
६३८। २२०

१२७६ । ४४०
१२७६ । १०७८ । २२०
८ । ३ । १८०
१२८४ । १०८१ । ४०
१२० । ६० ।
८४ । ४८१ ।
२१ । ६० । ४८० ।
२१ । २४ । १ ।

०। ११। १७। ५१
२१। २४
०। १०। ५६। २७ वर्ष प्रवेश कालिक स्पष्ट सूर्य

विशेष — यहाँ जन्म कालिक सूर्य ०। १०। ५७। ५८ और वर्ष प्रवेश कालिक सूर्य = ०। १०। ५६। २७ जन्मकालीन सूर्य वर्ष प्रवेश कालीन से अधिक है ऐसा क्यों ? जबकि

स्वयं टीकाकार ने जन्मकालिन सूर्य की तुल्यता के विषय में बहुत कुछ कहा है । इसके विषय में विश्वनाथी टीका में चर्चा भी किया गया है ।

भौम स्पष्ट—

२।१७।२९।९
२।१६।५५।१८
३३।५१ भौम गति
२२।११ चालन
३६३।५६१
७२९ ।११२२
७२६ ।१४८५।५६१
२४ । ९।५४०
७५० ।१४९४। २१
६० ।१२०
१५० । २९४।
१२० । २४०।
३० । ५४।
= २।१७।२९।९
— १२।३०
२।१७।१६।३९ = स्पष्ट भौम

बुध स्पष्ट— ११।२३।५०।२८
११।२४।१८।२९
१।३१।५९ बुध गति अंशादि
= ९१ ।५९ बुध गति कलादि
२२ ।११ चालन
१००१ ।६४९
२००२ ।१२९८
२००२ ।२२९९
३८ । ९० ।६०
२०४० ।२३०९ ।४९
१८० ।१८०
२४० । ५०९
२४० । ४८०
३४। × २९
= ११ ।२३ ।५० ।२८
३४ । ०
११ ।२३ ।१६ ।२८ = स्पष्ट बुध

गुरु स्पष्ट—

३ ।१४ ।३० ।२८
३ ।१४ ।२७ । ६
३ ।२२ गुरु गति
२२ ।११ चालन
३३ ।२४२
६६ ।४८४
६६ ।५१७ ।२४२

६६ । ५१७ । २४२
८ । ४ । २४०
७४ । ५२१ । २
६० । ४८० ।
१ । १४ । ४१
३ । १४ । ३० । २८
१ । १४
३ । १४ । २९ । १४ = स्पष्ट गुरु

शुक्र स्पष्ट—

१ । २२ । १४ । ४
१ । २१ । ६ । १०
१ । ७ । ५४ शुक्रगति अंशादि
६७ । ५४ शुक्रगति कलादि
२२ । ११
७३७ । ५९४
१४७४ । ११८८
१४७४ । १९२५ । ५९४
३२ । ९ । ५४०
१५०६ । १९३४ । ५४
१२० । १८०
३०६ । १३४
३०० । १२०
२५ । ६ । १४
१ । १२ । १४ । ४
— २५ । ६
१ । ११ । ४८ । ५८ = स्पष्ट शुक्र

शनि स्पष्ट—

९ । ५ । ३५ । २५
९ । ५ । ३३ । ५४
१ । ३१ शनि गति
× २२ । ११ चालन
११ । ३४१
२२ । ६८२
२२ । ६९३ । ३४१
११ । ५ । ३००
० । ३३ । ६९८ । ४१
६०
९८
६०
३८
९ । ५ । ३५ । २५
— ० । ३८
९ । ५ । ३४ । ४७ = स्पष्ट शनि

राहु स्पष्ट—

९ । ३ । १६ । ५७
९ । ३ । १३ । ४७
३ । १०
२२ । ११
३३ । ११०
६६ । २२०
६६ । २५३ । ११०
४ । १ । ६०
७० । २५४ । ५०
६० । २४०
१ । १० । १४
९ । ३ । १३ । ४७
+ १ । १०
९ । ३ । १४ । ५७ = स्पष्ट राहु

[राहु और केतु की सदैव वक्री गति होती है ।]

इसमें ६ राशि जोड़ने से ३। ३। १४। ५७ स्पष्ट केतु होगा । ध्यान रहे यहाँ चालन फल का संस्कार उल्टा अर्थात् धन किया गया है । कभी—कभी पञ्चतारा ग्रह (मं० बु० गु० शु० श०) भी वक्री होते हैं । ऐसी स्थिति में चालन ऋण रहे तो चालन फल का संस्कार धन तथा चालन धन रहे तो चालन फल का संस्कार ऋणात्मक होगा ।

इस प्रकार चन्द्र को छोड़कर सूर्यादि ८ ग्रहों का स्पष्टिकरण उपरोक्त विधि से करना चाहिए । स्पष्टचन्द्रानयन की विशेष विधि है जो नीचे दी जाती है ।

स्पष्टचन्द्रानयन—

खषड् ६० घ्नं भयातं भभोगोधृतं तत्
खतर्कघ्नधिष्ण्येषु युक्तं द्विर्निघ्नम् ।
नवाप्तं शशी भागपूर्वस्तु भुक्तिः
खखाभ्रष्ट वेदा ४८००० भभोगेन भक्ताः ॥ १९॥

कुन्तला — भयातं = नक्षत्रारम्भतः इष्टकालावधि घट्यात्मक कालः। खषड्घ्नं = षष्टिगुणितमित्यर्थः । भभोगोद्धृतं = इष्टनक्षत्रस्य सम्पूर्णभोगमानेन भक्तम् । यल्लब्धं तत्, खखर्कघ्नधिष्ण्येषु = षष्टि गुणित अश्विन्यादिगतनक्षत्रसंख्यकेषु, युक्तं = योज्यम् । द्विर्निघ्नं = द्विगुणितम् । नवाप्तं = नवभिर्भक्तम् । तदा, भागपूर्वः = अंशादिः; शशी = चन्द्रमाः भवति ।

अथ खखाभ्राष्टवेदाः = शून्य शून्य शून्याष्टचत्वारिंशत् संख्यका अंकाः = ४८००० इत्यर्थः । भभोगेन = इष्टनक्षत्रस्य सम्पूर्ण भोगमानेन भक्ता = विभाजिता; तदा भुक्तिः = गतिः भवति ॥ १९ ॥

ज्योति — पलात्मक भयात को ६० से गुणाकर पलात्मक भभोग से भाग देने पर जो लब्धि तीन अवयवों में उपलब्ध हो उसमें गतनक्षत्र संख्या × ६० को जोड़कर द्विगुणित कर पुनः ९ से भाग देने पर अंशादि चन्द्रमा होता है । इसके बाद ४८०० में भभोग का भाग देने से चन्द्रगति भी निकल आती है ॥ १९ ॥

प्रसङ्गानुसार जन्मकालिक इष्टकाल, भयात एवं भभोग आनयन की विधि—

जन्मकालिकइष्टकालानयन — वर्ष प्रवेश कालिक इष्टकानाय "गतासमापादयुता" इत्यादि पद्य के अनुसार विधिवत् बताया जा चुका है । अब जन्म कालिक इष्टकालानयन बता देना भी परमावश्यक है । क्योंकि भयात, भभोग, लग्न, दशमत्यग्नादि की विधि जन्म कुण्डली और वर्ष कुण्डली की प्रायः एक ही है ।

सूर्योदय से जन्म समय पर्यन्त जितनी घटी पल बीत चुका है । उसे इष्टकाल कहते हैं ।

(१) स्टैण्डर्ड टाइम ± वेलान्तर (रे० अ) ± देशान्तर = स्थानीय समय

(२) स्थानीय समयऋण स्थानीय सूर्योदय × २$\frac{१}{२}$ = इष्टकाल

स्टैण्डर्ड टाइम (प्रमाणिक समय) — किसी एक स्थान के रेखांश का स्थानिक समय समग्र देश में कार्य में लाने पर उसे उस देश का स्टैण्डर्ड टाइम कहते हैं भारत वर्ष में ८२। ३० रेखांश का स्थानिक समय स्टैण्डर्ड टाइम माना गया है जो पूरे देश में प्रचलित है ।

स्थानीय समय — पृथक्–पृथक् स्थानों में वहाँ के सूर्योदय सूर्यास्त या दिनमान के अनुसार प्रयुक्त समय स्थानीय समय कहलाता है ।

वेलान्तर — रेलवे घड़ी तथा सूर्य घड़ी का प्रतिदिवसीय धनात्मक तथा ऋणात्मक अन्तर वेलान्तर कहलाता है । जो प्रायः पञ्चाङ्गों में प्रतिदिन का दिया रहता है ।

देशान्तर — रेखा देश के पूर्व या पश्चिम मे जितने योजन अन्तर पर स्वदेश स्थित होता है उसे देशान्तर कहते हैं । अभीष्ट स्थान तथा अपने देश (नगर) के रेखांशों के अन्तर को ४ से गुणा करने पर मिनटादि देशान्तर निकल आता है । यदि अभीष्ट नगर पूर्व है तो देशान्तर धन होता है और पश्चिम होने पर ऋण होता है ।

इष्टकाल की तीन परिस्थितियाँ—

१. यदि अभीष्ट जन्म समय सूर्योदय से लेकर दिन के १२। ५९ बजे के अन्दर का हो तो इसे स्थानीय बनाकर सूर्योदय घटाकर २$\frac{१}{२}$ से गुणा करने पर इष्टकाल होता है

२. यदि अभीष्ट जन्म समय दिन के १ बजे से लेकर रात्रि के १२। ५९ के भीतर हो तो इसे स्थानीय बनाकर १२ घंटा जोड़कर सूर्योदय घटाना चाहिए । सूर्योदय घटाने पर जो उपलब्ध हो उसे २$\frac{१}{२}$ से गुणा करने पर इष्टकाल होता है ।

३. यदि अभीष्ट जन्म समय रात्रि के १ बजे से लेकर आगामी सूर्योदय से पूर्व का हो तो उसे स्थानीय बनाकर २४ घंटा जोड़कर सूर्योदय घटाने से जो उपलब्ध हो उसे २$\frac{१}{२}$ से गुणा करने पर इष्टकाल होता है ।

उदाहरण — किसी जातक का जन्म वाराणसी में १ मार्च १९९१ ई० को रात्रि १ बजकर ३० मि० पर हुआ तो इष्टकाल का आनयन इस प्रकार किया जायेगा —

१।३० जन्म समय
२४।००
२५।३०
— १०।२८ रेलवे अन्तर (वेलान्तर)
२५।१९।३२
०। ०। ० काशी का देशान्तर
२५।१९।३२
६।१५। ० सूर्योदय
१९।४।३२

इसे ढ़ाई से गुणा करने पर —— १९। ४। ३२
१९। ४। ३२
९। ३२। १६
४७। ४१। २० स्थानीय इष्टकाल

यदि उस दिनांक को ही जातक का जन्म काशी में न हो कर बम्बई में हो तो निम्नलिखित प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी ।

बम्बई का अक्षांश १८। ५५
बम्बई का देशान्तर (घट्यादि) १। ४१। ४०
बम्बई का देशान्तर (घटादि) ०। ४०। ४०
उस दिन की रविक्रान्ति = ७। ५३ दक्षिण ।

इष्टघटी (फलघटी) आनयन —— चरसारणी के द्वारा काशी के अन्य स्थानों के लिए अक्षांश एवं क्रान्ति के आधार पर चर का आनयन करते हैं । जैसे बम्बई का अक्षांश १८। ५५ और रविक्रान्ति दक्षिणा पञ्चाङ्गों में दी गई है । अतः १८ अक्षांश तथा क्रान्ति ७ का चर सारणी से फल ९। ९। अब रवि क्रान्ति ७ अंश से ५३ कला अधिक है । और अक्षांश भी १८ अंश से ५५ कला अधिक है । इसलिए इनका भी फल त्रैराशिक से निकालना चाहिए ।

१८ अक्षांश ७ क्रान्त्यंश का फल = फल = ९। ९
१८ अक्षांश ८ क्रान्त्यंश का फल = १०। २८
— ९। ९
१। १९

अब त्रैराशिक से अनुपात किया ——

$\frac{१।१९ \times ५३}{६०} = १।९।४७ = १।१०$ ("अर्द्धाधिकं रूपं ग्राह्यम्") के अनुसार।

अक्षांश १८ क्रान्ति ७ का फल ९। ९ + १। १० = १०। १९ इसके बाद अक्षांश १९ के फल में अक्षांश १८ का फल घटाकर त्रैराशिक से पूर्ववत् अनुपात करेंगे ——

अक्षांश १९ का फल ९। ४२
अक्षांश १८ का फल ९। ९
०। ३३

अब $\frac{०।३३ \times ५५}{६०} = ०।३०$

पूर्व से लाया हुआ फल १०।१९ + ०।३० = १०।४९ = चरफल इसको ६ घंटे में जोड़ने से ६।१०।४९ यही दक्षिणा क्रान्ति होने से सूर्योदय हुआ । यदि उत्तरा क्रान्ति होती तो सूर्यास्त होता । सूर्योदय को १२ घटाने पर सूर्यास्त होता है।

१२ — ६।१०।४९ = ५।४९।११ सूर्यास्त हुआ ।

अब बम्बई का सूर्योदय = ६।१०।४९

अब बम्बई का सूर्यास्त = ५।४९।११

सूर्यास्त को ५ से गुणा करने पर दिनमान होता है अर्थात् ५।४९।११ × ५ = २९।५।५५ यह बम्बई का दिनमान हुआ । काशी का दिनमान २८।४५ बम्बई के दिनमान २९।६ — २८।४५ काशी का दिनमान = ०।२१ इसका आधा ०।१० हुआ । इसी को चरान्तर कहते है । यह चरान्तर उत्तरा क्रान्ति काशी से अधिक अक्षांश में धन और काशी से अल्प अक्षांश और दक्षिणा क्रान्ति में धन होगा अन्यथा ऋण समझना चाहिए । इस नियम के अनुसार ०।१० चरान्तर धन हुआ । क्योंकि बम्बई का अक्षांश १८।५५ काशी के अक्षांश २५।१६ से कम है तथा क्रान्ति दक्षिणा हैं ।

बम्बई का देशान्तर १।४१।५० घट्यादि है बम्बई काशी से पश्चिमस्थ है अतः यह देशान्तर ऋण कहा जायेगा ।

चरान्तर + ०।१०

देशान्तर — १।४१।४०

देशान्तर तथा चरान्तर दोनों के धन होने पर योगफल धन होगा । दोनों के ऋण होने पर योग फल ऋण होगा । दोनो में धन अधिक हो तो अन्तर धन और ऋण अधिक हो तो अन्तर ऋण होगी ।

अतः देशान्तर	१।४१।४०	ऋण
चरान्तर	०।१०।०	धन
	१।३१।४०	ऋण

स्वल्पान्तर से १।३२ (ऋण) हुआ ।

यही ऋणात्मिका इष्टघटी (फलघटी) हुई । इस फलघटी का संस्कार पञ्चाङ्गस्थ तिथि, नक्षत्र योग तथा करण में करने से अभीष्ट स्थान का तिथि, नक्षत्र योग तथा कारण निकल आयेगा । ग्रहस्पष्टीकरण में इष्टघटी (फलघटी) का संस्कार विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्टघटी (फलघटी) ऋणात्मिका हो तो मिश्रमान में उसे जोड़ेगे (यदि इष्टघटी (फलघटी) धन हो तो मिश्रमान में घटाकर चालनादि लाना चाहिए । इस संदर्भ में प्रमाण वचन स्पष्ट है—

कलादितत्फल प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत् ।
रेखप्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः[१] ।।

---

१ — सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार श्लोक ६१

रेखा देश से स्वदेश पूर्व होने पर ऋण तथा पश्चिम होने पर धन करने से लंकार्द्धरात्रिक ग्रह स्वदेशार्द्ध रात्रिक होते हैं । अतः ग्रहस्पष्टीकरण में इष्टघटी का संस्कार विलोम होगा ।

बम्बई का इष्टकालानयन

१। ३० = जन्म समय
२४
२५। ३०। ०
— १०। २८ रे० अ० वेलान्तर
२५। १९। ३२ इसमें बम्बई का देशान्तर ऋण ०। ४०। ४०

घटाने से २४। ३८। ५२
६। १०। ४९ = बम्बई का सूर्योदय
१८। २८। ३
१८। २८। ३
९। १४। १
४६। १०। ७ बम्बई का इष्टकाल ।

इसी प्रकार किसी भी स्थान का इष्टकाल निकाला जायेगा ।

विशेष—जहाँ अर्द्धरात्रिकालिक (मिश्रमान = कालिक) ग्रह हों वहाँ पर इष्टघटी (फलघटी) का संस्कार मिश्रमान में विपरीत करेंगे। यदि ग्रह सूर्योदयकालिक हो तो यह संस्कार विपरीत इष्टकाल मे होगा ।

चरान्तरसारिणी — बहुत से पञ्चाङ्गों में चरान्तरसारिणी रहती है । उसके अनुसार भी इष्टघटी (फलघटी) निकाली जा सकती है । चरसारिणी के तरह ही अक्षांश और क्रान्ति से चरान्तरसारिणी से फलानयन करेंगे । जो फल उपलब्ध होगा उसे काशी के दिनमान में द्विगुणित चरान्तर (चरसारिणी से अक्षांश क्रान्ति से फल) का संस्कार करने से इष्टदेशीय शुद्ध दिनमान होगा । दिनमान में ५ का भाग देने से सूर्यास्त होता है और सूर्यास्त को १२ में घटा देने से सूर्योदय निकल आता है।

भयात एवं भभोग का आनयन—

भयात — जन्म नक्षत्र से इष्टकालावधि घटी–पल का नाम भयात है ।

भभोग — सम्पूर्ण नक्षत्र के भोग का मान भभोग कहलाता है ।

भयात एवं भभोग आनयन की विधि — इसके लिए निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है ।

गतर्क्षनाडीखरसेषुशुद्धा सूर्योदयादिष्टघटीषु युक्ता ।
भयातसंज्ञा भवतीह तस्य निजर्क्षनाडीसहितो भभोगः ।।

अर्थात् गत नक्षत्र को ६० में घटाकर इष्टकाल जोड़ने से भयात होता है । एवं ६० में गत नक्षत्र घटाकर वर्तमान नक्षत्र के मान को जोड़ने से भभोग होता है । पूर्वोक्त २५ अप्रैल १९९१ को वर्ष प्रवेश के दिन गतनक्षत्र पू० फा० जिसका मान १२। २९, तथा वर्तमान नक्षत्र उ० फा० जिसका मान १२। ५ और वर्ष प्रवेश कालिक इष्टकाल २५। १० ।

६०। ००
१२। २९
४७। ३१
२५। १०
भयात १२। ४१

४७। ३१
१२। ५
भभोग ५९। ३६

अन्य विधियाँ—

(१) यदि इष्टकाल गत नक्षत्र से अधिक हो तो इष्ट काल में ही गत नक्षत्र का मान घटाने से भयात होता है । उक्त उदाहरण के अनुसार इष्ट २५ । १० और गत नक्षत्र १२ । २९

२५। १०
१२। २९
१२। ४१ भयात

६०। ००
१२। २९
४७। ३१
१२। ५
५९। ३६ भभोग

यहाँ इस विधि के लिए निम्नलिखित श्लोक कहा गया है —

यदाऽभीष्टमानंङ्गतर्क्षाधिकं स्यात्तदाऽभीष्टमानाद्विशोध्यं भ मानम् ।
भयातं तदैवं गतर्क्षोनषष्टियुताऽभीष्टनक्षत्रमानैर्भभोग: ।।

(२) जन्म नक्षत्र में गतनक्षत्र घटाने से सीधे भभोग निकल आता है । जहाँ जन्म नक्षत्र कम हो उसमें ६० जोड़ देना चाहिए ।

१२। ५
१२। २९
५९। ३६ भभोग

(३) जन्म नक्षत्र में इष्टकाल घटाने से जो शेष बचे उसे भभोग में घटाने से भयात निकल आता है ।

१२। ५ जन्म नक्षत्र
—२५। १० इष्टकाल
४६। ५५

इसको भभोग में घटाने से अर्थात्

५९। ३६ भभोग
— ४६। ५५
१२। ४१ भयात

(४) यदि एक ही नक्षत्र दो दिन में हो तो ऐसी स्थिति में ६० — ग० न० के दोनों दिनों का समग्रमान = भभोग । और ६० — ग० न० + इष्ट काल = भयात (पूर्ववत्) जैसे किसी दिन गतनक्षत्र ५६। ४९

वर्तमान नक्षत्र
६०। ००
१। ४७
६१। ४७

तो
६०। ००
— ५६। ४९
३। ११

६०। ००
५६। ४९
३। ११

३। ११		३। ११	
६१। ४७		४७। ४१	इष्टकाल
६४। ५८	= भभोग	५०। ५२	= भयात

(५) यदि एक ही दिन दो नक्षत्र हों —

अश्विनी = ६। २५
भरणी = २। ४३
५६। ४९
रोहिणी = ५७। २

यहाँ कृत्तिका का क्षय है । अतः कृत्तिका का पूरा मान ५६। ४९ ही उसका भभोग होगा । कृत्तिका का भयात निकालने के लिए इष्टकाल में भरणी का मान घटा देगें। जैसे —

४७। ४१ इष्टकाल
— २। ४३
४४। ५८ = भयात

यदि रोहिणी का भयात निकालना हो तो क्षय नक्षत्र एवं उसके पूर्व के नक्षत्र का योग कर शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये । जैसे —

२। ४३ + ५६। ४९ = ५९। ३२
६०। ०
— ५९। ३२
०। २८ + ४७। ४१ = ४८। ९ भयात । और
०। २८ + ५७। २ = ५७। ३० भभोग

यहाँ काशी के बने पञ्चाङ्ग में स्थित नक्षत्रमान से भयात भभोग लाया गया है। बम्बई या अन्य स्थलों का भयात, भभोग आनयन के लिए नक्षत्रों (गतनक्षत्र एवं जन्मनक्षत्र) में इष्टघटी (फलघटी) का संस्कार करना पड़ेगा । जैसे —

जन्मनक्षत्र ३०। ४६ काशी
गतनक्षत्र ३०। ४१ काशी

इन दोनों में इष्टघटी ऋणात्मिका — १। ३२ घटाने से बम्बई का नक्षत्रमान निकला आयेगा ।

जन्मनक्षत्र	३०। ४६	
	— १। ३२	इष्टघटी (फलघटी)
	२९। १४	बम्बई का जन्मनक्षत्र
ग० न०	३०। ४१	
	— १। ३२	इष्टघटी (फलघटी)
	२९। ९	बम्बई का गत नक्षत्र का मान

बम्बई का इष्टकाल = ४६। १० ।

उपर बतायी गयी विधियों द्वारा भयात एवं भभोग का आनयन करें ।

उपर इष्टकाल, भयात, भभोग की विस्तृत व्याख्या की गई, क्योंकि चन्द्रानयन भयात भभोग के बिना नहीं लाया जा सकता ।

स्पष्ट चन्द्रानयन का उदाहरण — २५ अप्रैल १९९१ के दिन पूर्वानीत भयात = १२। ४१ एवं भभोग = ५९। ३६ और गतनक्षत्र पूर्वी फाल्गुनी ।

१२। ४१ भयात

६०

७२०

४१

७६१ पलात्मक भयात

६० (साठ से गुणा किया)

३५७६) ४५६६० (१२

भभोग ३५७६

९९००

७१५२

२७४८

इस शेष को पुनः ६० से गुणाकर फलात्मक भभोग से भाग दिया

२७४८

६०

३५७६) १६४८८० (४६

१४३०४

२१८४०

२१४५६

३८४

इसको पुनः ६० से गुणा कर भभोग का भाग दिया

३८४

६०

२३०४० (६

२१४५६

१५८४

= १२। ४६। ६ इसमें ६० × ग० न संख्या ११ =

१२। ४६। ६

ग० न ११ × ६० = ६६०

६७२। ४६। ६

२

९) १३४५। ३२। १२ (१४९

९

४४

३६

८५

८१

४ × ६० = २४० + ३२ = २७२

९) २७२ (३०

२७

२

२ × ६० = १२० + १२ = १३२

९) १३२ (१४

९

४२

३६

६

५९। ३६ भभोग

६०

३५४०

३६

३५७६ पलात्मक भभोग

१४९। ३०। १४ अंशादि चन्द्रमा ।
४। २९। ३०। १४ राश्यादि चन्द्रमा ।

चन्द्रगति आनयन का उदाहरण —

३५७६) ४८००० (१३
३५७६
१२२४०
१०७२८
१५१२
६० (साठ से गुणा किया)
९०७२० (२५
७१५२
१९२००
१७८८०
१३२०

अर्थात् चन्द्रगति = १३। २५ = ८०५ कला ।

इस प्रकार चन्द्र सहित ९ ग्रहों का वर्ष प्रवेश कालिक ग्रह निम्नलिखित प्रकार से दिए जा रहे हैं ।

वर्ष प्रवेशकालि स्पष्टग्रहाः—

सू०	च०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	रा०	के०	ग्र०
०	४	२	११	३	१	९	९	३	रा०
१०	२९	१७	२३	१४	११	५	३	३	अं०
५६	३०	१६	१६	२९	४८	३४	१४	१४	क०
२७	१४	३९	२८	१४	५८	४७	५७	५७	वि०
५८	८०५	३३	९१	३	६७	१	३	३	ग
२०	०	५१	५९	२२	५४	३१	११	११	ति

दशमलग्नसाधनार्थनतकालसाधनकथनम्—

पूर्वं नतं स्यादिनरात्रिखण्डं दिवानिशोरिष्टघटीविहीनम् ।
दिवानिशोरिष्टघटीषु शुद्धं द्युरात्रिखण्डं त्वपरं नतं स्यात् ॥ २०॥

कुन्तला —दिवानिशोः = दिनरात्र्योः, दिनरात्रिखण्डं = दिनार्धरात्र्यार्धमानं, इष्टघटीविहीनं पूर्वनतं भवति । यदि दिनार्द्धात् अल्पे इष्टकाले दिनार्धात् इष्टकाल शोधनेन

पूर्वनतं स्याद् । रात्र्यर्द्धमानादल्पे इष्टकाले रात्र्यर्धमानादिष्टं विशोध्यम् । तत्रापि रात्रौ पूर्वनतं भवति । अथ दिने दिनार्धाधिके इष्टे इष्टघटीषु दिनार्धमानं शुद्धं तदा दिने परनतं भवतीति। रात्रौ मध्यरात्रितोऽधिके इष्टे अर्थात् सूर्यास्ताद्रात्र्यर्धाधिके इष्टे इष्टघटीषु रात्र्यर्द्ध शोधनेन रात्रौ परनतं भवतीति बोध्यम् ।। २० ।।

ज्योति — यदि दिनार्द्ध में दिनगत इष्ट घटी घटे, तथा रात्र्यर्द्ध में रात्रिगत इष्टघटी घटे तो पूर्वनत होता है । इसी प्रकार से यदि दिनगत इष्टघटी में दिनार्द्ध तथा रात्रिगत इष्टघटी में रात्र्यर्द्ध घटे तो परनत (पश्चिम नत) होता है ।। २० ।।

विमर्श — इसी प्रकार पूर्वनत एवं परनत की ४ स्थितियाँ होती हैं ।

उदाहरण — (१) यदि दिनगत इष्टकाल १०।१५ दिनमान ३०।२० तो

$$\text{दिनार्द्ध} = \frac{३०।२०}{२} = १५।१०$$

दिनार्द्ध में — दिनगत इष्टघटी = पूर्वनत ।

१५।१० — १०।१५ = ४।५५ पूर्वनत

उदाहरण — (२) यदि दिनगत इष्टकाल २०।२५ तो इष्टकाल — दिनार्द्ध = परनत ।

२०।२५ — १५।१० = ५।१५ = परनत दिनगत

उदाहरण — (३) यदि रात्रिगत इष्टकाल ३५।५० हो तो ६० — दिनमान = रात्रिमान ।

६० — ३०।२० = २९।४० रात्रिमान ।

$$\text{रात्र्यर्द्ध} \frac{२९।४०}{२} = १४।५०$$

इष्टकाल (रात्रिगत) — दिनमान = रात्रिगत इष्टघटी

= ३५।५० — ३०।२० = ५।३० रात्रिगत इष्टघटी ।

रात्र्यर्द्ध — रात्रिगत इष्टघटी = पूर्वनत (रात्रिगत)

= १४।५० — ५।३० = ९।२० पूर्वनत (रात्रिगत)

उदाहरण—(४) यदि इष्टकाल रात्रिगत ४०।३७ हो अर्थात् रात्र्यर्द्ध से आगे का इष्टकाल हो तो — इष्टकाल — दिनमान = रात्रिगत इष्टघटी

५०।३० — ३०।२० = २०।१० रात्रिगत इष्टघटी

रात्रिगत इष्टघटी — रात्र्यर्द्ध = परनत (रात्रिगत)

२०।१० — १४।५० = ५।२० परनत (रात्रिगत)

नोट —''पूर्वनतं स्यात्'' श्लोक के अनुसार पूर्वनत या परनत दिनार्द्ध या रात्र्यर्द्ध के मान से अधिक नहीं होना चाहिए ।

अथ लग्नानयनकथनम्—

तत्काले सायनार्कस्य भुक्तभोग्यांशसङ्गुणात् ।
स्वोदयात्खाग्नि३० लब्धं यद् भुक्तं भोग्यं रवेस्त्येजत् ।। २१ ।।

इष्टनाडीपलेभ्यश्च गतगम्यान्नियोदयात् ।
शेषं खत्र्या३० हतं भक्तं अशुद्धेन लवादिकम् ॥ २२॥
अशुद्धशुद्धभे हीनयुक्तनुर्व्ययनांशकम् ॥

कुन्तला — तत्काले = इष्टकाले, सायनार्कस्य = अयनांशसहितार्कस्य, भुक्तभोग्यांश सङ्ख्यात्; स्वोदयात; खाग्निलब्धम् = त्रिंशद्भक्ताद्यल्लब्धं तत् क्रमेण, रवेः = सायनसूर्यस्य, भुक्तं भोग्यं भवति । यदि सायन सूर्यस्य भुक्तांशैः यदि स्वोदया गुण्यन्ते, त्रिंशद्भिर्विभज्यन्ते तदा सूर्यस्य भुक्तासवो लभ्यन्ते । यदि च भोग्याशैः स्वोदयागुण्यन्ते; त्रिंशद्भिर्विभजन्ते तदा तस्य भोग्यासवोलभ्यन्ते । तत् भुक्तं भोग्यम्, इष्टनाडीपलेभ्यः = पलीकृतेष्टघटीभ्यः, त्यजेत् = विशोधयेत् । तदन्तरं शेषात् गतगम्य नियोदयान् त्यजेत् । यस्योदया न शुद्धयन्ति स एव अशुद्ध संज्ञकः । अथ शेषं यत् तत्, खत्र्याहतं = त्रिंशद्गुणं, अशुद्धेन; भक्तं = विभाजित्, तदा लब्धं अंशादिकं भवेत् । तत् अशुद्ध भे हीनं कार्यं शुद्ध भें युक्तं कार्यम् । अर्थात् यदि भोग्यप्रकारेण क्रिया क्रियते तदा शुद्ध भे युक्तं कार्यम् । यदि भुक्तप्रकारेण क्रिया क्रियते तदा अशुद्ध भे, हीनम् = ऋणं कार्यम् । तत् व्ययनांशकं = अयनांशरहितं कार्यम् । तदा प्रथम लग्नं भवेत् ॥ २१—२२ ॥

ज्योति — स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़कर सायन स्पष्ट सूर्य लाना चाहिए । ३० अंश में सायन सूर्य के अंश को घटाने से भोग्यांश होता है । सायन सूर्य जिस राशि में हो उस राशि के उदयमान को भोग्यांश से गुणा करने पर जो फल प्राप्त हो उसमें ३० का भाग देने से भोग्यकाल होता है । पलात्मक इष्ट काल में भोग्यकाल को घटाकर शेष में सायन सूर्य से आगे वाली राशि के उदयमान को तब तक घटाते हैं जब तक वह घटता है । जिस राशि का उदयमान इष्टघटी में घट जाय उसे शुद्ध राशि और जिसका उदयमान न घटे उसे अशुद्ध राशि कहते हैं । शेष को ३० से गुणा कर अशुद्ध राशि से भाग देने पर लब्धि अंशादि लग्न होता है । इसमें शुद्ध राशि की संख्या जोड़ने से राश्यादि सायन लग्न हो जाता है । इसमें अयनांश घटा देने से निरयन लग्न निकल आता है ॥ २१—२२॥

नोट — यदि युक्त प्रकार से क्रिया करें तो अंशादि लग्न में अशुद्ध राशि की संख्या घटावे तथा यदि भोग्य प्रकार से क्रिया करें तो अंशादि लग्न में शुद्ध राशि की संख्या जोड़ दे।

लग्न के स्पष्टीकरण में अयनांश तथा स्वदेशीय उदयमान की नितान्त आवश्यकता होती है । स्वदेशीय उदयमान से ही स्वदेशीय स्पष्ट लग्न लाया जा सकता हैं । स्वदेशीय उदयमान लाने के लिए चरखण्ड की आवश्यकता होती है, तथा चरखण्ड आनयन के लिए पलभा की आवश्यकता होती है ।

पलभानय—

मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्ध भा या पलभा भवेत् सा ।
त्रिष्ठाहतास्युर्दशभिर्भुजङ्गैर्दिग्भिश्चरार्धानिगुणोद्धृताऽन्त्या ।।

सायन सूर्य मेषादि में जिस दिन प्रवेश करता है उस दिन की मध्याह्न कालिकी छाया पलभा कहलाती है । इस पलभा को तीन स्थान में रखकर क्रमशः १०, ८, १०/३ से गुणा करने पर चरखण्ड होता है जैसे काशी की पलभा ५।४५ पठित है । उक्त विधि से क्रिया करने पर —

५।४५	५।४५	५।४५
१०	८	१०
५०।४५०	४०।३६०	५०।४५०
७।४२०	६।३६०	७।४२०
५७।३०	४६। ×	५७।३०

५७।३० ÷ ३ = १९।१०

स्वल्पान्तरात् ५७, ४६, १९ चरखण्ड हुआ ।

लंकोदयमान तथा उससे स्वोदयसाधन—

लंकोदया विघटिका गजभानि गोङ्क दस्रास्त्रिपक्षदहना क्रमगोत्क्रमस्थाः ।
हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थै मेषादितो घटत उत्क्रमतस्त्विमे स्युः ।।

मेषादि १२ राशियों के लंकोदयमान पठित है ।

राशियाँ	*लंकोदय मान*
मेष	२७८
वृष	२९९
मिथुन	३२३
कर्क	३२३
सिंह	२९९
कन्या	२७८

यहाँ तीन राशियों का अर्थात् मेष, वृष, मिथुन का लंकोदय क्रमशः २७८, २९९, ३२३ पठित है । वही मान उत्क्रम से कर्क, सिंह, कन्या, का होगा । इस प्रकार मेषादि छः राशियों का लंकोदय मालूम हो जायेगी मेषादि छः राशियों के जो लंकोदय हैं वे ही उत्क्रम से १२ राशियों के भी लंकोदय मान होगें । जैसे —

तुला	२७८
वृश्चिक	२९९
धनु	३२३

मकर	३२३
कुम्भ	२९९
मीन	२७८

इन्ही लंकोदय मानों में चरखण्ड का संस्कार करने से स्वोदय मान निकल आता है—

मे — भी०	२७८ — ५७ = २२१
वृ — कु०	२९९ — ४६ = २५३
मि — म०	३२३ — १९ = ३०४
क — ध०	३२३ + १९ = ३४२
सि — वृ०	२९९ + ४६ = ३४५
क — तु०	२७८ + ५७ = ३३५

लग्नानय का उदाहरण

०।१०।५६।२७ स्प० सूर्य
२३। ३।४८ अयनांश
१। ४। ०।१५
३०
४ । ०।१५ भुक्तांश
२५।५९।४५ भोग्यांश

सायन सूर्य वृष राशि का है जिसका उदयमान २५३ है । अतः

२५।५९।४५
२५३
६३२५ १४९२७ ११२८५
२४९ १८ ६०
६५७४ १४९४५ ५२८
— १२० ४८०
२९४ ४८
— २४०
५४५
— ५४०
५

= ६५७४।५।४८ ÷ ३०

३०) ६५७४ ।५।४८ (२१९
६०
५७
३०
२७४
२७०
४ × ६०

२४०
५
२४५ (८
२४०
०५

०५
६०
३००
४८
३४८ (११
३०
४८
३०
१८

२१९।११।१८ सूर्य का भोग्य पल
पूर्वानीत इष्टकाल (वर्ष प्रवेश कालिक) २५।१०

२५।१०
६०
१५००
१०
१५१०
१०
१५२०। ०। ० इष्टपल
२१९।११।१८
१३००।४८।४२
मिथुन ३०४। ०। ०
९९६।४८।४२
कर्क ३४२। ०। ०
१९५४।४८।४२
सिंह ३४५
३०९।४८।४२.

यहाँ सिंह राशि का उदयमान ३४५ ही घट पाया । आगे कन्या राशि का उदयमान ३३५ नहीं घट पायेगा । अत: सिंह शुद्ध एवं कन्या अशुद्ध राशि हुई ।

अब शेष = ३०९।४८।४२

३०
९२७०।१४४०।१२६०
२४। २१।१२०
९२९४।१४६१। ६०
१२० ६०
२६१
२४०
२१

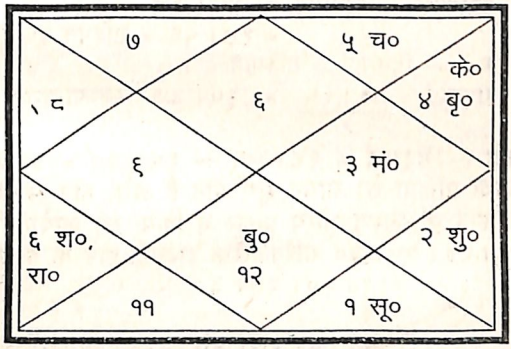
अशुद्ध राशि ३३५) ९२९४ । २१। ० (२७
६७०
२५९४
२३४५
२४९
६०
१४९४० (४४
१३४०

१५४०
१३४०
२००
६०
१२००० (३५
१००५
१९५०
१६७५

यहाँ २७। ४४। ३५ अंशादि लग्न के शुद्ध राशि सिंह की संख्या ५ जोड़ने से ५। २७। ४४। ३५ राश्यादि स्पष्ट सायन लग्न हुआ । इसमे अयनांश घटाने से —

५। २७। ४४। ३५
— २३। ३। ४८
५। ४। ४०। ४७ निरयन लग्न ।

॥ वर्षाङ्गम् ॥



यहाँ लग्नानयन की भोग्य प्रक्रिया प्रदर्शित है । इसी विधि से भुक्त प्रकार से अर्थात् भुक्तांश को उदयमान से गुणा कर ३० से भाग देने पर लब्धि भुक्तपल होगा । शेष क्रियाएँ पूर्ववत् होंगी । विशेष बात ध्यान देने योग्य यह है कि भोग्य प्रकार में शुद्ध राशि की संख्या अंशादि लग्न में जोड़ते हैं, परन्तु युक्त प्रकार में शुद्ध राशि की संख्या में ही अंशादि मान को घटाया जाता है, और स्वोदयमान को उल्टा घटाया जाता है । जैसे सायन सूर्य वृष का है तो मेष मीन, कुम्भ इत्यादि घटेंगे ।

अथदशमलग्नसाधनकथनम्—

एवं लंकोदयैर्भुक्तं भोग्यं शोध्यं पलीकृतात् ॥ २३॥
पूर्वपश्चान्नतादन्यत्प्राग्वत्तद्दशमं भवेत् ॥

कुन्तला — एवं = लग्नानयनोक्त विंधिना सायन सूर्यस्य भुक्तं भोग्यं च साधितम् । परन्तु अत्र तु दशमलग्नानयने लंकोदयैः भुक्तं भोग्यं साध्यम् । इष्टघटी स्थाने नतघटा गृहीत्वा अग्रेक्रिया कार्या । तदा दशमलग्नं भवति । नतसाधनविधिस्तु पूर्वमुक्तमेव ॥ २३ ॥

ज्योति ——नतकाल लाने के बाद दशम लग्न को लग्नानयन की ही तरह लाने की प्रक्रिया है । दशम लग्नानयन में सायन सूर्य के भुक्त अथवा भोग्य पल को सायन सूर्य जिस राशि का हो उसके लंकोदय मान से गुणा करते हैं । जबकि लग्नानयन में स्वोदयमान से गुणा किया जाता है । शेष क्रियाएँ लग्नानयन की तरह ही होती हैं । लग्नानयन में पलात्मक इष्ट में स्वोदय मान को घटाया जाता था । परन्तु दशम में नत को पलात्मक कर लंकोदय को घटाया जाता हैं ॥ २३ ॥

विशेष – ध्येय यह है कि पूर्वनत को इष्टकाल मानकर युक्त प्रकार से और पश्चिम (परनत) को इष्टकाल मान कर भोग्य प्रकार से दशम लग्न का आनयन किया जाता है ——

उदाहरणार्थ—— स्पष्ट सूर्य = १०। १६। ५७। ३२
अयनांश = २३। २९। ५८
११। १०। २७। ३०

इष्टकाल = ४७। ४१
दिनमान = २८। ४५
इष्टकाल – दिनमान = ४७। ३४ – २७। ४५
= १८। ५६ = रात्रिगत इष्टघटी।
६० – दिनमान = रात्रिमान = ६० – २८ । ४५ = ३१। १५
रात्र्यर्द्ध = ३१। १५ / २ = १५। ३७ स्वल्पान्तरात् ।

रात्रिगत इष्टघटी – रात्र्यर्द्ध = १८। ५६ – १५। ३७ = ३। १९ रात्रिगत परनत। (नतकालानयन की चौथी प्रक्रिया से) सायन सूर्य मीन है अत: मीन लंकोदय से गुणा किया जायेगा । तथा परनत होने के कारण भोग्य प्रकार से क्रिया की जायेगी ।

सायन सूर्य ११। १०। २७। ३० रात्रिकालिक इष्टघटी होने के कारण छ: राशि जुड़ेगी।

११। १०। २७। ३०
६
५। १०। २७। ३०

३०। ०। ०
१०। २७। ३० भुक्तांश
१९। ३२। ३० भोग्यांश
२७८ कन्या का लंकोदय
५२८२। ८८९६। ८३४०
१५०। १३९। ६०
५४३२। ९०३५। २३४
६० । १८०
३०३ । ५४०
३०० । ५४०
३५।

३०) ५४३२। ३५। ० (१८१
३०
२४३
२४०
३२
३०
२

२
६०
१२०
३५
३०) १५५ (५
१५५
१५०
५
६०
३०) ३०० (१
३००
×

१८१। ५। १० सूर्य का भोग्यपल ।
परनत = ३। १९
६०
१८०
१९
१९९ परनत पलात्मक
१९९। ०। ०
१८१। ५। १०
१७। ५४। ५०
३०
५१०। १६२०। १५००
२७। २५। १२०
५३७। १६४५। ३००
१२० । ३००
४४५
४२०
२५
२७८) ५३७। २५। ० (१
२७८
२५९
६०
१५५४०
२५
१५५६५ (५५
१५२९०
२७५
६०
१६५०० (५९
१६४०१
९९

१। ५५। ५९ इसमें सायन सूर्य की कन्या राशि की संख्या अर्थात् ६ जोड़ने से = ६। १। ५५। ५९ सायन दशम लग्न हुआ । इसमें २३। २९। ५८ अयनांश घटाने पर ५। ८। २६। १ निरयन दशम लग्न हुआ ।

भुक्त प्रकार से दशम लग्न लाने में लंकोदय को उल्टा घटाया जाता है अर्थात् यदि सायन सूर्य मेष का हो तो भुक्त प्रकार मे मीन, कुम्भ, मकर, धनु प्रभृति लंकोदयमान घटेगें । जब न घटे तो शेषांश को ३० से गुणाकर अशुद्ध राशिमान से भाग देकर अंशादि फल को अशुद्ध राशि में घटाया जायेगा ।

नत आनयन की दूसरी विधि—

यदि इष्टकाल दिनार्द्ध से पूर्व का हो तो दिनार्द्ध – इष्टकाल = दिनगत पूर्वनत । मध्याह्न के बाद के इष्ट में यदि दिनार्द्ध घटे तो पश्चिम नत (दिनगत) होता है । इसी प्रकार मध्यरात्रि के पूर्व इष्ट में दिनार्द्ध घटाने से पश्चिम नत (रात्रिगत) होगा । तथा मध्यरात्रि के बाद इष्टकाल हो तो ६० में इष्टकाल घटाकर दिनार्द्ध जोड़ने से रात्रिगत पूर्वनत होता है । यह प्रक्रिया पूर्वोक्त नत प्रक्रिया से सर्वथा पृथक् है । इस प्रक्रिया में मूलत: अर्द्धरात्रि से लेकर मध्याह्न तक तथा मध्याह्न से लेकर अर्द्धरात्रि का खण्ड स्वीकृत हुआ है । उदाहरण के लिए इष्टकाल ४७। ४१ का नत आनयन करने पर –

६० – इष्टकाल = ६० – ४७। ४१ = १२। ४९ इसमें दिनार्द्ध जोड़ने से अर्थात् १२। १९ + १४। ३२ = २६। ४१ यह रात्रिगत पूर्वनत हुआ । इस प्रक्रिया के द्वारा नत घटी के अन्तर आ सकता है । अब यहाँ पूर्वनत होने के कारण भुक्त प्रक्रिया द्वारा दशम लग्न का आनयन करना होगा ।

सायन सूर्य ११। १०। २७। ३०

भुक्तांश १०। २७। ३० (इसको मीन के लंकोदयमान से गुणा करने पर)

२७८

२७७०। ७५०६। ८३४०

इसको साठ से तष्ठित करने पर = २९०७। २५ । ० हुआ । इसे ३० से भाग दिया

३०) २९०७। २५। ० (९६

२०७

२०७

१८०

२७

६०

१६२०

२५

१६४५ (५४

१५०

१४५

१२०

२५

६०

१५०० (५०

१५००

×

९६। ५४। ५० सूर्य का भुक्तपल
नत पल = २६। ४१
६०
१५६०
४१
१६०१। ०। ०
— ९६। ५४। ५०
१५०४। ५। १०
कुम्भ — २९९। ०। ०
१२०५। ५। १०
मकर— ३२३। ०। ०
८८२। ५। १०
धनु — ३२३।
५५९। ५। १०
वृश्चिक — २९९। ०। ०
२६०। ५। १०

वृश्चिक शुद्ध राशि हुई, तथा तुला अशुद्ध । शेषांश मे ३० से गुणाकर अशुद्ध लंकोदय से भाग दिया —

२६०। ५। १०
३०
७८००। १५०। ३००
२। ५। ३००
७८०२। १५५। ×
। १२०।
३५
२७७) ७८०२। ३५। ० (२८
७७६४
१८
६०
१०८०
३५
१११५ (४
१११२
३
६०
१८० (०

= २८। ४। ० इसके अशुद्ध राशि की संख्य तुला अर्थात्
७। ०। ०। ०
—२८। ४। ०
६। १। ५६। ० सायन दशम लग्न ।

इसमें अयनांश घटाने से निरयन दशम लग्न = ६। १। ५६। ०
— २३। २९। ५८
निरयन दशम लग्न ५। ८। २६। २

इन दोनों उदाहरणों से दशम लग्न एक ही आ रहा है । अतः ये दोनों प्रक्रियाएँ सर्वमान्य हैं ।

अब पूर्वानित वर्ष प्रवेश २५। १० और स्पष्ट सूर्य ०। १०। ५६। २७ एवं अयनांश २३। ३। ४८ दिनमान ३२५ के अनुसार नत ला कर दशम लग्न की प्रक्रिया प्रदर्शित किया जा रहा है —

उदाहरण — दिनमान ३२। ५ का आधा १६। ३ दिनार्द्ध है

२५। १० वर्ष प्रवेश कालिक इष्ट

१६। ३

९। ७ परनत

(नतसाधन में बताये गये द्वितीय उदाहरण के अनुसार)

०। १०। ५६। २७ स्प० सूर्य

२३। ३। ४८ अयनांश

१। ०४। ०। १५ सायन सूर्य

यहाँ ४। ०। १५ भुक्तांश सायन सूर्य का है । यहाँ परनत है इसलिए भोग्य प्रकार से क्रिया की जायेगी ।

३०। ०। ०

४। ०। १५

२५। ५९। ४५

इसमें सायन सूर्य वृषराशि के होने से वृषराशि के लंकोदयमान मान से गुणा करेंगे। वृषराशि का लंकोदय मान २९९

७४७५। १७६४१। १३४५५

२९७। २२४। १२०

७७७२। १७८६५। १४५

१२०। १२०

५८६। २५५

५४०। २४०

४६५। १५

४२०

४५

३०) ७७७२। ४५। १५ (२५९

६०

१७७

१५०

२७२

२७०

०२ × ६०

१२०

४५

१६५ (५

१५०

१५

६०

९००

१५

९१५ (३०

९०

१५ = २५९। ५। ३० सू० भो० प०

परनत = ९। ७
६०
५४०
७
५४७। ०। ०
२५९। ५। ३०
२८७। ५४। ३०

पलात्मक परनत सू० भो० प०

अब यहाँ मिथुन राशि का लंकोदय मान ३२३ घटन नहीं सकता अतः यह अशुद्धराशि तथा वृष शुद्ध राशि हुई ।

२८७। ५४। ३०
३०
८६१०। १६२०। ९००
२७। १५। ६०
८६३७। १६३५। ३००
१२०। ३००
४३५
४२०
१५

३२३) ८६३७। १५। ० (२६
६४६
२१७७
१९३८
२३९
६०
१४३४० (४४
१२९२
१४२०
१२९२
१२८
६०
७६८० (२३
६४६
१२२०
९६९
२५१

२६। ४४। २३ इसमे शुद्ध राशि की संख्या २ जोड़ने से २। २६। ४४। २३ सायन लग्न हुआ । इसमे अयनांश घटाने पर निरयन दशम लग्न निकल जायेगा ।

२। २६। ४४। २३
२३। ३। ४८
२। ३। ४०। ३५ = निरयन दशम लग्न ।

इस प्रकार दशम आनयन की भुक्त एवं भोग्य दोनों के उदाहरण स्पष्ट हैं ।

ससन्धिद्वादशभावसाधन—

षसङ्मे लग्नखे जायातुर्यौ लग्नोनतुर्यतः ॥ २४ ॥
षष्ठांशयुक्तनुः सन्धिरग्रे षष्ठांशयोजनात् ।
त्रयः ससन्धयो भावाः षष्ठांशो नैकयुक् सुखात् ॥ २५ ॥
अग्रे त्रयः षडेवं ते भार्द्धयुक्ताः परेऽपि षट् ।
खेटे भावसमे पूर्णफलं सन्धि समे तु खम् ॥ २६ ॥

कुन्तला — षसऽभे = षडराशि युक्ते, लग्नरवे = प्रथमलग्ने, दशमलग्ने च । जायातुर्यौ = सप्तम चतुर्थलग्नौ भवतः । अर्थात् लग्ने षड्राशि योजनेन सप्तमभावः, एवं दशमलग्ने षड्राशि योजनेन चतुर्थ भावो भवतीति बोध्यम् । लग्नोनर्तुयतः = चतुर्थ भावात् प्रथमलग्नं हीनम् । षष्ठांश युक्तनुः = लग्नशोधित चतुर्थभावस्य षष्ठांशं कृत्वा लग्नमध्ये युक्तम् । तनुः सन्धिः = लग्नसन्धिः स्यादिति। अग्रे षष्ठांश योजनेन ससन्धयः त्रयः भावाः स्युः । अर्थात लग्ने षष्ठांश योजनेन लग्नसन्धिः । लग्न सन्धि मध्ये षष्ठांश योजनेन द्वितीयभावः अर्थात् धनभावः । धनभावे षष्ठांश योगनेन द्वितीय भावस्य सन्धिः भवति । धनसन्धौ षष्ठांश योजनेन सहजभावः (तृतीयभावः) । सहजे षष्ठांश योजनेन सहजसन्धिः। सहज सन्धौ षष्ठांश योजनेन सुखभावः (चतुर्थभावः) भवति । षष्ठांशोनैकंयुक् सुखात् = पूर्वानीत षष्ठांशं एकराशिमध्ये विशोधनेन यदुपलभ्यते तत् चतुर्थभावे युक्तं तदा चतुर्थसन्धिः भवति । एवं चतुर्थसन्धौ युक्ते पञ्चमभावः । पञ्चम भावे युक्तं तदा पञ्चमसन्धिः । पञ्चम — सन्धौयुक्तं तदा षष्ठभावः (रिपुभावः) । षष्ठ भावे युक्ते सति षष्ठभावस्य सन्धिः । एवं लग्नात् ससन्धयः षड्भावाः सिध्यन्ति तेभार्धयुक्ताः = षड्राशि युक्ताः, तदा अपरेपि सप्तमादि ससन्धयः द्वादशभावः भवन्ति । अर्थात् लग्ने षड्राशि युक्तं सप्तम भावः, लग्नं सन्धौ ६ राशि युक्तं सप्तम सन्धिः, द्वितीयेभावे ६ राशि युक्तं अष्टमभावः, द्वितीय सन्धौषड् राशि युक्तं अष्टम भावस्य सन्धिः एवमेव क्रमेण षड्राशियोजनेन सप्तमादि ससन्धयः भावाः सिद्धयन्ति ॥ २४—२६ ॥

भावसमे ग्रहे समग्रं फलं भवति । सन्धिसमे शून्यं फलं भवतीति बोध्यम् ।

ज्योति — लग्न और दशम में छः राशि जोड़ने पर क्रमशः सप्तम् और चतुर्थ भाव होता है । चतुर्थ में लग्न घटाने पर जो शेष राश्यादि बचे उसे अंशादि बनाकर छः से भाग देने पर षष्ठांश निकल आता है । इस षष्ठ्यंश को लग्न में जोड़ने पर लग्न सन्धि तथा लग्न सन्धि मे जोड़ने पर द्वितीय भाव एवं द्वितीय भाव में जोड़ने पर द्वितीय सन्धि और द्वितीय सन्धि में जोड़ने पर तृतीय भाव, तथा तृतीय भाव में जोड़ने पर तृतीय सन्धि एवं तृतीय सन्धि में जोड़ने पर चतुर्थ भाव होता है ।

इसके बाद ससन्धि भावों के आनयन के लिए १ राशि में षष्ठ्यंश को घटाकर चतुर्थ भाव में जोड़ने पर पञ्चम सन्धि, और पञ्चम सन्धि में जोड़ने पर षष्ठभाव तथा षष्ठभाव में जोड़ने पर षष्ठभाव की सन्धि निकल आती है ।

पूर्वोक्त विधि से सन्धि सहित छः भावों का आनयन कर लेने के बाद क्रम पूर्वक लग्नादि एवं सन्धियों मे ६ राशि जोड़ने से सन्धि सहित द्वादश भाव निकल आते हैं । अर्थात् लग्न में छः राशि जोड़ने पर सप्तम भाव, तथा लग्न की सन्धि में ६ राशि जोड़ने से सप्तम भाव की सन्धि होती है । द्वितीय भाव में छः राशि जोड़ने पर अष्टमभाव तथा द्वितीय भाव की सन्धि में छः राशि जोड़ने पर सप्तम भाव की सन्धि होती है । इसी प्रकार अन्य शेष भावों एवं सन्धियो मे भी छः राशि जोड़ने से क्रमशः आगे के भाव एवं सन्धियाँ निकल आती हैं । इस प्रकार ससन्धि द्वादश भाव निकल आते हैं ॥ २४–२६ ॥

उदाहरण —५। ४। ४०। ४७ लग्न ।
२। ३। ४०। ३५ दशम लग्न ।

लग्न में ६ राशि जोड़ा तो ११। ४। ४०। ४७ सप्तमभाव
दशम में ६ राशि जोड़ा तो ८। ३। ४०। ३५ चतुर्थ भाव

— ५। ४। ४०। ४७

२। २८। ५९। ४८ इसमें ६ का भाग दिया

६) २। २८। ५९। ४८ (०
३०
६०
२८
८८ (१४
६
२८
२४
४ × ६०

२४०
५९
२९९ (४९
२४
५९
५४
५ × ६० = ३०० + ४८

३४८ (५८
३०
४८
४८
×

षष्ठांश ०। १४। ४९। ५८

५। १४। ४०। ४७ — लग्न
५। १९। ३०। ४५ — सन्धि
६। ४। २०। ४३ — द्वितीय
६। १९। १०। ४१ — सन्धि
७। ४। ००। ३९ — तृतीय
७। १८। ५०। ३७ — सन्धि

८। ३। ४०। ३५ — चतुर्थ (इसमे १ — ०। १४। ४९। ५८
८। १८। ५०। ३७ — सन्धि = ०। १५। १०। २ जोड़ने से)
९। ०४। ०। ३९ — पञ्चम
९। १९। १०। ४१ — सन्धि
१०। ४। २०। ४३ — षष्ठ
१०। १९। ३०। ४५ — सन्धि

इस प्रकार सन्धि सहित ६ भावों का आनयन हो गया । इसमें क्रमशः ६ राशि जोड़ने से सप्तमादि द्वादशभाव हो जायेंगे ।

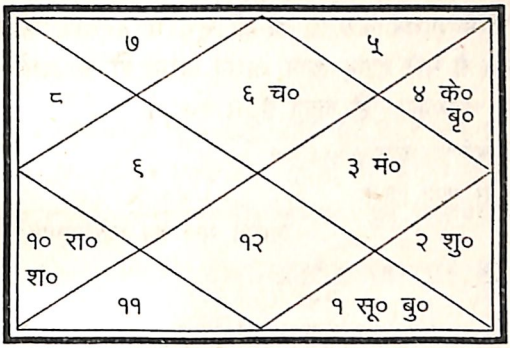
११। ४। ४०। ४७ सप्तम
११। १९। ३०। ४५ सन्धि
०। ४। २०। ४३ अष्टम
०। १९। १०। ४१ सन्धि
१। ४। ००। ३९ नवम
१। १८। ५०। ३७ सन्धि
२। ३। ४०। ३५ दशम
२। १८। ५०। ३७ दशम सन्धि
३। ४। ०। ३९ एकादश
३। १९। १०। ४१ सन्धि
४। ४। २०। ४३ द्वादश
४। १९। ३०। ४५ द्वादश सन्धि

ससन्धिद्वादशभाव चक्र—

ल०	स०	द्वि०	स०	तृ०	स०	च०	स०	प०	स०	ष०	स०
५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०
४	१९	४	१९	४	१८	३	१८	४	१९	४	१९
४०	३०	२०	१०	०	५०	४०	५०	०	१०	२०	३०
४७	४५	४३	४१	३९	३७	३५	३६	३९	४१	४३	४५
स०	स०	अ०	स०	न०	स०	द०	स०	ए०	स०	द्वा०	स०
११	११	०	०	१	१	२	२	३	३	४	४
४	१९	४	१९	४	१८	३	१८	४	१९	४	१९
४०	३०	२०	१०	०	५०	४०	५०	०	१०	२०	३०
४७	४५	४३	४१	३९	३७	३५	३६	३९	४१	४३	४५

इन्हीं भावों और स्पष्ट ग्रहों के आधार पर चलित चक्र बन जाता हैं —

चलित चक्र—



लग्न से उपरोक्त कुण्डली को भरकर स्पष्ट ग्रहों के आधार पर प्रत्येक घरों में ग्रहों को स्थापित करते हैं । जैसे — स्प० सूर्य ०।१०।५६।२७ यह अष्टभाव ०।४।२०।४३ और अष्टभाव की सन्धि ०।१९।१०।४१ से कम हैं । अतः सूर्य अष्टभाव में रहा । इसी प्रकार चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि राहु और केतु सभी ग्रह स्थापित किए जाते है । जिससे चलित चक्र बन जाता है ।

अथ सूर्यस्य भुक्तमथवाभोग्यमुक्तरीत्याचानीतं तद्यदीष्टकालघटीपलेभ्यो न शुद्धयेत् तदा केनोपायेन लग्नसाधनं कर्त्तव्यमित्याह—

भुक्तंभोग्यं स्वेष्टकालान्नशुध्येत्रिंश(३०) निघ्नात् स्वोदयाप्तं लवाद्यम् ।
हीनं युक्तं भास्करे तत्तनुः स्याद्रात्रौ लग्नंभार्द्धयुक्ताद्रवेस्तु ।। २७।।

कुन्तला — रवेः = सूर्यस्य, भुक्तं = भुक्तासुमानं, भोग्यं = भोग्यासुमानं, यदि इष्टकालान्न शुद्धेत् अर्थात् सूर्यभोग्यंमुक्तमानादल्प इष्टकालो भवति तदा त्रिंशन्निघ्नादिष्टकालात्, स्वोदयेन = सायनरव्यधिष्ठितराशिस्वदेशीयोदयेन प्रथमलग्नानयने दशमलग्नानयने तद्राराशिनिरक्षोरयेन भक्तात् यदाप्तं = लब्धं, अंशादि फलं ज्ञेयम् । तद् भास्करे युक्तं च कार्यम् । अर्थात् यदि भुक्त प्रकारेण क्रियाकृतं तदा सूर्यो हीनं, भोग्य प्रकारेण च सूर्ययुक्तं कार्यम् । अयनांश शोधनेन, लग्नं स्यादीति । यदि रात्रौ लग्नानयनं अभीष्टं तत्र सूर्योदया—दिष्टसमयावधितांष्टकालस्याधिकत्वाद्रवौ मार्द्ध संयोज्य ततः रात्रि गतेष्टघटीमिष्टघटीं मत्वा भोग्यप्रकारेणैव लग्नं आयाति । यदि रात्रौ सूर्योदयाद्यात् घटी षष्टिशुद्धां कृत्वा शेषमितेष्टघटीषु भुक्तप्रकारेण लग्नानयनं भवति ।। २७ ।।

ज्योति — यदि सूर्य का भुक्त अंश वा भोग्य काल इष्टकाल की घटी या पल में न घट सके तो यानी इष्टकाल से न्यून हो तो इष्टघटी पलों को ३० से गुणाकर सामन

सूर्य (अर्थात् सायन सूर्य जिस राशि में हो उसके उदयमान) से भाग दे । ऐसा करने पर जो अंशादि लब्ध हो उसको मुक्त प्रकार के घटा दे, और भोग्य प्रकार में जोड़ दें । इस रीति से लग्न निकल आयेगा ।

यदि रात्रि में लग्न साधन कर रहे हो तो सूर्य में ६ राशि जोड़ कर लग्न साधन करे । रात्रि के ही समय में यदि दशम लग्न साधन करना हो तो उसमें भी ६ राशि जोड़ने से सूर्य का भुक्त और भोग्यकाल हो जाता है ॥ २७ ॥

उदाहरण — कल्पित इष्ट = ०। ४०

इसको ३० से गुणा किया $\frac{०।४०\times ३०}{\text{सायन सूर्य का स्वोदयमान}}$

$= \frac{०।४०\times ३०}{२२१} = \frac{१२००}{२२१}$

२२१) १२०० (५
११०५
९५
६०
५७०० (२५
४४२
१२८०
११०५
१७५
६०
१०५०० (४७
१०३८७
११३

अब ५। २५। ४७ इसको स्पष्ट सूर्य में जोडने पर १०। १६। ५७। ३२
५। २५। ४७
१०। २२। २३। १९ स्पष्टलग्न

यहाँ अयनांश लाने की विधि नही दी गई है । क्योंकि भिन्न – भिन्न ग्रन्थों में अयनांश की आनयन विधि भिन्न–भिन्न है । इस लिए पञ्चाङ्गों से ही अयनांश लेकर लग्नानयन करें । इससे कोई अन्तर नही पड़ेगा । क्योंकि अयनांश स्पष्ट सूर्य में जोड़ा जाता है और निरयन करने के लिए वही अयनांश घटा भी दिया जाता है । अत: एक जगह जोड़ने और दूसरे जगह घटाने की क्रिया करने से कही का भी अयनांश लेने पर लग्नानयन में कोई अन्तर नहीं आयेगा । इसलिए किसी पञ्चाङ्ग से अयनांश लाने की विधियों की अलग से जानकारी कर लें ।

अथ भावस्थग्रहफलम्—

खेटे सन्धिद्वयान्तःस्थे फलं तद्भावजं भवेत् ।
हीनेऽधिके द्विसन्धिभ्यां भावे पूर्वापरे फलम् ॥ २८॥

कुन्तला — सन्धिद्वयान्तःस्थे = आरम्भविराम सन्धयोर्मध्ये, ग्रहे विद्यमाने सति, तद्भावजं फलं भवेत् । द्विसन्धिभ्या = पूर्वापरसन्धिभ्यां हीनेऽधिके = अल्पे अधिके ग्रहे पूर्वापरे भावे फलं भवेत् । आरम्भसन्धेरल्पे ग्रहे पूर्वभावस्यफलं ददाति एवमेव विराम सन्धेरधिके ग्रहे सति अग्रिमभावस्य फलं ददातीभावः ।। २८ ।।

ज्योति — दो सन्धियो के बीच रहने वाला ग्रह उसी भाव का फल देता है । यदि किसी भाव की विराम सन्धि से ग्रह स्पष्ट आगे हो तो वह अग्रिम भाव का एवं जिस ग्रह को राश्यादि आरम्भ सन्धि से कम हो तो वह ग्रह पूर्ण भाव का फल देता है ।। २८ ।।

अथ ग्रहाणां विंशोपकात्मकभावफलकथनम्—

ग्रहसन्ध्यन्तरं कार्यं विंशत्या२० गुणितं भजेत् ।
भावसन्ध्यन्तरेणाप्तं फलं विंशोपकाः स्मृता ।। २९।।

कुन्तला — ग्रहसन्ध्यन्तरं = ग्रहः यस्मिन् भावे सन्धौ वा भवेत् तस्य ग्रह सन्धन्तरं कृत्वा विंशत्या सङ्गुण्य च भावसन्धन्तरेण भक्तम् । भागफलं अंशादि यदुपलभ्यत्ते ते एवं विंशोपकाः कथ्यन्ते ।। २९ ।।

ज्योति — जिस भाव तथा सन्धि में ग्रह विद्यमान हो उस ग्रह और सन्धि का अन्तर करें इसके अन्तर को २० से गुणा करे । गुणनफल में भाव और सन्धि का जो अन्तर हो उसको उसी से भाग दे । भाग देने पर जो अंशादि लब्ध हो वे ही विंशोपक कहे जाते है ।। २९ ।।

जैसे — स्पष्ट सूर्य २। १०। ४२। ३५ की सन्धि २। २८। १४। ४१ दोनों का अन्तर ०। १७। ३२। ६ इसको २० से गुणा किया तो २५०। ४२। ० भाज्य हुआ अब चतुर्थभाव २। १२। ४५। २६ की सन्धि २। २८। १४। ४१ का अन्तर किया तो ०। १५। ३९। १५ शेष रहे । यह भाजक हुआ । इसमें भाग देने के लिए भाज्य–भाजक दोनों एक जातीय करके ६० से गुणा किया तो १२६२५२० संख्या हुई । और भाजक ५७३५५ हुआ । इनसे भाग दिया तो २२। १ यह सूर्य का विंशोपक बल हुआ । अर्थात् उक्तभाव में सूर्य २२। १ विस्वा फल देगा । इस प्रकार अन्य ग्रहों का भी विंशोपक समझ लेना चाहिए ।

अथ राशीशद्रेष्काणेशानाह—

भौमोशनः सौम्यशशीनवित्सितारेज्यार्किमन्दागिरसो गृहेश्वराः ।
आद्याः कुजाद्यारवितोऽपि मध्यमाः सितात्तृतीयाः क्रियतोह्काणपाः ।। ३०।।

कुन्तला — मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शानिशनिबृहस्पतयः ग्रहाः क्रमेण गृहेश्वरा = मेषादिराशीनां अधिपतयः भवन्ति । अर्थात् मेषस्य भौमः, वृषस्य = शुक्रः मिथुनस्य बुधः, कर्कस्य चन्द्रमाः, सिंहस्य सूर्यः कन्यायाः बुधः,

तुलायाः शुक्रः, वृश्चिकस्य भौमः, धनुषां गुरुः । मकरस्यं शनि, कुम्भस्य शनिः, मीनस्यगुरुः स्वामीति ।

अथद्रेष्काणेशानुच्यते — तत्रराशितृतीयांशः द्रेष्काणः कथ्यते । एकस्मिन् राशौ त्रिंशदंशाः भवन्ति, तेषां समत्रिभागो दश दशांशाः एकैकद्रेष्काणः । अर्थात् १० अंशावधि प्रथमद्रेष्काणः विंशत्यंशावधि द्वितीयो द्रेष्काणः । ततः त्रिंशदंशावधि तृतीयो द्रेष्टकाणः । प्रथम द्रेष्काणेशाः, कुजाद्या = मङ्गल बुध गुरु शुक्र शनि रवि चन्द्रोति क्रमशः द्वादशराशीनां द्रेष्काणेशाः भवन्ति । एवं रवितः समारभ्य अर्थात् रवि चन्द्रकुज बुध गुरु शुक्र शनिति क्रमेण द्वादश राशीनां द्वितीयद्रेष्काणेशाः भवन्ति । एवं सितात् शुक्रात् अर्थात् शुक्रमारभ्य शुक्र, शनि रवि चन्द्र कुज बुधेति ग्रहाः तृतीयद्रेष्काणेशाः भवन्तीति ।। ३० ।।

ज्योति — मेषादि राशियों के क्रम से मं, शु०, बुध०, च०, सू०, बु०, शु०, मं०, बृ० श०, श० ये स्वामी होते है ।

राशिस्वामी चन्द्र—

राशि	में०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०
स्वामी	मं०	शु०	बु०	च०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०

प्रत्येक राशि के तीस अंश होते है उसका त्रिभाग करने से दश–दश–विभाग के एक–एक द्रेष्काण कहलाता है । मेष से बारह राशियो प्रथम द्रेष्काण के स्वामी मङ्गल से लेकर मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र इस क्रम से होते हैं । द्वितीय द्रेष्काण के स्वामी सूर्य से लेकर सूर्य चन्द्र, मङ्गल, बुध, इस क्रम से, एवं तृतीय द्रेष्काण के स्वामी शुक्र से लेकर जैसे शुक्र, शनि, सूर्य चन्द्र इस क्रम से होते हैं ।। ३० ।।

यह नियम जातक ग्रन्थों में बताए गए नियमों से भिन्न है । इसका उपयोग मात्र वर्ष कुण्डली बनाने में ही होता है ।

अथ द्रेष्काण चक्र—

राशि	मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०
प्र० द्रे० स्वा० १ — १०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	सू०	च०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
द्वि० द्रे० स्वा० ११ — २०	सू०	च०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	च०	मं०	बु०	बृ०
तृ० द्रे० स्वा० २१ — ३०	शु०	श०	सू०	च०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	सू०	च०	मं०

अथ ग्रहाणामुच्चनीचान्याह—

सूर्यादितुङ्गर्क्षभजोक्षनक्र कन्याकुलीरान्त्यतुलालवैः स्युः ।
दिग्भिर्गुगैरष्टयमैः शरैकैर्भूतैर्भसंख्यैर्नखसम्मितैश्च ।। ३१ ।।

कुन्तला — अजोक्षनक्र कन्याकुलीरान्त्यतुलाः = मेष, वृषमकरकन्याकर्कमीनतुलाः राशयः । दिग्भिः = १०, गुणैः = ३, अष्टयमै = २८, शरैकैः = १५, भूतैः = ५, भसंख्यैः = २७, नखसम्मितैः = २०, लवैः = अंशैः, सूर्यादितुङ्गर्क्ष = सूर्यादिग्रहाणामुच्च स्थानानि स्युः । यथा सूर्यस्य मेषे दशांशे, चन्द्रस्य वृषे त्रयंशे, भौमस्य मकरे अष्टाविंशतिअंशे, बुधस्य कन्यायां पञ्चदश अंशे, गुरोः कर्कस्य पञ्चमेंऽशे, शुक्रस्य मीने सप्तविंशति अंशे, शनेः तुलायां विंशति अंशे, उच्चस्थानं कथितमस्ति ।। ३१ ।।

ज्योति — मेष के १० अंश मे सूर्य, वृष के ३ अंश मे चन्द्रमा, मकर के २८ अंश में मङ्गल, कन्या के १५ अंश मे बुध, कर्क के ५ अंश में गुरु, मीन के २७ अंश में शुक्र और तुला के २० अंश में शनि उच्च का होता है ।। ३१ ।।

।। अथोच्चनीचचक्रम् ।।

ग्रहा	सू०	च०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
उच्चराशि	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि	तुला	बृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

अथ ग्रहाणांनीचस्थामुच्चबलानयनं नवांशस्वामिनश्चाह—

तत्सप्तमं नीचमनेन हीनो ग्रहोऽधिकश्चेद्रसभाद्विशोध्यः ।
चक्रात्तदंशांकलवो बलं स्यात् क्रियेणतौलिन्दुभतो नवांशाः ।। ३२ ।।

कुन्तला — तत्सप्तमं = उच्चस्थानात्सप्तमं; ग्रहाणां नीच स्थानानि भवन्ति। अनेन = नीचेनहीनः = उनितः, ग्रहः, यदि रसभात् = षड्राशितः, अधिकः स्यात् तदा, चक्रात् = द्वांदशराशिभ्यः ; विशोध्यः = वर्जितः । तदंशांकलवः = तदन्तरस्य येऽशास्तेषाभंकलवो नवमांशः कार्यः, तदुच्चबलं च स्यादिति । मेषादि द्वादश राशीनां त्रिरावृत्या क्रियेणतौलिन्दुभतः = मेषमकरतुलकर्केतिराशिचतुष्टययस्य क्रमतो नवाशाः भवन्ति ।। ३२ ।।

ज्योति — अपने – अपने उच्च से सात राश्यंश में ग्रहों के नीच होते हैं । जैसे सूर्य का उच्च मेष के १० अंश में है उसमें ६ राशि जोड़ने से तुला के १० अंश में नीच होता है । ऐसे सभी ग्रहों का समझना चाहिए । घटाने पर जो अंशादि हो उसमें ९ का भाग देने से ग्रह का उच्च बल प्राप्त होता है ।

मेषादि राशियों के क्रम से मेष, मकर तुला कर्क इन राशियों के तीन आवृत्ति से नवांशा होती है । जैसे मेष का नवांशा मेष से, वृष का नवांशा मकर से, मिथुन का नवांशा तुला से, कर्क का कर्क ही से फिर सिंह का मेष से कन्या का मकर से, तुला का तुला से, वृश्चिक का नवांशा कर्क से, धनु का नवांशा मेष से, मकर का नवांशा मकर से, कुम्भ का नवांशा तुला से, मीन का कर्क से होता है ॥ ३२ ॥

निम्नलिखित चक्र से और स्पष्ट हो जायेगा ।

राशियाँ	मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०
नवांशा	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४

उच्च बलानयन — जिस ग्रह का उच्च बल बनाना हो उसके नीच को उस ग्रह के राश्यंश में घटाना, शेष यदि ६ राशि से अधिक हो तो १२ में घटाना चाहिए । घटाने पर जो आवे उसमें ९ का भाग देने से उच्च बल निकल आता है ।

उदाहरण — वर्ष प्रवेशकालिक सूर्य ०।१०।५६।१९ इसको ६।१० (सूर्य का नीच) में घटाया —

```
      ६।१०
  ०।१०।५६।१९
  ५।२९। ३।४१
```

इसमें ९ का भाग दिया

```
९ ) ५।२९। ३।४१( ०
     ३०
    १५०
     २९
९ ) १७९। ३।४१( १९
      ९
     ८९
     ८१
      ८
      ६०
     ४८०
      +३
९ ) ४८३ ( ५३
     ४५
     ३३
     २७
```

६
६०
३६०
+ ४१
९) ४०१(४४
३६
४१
३६
५

= ०।१९।५३।४४ सूर्य का उच्च बल हुआ ।

अथ नवांशबोधकचक्र—

खण्डानि	मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी०	राशयः
३ । २०	में०	म०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	क०	प्र० नवांशः
६ । ४०	बृ०	कु०	वृ०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	द्वि नवांशः
१० । ००	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	क०	तृ० नवांशः
१३ । २०	क०	मे०	म०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	च० नवांशः
१६ । ४०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	वृ०	कु०	वृ०	पं० नवांशः
२० । ००	क०	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	ष० नवांशः
२३ । २०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	क०	मे०	म०	तु०	क०	मे०	म०	स० नवांशः
२६ । ४०	वृ०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	वृ०	कुं०	वृ०	सिं०	वृ०	कु०	अ० नवांशः
३० । ००	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	ध०	क०	मि०	मी०	न० नवांशः

अथ षड्भिःश्लोकैर्मेषादिद्वादशराशिषु हद्देशानाह—

मेषेऽङ्गतर्काष्टशरेषुभागा जीवास्फुजिज्ज्ञारशनैश्चराणाम् ।
वृषेऽषृषष्णागशराऽनलांशाः शुक्रज्ञयोजीवार्किकुजेशहद्दाः ॥ ३३ ॥
युग्मे षडङ्केषुनगाङ्गभागाः सौम्यास्फुजिज्जीवकुजार्किहद्दाः ।
कर्केऽद्रितर्काङ्गनगाब्धिभागाः कुजास्फुजिज्ज्ञेज्यशनैश्चराणाम् ॥ ३४ ॥
सिंहेऽङ्गभूताद्रिरसाङ्गभागा देवेज्यशुक्रार्किबुधारद्दाः ।
स्त्रियां नगाशाब्धिनगाक्षिभागाः सौम्योशनोजीवकुजार्किनाथाः ॥ ३५ ॥
तुले रसाष्टाद्रिनगाक्षिभागाः कोणज्ञजीवास्फुजिदारनाथः ।
कोटे नागाब्ध्यष्टशराङ्गभागा भौमास्फुजिज्ज्ञेज्यशनैश्चराणाम् ॥ ३६ ॥

चापे रवीष्वम्बुधिपञ्चवेदा जीवास्फुजिज्ञारशनैश्चराणाम् ।
मृगे नगाद्रयष्टयुगश्रुतीनां सौम्येज्यशुक्राकिंकुजेशहद्दाः ।। ३७ ।।
कुम्भे नगाङ्गाद्रिशरेषुभागाः शुक्रज्ञजीवारशनैश्चराणाम् ।
मीनेऽर्कवेदानलनन्दपक्षाः सितेज्यसौम्यारशनैश्चराणाम् ।। ३८ ।।

कुन्तला — आदितः षडंशावधिजीवः ततः सप्तमंशाद् द्वादशभागावधि शुक्रः, त्रयोदश अंशाद् विंशत्यंश पर्यन्तं बुधः, एकविंशाशात् पञ्चविंशवित्यंशापर्यन्तं—कुजः, षड्विंशांशात्त्रिंशदंशावधि शनिर्हद्देशो भवति । एवं सर्वोषु राशिषु हद्देशा ज्ञेया ।। ३३—३८ ।।

अत्र चक्राबलोकनेन झटिति हद्देशज्ञानं भवति ।

ज्योति — मेषराशि के प्रारम्भिक ६ अंशों तक बृहस्पति की हद्दा होती है । ७ — से १२ तक शुक्र, १३ — से २० तक बुध, २१ — से २५ तक मङ्गल तथा २५ से ३० तक शनि हद्देश होता है । इसी प्रकार सभी राशियों का हद्देश समझना चाहिए ।। ३३—३८ ।।

हद्देशचक्र—

राशयः	मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी०
अंशाः ग्रहाः	६ बृ०	८ शु०	६ बु०	७ मं०	६ बृ०	७ बु०	६ श०	७ मं०	१२ वृ०	७ बु०	७ शु०	१२ शु०
अंशाः ग्रहाः	६ शु०	६ बु०	६ शु०	६ शु०	९ शु०	१० शु०	८ बु०	४ शु०	५ शु०	७ बृ०	६ बृ०	४ बृ०
अंशाः ग्रहाः	८ बु०	८ बृ०	५ बृ०	६ बु०	७ श०	४ बृ०	७ बृ०	८ बु०	४ बु०	८ श०	७ बु०	३ बु०
अंशाः ग्रहाः	५ मं०	५ श०	७ मं०	७ मं०	६ बु०	७ मं०	७ श०	५ बृ०	५ मं०	४ श०	५ मं०	९ मं०
अंशाः ग्रहाः	५ श०	३ मं०	६ श०	४ श०	६ मं०	२ श०	२ मं०	६ श०	४ श०	४ मं०	५ मं०	२ श०

अथ पञ्चवर्गीयबलसाधनार्थं गृहोच्चादिबलविभागानाह —

त्रिंशत्स्वमे विंशतिरात्मतुङ्गे हद्देऽक्षचन्द्रा दशकं द्दकाणे ।
मुसल्लहेपञ्चलवाः प्रदिष्टाः विंशोपका वेदलवैः प्रकल्प्या ।। ३९ ।।

कुन्तला — स्वभे = स्वगृहे, त्रिंशत् = त्रिंशत्संख्यका अंशाबलम् । आत्मतुङ्गे = स्वच्चे स्थितस्य ग्रहस्य, विंशति = विंशत्यंशावलम् । हद्दे = स्वहद्दायां, अक्षचन्द्रा = पञ्चदश अंशा बलम् । द्दकाणे = स्वद्रेष्काणे, दशकं = दश अंशा बलम् । मुसल्लहे = स्वनवमांशे =

पञ्चलवाः = पञ्चमिता अंशाबलम् प्रदिष्टाः = कथिताः सन्ति । एतेषां वलानां, वेदलवैः = चतुर्थांशैः, विंशोपकाः = विंशत्यासन्नगता बलांकाः प्रकल्प्याः ।। ३९ ।।

उपपत्ति यथा — स्वगृहे = ३० अंशाः

स्वोच्चे	२०
स्वहद्दायां	१५
स्वदृकाणे	१०
स्वनवमांशे	५
योग	८०

८० ÷ ४ = २० विंशोपकाः ।

ज्योति — अब पंचवर्गी बल बतलाते हुए कहते हैं—जो ग्रह अपनी राशि में हो तो उसका बल ३० लव होता है । अपने उच्च में विद्यमान ग्रह का २० लव, अपनी हद्दा में विद्यमान ग्रह का बल १५ लव, अपने द्रेष्काण में १० लव और अपने नवांश में विद्यमान ग्रह का बल ५ लव होता है । इन सब बलों के योग का चतुर्थांश विंशोपक बल कहलाता है ।। ३९ ।।

अथ ग्रहाणां स्वभवनादि भिन्नस्थलेषु बलकथनम्—

स्वस्वधिकारोक्तबलं सुहृद्भे पादोनमर्धं समभेऽरिभेऽङ्घ्रः ।
एवं समानीय बलं तदैक्ये वेदोद्धृते हीनबलः शरोनः ।। ४०।।

कुन्तला — सुहृद्भे = मित्रगृहे, मित्रहद्दे, मित्रद्दकाणे मित्रनवांशे च, स्वस्वाधिकारोक्तबलम् = स्वगृहस्वहद्दास्वद्दक्काणस्वनवमांशप्रोक्तबलम् । पादोनम् = स्वचतुर्थांशोनम् भवति । समभे = समग्रहगृहादौ स्वगृहादि प्रोक्तेबलमर्धं भवति । अरिभे = शत्रुगृहादौ, स्वग्रहादि कथितबलमानं, अङ्घ्रि = चतुर्थांश परिमितं भवति । एवं ग्रहाणां गृहादि बलं समानीय, तदैक्ये = तद्योगे, वेदोद्धृते = चतुर्भक्ते सति बलं भवति । अत्र शरोन : = पञ्चाल्पः हीनबलः स्यात् । अर्थात् १ तः ५ यावत् अल्पबली । ६ तः १० यावत् मध्यबली । ११ वतः १५ यावत् बली तथा च १६ तः २० यावत् पूर्णवलीः भवतीति बोध्यम् । उक्तंचारित्त—पञ्चल्पो हीनवीर्यः स्यादधिको मध्यउच्यते दशाधिको बली प्रोक्तः पञ्चवर्गीबलं त्विदम् ।। ४० ।।

ज्योति — अपने अधिकार में स्थित ग्रह पूर्णबल देता है । मित्र के अधिकार में स्थित वही ग्रह ३/४ बल देता है । सम ग्रह के अधिकार में स्थित ग्रह १/२ बल अर्थात् आधा देता है । शत्रु के अधिकार में स्थित ग्रह १/४ बल देता है ।। ४० ।।

विशेष — जैसे जातक ग्रन्थों में मित्र, सम, शत्रु का निर्णय लिखा गया है वैसे ताजिक ग्रन्थों में नहीं प्रयुक्त होता है । यहाँ पर जिस ग्रह में जो ग्रह मित्र दृष्टि से देखता है वह मित्र होता है । शत्रु दृष्टि से देखने वाला शत्रु तथा इन दोनों से भिन्न ग्रह सम होता है । वर्ष प्रवेश चक्र से स्थित ग्रह ३, ५, ९, ११ स्थान में स्थित ग्रह उस ग्रह को मित्र दृष्टि से देखता है । १, ४, ७, १० में स्थित ग्रह उस ग्रह को शत्रु दृष्टि से देखता है । यह निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है —

त्रिपञ्चनवमायेषु स्थितोमित्र ग्रहो भवेत् ।
केन्द्रेषु शत्रुर्विज्ञेय शेष स्थाने समो भवेत् ।।

मित्र, सम; शत्रु चक्र

मित्र स्थान	३	५	६	११
सम स्थान	२	६	८	१२
शत्रु स्थान	१	४	७	१०

ताजिकमतेन वर्तमानोदाहरणे अर्थात् वर्षप्रवेश कालिक स्पष्ट ग्रह एवं वर्षाङ्ग चक्र के अनुसार मित्र, सम, शत्रु चक्र —

ग्रहा	सूर्य	चन्द्र	कुज	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	च० मं०	शु० सू० मं०	सू० शु० च०	बृ० श०	बु०	च० मं०	बु०
सम	बु०	श० बु० बृ०	बृ० श०	सू० शु० च०	च० मं०	बु०	च० मं०
शत्रु	बृ० शु० स०	बृ०	बु०	मं०	श० सू० शु०	सू० बृ० श०	सू०शु० बृ०

इस प्रकार पञ्चवर्गी बलानयन के लिए गृहबल, उच्चबल, हद्दाबल, द्रेष्काणबल नवमांशबल, की आवश्यकता होती है । सबों की पृथक – पृथक चर्चा की जा चुकी है ।

पञ्चवर्गीचक्र

सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	ग्रह
२२ ३०	२२ ३०	७ ३०	२२ ३०	१५ ०	२२ ३०	३० ०	ग्रहबल ३०
१९ ५३	७ ११	४ ३१	१० ०	१८ ५६	१३ २८	११ ३६	उच्चबल २०
७ ३०	११ १५	७ ३०	११ १५	३ ४५	११ १५	११ १५	हद्दाबल १५
१० ०	७ ३०	२ ३०	२ ३०	५ ०	२ ३०	१० ०	द्रेष्काणबल १०
३ ४५	२ ३०	२ ३०	३ ४५	२ ३०	३ ४५	५ ०	नवमांशबल ५
६३ ३८	५० ५६	२४ ३१	४१ ०	३५ ११	५३ १८	६७ ५१	योग
१५ ५४	१८ ४४	६ ८	१० १५	११ १८	१३ १९	१६ ५८	विशोषकाः

द्वादशवर्गीयबलकथनम्—

क्षेत्रं होरात्र्यब्धिपञ्चाङ्ग सप्तवस्वंकाशेशार्कभागाः सुधीभिः ।
विज्ञातव्या लग्नसंस्थाः शुभानां वर्गाः श्रेष्ठाः पापवर्गास्त्वनिष्ठाः ।। ४१ ।।

कुन्तला — क्षेत्रं = गृहम् । होरा = राश्यर्द्धम् । त्र्यब्धिपञ्चाङ्गसप्तवस्वंकाशेषार्कभागाः = त्रिलवः, पञ्चलवः, षड्लवः, सप्तलवः, अष्टलवः, अंकलवः, दशलवः, एकादशलवः, द्वादशलवः, एते द्वादश वर्गाः । लग्नसंस्थाः = लग्नसमये विद्यमानग्रहाणां सुधीभिः विज्ञातव्याः । तेषु शुभानां = शुभग्रहाणां, वर्गाः = गृहादयः, शुभाः = शुभफलजनकाः, पापानां = पापग्रहाणां वर्गाः, अनिष्टाः = अशुभफलदाज्ञेयाः ।। ४१ ।।

ज्योति — गृह, होरा, तृतीयांश (द्रेष्काण), चतुर्थांश, पञ्चमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टमांश, नतमांश, दशमांश, एकादशांश, द्वादशांश लग्नादिकों में ये द्वादश वर्ग समझना चाहिए इसमें शुभ ग्रहों का वर्ग शुभ फलदायक और पाप ग्रहों का वर्ण अनिष्ट फलदायक होते हैं ।। ४१ ।।

ओजे रवीन्द्वोः सम इन्दुरव्योर्होरे गृहार्द्धप्रमिते विचिन्त्यो ।
द्रेष्काणपाः स्वेषुनवर्क्षनाथास्तुर्यांशपाः स्वर्क्षजकेन्द्रनाथाः ।। ४२ ।।

कुन्तला — ओजे = विषमराशौ, रवीन्द्रोः = सूर्यचन्द्रयोः, गृहार्द्धप्रमिते= राश्यर्धं अर्थात् पञ्चदशभागाः संमिते, होरे, विचिन्त्ये = ज्ञेये मेष मिथुन सिंह तुला धनुः कुम्भाः विषमराशयः, एतेषु एक अंशतः पञ्चदशअंश प्रर्यन्तं, सूर्यस्य, तथा च शोडश अंश समारभ्यत्रिंशदंश प्रर्यन्तं चन्द्रस्य होरेति विज्ञेयम् । समे = समराशौ, वृषकर्ककन्या वृश्चिक मकर मीनाः समराशयस्तेषु; इन्दुरव्योः = सूर्यचन्द्रसूर्ययोः, होरे भवतः । स्वेषुनवर्क्षनाथाः = प्रथमपञ्चनवराशिपतयः, द्रेष्काणपाः = द्रेष्काणस्वामिनः भवन्ति । अत्र एकस्मिन् राशौ त्रिंशदंशात्मकस्य त्रिलवो दशभाग रूपो द्रेष्काणः अर्थात् १ अंशतः १० अंश पर्यन्तं प्रथमो द्रेष्काणः । ११ अंशतः २० अंशपर्यन्त द्वितीयो द्रेष्काणः । २१ अंशतः ३० अंश पर्यन्तं तृतीयो द्रेष्काणः । तत्र यस्मिन् राशौ विचारः इष्टः तस्य पतिरेव प्रथम द्रेष्काणेशः, तद्रांशेः पञ्चमराशीशो द्वितीयद्रेष्काणाधिपतिः । जातकग्रन्थनियमवदत्रापि एष नियमो वर्तते । एतद् भिन्न त्रिराशीष विचारः स एव वर्षेश निर्णये उपयुज्यते । अथ स्वर्क्षजिकेन्द्र नाथाः = स्वराशितः प्रथम चतुर्थ सप्तम दशमाधिपतयोः ग्रहाः चतुर्थांशेशा भवन्ति ।। ४२ ।।

अथ होरेश चक्रम्

मेष		वृष		मिथुन		कर्क		सिंह		कन्या	
प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा
सू०	च०	च०	सू०	सू०	च०	च०	सू०	सू०	च०	च०	सू०

तुला		वृश्चिक		धनु		मकर		कुम्भ		मीन	
प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा	प्रथम होरा	द्वितीय होरा
सू०	च०	च०	सू०	सू०	च०	च०	सू०	सू०	च०	च०	सू०

द्रेष्काणेशचक्रम्

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	बृ०	ध०	म०	कु०	मी०	अंश	राशय:
मं०	शु०	बु०	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	१०	प्रथमद्रेष्काणेशा:
सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बृ०	मं०	२०	द्वितीयद्रेष्काणेशा:
बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बु०	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	३०	तृतीयद्रेष्काणेशा:

चतुर्थांशेशा

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	बृ०	ध०	म०	कु०	मी०	खण्डा	राशय:
मं०	शु०	बु०	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	७ । ३०	प्रथमचतुर्थांशेशा:
चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बु०	१५ । ००	द्वितीयचतुर्थांशेशा:
शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बु०	चं०	शू०	बु०	२२ । ३०	तृतीयचतुर्थांशेशा:
शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बु०	चं०	शू०	बु०	३० । ००	चतुर्थचतुर्थांशेशा:

ज्योति — दो होराएँ होती है । (१) सूर्य की होरा (२) चन्द्र की होरा । विषराभियों मे पहली सूर्य की होरा, दूसरी चन्द्र की । समराशियों मे पहली चन्द्रमा की दूसरी सूर्य की होरा होती है । राशि का आधा अर्थात् १५ अंश की होरा होती है ।

राशि के तृतीयभाग को द्रेष्काण कहते हैं । जैसे प्रत्येक राशि में ३० अंश उसका तृतीयांश दश–दश हुए । ये द्रेष्काण कहलाते है ।

उसमें, १ से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण ।
११ से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण ।
२१ से ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण ।

जिस राशि में विचार करते हैं उसी का स्वामी ग्रह प्रथम द्रेष्काणेश तथा उस राशि से पञ्चम राशि के स्वामी द्वितीय द्रेष्काण का स्वामी, तथा उस राशि से नवमराशि के स्वामी तृतीय द्रेष्काण होता है ।

उदाहरण — जैसे मेष का प्रथम द्रेष्काणेश मङ्गल, द्वितीय द्रेष्काणेश सूर्य, तृतीय द्रेष्काणेश धनु राशि का स्वामी गुरु होते हैं । वृषराशि में प्रथम द्रेष्काणेश शुक्र, द्वितीय द्रेष्काणेश बुध, तृतीय द्रेष्काणेश शनि होते हैं । इसी प्रकार अन्य राशियों का उस राशि से प्रथम, पाँचवा और नवाँ क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय द्रेष्काणेश होते हैं ।

अथ पञ्चमांशेशद्वादशांशेशानाह

ओजर्क्षेपञ्चमांशेशा कुजार्कोज्यज्ञभार्गवाः ।
समभे व्यत्ययाज्ज्ञेया द्वादशांशाः स्वभात्स्मृता ॥ ४३ ॥

कुन्तला — ओजर्क्षे = विषमराशौ, कुजार्कोज्यज्ञभार्गवाः = मङ्गलशनिगुरुबुधशुक्राः,; । पञ्चमांशेशाः, भवन्ति । समभे = समराशौ, व्यत्ययात् = विलोमात्, । अर्थात् शुक्र बुध गुरु शनि मङ्गलाश्च पञ्चमेशा भवन्ति । प्रत्येक पञ्चमांशमानंषडंशाः । स्वभात् = स्वराशेः सकाशात् द्वादशांशेशाः = सार्द्धद्वयांशमितविभागेशाः, स्मृता = कथिता इत्यर्थः । यथा मेषराशौ मेषात्, वृषराशौ वृषात्, मिथुने मिथुनादेव क्रमेण तत्र खण्डा प्रमाणानि ।

ज्योति — विषमराशियों में १, ३, ५, ७, ९, ११ में क्रमशः पञ्चमाशेश ३०/५ = ६ अंश ।

(१) ० — — — — ६ मङ्गल
(२) ७ — — — — १२ शनि
(३) १३ — — — —१८ बृहस्पति
(४) १९ — — — —२४ बुध
(५) २५ — — — —३० शुक्र

तथा समराशियों में (२, ४, ६, ८, १०, १२) में उत्क्रम से —

(१) शुक्र (२) बुध (३) बृहस्पति (४) शनि (५) मङ्गल होते हैं । यहाँ सूर्य शनि के घर और गुरु के पञ्चमांश में है ।

द्वादशांश—प्रत्येक राशि के १२ वाँ विभाग का नाम द्वादशांश होता है । ३० ÷ १२ = २। ३० का एक द्वादशांश होता है । इस प्रकार —

(१) २ । ३०
(२) ५। ००
(३) ७। ३०
(४) १०। ००
(५) १२। ३०
(६) १५। ००
(७) १७। ३०
(८) २०। ००
(९) २२। ३०
(१०) २५। ००
(११) २७। ३०
(१२) ३०। ००

जिस राशि का द्वादशांश ज्ञात करना है उस राशि से ही १, २, ३, १२ तक गिनती में जो राशि हो उसी का स्वामी उस द्वादशांश का पति होता है ।

जैसे स्पष्ट शनि ४।१७।१।५२ में १७।१ सातवाँ द्वादशांश है । शनि सिंह में, सिंह राशि का राशीश्वर सूर्य द्वादशांश से सातवाँ कुंभ का स्वामी शनि ही द्वादशांश पति होता है ।

।। द्वादशांशचक्र ।।

मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	अं० कं०
मं०	शु०	बु०	च०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	२।३०
शु०	बु०	च०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	५। ०
बु०	च०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	७।३०
च०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	१०। ०
र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	१२।३०
बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	१५। ०
शु०	मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	१७।३०
मं०	गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	शु०	२०। ०
गु०	श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	शु०	मं०	२२।३०
श०	श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	२५। ०
श०	गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	२७।३०
गु०	मं०	शु०	बु०	चं०	र०	बु०	शु०	मं०	गु०	श०	श०	३०। ०

अथ एकादशांशेशानाह

लवीकृतो व्योमचरोऽङ्गशैलवस्वङ्कदिग्रुद्रगुणः खरामैः ।
भक्तो गतास्तर्कनगाष्टनन्ददिग्रुद्रभागाः कुयुताः क्रियात्स्युः ।। ४४।।

कुन्तला — व्योमचरः = राश्यादिकोग्रहः, लवीकृतः = अंशीकृतः, राशिस्थानीयांक त्रिंशता संगुण्य अंशस्थानीयङ्कैः संयोज्य तदधः कलादिकोऽविकृत एव स्थापनीयः । एवं ग्रहो लवीकृतो भवति । तादृशोग्रहः वस्वंकदिग्रुद्रगुणः = अष्टनवदशैकादश गुणितः । खराभैः = त्रिंशद्भिर्विभक्तः । तदागताः = अमीतः, तर्कनगाष्टनन्ददिग्रुद्रभागाः = षष्ठसप्तमाष्टमनवमदशमैकादशभागाः भवन्ति । ते कुयुता = एंकयुता, तदा क्रियात् = मेषात्, ते भागाः स्युरिति ।। ४४ ।।

ज्योति — राशि, अंश कला विकला इन चार अवयवों में स्पष्ट ग्रह दिए रहते हैं । इनके राशि को ३० से गुणा कर अंश जोड़ना चाहिए । अब उस अंशादि ग्रह को सात जगह अलग–अलग ६, ७, ८, ९, १०, ११ इन अंको से गुणा करना और ३० से भाग

देने पर जो लब्धि होगी वह गत षष्ठांश, और गत सप्तमांशादि होंगे । उसमें १ जोड़ने से मेष से वर्तमान षष्ठांश सप्तमांश, अष्टमांश आदि होंगे ॥ ४४ ॥

जैसे स्पष्ट सूर्य ५।१६।५५।४० के अंश —

१७६।५५।४० × ६, ७, ८, ९, १०, ११
३०

१७६।५५ ।४०
६
१०५६।३३०।२४०
५। ४।२४०
१०६१।३३४। ×
३००
३४

३०) १०६१।३४।० (३५
९०
१६१
१५०
११
× ६०
६६०
३४
६९४ (१३
६०
९४
९०
४

३५।०१ = ३६ ÷ १२ =

१२) ३६ (३
३६
००

शेष ० । अतः मेष से शून्य मीन जिसका स्वामी गुरु षष्ठेश हुआ ।

इसी प्रकार १७६।५५।४०।७
३०

१७६।५५ ।४०
७
१२३२।३८५।२८०
६। ४।२४०
१२३८।३८९। ४०
३६०
२९

३०) १२३८।२९।४० (४१
१२०
३८
३०
८

४१ + १ = ४२ ÷ १२ = शेष ६

अर्थात् मेष से छठा कन्या का सप्तमांश हुआ । इसी प्रकार नवमांश भी —

१७६। ५५। ४० × ९

३०

= १७६। ५५। ४०

९

१५८४। ४९५। ३९०
८। ६। ३६०

१५९२। ५०१ । ×

४८०

२१

३०) १५९२। ८१। ० (५३
१५०

९२
९०
---
२ शेष

यहाँ शेष भागफल ५३ ÷ १२

१२) ५३ (४
४८
---
५ ५ शेष होने से कन्या का नवमांश हुआ ।

इसी प्रकार सभी ग्रहों का षष्ठांशादि एकादशांश प्रभृति ग्रहों का बल साधन किया जाता है ।

अथ द्वादशवर्ग्युपसंहारं तत्फलं चाह—

एवं द्वादशवर्गी स्याद् ग्रहाणां बलसिद्धये ।
स्वोच्चमित्रशुभा श्रेष्ठा नीचारिक्रूरतोऽशुभा ॥ ४५ ॥

कुन्तला — एवं = अनेन प्रकारेण, बलसद्धिये = बलज्ञानार्थं (न्यूनं बलं, अधिकं बलं वा), द्वादशवर्गी स्यात् । द्वादशवर्गीषु स्वोच्च मित्र शुभवर्गा यदि स्युस्तदा, श्रेष्ठाः = शुभाः बोध्यमिति । नीचारिक्रूरतः = यदि ग्रहानीचगृहे, शुभगृहे, पापगृहे च स्युस्तदा अशुभाः भवन्ति ॥ ४५ ॥

ज्योति — इस प्रकार ग्रहों के बलसाधन के लिए द्वादशवर्गी बल कहा गया है। उन वर्गों में यदि उच्च, मित्रगृह में तथा शुभक्षेत्र पड़े तो शुभ और नीच, शत्रु पाप ग्रहों के वर्ग में पड़े तो अशुभ कहना चाहिए ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहफलनिर्णयकथनम्—

एवं ग्रहाणां शुभपापवर्गपंक्तिद्वयं वीक्ष्य शुभाधिकत्वे ।
दशाफलं भावफलं च वाच्यं शुभं त्वनिष्टं ह्यशुभाधिकत्वे ॥ ४६ ॥

कुन्तला — एवम् = अनेन प्रकारेण, ग्रहाणां = सूर्यादीनां, शुभपापवर्गपंक्तिद्वयं वीक्ष्य शुभाधिकत्वे = शुभग्रहवर्गाधिकत्वे, दशाफलं भावफल वा शुभं बोध्यम् । हि = निश्चयेन, अशुभाधिकत्वे = अशुभग्रहवर्गाधिकत्वे ततफलं अशुभं वाच्यम् ।। ४६ ।।

ज्योति — इस प्रकार द्वादशवर्गी चक्र में लग्न सहित ८ शुभ और अशुभ ग्रहों का ही वर्ग आयेगा । शुभग्रह के वर्ग अधिक हैं तो शुभ तथा यदि पापग्रहों के वर्ग अधिक हो तो अनिष्ट कहना चाहिए ।। ४६ ।।

अथ क्षेत्रभेदने ग्रहस्य शुभपापत्वकथनम्—

क्रूरोऽपि सौम्याधिकवर्गशाली शुभोऽतिसौम्यः शुभखेचरश्चेत् ।
सौम्योऽपि पापाधिकवर्गयोगान्नेष्टोऽतिनिन्द्यः खलु पापखेटः ।। ४७।।

कुन्तला — क्रूरः = पापग्रहः (अर्थात् सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु, केतु ग्रहाः), अपि, चेत्, सौम्याधिक वर्गशाली = शुभग्रह विशेषवर्गयुक्तः, भवेत् तदा, शुभः शुभः = शुभफलदायकः स्यात् । यदि शुभ खेचरः = शुभखेटः, सौम्याधिकवर्गशाली भवेन्तदाऽतिसौम्यः = अतीवशुभः अर्थात् शुभफलदायकः भवतीति। सौम्य = शुभग्रहः, अपि, पापाधिकवर्गयोगात्, नेष्टः = अनिष्टफलदायकः स्यात् तथा च पापखेटः = पापग्रहः, पापाधिक वर्गयोगात् = पापग्रह विशेषवर्ग संयोगात्, अतिनिन्द्यः = अत्यन्ताशुभः स्यादित्यर्थः ।। ४७ ।।

ज्योति — जिस ग्रह की द्वादशवर्गी की जाय, वह पापग्रह, भी हो किन्तु द्वादशवर्गी मे शुभ ग्रहों से अधिक वर्गो से युत हो तो वह शुभ फलदायक हो जाता है । और शुभ ग्रह भी हो किन्तु द्वादश वर्गी में अशुभग्रह के अधिक वर्गों से युत हो तो वह अशुभ फलदायक हो जाता है । वह पाप ग्रहों के वर्ग मे पड़ जाय तो और भी अधिक खराब फल देने वाला हो जाता है ।। ४७ ।।

द्वादशभावानां शुभाशुभफलकथनम्—

राशीशमित्रोच्चरिपुक्रमेण चिन्त्यं तनोरप्यनयैव रीत्या ।
भावेषु सर्वेष्वपि वर्गचक्रं विलोक्य तत्तत्फलमूहनीयम् ।। ४८।।

कुन्तला — तनोः = जन्मलग्नस्य, प्रश्न लग्नस्य, वर्षलग्नस्य वा, अपि, अनयारित्या, राशीयमित्रोच्चरिपुक्रमेण = लग्नेश मित्र, उच्च, शत्रु, शुभवर्ग, पापवर्ग शलित्वेन शुभाशुभफलं कथनीयमिति । यदि क्रूरोऽपि सौम्याधिक वर्गशाली ग्रहस्य, शुभाशुभत्वं निश्चितम् । सर्वेषुभावेषुवर्ग चक्रम् = द्वादश वर्गचक्रं, शुभाशुभवर्गरूपं विलोक्य, तद्भावस्य शुभाशुभफलं अनेनैव रीत्या विचारणीयम् ।। ४८ ।।

ज्योति — यदि लग्न में शुभग्रहों का वर्ग अधिक हो अथवा लग्न का अधिपति शुभग्रह होकर किसी शुभग्रह या अपने मित्र तथा अपने उच्च राशि में बैठा हो तो शुभ

फल प्रदान करता है । यदि लग्न का स्वामी सम गृह में पड़ा हो तो शुभाशुभ कोई भी फल नही होता । इसी प्रकार यदि लग्न का स्वामी पापग्रह होकर शत्रु या मित्र के घर में पड़ जाय तो वह अशुभ फल प्रदान करता हैं ॥ ४८ ॥

अथ तन्वादिद्वादशभावानां द्वादशवर्गीयचक्रम् ।

भावनामानि	त०	ध०	स०	सु०	सु०	रि०	जा०	मृ०	ध०	क०	आ०	व्य०
राशीशाः	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०	शु०	बु०
होरेशाः	सू०	चं०	सू०	चं०	सू०	चं०	सू०	चं०	सू०	चं०	सू०	चं०
द्रेष्काणेशाः	बृ०	मं०	शु०	बु०	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०
चतुर्थांशेशाः	मं०	शु०	बु०	चं०	सू०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	श०	बृ०
पञ्चमांशेशाः	मं०	शु०	मं०	शु०	मं०	शु०	मं०	शु०	मं०	शु०	मं०	शु०
षष्ठांशेशाः	बृ०	बु०	बृ०	सू०	बृ०	बु०	बृ०	बु०	बृ०	सू०	बृ०	बु०
सप्तमांशेशाः	चं०	श०	सू०	बृ०	शु०	बु०	श०	सू०	श०	बु०	मं०	बृ०
अष्टमांशेशाः	मं०	चं०	श०	शु०	बु०	बृ०	मं०	चं०	सू०	शु०	शु०	बृ०
नवमांशेशाः	बृ०	मं०	सू०	शु०	श०	मं०	बु०	शु०	श०	मं०	सू०	शु०
दशमांशेशाः	बु०	मं०	श०	श०	शु०	सू०	चं०	मं०	श०	बृ०	शु०	सू०
एकादशांशेशाः	मं०	बु०	सू०	चं०	बु०	शु०	शु०	बृ०	श०	श०	बृ०	मं०
द्वादशांशेशाः	शु०	बु०	चं०	चं०	बु०	शु०	मं०	बृ०	श०	बृ०	बृ०	गं०

अथ लग्नात् किं विचार्यमित्याह—

शरीरवर्णचिह्नायुर्वयोमानं सुखासुखम् ।
जातिः शीलं च मतिमाँल्लग्नात्सर्वं विचिन्तयेत् ॥ ४९॥

कुन्तला — लग्नात् = जन्मलग्नात्, वर्षलग्नात् वा । शरीर वर्णचिन्हायुर्वयोमानं सुखासुखं = सुखदुखादिः । जातिः = ब्राह्मण क्षत्रियवैष्यशूद्रादिः । शीलं = स्वभावः । मतिमान् = बुद्धिमान् गणकं, एतत्सर्वं विचिन्तयेत = विचार्यमिति ॥ ४९ ॥

ज्योति — प्रथम भाव से शरीर, वर्ण, चिन्ह, आयु, सुख—दुःख जाति स्वभाव इत्यादि का विचार बुद्धिमान् ज्योति षी को करना चाहिए ॥ ४९ ॥

धनभावे सहजभावे च किं किं विचार्थमित्याह —

सुवर्णरूप्यरत्नानि धातुर्द्रव्यं सखा धने ।
विक्रमे भ्रातृभृत्याध्वपित्र्यस्खलनसाहसम् ॥ ५०॥

कुन्तला — धने = द्वितीयभावे, सुवर्णरूप्य रत्नानि, धातुः = गौरिकादिः, द्रव्यम् = कांस्यादि द्रव्यम् । सखा = मित्रम् । एतान् विचारयेत् । विक्रमे = सहजभवने भ्राता, भृत्यः, सेवक, अध्वा = यान, पित्र्यं = पितुसम्बन्धिः, स्खलनं = भ्रंशः, साहसः = पराक्रमः, एतान्, तृतीयभावतो विचारयेत् ॥ ५० ॥

ज्योति — धन भाव से सोना, चाँदी, लोहा, सीसा, काँसा आदि धातु और मैत्री का विचार करना चाहिए । इसी प्रकार भाई –बहन, नौकर, मार्ग, पिता से सम्बन्ध रखने वाले कार्य, हानि और साहस इन सबका विचार सहज अर्थात् तृतीय भाव से करना चाहिए ॥ ५० ॥

चतुर्थपंचमभावविचारकथनम्—

पितृवित्तं निधिः क्षेत्रं गृहं भूमिश्च तुर्यतः ।
पुत्रे मन्त्रधनोपायगर्भविद्यात्मजेक्षणम् ॥ ५१॥

कुन्तला — तुर्यतः = चतुर्थभावात्, पितृवित्तं, निधिःक्षेत्रं, गृहं = भवनम्, भूमिश्च विचार्यमिति एवमेव पुत्रे = पञ्चमभावतः, मन्त्रधनोपायः, गर्भः, विद्या, आत्मजः = पुत्रः, एतेषामीक्षणं = अवलोकनं कार्यम् ॥ ५१ ॥

ज्योति — चतुर्थभाव से पिता का धन, गड़ा हुआ धन, खेतीबारी, घर और भूमि इन बातों का विचार चतुर्थभाव से करना चाहिए । मंत्रणा, धनोपार्जन का उपाय, गर्भ, विद्या और पुत्र का विचार पंचम भाव से करना चाहिए ॥ ५१ ॥

षष्ठसप्तमभावविचारकथनम्—

रिपो· मातुलमान्द्यारिचतुष्पाद्बन्धभीर्व्रणान् ।
द्यूने कलत्रवाणिज्यनष्टविस्मृतिसंकथा ।
हृताध्वकलिमार्गादि चिन्त्यं द्यूने ग्रहोऽशुभः ॥ ५२॥

कुन्तला — रिपोः = शत्रुभावात्, । मातुलो = भातृभ्राता, मान्द्यं = रोगः, अरिः = शत्रुः, चतुष्पात् = गोमहिष्यतुरंगादि, बन्धः = पराश्रयः, भीर्मयम् । व्रणः = क्षतादि विचारयेदिति । एवमेवे द्युने = सप्तमभावे, कलत्रम् = स्त्री, वाणिज्य = व्यापारः नष्टं = नष्टवस्तु, विस्मृति = विस्मरणम् संकथा = कथनम्, विचारणीयमिति भावः।

हृतं = चोरित द्रव्यं, तस्य अध्वा = मार्गविचारः कुतोऽपहृत्य धनं चौरेणरक्षितमेवं, कलि = कलहविचारः, मार्गादि = यात्रापरदेशागमनादि विचारः, द्युने = सप्तमे भवने स्थितो ग्रहोऽशुभोभवति । अर्थात् लग्नात् सप्तमस्थानवर्ती ग्रहोऽनिष्टफलदाता भवतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

ज्योति — रिपुभाव (छठेभाव) से भामा, रोग शत्रु, गाय, भैंस, घोड़े, हाथी चार पैर वाले जानवरों का विचार और पराश्रय, भय, घाव (फोड़ा–फुन्सी) आदि का विचार

करना चाहिए । इसी प्रकार सप्तम भाव से स्त्री, व्यापार खोई हुई चीजों का, भूले भटके की बातचीत और चोरित द्रव्य का रास्ता, झगड़ा–फसाद और यात्रा आदि का विचार करना चाहिए । सप्तम भाव में बैठा हुआ शुभ ग्रह या पाप ग्रह कोई भी हो तो वह अशुभ फल ही देता है ॥ ५२ ॥

अथाष्टमभवनविचारकथनम्—

मृत्यौ चिरन्तनं द्रव्यं मृतवित्तं रणो रिपुः ।
दुर्गस्थानं मतिर्नष्टं परीवारो मनोव्यथा ॥ ५३॥

कुन्तला — मृत्यौ = अष्टमभावे; चिरन्तनं द्रव्यं = प्राचीनधनम् । मृतक्तिं = मृतस्य कस्यचिद्ज्ञातधनं, रणः = युद्धः, रिपुः, शत्रुः, दुर्गस्थानम् = दुर्गप्रदेशः, भृति = मरणविचारः नष्टं = नष्टधनं, परिवार : = परिजनः मनोव्यथा विचार्यमिति ॥ ५३ ॥

ज्योति — प्राचीन द्रव्य, मरे हुए प्राणी का धन, संग्राम, शत्रु, दुर्गस्थान, मरण, नष्ट परिवार और मानसिक व्यथा ये सभी अष्टम भाव से विचार करना चाहिए ॥ ५३ ॥

अथ धर्मकर्मभावविचारकथनम्—

धर्मे रतिस्तथा पन्था धर्मोपायं विचिन्तयेत् ।
व्योम्नि मुद्रां परं पुण्यं राज्यवृद्धिं च पैतृकम् ॥ ५४॥

कुन्तला — धर्मे = नवमस्थाने, रति = स्त्रीभिः क्रीडा, पन्था = मार्ग विचारः, धर्मोपायः = धर्मसाधनयुक्तिः, एतान् विचारणीयम् । व्योम्नि = दशमभावे तु, मुद्रां = राजमुद्रां, परं = परमं, पुण्यं = तीर्थयज्ञमहादानादिजनितं पुण्यम् । राज्यवृद्धिं = देशस्योन्नतिं, पैतृकं = पितासम्बन्धि अर्थादिकं च विचारयेत् ॥ ५४ ॥

ज्योति — नवमभाव से स्त्रीसंग, रास्ता और धर्मविचार किया जाता है । दशमभाव सें राजमुद्रा, अत्यन्त पुण्य अर्थात् तीर्थ यात्रा, यज्ञ, महादान आदि, राज्य की वृद्धि, पितासम्बन्धि कोष आदि का विचार किया जाता है ॥ ५४ ॥

एकादशभावविचारकथनम् —

आये सर्वार्थधान्यार्घकन्यामित्रचतुष्पदाः ।
राज्ञो वित्तं परीवारो लाभोपायांश्च भूरिशः ॥ ५५॥

कुन्तला — आये = लाभभावे, सर्वार्थः = सर्वद्रव्यप्रयोजनम् । धान्यार्घः = धान्यमौल्यम् । कन्या = पुत्री, मित्रम् = सखा, प्रियोजन इत्यर्थः । चतुष्पदः = गो गजाश्वादिः, राज्ञः = भूपस्य, वित्तं = धनम् । परिवारः = बन्धुबान्धव कुटुम्बादि विचारः । भूरिशः = भूयांशः, लाभोपायान् =-प्राप्त्युपायाः, एतान् विषयाः विचारणीयमिति ॥ ५५ ॥

ज्योति — ग्यारहवें भाव से धन से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें, अन्न का भाव, कन्या, मित्र चौपाये (हाथी घोड़े आदि पशु), राजा का द्रव्य, कुटुम्ब और अधिक लाभ होने का उपाय आदि का विचार करना चाहिए ।। ५५ ।।

अथ व्ययभावविचारकथनम्—

व्यये वैरिनिरोधातिव्ययादि परिचिन्तयेत् ।। ५६।।

कुन्तला — व्यये = द्वादशभावे, वैरिनिरोधः = शत्रुणामवरोधः, आर्ति = पीड़ा, व्ययः = धनव्ययः विचारयेत् ।। ५६ ।।

ज्योति — बारहवें भाव में शत्रु को रोकना, पीड़ा और सभी प्रकार के व्यय का विचार करना चाहिए ।। ५६ ।।

नोट — शुभ ग्रहों को व्यय भाव में रहने से शुभ कार्यो में व्यय तथा पापग्रहों के रहने से अपव्यय आदि का भी विचार करना चाहिए ।

अथ बलीग्रहलक्षणम्—

लग्नाम्बुद्यूनकर्माणि केन्द्रमुक्तं च कण्टकम् ।
चतुष्टयं चात्र खेटो बली लग्ने विशेषतः ।। ५७।।

कुन्तला — लग्नाम्बुद्युनकर्माणि = प्रथम चतुर्थसप्तम दशम स्थानानि, एतेषु स्थानानां केन्द्रं, कण्टकं चतुष्टयं च संज्ञाः भवति । अत्र केन्द्रस्थितोग्रहः बली भवतीति बोध्यम् । तत्रापि चतुर्थ सप्तम दंशम स्थानापेक्षया लग्नस्थो ग्रहो विशेषरूपेणबली भवतीति ।। ५७ ।।

ज्योति — लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम ये चार भाव केन्द्र, कण्टक और चतुष्टय के नाम से विख्यात हैं । इन स्थानो में गये हुए सभी ग्रह बलवान् होते हैं । उनमें भी जो लग्न मे स्थित हो वह सर्वाधिक बली होता है ।। ५७ ।।

लग्नकर्मास्ततुर्यायसुतांकस्थो बली ग्रहः ।
यथाऽऽदिमं विशेषेण सत्रिवित्तेषु चन्द्रमाः ।। ५८।।

कुन्तला — लग्नं = प्रथमस्थानं, कर्म = दशमम् । अस्तं = सप्तमम् । तुर्य = चर्तुथं । आयः = एकादशस्थानम् । अंकः = नवमस्थानम् । एतेषु स्थानेषु स्थितो विद्यमानो ग्रहो यथाऽऽदिमं = पूर्व पूर्व विशेषेण बलीभवति । अथ चन्द्रमाः सत्रिवित्तेषु = द्वितीय तृतीय सहितेषु पूर्वोक्त स्थानेषु विद्यमाने सति वलवान् भवति । अर्थात् द्वितीयापेक्षया तृतीयस्थो विशेषवली, तृतीयापेक्षया नवमस्थो बली, तदपेक्षया पञ्चमस्थो वलीभवतीति बोध्यम् ।। ५८ ।।

ज्योति — प्रथम दशम, सप्तम, चतुर्थ, एकादश पंचम, नवम स्थानों में पूर्व क्रम से बैठे हुए ग्रह बली होते हैं । जैसे नवम से अधिक पञ्चम, उससे भी अधिक एकादश में, उससे भी अधिक चौथे में विद्यमान रहने से इसी क्रम से पूर्व पूर्व स्थान से विशेष बली होते हैं । यह विचार सभी ग्रहों के लिए किया जाना चाहिए । चन्द्रमा द्वितीय, तृतीय स्थान सहित पूर्वोक्त स्थानों से रहने से बलवान् होता है । जैसे द्वितीय से तृतीय, तृतीय से नवम, उससे पंचम इसी क्रम से पहले स्थान में विशेष प्रबल होता है ॥ ५८ ॥

कुजः सत्रिषु पृच्छायां सूतौ चान्यत्र चिन्तयेत् ।
भावा नवेत्थं शस्ताः स्यू रिःफाष्टरिपवोऽशुभाः ।
दीप्तांशातिक्रमे शस्ता इमेऽपीति विचिन्तयेत् ॥ ५९॥

कुन्तला — कुजः = भौमः सत्रिषु = तृतीय सहितेषु पूर्वेक्त स्थानेषु बलिष्ठो भवति । अत्रापि भौमस्तृतीये बलिष्ठस्तदपेक्षया नवमस्थः, पञ्चमस्थः, एकादशस्थः चतुर्थस्थः सप्तमस्थः, दशमस्थः, लग्नस्थश्च क्रमेण बली भवति । एतत् प्रश्नकाले, जन्मकाले, वर्ष प्रवेशकाले च विचारणीयम् । इत्थं = अमुना प्रकारेण नवभावाः (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११) प्रशस्त फलप्रदायकाः भवन्ति ।

रिःफाष्टरिपवः = द्वादशषडष्ट संख्यकाः (१२, ६, ८) भावाः अशुभा भवन्ति। इमे = द्वादश षडष्टभावाः, अपि, दीप्तांशातिक्रमे = स्वस्वदीप्रांशाधिकान्तरे वर्तमानश्चेत्तदा शस्ता भवन्ति ॥ ५९ ॥

ज्योति — मङ्गल पूर्वोक्त सभी स्थानों तथा तृतीय भाव में बैठकर बली होता है । जन्मकाल मे वर्ष लग्नादि के अवसर पर ही इन ग्रहो की स्थिति पर विचार किया जाता है । सारांश यह है कि १२ भावों मे से नवभाव शुभफलदायक हैं और ६, ८, १२ भाव में यदि कोई ग्रह बैठे तो वह शुभफल नही देता । इन तीनों अशुभ भावो में भी जो ग्रह अपने दीप्त अंशों का अतिक्रमण करके बैठा हो तो वह शुभफल देता है । अशुभ फल तभी देगा जब ग्रह ६, ८, १२ भाव में दीप्त अंश के मध्य में पड़ गये हों ॥ ५९ ॥

अथ त्रैराशिकस्वामिन आह—

त्रिराशिपाः सूर्यसितार्किशुक्रा दिने निशीज्येन्दुबुधक्षमाजाः ।
मेषाच्चतुर्णां हरिभाद्विलोमं नित्यं परेष्वार्किकुजेज्यचन्द्राः ॥ ६०॥

कुन्तला — दिने = दिवसे वर्ष प्रवेशस्तदा, मेषाच्चतुर्णां = मेषवृषमिथुनककर्काणां राशीनां, सूर्यासितार्किशुक्राः त्रिराशिपा भवन्ति । अर्थात् मेषस्य सूर्यः, वृषस्य शुक्रः, मिथुनस्य शनिः, कर्कस्यशुक्रः । निशि = रात्रौ वर्ष प्रवेशस्तदा मेषादि चतुर्णां राशीनां, इज्येन्दु—बुधक्षमाजाः = गुरु चन्द्र बुध कुजाः क्रमेण त्रिराशिपाः भवन्ति । मेषस्य गुरुः, वृषस्य चन्द्रः, मिथुनस्य बुधः, कर्कस्य भौमइति । हरिभात् = सिंहभात् चतुर्णां = सिंह, कन्या तुला

वृश्चिकानां विलोमं ज्ञेयम् । अर्थात् दिने वर्ष प्रवेशस्तदा सिंहादि राशि चतुष्टयानां गुरुचन्द्र बुधाकुजाः , रात्रौ तु सिंहादि राशिचतुष्टयानां सूर्यसितार्किशुक्राः त्रिराशिपा भवन्ति ईत्यर्थः । परेषु = भिन्नेषु धनुमकरकुम्मभीनेषु राशिषु नित्यं = दिवारात्रौ अर्धिकुजेज्य चन्द्रास्त्रिराशिपा भवन्ति । यथा धनुषः शनिः, मकरस्य भौमः कुजस्य गुरुः मीनस्य चन्द्रः त्रिराशिपाः भवन्ति ।। ६० ।।

ज्योति — वर्षकुण्डली में कौन वर्षपति हो गया इसके लिए ५ अधिकारियों को बताया जा रहा है जिसमें प्रथमतः त्रिराशिपति जो ग्रह हो उसका ज्ञान करना चाहिए ।

दिन में मेषादि ४ लग्नों में वर्ष प्रवेश हुआ हो तो मेष का पति सूर्य, वृष का शुक्र, मिथुन का शनि और कर्क राशि लग्न का शनि अधिकारी होता है । रात में वर्ष प्रवेश में मेषादि ४ लग्नों के त्रिराशिपति क्रमशः गुरु, चन्द्र, बुध और मङ्गल होते हैं ।

दिन में वर्ष प्रवेश के सिहादि चारो राशियों के क्रमशः सिंह का गुरु, कन्या का चन्द्र, तुला का बुध, एवं वृश्चिक का मङ्गल त्रिराशिपति होते हैं । रात्रि के वर्ष प्रवेश में सिहादिराशिया चतुष्टय के सिंह का सूर्य, कन्या का शुक्र, तुला का शनि और वृश्चिक का शुक्र त्रिराशिपति होते हैं । दिन और रात्रि दोनों के धनुषादि राशि चतुष्टयों में नित्य दिन और रात्रि में धनु का शनि, मकर का मङ्गल कुमी का बृहस्पति और मीन का चन्द्रमा त्रिराशिपति होता है । चक्र से स्पष्ट हो जायेगा ।। ६० ।।

राशि	मे०	बृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	बृ०	ध०	म०	क०	मी०
दिवा	सू०	शु०	श०	शु०	बृ०	च०	बु०	मं०	श०	मं०	बृ०	चं०
रात्रि	बृ०	चं०	बु०	मं०	सू०	शु०	श०	शु०	श०	मं०	बृ०	चं०

अथैतस्य प्रयोजनकथनम् —

वर्षेशार्थं दिननिशाविभागोक्तास्त्रिराशिपाः ।
पञ्चवर्गीबलाद्यर्थं द्रेष्काणेशान्विचिन्तयेत् ।। ६१ ।।

कुन्तला — वर्षेशार्थं = वर्षेशनिर्णयार्थं, दिनराशि विभागोक्तास्त्रिराशिपा उक्ता। पञ्चवर्गीबलाद्यर्थं = पूर्वोक्तान् द्रेक्काणेशान्विचिन्तयेत् विचारणीमिति ।। ६१ ।।

ज्योति — इसके पूर्व वाले श्लोक में दिनरात्रि के विभाग से जो त्रिराशिपति कहे गए हैं वे वर्षेश निर्णय के समय परिगणित किए जायेंगे । उनके अतिरिक्त जो द्रेष्काणपति कहे गए है वे पञ्चवर्गी और द्वादशवर्गी बल देखने के समय ही देखे जाते हैं ।। ६१ ।।

अथ वर्षेशनिर्णयार्थपञ्चाधिकारिण आह—

जन्मलग्नपतिरब्दलग्नपो मुन्थहाधिप इतस्त्रिराशिपः ।
सूर्यराशिपतिरह्नि चन्द्रमाधीश्वरो निशि विमृश्य पञ्चकम् ॥ ६२ ॥
बली य एषां तनुमीक्षमाणः स वर्षपो लग्नमनीक्षमाणः ।
नैवाब्दपो दृष्ट्यतिरेकतः स्याद्बलस्य साम्ये विदुरेवमाद्याः ॥ ६३ ॥

कुन्तला — जन्मलग्नपति = जन्मकालिक लग्नाधिपति अब्दलग्नंपतिः = वर्षप्रवेश कालिक लग्न स्वामी । मुन्थहाधिपः = मुथहेशः, इतो = अनन्तरम् । त्रिराशिपः = त्रिराशीभः, अह्नि = दिवावर्ष प्रवेशे सूर्यराशिपतिः ज्ञेयः । निशि = रात्रौवर्ष प्रवेशेसति चन्द्रराश्याधीश्वरः विज्ञेय इत्यर्थः । एतत् (१) जन्म लग्न पतिः (२) वर्ष लग्नपति (३) त्रिराशिपः (४) मुंथहापतिः (५) दिवारविराशिपतिः, रात्रौ च चन्द्रराशिपतिः । वर्षेश्वराः भवन्ति । अनयारित्या ग्रहपञ्चकं विमृश्य = विचार्य पञ्चाधिकारिणो ज्ञात्वा, बली = सर्वाधिक बलशाली, यो ग्रहः तनुं = लग्नं, ईक्षमाणः = कयाऽपि एकाद्वित्रिचरणया मित्रशत्रु दृष्ट्या पश्यति न केवलं पूर्णयैव, तदा स वर्षाधिश्वरः भवतीत्यर्थः । सर्वाधिक बलशाली सन्नपि लग्नं = वर्ष लग्नं, अनीक्षमाणः अपश्यन् सत्, अब्दपः = वर्षेश्वरः नैवं भवति । यदि बलस्य प्राधान्यं तथापि दृष्टेरादरो वर्तते एव । न तु सर्वाधिक दृष्टिशाली आपेक्षिकाल्पबली वर्षेशां भवति । यदा बलस्य साम्येः पञ्चवर्ग्या सर्वे तुल्यवलास्युः तदा दृष्ट्यातिरेकतः स्यात् । यथा योऽधिक दृष्ट्या लग्नं पश्यति स वर्षेश्वरो भवति । एवं आद्याः = पूर्वाचार्याः, विदुः = कथ्यन्ति ॥ ६२—६३ ॥

ज्योति — जन्मलग्नपति, वर्षलग्नपति मुंथहा का स्वामी, त्रिराशीश, दिन मे वर्ष प्रवेश होने से सूर्य जिस राशि में हो उसका स्वामी और रात्रि मे वर्ष प्रवेश होने पर चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी, इन पाँचों को विचार कर उसमें जो सर्वाधिक बलशाली हो और वर्षलग्न को देखता हो वही वर्षेश होता है । जो वर्ष लग्न को न देखता हो वह सर्वाधिक बलवान् होने पर भी वर्षेश नहीं होता है। यदि इन पाँचो मे से सभी या चार या तीन या दो भी सम बल वाले हो तो जिसकी दृष्टि लग्न पर विशेष होगी, वही वर्षेश्वर होगा । ऐसा सभी प्राचीनचार्यों ने कहा है ॥ ६२—६३ ॥

दृष्टिसाम्ये व्यवस्थाकथनम्—

दृगादिसाम्येऽप्यथ निर्बलत्वे वर्षाधिपः स्यान्मुथहेश्वरस्तु ।
पञ्चापि चेन्नो तनुमीक्षमाणा वीर्याधिकोऽब्दस्य विभुर्विचिन्त्यः ॥ ६४॥

कुन्तला — दृगादिसाम्ये = दृष्टिबलस्य तुल्यत्वे सति अथवा तेषा निर्वलत्वे मुथहेश्वरो वर्षाधिपः स्यात् । यदि पञ्चाधिकारिणोऽपि ग्रहा लग्नं न दृश्यमाणाः तदा यो वीर्यधिको स वर्षपति भवतीति ॥ ६४ ॥

ज्योति — यदि पाँचो अधिकारी ग्रहों के बल तथा लग्न के उपरं दृष्टि समान हो या सब निर्बल हो तो मुथहा का स्वामी ग्रह ही वर्षेश होता है । अगर पंचाधिकारि ग्रहों में कोई भी लग्न को नहीं देखे तो उन पाँचो में जो सबसे अधिक बली हो वही वर्षेश होगा ।

केषाञ्चिन्मतेन दृष्टिबलसाम्ये वर्षेश निर्णयकथनम्—

बलादिसाम्ये रविराशिपोऽह्नि निशीन्दुराशीडिति केचिदाहुः ।
येनेत्थशालोऽब्दविभुः शशी स वर्षाधिपश्चन्द्रभपोऽन्यथात्वे ॥ ६५ ॥

कुन्तला — बलादिसाम्ये = बलहष्टि च समानत्वे, अह्नि = दिवसे, रविराशियो = सूर्यराशिपः, निशिरात्रौ, इन्दुराशीडिति = चन्द्रमाराशि पतिभवति इत्यर्थः । केचिदाहुः ।

उक्त प्रकारेण चन्द्रः वर्षस्वामी जातः स यदि येन पञ्चाधिकारिमध्यस्थितेन ग्रहेण सहेत्थालं कुरुते तदा स एव वर्षाधिपो ज्ञेयः । अन्यथात्वे सति इत्थशालयोगाभावे चन्द्रभपश्च चन्द्र राशीश्वरो अब्दपतिः ज्ञेयः ॥ ६५ ॥

ज्योति — वर्षेश निर्णय के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यदि उपर्युक्त पाँचो अधिकारियों में पञ्चवर्गीबल तुल्य हो और वे पाँचो लग्न को भी सामान्य दृष्टि से देखते हो तब दिन में वर्ण प्रवेश हो तो सूर्य की राशि का स्वामी वर्षपति होता है ।

यदि रात्रि में वर्ष प्रवेश हो तो चन्द्रराशि का स्वामी ही वर्षेश होगा । कुछ विद्वानों का मत है कि यदि चन्द्रमा वर्षेश हो और चन्द्रमा का जिस ग्रह के साथ इत्थशाल योग हो तो वह ग्रह ही वर्षपति हो जाता है । यदि उसका किसी के साथ इत्थशाल न हो तो चन्द्रराशि का स्वामी ही वर्षेश हो जाता है ॥ ६५ ॥

अथ मुन्थानयनकथनम्—

स्वजन्मलग्नात् प्रतिवर्षमेकैकराशिभोगान् मुथहाभ्रमोऽतः ।
स्वजन्मलग्नं रवितष्टयातशरद्युतं सा भमुखेन्थिहा स्यात् ॥ ६६ ॥

कुन्तला — स्वजन्म लग्नात्: प्रतिवर्षमेकैकवर्षमेकैकराशिभोगान् मुथहाभ्रमो भवति । अतः स्वजन्म लग्नं द्वादश शेषित गतवर्ष मानयुक्तं तदा सा भमुखा राश्यादिकामुथहा स्यात् ॥ ६६ ॥

ज्योति — जन्म काल मे जो लग्न हो वह लग्न ही मुन्थहा होती है अर्थात् जन्म काल में एक वर्ष तक जन्म लग्न ही में मुथहा रहती है । वह मुन्थहा प्रतिवर्ष एक–एक राशि का भोग करती है । इसलिए जन्म लग्न में राशि स्थान में गत वर्ष को जोड़कर १२ से भाग देने पर जो शेष बचे वही राशि और अंशादि तो लग्न के अंशादि पूर्ववत रहेंगे ही । इस प्रकार इष्ट वर्ष मे मुन्था का मान स्पष्ट हो जाता है । कहने का अभिप्राय यह है कि मुन्थहा की राशि बदलती है, परन्तु अंशादि स्थिर रहते हैं ॥ ६६ ॥

जैसे गतवर्ष = ६७ । जन्म लग्न १।१५। २२। ० अब

१।१५। २२। ०
+ ६७
६८।१५। २२। ०
१२) ६८।१५। २२। ० (५
६०
८।१५। २२। ०

अब मुन्थहा = ८।१५।२२। ० अर्थात् धनु राशि में मुन्थहा हुई जिसका स्वामी गुरु हुआ ।

विशेष — मुथहा की गति प्रतिवर्ष ५ कला है ।

प्रत्यहं शरलिप्ताभिर्वर्द्धते साऽनुपाततः ।
सार्धमंशद्वयं मास इत्याहुः केऽपि सूरयः ।। ६७।।

कुन्तला — सा मुथहा, पत्यहम् = अनुपाततः, शरलिप्ताभिः = पञ्चकंलाभिः वर्द्धते । एकस्मिन् मांसे २ अंश तथा च ३० विकला वर्धते इति । केऽपि सूरयः आहुः ।। ६७ ।।

ज्योति — ऊपर कही जा चुकी है ।

राहोर्मुख पृष्ठपुच्छानां लक्षणकथनम्—

भोग्या राहोर्लवास्तस्य मुखं पृष्ठं गता लवाः ।
ततः सप्तमभं पुच्छं विमृश्येति फलं वदेत् ।। ६८।।

कुन्तला — राहोर्भोग्यलवास्तस्य, मुखम् । तथ च राहो भुक्ता लवाः तस्य पृष्ठम्। ततो राहुस्थितराशितः सप्तम राशि पर्यन्तं पुच्छमिति । पृष्ठभागे न शुभदो भवतीति वदेत् ।। ६८ ।।

ज्योति — राहु हमेशा उल्टी गति से चलता है । अर्थात् मेष राशि से वृष राशि न जाकर मीन राशि में जाता है । राहु पिण्डात्मक ग्रह नहीं है । वह दो वृत्तों का सम्पात् बिन्दु है । प्रथम सम्पात् का नाम राहु और द्वितीय सम्पात का नाम केतु है ।। ६८ ।।

उदाहरण — स्पष्टराहु ३। ८। १५। ४१ यहाँ ८। १५। ४१ ये पृष्ठ है । अर्थात् विपरीत गति होने के कारण राहु के भोग्य अंशादि ८। १५। ४१ को ३० में घटाने से

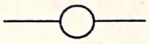
३०
०८। १५। ४१
२१। ४४। १९ = भुक्तांशादि ।

अतः राहु के भोग अंश मुख और भुक्त अंश पृच्छ (पृष्ठ) कहते हैं ।

श्रीगर्गान्जयभूषणं गणितविचिन्तामणिस्तत्सुतोऽ
नन्तोऽनन्तमतिर्व्यधात्खलमतध्वस्त्यै जनुः पद्धतिम् ।

तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया
सत्तुष्ट्यै व्यदधाद्ग्रहप्रकरणं संज्ञाविवेकेऽमलम् ।। ६९।।

।। इति नीलकण्ठ्यां संज्ञातन्त्रे ग्रहाध्यायः ।।

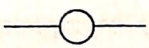


कुन्तला — टीका स्पष्टम् ।। ६९ ।।

ज्योति — इस प्रकार गर्ग गोत्रिय गणित के ज्ञाता चिन्तामणि के पुत्र अनन्त मति वाले प० अनन्त के पुत्र श्रीनीलकण्ठ विबुध द्वारा भगवान् शंकर की आज्ञा से सज्जन लोगों की प्रसन्नता के लिए संज्ञातन्त्र में ग्रहाध्याय की रचना की गई है ।। ६९ ।।

।। इति नीलकण्ठ्यां संज्ञातन्त्रे ग्रहाध्यायस्य 'कुन्तला' 'ज्योति' संस्कृत हिन्दी टीका सम्पूर्णा ।।

।। इति संज्ञातन्त्रे ग्रहाध्यायः ।। १ ।।



अथ दृष्टिफलाध्यायः (ग्रहाणां स्वरूपम्)

तत्रादौ सूर्यस्य स्वरूपकथनम्—

सूर्यो नृपो ना चतुरस्रमध्यंदिनेन्द्रदिक् स्वर्णचतुष्पदोग्रः ।
सत्त्वं स्थिरस्तिक्तपशुक्षितिस्तु पित्तं जरन्पाटलमूलवन्यः ॥ १॥

कुन्तला — सूर्यः, नृपः = क्षत्रिय वर्णः, ना = पुरुषः । चतुरस्रमध्यन्दिनेन्द्रदिक स्वर्णचतुष्टपदोग्रः = चतुष्कोणाकृति—मध्यबली—पूर्वदिक्पति—सुवर्णधातुस्वामी—चतुष्पदाश्च गजवृषादिस्वामी क्रूरः । सत्वं = सत्वगुण सम्पन्नः, स्थिरः = स्थिर प्रकृतिः । तिक्तपशुक्षिति = तिक्तरसप्रिय—पशुपति—भूमिचलनशिलः । पित्तं = पित्तात्मकः । जरन् = वृद्धग्रहः पाटलमूलवन्यः = श्वेतमिलित रक्तवर्ण = वनचरः इदृशः बोध्यः ॥ १ ॥

ज्योति — सूर्यक्षत्रियवर्ण, पुरुषजाति, चतुष्कोण आकार, मध्याह्न के समय प्रबल रहने वाला पूर्व दिशा का स्वामी सुवर्ण द्रव्य का अधिपति, चौपाये जानवरों का स्वामी, क्रूर प्रकृति, सतोगुणी, स्थिर स्वभाव, तिक्तरसप्रिय, भूमिचारी, पित्त प्रकृति, वृद्ध, पाटलवर्ण और वनचारी है ॥ १ ॥

अथ चन्द्रस्वरूपम्—

वैश्यः शशी स्त्री जलभूस्तपस्वी गौरोऽपराह्णाम्बुगधातुसत्त्वम् ।
वायव्यदिक्श्लेष्मभुजंगरूप्यस्थूलो युवा क्षारशुभः सिताभः ॥ २॥

कुन्तला — शशी = चन्द्रः, वैश्यः = वैश्यवर्णः, स्त्री = स्त्रीग्रहः, जलभूरार्द्रभूमि चारी । तपस्वी = तपोयुक्तः, गौरः गौरवर्णः । अपराह्ण = अपराह्णकाले प्रबलः। अम्बुगता—धांतुसत्वम् = जलचरः — गौरिकादिधातुपति—सत्वगुण प्रधानः । वायव्यदिक् = वायव्य—कोणाधिपतिः । श्लेष्म = कफप्रधानः, भुजंगः = भुजंगपतिः । रूप्यः = रूप्यकादि द्रव्यस्वामी, स्थूलः = विशालदेहः । युवा = तरूणः; क्षारशुभः लवणरसप्रियः—शुभग्रहश्च । सिताभः = शुभ्रवर्णः ईदृशो चन्द्रोज्ञेयः ॥ २ ॥

ज्योति — चन्द्रमा वैश्यवर्ण, स्त्रीजाति, गीली भूमि में विचरने वाला, तपस्वी, गौरवर्ण, अपराह्न में प्रबल रहने वाला, जलचारी, गौरिक धातु का स्वामी, सतोगुणी, वायव्यदिशा का अधिपति, कफप्रकृति, सर्पों का अधिष्ठाता, सोना—चाँदी रूपया आदि का स्वामी, अतिशयपुष्ट शरीर, युवा, लवण रस प्रधान, शुभग्रह और श्वेत वर्ण है ॥ २ ॥

अथ कुजस्वरूपकथनम्—

भौमस्तमः पित्तयुवोग्रवन्यो मध्याह्नधातुर्यमदिक् चतुष्पात् ।
ना राट् चतुष्कोणसुवर्णकारो दग्धाऽवनीव्यंगकटुश्च रक्तः ।। ३।।

कुन्तला — भौमः = कुजः, तमः = तमोगुण प्रधानः, पित्तयुवोग्रवन्यः = पित्तप्रकृति — तरुण—क्रूर—वनचरः । मध्याह्न = मध्यदिनबली, धातु = गौरिकादि धातुपतिः । यमदिक् = याम्यदिक्पतिः । चतुष्पात् = चतुष्पदस्वामी, न = नरः राट् — क्षत्रियः, चतुष्कोणः = चतुष्कोणाकृतिः, सुवर्णकारः = सुवर्णकारजातिपतिः। दग्धावनी = दग्धभूमिचारी, व्यंगकटुः = अंगरहितः —कटुरसप्रियः । रक्तः = रक्तवर्णः । एवं विधो अस्तीति बोध्यम् ।। ३ ।।

ज्योति — भौम तमोगुणी, पित्तप्रकृति, तरुण, उग्र स्वभाव, वनचारी, मध्याह्नकाल में प्रबल होने वाला, गैरिकादि धातु का प्रभु, दक्षिणदिशा का स्वामी, चौपाये पशुओं का अधिपति, पुरुष जाति, राजा (क्षत्रिय), चतुष्कोणाकृति, स्वर्णकारों का स्वामी जली हुई भूमि पर विचरण करने वाला, कुछ अंगों से हीन, कटुरस प्रिय, ताम्रवर्ण, अथवा रक्तवर्ण की सभी वस्तुओं का स्वामी हैं ।। ३ ।।

अथ बुधस्वरूपकथनम्—

ग्राम्यः शुभो नीलसुवर्णवृत्तः शिश्विष्टकोच्चः समधातुजीवः ।
श्मशानयोषोत्तरदिक्प्रभातं शूद्रः खगः सर्वरसो रजो ज्ञः ।। ४ ।।

कुन्तला — ज्ञः = बुधः, ग्राम्यः ग्रामचरः अर्थात् ग्रामिणक्षेत्रे सुखानुभावी, शुभः = शुभग्रहः, नीलसुवर्णवृत्तः = नीलवर्ण स्वर्णादिद्रव्याधिपति—वर्तुलाकारः । शिश्विष्टकोच्च = बाल्यावस्था—दृष्टिकोच्चप्रदेशचरः । समधातु जीवः = सुभवातकफत्रिदोषयुक्तः, जीवाधिपतिः । श्मशानयोषोत्तरदिक् =श्मशानचारी — स्त्रीग्रहोत्तरदिक्पतिः । प्रभातं = प्रभातकाले बली, शूद्रः = शूद्रवर्णस्वामी, खगः = पक्षिजातिः, सर्वरसः = मधुर, कटु, कषाय, अम्लक्षार, तिक्तरसप्रियः । रजः = रजोगुणप्रधानः, ज्ञेयः ।। ४ ।।

ज्योति — बुधग्रामचारी, शुभ, नीलवर्ण, द्रव्य का स्वामी वर्तुलाकार, बालक, ईटों के उच्चस्थल में रहने वाला, समधातु श्मशानगामी, स्मीजाति, उत्तरदिशा का स्वामी, प्रभातकाल में प्रबल, शूद्रजाति पक्षी, कटुतिक्तादि रसों का भोक्ता तमोगुण प्रधान हैं ।। ४ ।।

अथ गुरुस्वरूपकथनम् —

गुरुः प्रभाते नृशुभेशदिग् द्विजः पीतो द्विपाद् ग्राम्यसुवृत्तजीवः ।
वाणिज्यमाधुर्यसुरालयेशो वृद्धः सुरत्न समधातुसत्त्वम् ।। ५ ।।

कुन्तला — गुरुः = बृहस्पतिग्रहः, प्रभाते = प्रातः कालेबली, नृमेशदिग् = पुरुषग्रह — शुभग्रह—पूर्वोत्तरदिक् मध्यस्वामी, द्विजः = ब्राह्मणवर्णः, पीतः = पीतवर्णः, द्विपात् = द्विपदस्वामी । ग्राम्य = ग्राम्यचरः, सुवृत्त = वत्तुलाकारः, जीवः = मतुल्यादि जीवाधिपति । वाणिज्यमाधुर्य सुरालयेशः = वाणिज्यं क्रय विक्रयकर्त्ता, मार्धुय, मधुररसप्रियः, देवभवनाधिपतिः । वृद्धः = जर्जरकायः, सुरत्न = सद्रत्नस्वामी, समधातुः = कफपित्त—वातात्मकः । सत्वं = सत्वगुणप्रधानश्चास्ति ।। ५ ।।

ज्योति — गुरु प्रभात काल में बली, पुरुषजाति शुभग्रह, ईशानदिशा का स्वामी, ब्राह्मण वर्ण, पीलारंग, दो पैरवाला, मनुष्यों का स्वामी, गाँव में रहने वाला, वर्त्तुलाकार, वाणिज्य कर्म करने वाला, मधुररसप्रिय, देवालय का स्वामी, वृद्धग्रह, सुन्दर रत्न का स्वामी, समधातु और सतोगुण प्रधान ग्रह है ।। ५ ।।

अथ शुक्रस्वरूपकथनम् —

शुक्रः शुभः स्त्री जलगोऽपराह्णः श्वेतः कफी रूष्यरजोऽम्लमूलम् ।
विप्रोऽग्निदिङ्.मध्यवयो रतीशो जलावनीस्निग्धरुचिर्द्विपाच्च ।। ६ ।।

कुन्तला — शुक्रः = शुक्रग्रहः, शुभः, स्त्री = स्त्रीग्रहः । जलगः = जलस्थलचरः, अपराह्णः = अपराह्णबली, श्वेतः = श्वेतवर्णः, कफीकफात्मकः, रूप्यरजोऽम्लभूलम् = रजतद्रव्य रजोगुणी — अम्लरसप्रिय — कन्दमूलफलाधिपतिः । विप्रः = ब्राह्मणजातिः, अग्निदिक् = पूर्वदक्षिणमध्य कोणाधिपतिः, मध्यवयाः = प्रौढ़ावस्था, रतीशः = केलिकलाविषयप्रधानः । जलावनी = जलभूमिचारी, स्निग्धरुचिः = चिक्कणत्वक्वर्णः, द्विपात् = द्विपदो अर्थात् मनुष्य इति ।। ६ ।।

ज्योति — शुक्र शुभग्रह, स्त्री जाति, जलाचारी, अपराह्न में प्रबल रहने वाला, श्वेत वर्ण, कफ प्रकृति, रूप्य द्रव्य का स्वामी, ब्राह्मणवर्ण, आग्नेय दिशा का स्वामी, तरुणावस्था, क्रीड़ारस प्रधान, जलभूमिचारी, स्निग्ध रुचि और मनुष्यों का स्वामी है ।। ६ ।।

अथ शनिस्वरूपकथनम् —

शनिर्विहंगाऽनिलवन्यसन्ध्याशूद्रांगनाधातुसमः स्थिरश्च ।
क्रूरः प्रतीची तुवरोऽतिवृद्धोत्करक्षितीट् दीर्घसुनीललोहम् ।। ७।।

कुन्तला — शनिः = शनिग्रहः, विहंगः = खगेशः, अनिल = वातात्मकः, वन्य = वनचरः, सन्ध्या =सन्ध्यासमयबली, शुद्रः = शूद्रजातिः, अंगना = स्त्रीग्रहः, धातुसमः = समत्रिदोषयुक्तः, स्थिरः = स्थिर प्रकृतिः, क्रूरः = पापग्रहः, प्रतीची = पश्चिमदिक्स्वामी । तुवरः = कषायरसयप्रियः, । अतिवृद्धः = जर्जरगातः अर्थात् सकलग्रहेषु अधिक वयस्कः । उत्करक्षितीट् = उपरभूमिपतिः । दीर्घः = प्रांशु = अत्युच्चदेहः । सुनिजः = अतिनीलवर्णः, लोहं = लौहप्रियः ।। ७ ।।

ज्योति — शनिग्रह पक्षियों का स्वामी, वायु प्रकृति, वनचारी, सायंकाल में प्रबल, शुद्र जाति, स्त्री ग्रह, समधातु, स्थिरस्वभाव, पापग्रह, पश्चिम दिशा का स्वामी कषायरसप्रिय अत्यन्त वृद्ध ग्रह, उषर भूमि का स्वामी, दीर्घाकृति, 'नीलवर्ण' और लौह धातु का अधिपति है ।। ७ ।।

अथ ग्रहाणां स्वरूपबोधकं चक्रम्

ग्रहाः	सूर्यः	चन्द्रः	कुजः	बुधः	गुरुः
जातिः	क्षत्रियः	वैश्यः	क्षत्रियः	शूद्रः	विप्रः
स्त्रीपुंजातिः	पुरुषः	स्त्रीग्रहः	पुंग्रहः	स्त्रीग्रहः	पुरुषग्रहः
आकृतिः	चतुष्कोणः	स्थूलः	चतुष्कोणः	वृत्ताकारः	वृत्ताकरः
बलसमयः	मध्याह्नः	अपराह्नः	मध्याह्नः	प्रभातबली	प्रभातबली
उग्रादिसंज्ञा	उग्रः	शुभः	उग्रः	शुभः	शुभः
सत्वादिप्रधानः	सत्त्वम्	सत्त्वम् तपस्वी	तमोगुणः	रजोगुणः	सत्वगुणः
स्थिरादिसंज्ञा	स्थिरः	चपलः	व्यङ्गः	चपलः	व्यापारकर्त्ता
रसेशसंज्ञा	तिक्तप्रियः	क्षारप्रियः	कटुप्रियः	सर्वरसः	मधुरप्रियः
चारणस्थानम्	भूचारी	आद्र भूचारी	दग्ध भूचारी	ईष्टिका स्थानचारी	देवालय चारी
दिक्स्वामिनः	पूर्वदिशीशः	वायव्येशः	याम्येशः	उत्तरेशः	ईशानेशः
वर्णः	पाटलः	गौरः	रक्तः	नीलवर्णः	पीतः
वयःक्रमः	वृद्धः	युवकः	युवकः	शिशुः	वृद्धः
मूलादिस्वामी	मूलेशः	रुप्यस्वामी	प्रवालः	जीवस्वामी	जीवस्वामी
धातुस्वामिन	स्वर्णेशः	धातुस्वामी	धातुस्वामी	सुवर्णः	रत्नस्वामी
पश्वादिस्वामी	चतुष्पदेशः	भजङ्गेशः	चतुष्देशः	पक्षीशः	द्विपदेशः
	वनचारी	जलचारी	वनचारी	श्मशानचरः	ग्रामचरः

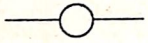
अथ राहुस्वरूपकथनम्—

राहुस्वरूपं शनिवन्निषादजातिर्भुजंगोऽस्थिपनैर्ऋतीशः ।
केतुः शिखी तद्वदनेकरूपः खगस्वरूपात्फलमूह्यमित्थम् ॥ ८ ॥

कुन्तला — राहुस्वरूपं शनिग्रहवत् बोध्यम् । तत्र यदि किञ्चितदधिकं तदाह— निशादजाति—चाण्डालजातिः, भुजंग = सर्पाकृतिः, अस्थिपः = अस्थिधातु स्वामी, नैर्ऋतीशः = दक्षिणपश्चिममध्यवर्त्तिकोणस्वामी । अस्ति । केतुस्तु, शिखी = शिखावान्,तद्वत् = शनिराहुवत्, अनेकरूपः = नानाप्रकार स्वरूपवान् । इत्थममुना प्रकारेण ग्रहस्वरूपात्फलमूह्य ज्ञेयम् ॥ ८ ॥

ज्योति — राहु का स्वरूप शनि के समान है । इसकी निषाद जाति, सर्पाकृति, अस्थि का स्वामी और नैर्ऋत्यकोणाधिपति है । केतु का स्वरूप शनि राहु के समान हैं । थोडा अन्तर यह है कि केतु शिखावान और अनेक रूपधारी हैं । इस प्रकार उपरोक्त बातों पर अच्छी तरह विचार कर ग्रहों के स्वरूप से फलादेश करना चाहिए ॥ ८ ॥

॥ इति ग्रहस्वरूपवर्णनप्रकरणम् ॥



अथ दृष्टिप्रकरणम्

तत्रादौ प्रत्यक्षस्नेहगुप्तदृष्टिकथनम्—

दृष्टिः स्यान्नवपञ्चमे बलवती प्रत्यक्षतः स्नेहदा
पादोनाऽखिलकार्यसाधनकरी मेलापकाख्योच्यते ।
गुप्तस्नेहकरी तृतीयभवमे कार्यस्य संसिद्धिदा
त्र्यंशोना कथिता तृतीयभवने षड्भागदृष्टिर्भवे ॥ ९॥

कुन्तला — ग्रन्थेस्मिन् चतुर्विधदृष्टिर्विचारःकृतं वर्तते । दृष्टिविचारविषये ग्रहस्थितिराशितो नवम पञ्चम स्थाने प्रत्यक्षत स्नेहदा बलवती दृष्टि भवति । सा दृष्टि तु पादोना = स्वचतुर्थांशोना अर्थात् पञ्चचत्वारिंशत्कलात्मिका सकल कार्यसाधनकरी मेलापकसञ्ज्ञिका उच्यते । एवं ग्रहस्थानात् तृतीयभवने च या दृष्टिर्भवति सा गुप्तस्नेहकरी कार्यस्थ संसिद्धिदात्र्यंशोना = चत्वारिंशत्कलात्मिका कथिता । एवं भवे = ग्रहस्थितराशितः एकादशस्थाने षडभागदृष्टि अर्थात् १/६ = ६०/६ = १० कलात्मिका भवति ॥ ९ ॥

ज्योति — ग्रहों की दृष्टि ४ प्रकार की होती है ।

(१) प्रत्यक्ष स्नेह कारिणी । (२) गुप्त स्नेह करने वाली ।

(३) गुप्त बैर करने वाली । (४) प्रत्यक्ष बैर करने वाली ।

वर्ष कुण्डली में सभी ग्रह अपने से नवें और पाँचवे स्थान मे बैठे हुए ग्रह को देखते है । वह दृष्टि बलवती, और प्रत्यक्ष प्रीतिदायिनी है । एक चरण से हीन दृष्टि अर्थात् ४५ कलात्मिका दृष्टि सब कार्य साधन करने वाली मेलापक अर्थात् परस्पर प्रेम कराने वाली दृष्टि कही गई है । इसी प्रकार ग्रह अपने स्थान से तीसरे तथा ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रह को देखते हैं । वह दृष्टि गुप्त स्नेह कराने वाली और कार्य साधने वाली है । तृतीय स्थान पर वह तीन अंशो से न्यून अर्थात् ४० कला की मानी गई है । और एकादश स्थान पर यही दृष्टि केवल षष्ठांश अर्थात् १० कला मात्र रह जाती है ॥ ९ ॥

दृष्टिः पादमिता चतुर्थदशमे गुप्तारिभावा स्मृताऽ
न्योन्यं सप्तमभे तथैकभवने प्रत्यक्षवैराऽखिला ।
दुष्टं दृक्त्रितयं क्षुताह्वयमिदं कार्यस्य विध्वंसदं
सङ्ग्रामादिकलिप्रदं दश इमाः स्युर्द्वादशांशान्तरे ॥ १०॥

कुन्तला — यस्य ग्रहस्य दृष्टिर्विचारः क्रियते तत् स्नानात् चतुर्थदशमे स्थाने, गुप्तारिभावा = अप्रत्यक्षशत्रुभावा । पञ्चदशकलात्मिका दृष्टिः स्मृता । तथैव ग्रहस्थितस्थानात् सप्तममें एक भवने अन्योन्यं प्रत्यक्षवैरा = प्रकटशत्रुभावाखिला पूर्णा षष्टिकलात्मिका दृष्टिः स्मृता । इदं दृकत्रितयं चतुर्थदशमरूपमेकं सप्तसप्तकरूपं द्वितीयं, एकर्क्षगतं तृतीयं इत्थं त्रिविध दृग्विषयं क्षुताह्वयमनिष्ट फलजनकं, कार्यस्पेष्ट विधानस्य विनाशकरं संग्रामादिकलिप्रदं =

युद्धकारकं, क्लेशं प्रददाति । इमा दृशे द्वादशाशांन्तरं द्रष्टृश्यान्तरं द्वादशभागानधिकं तदा यथोक्त फलदायिका: स्यु: ।। १० ।।

ज्योति — अब ग्रहों की दृष्टि बताते हुए कहते है कि अपने स्थान पर बैठा हुआ ग्रह चौथे या दशवें स्थान पर स्थित ग्रह को देखता है, उस दृष्टि में गुप्त रीति से शत्रुभाव विद्यमान रहता है । यह दृष्टि केवल १५ कला की होती है । सप्तम तथा प्रथम स्थान में बैठे हुए ग्रह यदि एक दूसरे को देखते हो या एक ही स्थान में हो तो वह दृष्टि प्रत्यक्ष वैर कराने वाली मानी जायेगी । ये तीनों प्रकार की दृष्टियाँ दुष्टफल देने वाली क्षुत् नाम की सभी कार्यों का विनाश करने वाली और कलहकारिणी मानी जाती है । ये तीनो ही प्रकार की दृष्टियाँ १२ अंश के अन्तर्गत मानी जाती हैं । तात्पर्य यह है । कि जब दृश्य और द्रष्टा में केवल १२ अंश का अन्तर रह जाता यानी जब वह दीप्तांश से न्यून रहता है, तभी उपर्युक्त फल घटता है अन्यथा नहीं ।। १० ।।

अथेष्टदृष्टिकलासाधनकथनम् —

अपास्य पश्यं निजदृश्यखेटादेकादिशेषे ध्रुवलिप्तिका: स्यु: ।
पूर्ण खवेदास्तिथयोऽक्षवेदा: खं षष्टिरभ्र शरवेदसंख्या ।। ११ ।।
तिथ्य: खचन्द्रा वियदभ्रतर्का: शेषांकयातैष्यविशेषघातात् ।
लब्धं खरामै३०रधिकोनकैष्ये स्वर्णं ध्रुवे ता: स्फुटदृष्टिलिप्ता: ।। १२ ।।

कुन्तला — यो ग्रह: पश्यति स द्रष्टा, यं पश्यति स दृश्य: । अत्र निजदृश्यग्रहस्थानात् पश्यं = द्रष्टारं ग्रहं दशकं ग्रहमपास्य विशेध्य शेषराशिस्थाने एकादि संख्या तुल्ये सति क्रमेण —

पूर्णं	=	०
खवेदाश्चत्वारिंशत्	=	४०
तिथय:	=	१५
अक्षवेदा:	=	४५
खं	=	०
पष्टि	=	६०
अभ्र	=	०
शरवेद	=	४५
तिथ्य:	=	१५
खचन्द्रा	=	१०
वियद्	=	०
अभ्रतर्का:	=	६०

एता: ध्रुवलिप्तिका:स्यु: । तत्र राशिस्थानादग्रेय: शेष: अंशकलाविकलात्मक: स शेषांक: । तत्र राशिसंख्यासंख्यकध्रुवांकतो यातैश्यखण्डयो: विशेषोऽन्तरं स: यातैष्यविशेष: । तयोर्घाताद् गुणनफलात् खराभै: (३०) यल्लब्धं तत् ध्रुवेऽधिकोनकैष्ये सति क्रमेण स्वर्णं = धनर्णं कार्यम् । तदा ता: स्फुटदृष्टिकलास्यु: ।। ११–१२ ।।

ज्योति — जो ग्रह देखता है वह पश्य (द्रष्टा) और जिसको देखता है वह दृश्य कहलाता है । दृश्य ग्रह के राश्यादि मान मे द्रष्टा के राश्यादिमान को घटा देने से १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ शेष रहने से उन एकादि शेषों के क्रमशः ०।४०।१५। ४५।७।६०।०।४५।१५।१०।० और ६० ये ध्रुवांक होते है । उपर के चक्र में ध्रुवांक और क्रमशः एक, दो, तीन आदि के अन्तरों (अन्तरांक) तथा आगे वर्धमान उपचय अंक को धन और ह्रासमान (अपचय) अंक को ऋण से बोधित किया गया है ॥ ११–१२ ॥

उदाहरणार्थ — दृष्टाग्रह सूर्य = १०।१७।५७।५ को दृश्य ग्रह गुरु ४।१८।२।५५। को घटाने से —

४।१८। २।५५
१०।१७।५७। ५
६। ०। ५।५०

उपर ६ राशि की ध्रुवा ६० बताई जा चुकी है । गत ध्रुवांक हुआ । ऐष्य ध्रुवांक ४५ है ।

६० — ४५ = १५ = अन्तर ।

१५ × ०। ५।५० = १। २७। ३० इसमें ३० का भाग देने पर = २।५५

६० — २।५५ = ५७।५ गुरु की दृष्टि सिद्ध हुई ।

जहाँ द्रष्टा गुरु ४।१८।२।५५ और दृश्य ग्रह सूर्य १०।१७।५७।५।

१०।१७।५। ५
४।१८।२।५५
५।२९।२।१० शेष

अब पाँचवा ध्रुवांक = ०, ऐष्य ध्रुवांक = ६०, अन्तर = ६०।

यहाँ पर अनुपात द्वारा — $\frac{\text{शेष} \times \text{अन्तर}}{३०}$

$= \frac{२९।२।१० \times ६०}{३०}$ = फल =

जो फल उपलब्ध होगा वही गुरु की सूर्य पर दृष्टि का मान होगा । इसी प्रकार सभी ग्रहों की दृष्टि साधन करनी चाहिए ।

द्रष्टा और दृश्य ग्रहों के अन्तर की एकादिक तुल्य राशियों की ध्रुवा पठित है ।

अनुपातद्वार — $\frac{\text{एतांक ऐष्यांक का अन्तर} \times \text{शेषांक}}{३०}$ = फल ।

गतांक से अग्रिमांक अधिक होने पर उक्त फल को गतांक मे धन और गतांक ध्रुवा से अग्रिमांक ध्रुवा कम होने पर लब्ध फल को ऋण करने से द्रष्टा ग्रह की दृश्य ग्रह पर स्फुट दृष्टि मालूम हो जाती हैं ।

दृष्टि ध्रुवाङ्काः

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ध्रुवांक	०	४०	१५	४५	०	६०	०	४५	१५	१०	०	६०
अन्तरांक	४०	३०	३०	४५	६०	६०	४५	३०	५	१०	६०	६०
ऋणधन	ध	ऋ	ध	ऋ	ध	ऋ	ध	ऋ	ध	ऋ	ध	ऋ

पश्यन्मित्रदृशा सुहृद्रिपुदृशा शत्रुः समस्त्वन्यथा
तिथ्यर्काष्टनगांकशैलखचराः सूर्यादिदीप्तांशकाः ।
चक्रे वामदृगुच्यते बलवती मध्याद्यथा वेश्मनी–
त्येकर्क्षेऽपि दृगुच्यतेऽर्थजननीत्येके विदुः सूरयः ॥ १३॥

कुन्तला — यो ग्रहो यं ग्रहं मित्रदृष्ट्या ९, ५, ३, ११ दृष्ट्या पश्यति स मित्रं स्यात् । यो ग्रहो रिपु दृष्ट्या अर्थात् ४, १०, १, ७ दृष्ट्या पश्यति स तं प्रति शत्रुज्ञेयः । इदम् अत्र विलक्षणं विद्यते । जातके तथा न वर्तते । यथा चन्द्रस्य बुधो मित्रं किन्तु बुधस्य चन्द्रः शत्रुरस्तीति । रिपुदृशा अर्थात् भमुदृष्ट्या १, ४, ७, १० पश्यन् ग्रहः शत्रु स्यात् अतोऽन्यथा मित्र शत्रु भिन्नदृष्ट्या २, ६, ८, १२ स्थनेषु स्थितो ग्रहः समः स्यात् । तत्र स्थानेषु नहि मित्रत्वदृष्टिर्न वा शत्रुत्वदृष्टिरपि विद्यते दृष्ट्यभावात् समत्वं स्फुटम् । यथा जातके कुजश्चतुर्थाष्टम स्थाने पश्यति वा तदन्योग्रहस्त्रिपाद दृष्ट्या ते स्थाने पश्यति । तथा ताजिकेन । अत्र तु २, ६, ८, १२ एषु दृष्टिरेवनहि भवति इति विशेषः ।

दीप्तांशानाह — तिथ्याकाष्टनगांकशैलखचराः (अर्थात् १५, १२, ८, ७, ९, ७, ९) सूर्यादि ग्रहाणां क्रमेण दीप्तांशकाः भवन्ति । तत्र सूर्यस्यः पुरतः पृष्ठतश्च १५ अंशान्तरे यदि कश्चित्ग्रहो भवेत्तदा स सूर्यस्य दीप्तांशान्तरे वर्तते । चक्रे = लग्नादि द्वादशराशि चक्रे दक्षिण दृष्ट्यापेक्षयावामदृगू बलवती उच्यते । तत्र लग्नादि पड़भावाः दक्षिणभागः । सप्तमादि द्वादशान्तषड़भावा वामभागाः । तत्र यथा मध्यादृशमस्थानवेश्मनि चतुर्थस्थने या दृष्टि सा बलवती भवति । चतुर्थ भावा दृशमभावोपरि या दृष्टिः सा बलवती न इत्यर्थ : ।

तत्र मध्याद्यथा वेश्मनि उपलक्षणमेततेन सप्तमादिद्वादश स्थान स्थितानां ग्रहाणां लग्नादि षष्ठान्तभाव स्थितग्रहेषु या दृष्टि सा वलवती भवति ।

अथैकस्थान दृष्टौ कस्यचिन्मतकथनम् —

एकर्क्षे एकराशिस्थितग्रहोपरि तद्राशिस्थित ग्रहस्य या दृष्टि साऽपि अर्थजननीप्रयोजन साधिका भवति । इत्येकं सूरयः पण्डिताः ताजिकशास्त्रवेत्तारो विदुः ॥ १३ ॥

ज्योति — जो ग्रह जिस ग्रह पर मित्रदृष्टि रखता हुआ ९, ५, ३, ११ दृष्टि से देखता हो, वह उस ग्रह का मित्र होता हैं । जो ग्रह जिस ग्रह पर शत्रु दृष्टि रखता हुआ

४, १०, १, ७ दृष्टि से देखता हो तो वह उस ग्रह का शत्रु होता है । यदि शत्रु–मित्र इन दोनों मे से कोई दृष्टि न हो अर्थात् एक दूसरे से २, ६, ८, १२ वें स्थान के हो तो परस्पर दोनों ग्रहों में समता होती है । यह बात ताजिक और हिल्लाज का मत लेकर रोमक आचार्य ने कहा है । सच तो यह है कि जब सम, शत्रु, मित्र, का विचार करना हो तो ९, ५ दृष्टि को ही प्रधान मानना चाहिए । इस प्रकार तो सभी स्थानों में गणितागत दृष्टि आ सकती है । फिर भी वह नही ली जायेगी । क्योंकि दृष्टि के अभाव मे ही समता कही गई है । यदि गणितागत दृष्टि सबमें आ जायेगी तो समता कैसे होगी ।

यहाँ पर १, ५, ७, ११, इनके अन्तर के तुल्य अंश कला आदि अवयव वाले ग्रहों में गणितागत नहीं होती । अतएव यहाँ समता नही हो पायेगी । जैसे चन्द्रमा १। ३। २०। ५० दृश्य बुध २। ३। २०। ५० इसका अन्तर करने पर ७ राशि ही शेष रहेगी । इसलिए इसस्थिति में दृष्टि साधन आवश्यक नही है । ऐसा कुछ आचार्यों का मत है ।

सूर्यादि ग्रहों के दीप्तांश –

सू०	चं०	मं०	क०	गु०	शु०	श०
१५	१२	८	७	९	७	९

वर्ष कुण्डली चक्र में भी दक्षिण दृष्टि से वाम दृष्टि बलवान होती है । तात्पर्य यह है कि चतुर्थ स्थान की, दशम स्थान पर दृष्टि दक्षिण दृष्टि की अपेक्षा दशम स्थान की चतुर्थ स्थान की वाम दृष्टि बलवान् होती है ।

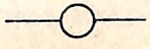
अर्थात् लग्नादि सप्तम की, सप्तमादि द्वादश तक की दक्षिण दृष्टि की अपेक्षा सप्तम भावादि से १२ भाव के अन्त तक की जो दृष्टि लग्नादि छठे भाव पर्यन्त की होगी वह वामदृष्टि बलवती होगी ॥ १३ ॥

पुरः पृष्ठे स्वदीप्तांशैर्विशिष्टं दृक्फलं ग्रहः ।
दद्यादतिक्रमे तेषां मध्यमं दृक्फलं विदुः ॥ १४ ॥

कुन्तला — यः काऽपिग्रहःस्वदीप्तांशैः पुरः पृष्ठे विशिष्टं दृक्फलं दद्यात् दीप्तांशान्तर्गतं दृष्टि रेव फलसाधिकेतिभावः । तेषां दीप्तांशानामतिक्रमे दृकफलं मध्यमं विदुः ॥ १४ ॥

ज्योति — कोई ग्रह अपने से आगे पीछे दीप्तांश के अन्दर ही विशेष दृष्टिफल देता है । यदि दीप्तांश को अतिक्रमण करे तो साधारण दृष्टि का फल प्रदान करता है ॥ १४ ॥

॥ इति दृष्टिफलाध्यायः ॥



अथ षोडशयोगाध्यायः ।

प्रागिक्कवालो पर इन्दुवारस्तथेत्थशालोऽपर ईसराफः ।
नक्तं ततः स्याद्यमया मणाऊ कब्बूलतो गैरिकबूलमुक्तम् ॥ १५ ॥
खल्लासरं रद्दमथो दुफालिकुन्थं च दुत्थोत्थदिबीरनामा ।
तम्बीरकुत्थौ दुरफश्च योगाः स्युः षोडशैषां कथयामि लक्ष्म ॥ १६ ॥

कुन्तला — प्राक् पूर्वं प्रथमो वा योग इक्कवालः भाग्यार्थकः । यथा लोके भाग्यवन्तं जनं ''इक्कवाली' इति वदति । तस्मादपर इन्दुवारः कार्यनाशकः । तथाऽपरस्तृतीय इत्थशालाः, दृष्टिसंयोगसम्बन्धात्मकः । चतुर्थः = ईसराफः = वियोगसूचकः । ततः परं नक्तं, ततो यमया स्यात्, ततः मणाऊ, ततः कब्बूलं स्वीकारबोधकं, ततोगैरिकब्बूलमुक्तम् । ततः खल्लासरं = रिक्तकरम् । रद्दं = व्यर्थत्वबोधकम् । अथोऽनन्तरं; दुफालितकुत्थं = साधारणकार्यसाधकम् । दुत्थोत्थदिवीरनामा = अन्यसाहाय्यतः कार्यसाधकम् । तम्बीरः = कार्यसाधकः । कुत्थः = बलबोधकः, दुरफः = दुर्बलबोधकः । एते षोडशयोगाः स्युः । एषां योगानां क्रमशो लक्ष्म = लक्षणं कथयामि ॥ १५–१६ ॥

ज्योति — १. इक्कबाल २. इन्दुवार ३. इत्थशाल ४. ईसराफ ५. नक्त ६. यमया ७. मणऊ ८. कब्बल ९. गैरिकब्बूल १०. खल्लासर ११. रद्द १२. दुफालिकुत्थ १३. दुत्थोत्थदिवौर १४. तंबीर १५. कुत्थ और १६. दुरफ, ये ही १६ योग हैं । इनके लक्षण आगे बता रहे हैं ॥ १५–१६॥

चेत्कण्टके पणफरे च खगाः समस्ताः
स्यादिक्कवाल इति राज्यसुखाप्तिहेतुः ।
आपोक्लिमे यदि खगाः स किलेन्दुवारो
न स्याच्छुभः क्वचन ताजिकशास्त्रगीतः ॥ १७ ॥

कुन्तला — यदि, सर्वे ग्रहाः कण्टके केन्द्रे १। ४। ७। १० वा पणफरे २। ५। ८। ११ स्थाने स्थिताः, तदा राज्यसुखाप्तिहेतुरिक्कबाल इति योगः स्यात् । यदि सर्वेग्रहाः आपोक्लिमे ३। ६। ९। १२ स्थितास्तदा स योगः ताजिकशास्त्रगीतः = ताजिकग्रन्थोक्तः इन्दुवारः स्यात्, स किलेति निश्चयेन क्वचन शुभो न स्यादिति ॥ १७ ॥

ज्योति — यदि सब ग्रह कण्टक अर्थात् प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम अथवा पणफर अर्थात् द्वितीय, पंचम, अष्टम और एकादश स्थानों में स्थित हों तो इक्कबाल योग होता है । यह योग राज्य तथा सब प्रकार की सुख–सुविधा प्रदान करता है । यदि सब ग्रह आपोक्लिम अर्थात् तृतीय षष्ठ, नवम तथा द्वादश स्थान में स्थित् हों तो इन्दुवार योग होता है । ताजिक शास्त्रकारों का कथन है कि यह इन्दुवार योग किसी भी वर्ष या मास प्रवेश के समय शुभदायक नहीं होता ॥ १७ ॥

शीघ्रोऽल्पभागैर्घनभागमन्देऽग्रस्थे निजं तेज उपाददीत ।
स्यादित्थशालोऽयमथो विलिप्ता लिप्तार्थहीनो यदि पूर्णमेतत् ॥ १८ ॥

कुन्तला — यदि अल्पभागैः = स्वल्पांशैः, वर्त्तमानः, शीघ्रः = शीघ्रगतिग्रहः, घनभागमन्दे = अधिकांशवति मन्दगतिग्रहे निजं स्वकीयं तेजः उपाददीत, अर्थाद्यस्मिन् कस्मिन्नपि दृष्टिसम्भवे राशौ यावदंशेषु शीघ्रगतिग्रहस्तिष्ठति ततोऽधिकेंऽशे शीघ्रगति ग्रहदीप्तांऽशान्तर्गते एव यदि मन्दगतिग्रहाः स्यात्तदैव शीघ्रगतिग्रहस्य तेजो मन्द गतिग्रहोपरि याति, दीप्तांशान्तर्गतत्त्वात्, तदा 'इत्थशालः' योगः स्यात् । यदि शीघ्रगतिग्रहः मन्दगतिग्रहात् विलिप्तालिप्तार्धहीनस्तदा पूर्णेत्थशालसंज्ञकयोगः स्यात् ॥ १८ ॥

ज्योति — इसके बाद इत्थशाल योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जिन दो ग्रहों के बीच में जिस ग्रह की गति अधिक हो वह शीघ्रगतिवाला और जिसकी गति न्यून हो वह मन्दगति ग्रह कहलाता है । यदि शीघ्रगति ग्रह का भुक्तांश अल्प और मन्द गति ग्रह का भुक्तांश अधिक हो, किन्तु मन्दगति ग्रह शीघ्रगति ग्रह के आगे बैठा हो तो शीघ्रगति ग्रह मंदगति वाले ग्रह को अपना तेज प्रदान करता है । इसी को को इत्थशाल योग कहते हैं । इसी का दूसरा नाम मुथशिलयोग है । शीघ्रगति ग्रह के भुक्तांश की अपेक्षा मन्द गति ग्रह का भुक्तांश अधिक होने पर ही मुथशिल योग होता है । यदि शीघ्रगति ग्रह मन्दगति ग्रह से एक या केवल आधी विकला भी न्यून अथवा दोनों ग्रहों का अंश समान हो तो पूर्ण मुशशिल योग होता है ॥ १८ ॥

शीघ्रो यदा भान्त्यलवस्थितः सन् मन्देऽग्रभस्थे निदधाति तेजः ।
स्यादित्थशालोऽयमथैष शीघ्रदीप्तांशकांशैरिह मन्दपृष्ठे ॥ १९ ॥
तदा भविष्यद्गणनांयमित्थशालं त्रिधैवं मुथशीलकथनमुः ।
लग्नेशकार्याधिपयोर्यथैष योगस्तथा कार्यमुशन्ति सन्तः ॥ २० ॥

कुन्तला — यदा शीघ्रः शीघ्रगतिग्रहः, भान्त्यलवस्थितः = राश्यन्तिमांशे वर्तमानः, सन्, अग्रभस्थे = अग्रिमराशिस्थिते मन्दे मन्दगतिग्रहे तेजः निदधाति, तदाऽयमित्थशालः स्यात् । अथ एषः शीघ्रगतिग्रहः स्वदीप्तांशाधिकांशैर्मन्दपृष्ठे स्थितः, तदानीं दृष्टयभावात् तदग्रिमसमये दीप्तांशाल्पान्तरसम्भवात् तदा भविष्यन्मुथशीलं गणनीयम् । एवं त्रिधा मुथशीलमाचार्या आहुः । वर्त्तमानं पूर्ण भविष्यच्चेति भेदात् ।

अथ मुथशीलयोगस्य फलकथनम् — यथा लग्नेशकार्याधिपयोर्योगस्तया सन्तः कार्यमुशन्ति । अर्थात् कार्यसिद्धिः स्यात् । पूर्णेत्थशाले पूर्णाकार्यसिद्धिस्तत्क्षणे एव । यदि भविष्यदित्थशालं तदा भाविनि समये कार्यसिद्धिर्वाच्येति ।

अत्र प्रश्नभेदेन भिन्नो भिन्नः कार्याधीशो भवति । यथा पुत्रप्राप्तिप्रश्ने यदि मेषलग्नं स्यात्तदा पञ्चमेशः सूर्यः कार्याधिपः । सहजलाभप्रश्ने तृतीयेशो बुधःकार्याधिपः । स्त्रीलाभप्रश्ने

सप्तमेशः शुक्रः कार्याधीशः मृत्युप्रश्नेऽष्टमेशः । राज्यप्राप्तिप्रश्ने कर्मेशः कार्याधीशः । अर्थाद्यद्यद्भावाद्यद्वस्तुविचारणीयमुक्तं तेष्वन्यतमप्रश्ने तद्भावाधीश एव कार्याधीश इति सिद्धम्। लग्नेशस्तु सर्वत्र तात्कालिकलग्नाधिपतिरेवेति ॥ १९—२० ॥

ज्योति — यदि शीघ्र गति ग्रह राशि के अन्तिम अंश में स्थित हो और मन्दगति ग्रह अग्रिम राशि में शीघ्रगति ग्रह के दीप्तांश की अवधि में बैठा हो तो शीघ्र गति ग्रह मन्दगति को तेज प्रदान करता है, यह इत्थशाल योग कहता है । अब भावी मुथशिल योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जब शीघ्रगति ग्रह अपने दीप्तांशों के तुल्य अंशों से मन्दगति ग्रह के पीछे बैठकर मन्दगति ग्रह को अपना तेज देना चाहता हो, तब भावी मुथशिल योग का लक्षण दीखता है । इस प्रकार तीन तरह के मुथशिल योग हुए । अब मुथशिल योग का फल बताते हुए कहते हैं कि लग्न का स्वामी और जिस भाव का प्रश्न किया जाए, उस भाव का स्वामी इन दोनों का योग होने पर ही मुथशिल योग होता है, ऐसा ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ कहते हैं ॥ १९—२० ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने आकर पूछा कि मुझे पुत्र, स्त्री तथा राज्य आदि का सुख प्राप्त होगा या नहीं । ऐसी दशा में उस समय के लग्न का स्वामी और स्त्री पुत्र आदि भाव के स्वामी, इनके इत्थशाल का विचार करके शुभाशुभ फल कहना चाहिए । पुत्र प्राप्ति का विचार पंचम भाव से, स्त्री प्राप्ति का विचार सप्तम भाव से, राज्य प्राप्ति का विचार दशम भाव से और किसी भी प्रकार के लाभ का विचार एकादश भाव से करना चाहिए । विचार करते समय लग्नेश तथा भावेश का जिस तरह मुथशिल योग होता हो, उसी के अनुसार फल कहना चाहिए । यदि उन दोनों में पूर्ण मुथशिल योग हो तो उस भाव का पूर्ण फल जानना चाहिए । यदि उन दोनों का भावी मुथशिल योग हो तो उस भाव का पूर्ण फल समझना चाहिए । यदि उन दोनों का भावी मुथशिल योग हो तो भविष्य में फल प्राप्त होने की बात कहनी चाहिए ।

लग्नेशकार्याधिपतत्सहाया यत्र स्युरस्मिन् पतिसौम्यदृष्टे ।
तदा बलाढ्यं कथवन्ति योगं विशेषतः स्नेहदृशाऽपि सन्तः ॥ २१ ॥

कुन्तला — लग्नेशकार्याधिपतत्सहायाः, लग्नेशः प्रश्नलग्नस्वामी, कार्याधिप इन्छितप्रष्टव्यविषयाश्रयीभूतराश्यधिपः, धनलाभप्रश्ने धनेशः । गृहलाभप्रश्ने चतुर्थेशः । पुत्रलाभप्रश्ने पञ्चमेश एवं कार्याधिपः । तत्सहायस्तत्तयोर्लग्नाधीशकार्याधीशयोः सहायः पोषको मित्रादिर्ग्रहस्ते यत्र यस्मिन् राशौ पतिसौम्यदृष्टे स्वामिशुभग्रहविलोकिते सति तदा बलाढ्यं प्रबलं योगं मुथशिलयोगं कथयन्ति । केवलं मुथशिलमेव सर्वेषां योगानामेतद्वैशिष्ट्यं विज्ञेयम् । तत्रापि यदि स्वामिशुभग्रहाभ्यां स्नेहदृष्टया मित्रदृशा (३। ५। ०९। ११) एतदन्यतमया दृशा दृष्टेर्विशेषतो बलाढ्यं योगं सन्तः सद्विज्ञाः कथयन्तीति ॥ २१ ॥

ज्योति — लग्नेश, कार्येश लग्नेश के सहायक अर्थात् मित्र और कार्येश के मित्र, ये चारों जिस राशि में हो और वह राशि अपने स्वामी तथा शुभ ग्रह से देखी जाती हो तो पूर्वोक्त मुथशिल बलवान् माना जाता है । यदि वह राशि अपने स्वामी तथा शुभ ग्रह द्वारा सस्नेह दृष्टि से देखी जाती हो तो उस मुथशिल योग को सन्तजन और भी उत्कृष्ठफलदायक कहते हैं ॥ २१ ॥

स्वर्क्षादिसत्स्थानगतः शुभैश्चेद्युतेक्षितोऽभूद्भविताऽथवाऽऽस्ते ।
तदा शुभं प्रागभवत्सुपूर्णमग्र भविष्यत्यथ वर्तते च ॥ २२ ॥

कुन्तला — यः कोऽपि योगकारको ग्रहः, लग्नाधीशः कार्यक्षेत्राधिपतिर्वा स्वर्क्षादिसत्स्थानगतः = निजराशिहोरादृक्वनवांशादि — शुभग्रहक्षेत्रांशागतः, शुभैः बुधगुरुशुक्र—चन्द्रैश्चेद्युतेक्षितो युतदृष्टोऽभूत् तदा सुपूर्णं शुभं फलं प्राक् पूर्वमभवत् ।

यदि शुभैर्युतेक्षितो भविता भावी तदा सुपूर्ण शुभं फलमग्ने भविष्यति । अथवा यदा तादृशो योग आस्ते सम्प्रति विद्यते तदा सुपूर्ण शुभं फलं वर्त्तते इति ॥ २२ ॥

ज्योति — यदि लग्नस्वामी और कार्य स्वामी । ये दोनों अपनी राशि, अपने उच्च, अपनी हद्दा, अपने त्रैराशिप तथा अपने नवांश में हों अथवा अच्छे घर में तथा शुभ ग्रह के स्थान में विद्यमान रहकर शुभ ग्रह से युंक्त या उनसे दृश्यमान हों तो पूर्वोक्त सम्पूर्ण शुभ फल प्राप्त हो चुका है, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश तथा कार्येश ये दोनों अपने उच्च, अपनी हद्दा, अपने त्रैराशिप तथा अपने नवांश में जाने वाने हों या शुभ ग्रहों के स्थानों में जाने वाले हों अथवा शुभ ग्रहों से युक्त होने वाले हों या उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ने वाली हो तो पूर्वोक्त शुभ फल आगे चल कर होगा, ऐसा कहे । जब लग्न का या कार्य का स्वामी अपनी राशि में अपने उच्च, अपनी हद्दा, अपने त्रैराशिप, अपने नवांश तथा शुभ ग्रहों के स्थानों में प्राप्त होकर शुभ ग्रहों से युक्त हों या उनसे देखे जाते हों तो पूर्वोक्त शुभ फल प्राप्त हो रहा है, ऐसा समझें ॥ २२ ॥

व्यत्यस्तमस्माद्विपरीतभावेऽथेष्टर्क्षतोऽनिष्टगृहं प्रपन्नः ।
अभूच्छुभं प्रागशुभ त्विदानीं संयातुकामेन च भावि वाच्यम् ॥ २३॥

कुन्तला — अस्मात् स्वर्क्षादिसत्स्थानात्, विपरीतभावे योगकरो ग्रहो भवेत्तदा शुभफलमपि व्यत्यस्तं कथिताद्विपरीतमर्थाद्शुभमेव वाच्यम् । अथ यदि योगकरो ग्रह इष्टर्क्षतः स्वमित्रोच्चादिक्षेत्रतः, अनिष्टगृहं = शत्रुपापक्षेत्रं, प्रपन्नः = प्राप्तः, तदा, यदेष्टक्षेत्रे आसीत्तदा शुभं, पश्चादनिष्टगृहे गते इदानीमनिष्टफलं वाच्यम् । अथ संयातुकामेन शुभक्षेत्रे गन्तुकामेन ग्रहेण भावि तत्फलं वाच्यमिति ॥ २३ ॥

ज्योति — पहले जो शुभ फल कह आये है, यदि उसके विपरीत भाव हों तो अनिष्टफल होता है जैसे कि लग्नेश तथा कार्येश अपने शत्रु के स्थान में, अपने से नीच

ग्रह के घर में, अपने शत्रु की हद्दा आदि में, पापग्रह के स्थान में अथवा पापग्रह से युक्त तथा दृश्यमान हों तो पहले ही अशुभ फल प्राप्त हो चुका है, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश तथा कार्येश दुष्ट स्थान में हो और पाप ग्रह से युक्त तथा दृश्यमान हों तो वर्त्तमान समय में हो अशुभ फल मिल रहा है, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश तथा कार्येश इष्ट स्थान में रहता हुआ अपनी मित्रराशि से शत्रु के घर में पहुँच गए हों तो शुभ फल पहले ही प्राप्त हो चुका ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश तथा कार्येश अपने मित्र के घर में हों, किन्तु आगे चलकर शत्रु के घर में जाने वाले हों तो अशुभ फल प्राप्त होने वाला है, ऐसा कहना चाहिए ॥ २३ ॥

अथ ईसराफयोगलक्षणमाह—

शीघ्रो यदा मन्दगतेरथैकमप्यंशमभ्येति तदेसराफः ।
कार्यक्षयो मूसरिफे खलोत्थे सौम्ये न हिल्लाजमतेन चिन्त्यम् ॥ २४ ॥

कुन्तला — शीघ्रः = शीघ्रगतिग्रहः, लग्नाधीशकार्याधीशयोरेकतरोऽधिकगतिग्रह इत्यर्थः । यदि मन्दगतेर्ग्रहस्य एकमप्यंशमभ्येति अभिक्रमति । अग्रे यातीत्यर्थः । तदा 'ईसराफः' एतत्संज्ञया प्रसिद्धो योगः, अयमेव गतेत्थशालयोगो ज्ञेयः । तत्र स्वलोत्थे = पापग्रहजनिते भूसरिफे योगे, कार्यक्षयः = इच्छितविषयवैफल्यं स्यात्, सौम्ये = शुभग्रहजनिते मूसरिफे न कार्यक्षयः, अर्थात्कार्यसिद्धिरेव भवति, इति हिल्लाजमतेन हिल्लाजनाम्नो यवनगणकस्य मतेन चिन्त्यम् ॥ २४ ॥

ज्योति — यदि किसी मन्द गति ग्रह के एक भी अंश में कोई शीघ्रगति ग्रह अतिक्रमण करके पहुँच जाय तो ईसराफ योग होता है, इसे मुसरिफ योग भी कहते हैं । किसी पापग्रह के घर में शीघ्र और मन्दगति वाले दोनों प्रकार के ग्रह आ पड़ें तो मुसरिफ योग होता है । इस प्रकार मुसरिफ योग में वांछित कार्य का नाश हो जाता है और ईसराफ योग में शुभ ग्रह होने से कार्य का नाश नहीं होता । यह हिल्लाज नाम के आचार्य का मत है ॥ २४ ॥

अथ नक्तयोगलक्षणकथनम्—

लग्नेशकार्याधिपयोर्नदृष्टिर्मिथोऽथ तन्मध्यगतोऽपि शीघ्रः ।
आदाय तेजो यदि पृष्ठसंस्थान्यसेदथान्यत्र हि नक्तमेतत् ॥ २५ ॥

कुन्तला — लग्नेशकार्याधिपयोर्मिथो दृष्टिर्न भवेदर्थात्तयोरेकतरस्मादन्यतरषष्टाष्टम–द्वितीय– द्वाद्रशान्यतमस्थानस्थितो भवेत्, अथ तन्मध्यगतः = तत्तयोर्लग्नाधीशकार्याधीशयोर्मध्ये गतो वर्त्तमानः शीघ्रगतिग्रहः पृष्ठसंस्थान्यूनग्रहात् तेज आदाय अन्यत्र पुरःस्थग्रहोपरि न्यसेदर्पयेत्तेदा एतत् नक्तं नक्तनामको योगः स्यात् । अत्र सर्वत्र स्वदीप्तांशमध्ये यदि शीघ्रग्रहान्मन्दग्रहोऽ–

धिकोभवति, तदा शीघ्रो मन्दस्य तेजोदाता मन्दः शीघ्रस्य तेजोहरो ज्ञेयः । दीप्तांशमध्ये शीघ्रग्रहान्यूनांशे मन्दग्रहे शीघ्रो मन्दस्य तेजोहरः मन्दः शीघ्रस्य तेजोदाता ज्ञेयः ।। २५।।

ज्योति — यदि लग्न के स्वामी और कार्य के स्वामी, इन दोनों की दृष्टि परस्पर न पड़ती हो और लग्नेश तथा कार्येश इन दोनों के मध्य में कोई शीघ्र गति वाला ग्रह स्थित हो तो वह पीछे बैठे हुए शीघ्रगति वाले ग्रह से तेज लेकर आगे बैठे हुए मन्दगति ग्रह को प्रदान करता हो तो यह नक्तयोग कहाता है ।। २५ ।।

अथ नक्तयोगस्योदाहरणम्—

स्त्रीलाभपृच्छातनुरस्ति कन्या स्वामी बुधः सिंहगतो दशांशैः ।
सूर्योंशकैर्देवगुरुः कलत्रे दृष्टिस्तयोर्नास्ति मिथोऽथ चन्द्रः ।। २६ ।।
चापे वृषे चोभयदृश्यमूर्तिः शीघ्रोऽष्टभागैरथवा भवांशैः ।
आदाय तेजो बुधतो ददौ यज्जीबाय लाभः परतः स्त्रिया स्यात् ।। २७ ।।

कुन्तला — स्त्रीलाभो मम भविष्यति नवेति पृच्छायां प्रश्ने तनुर्लग्नं यथा कन्या राशिरस्ति—तदा । अस्य स्वामी बुधः, दशांशैर्दशभिरंशैः सिंहराशिगतः, तदा कार्याधीशः कन्याराशितः सप्तमेशो मीनराशीशो देवगुरुर्बृहस्पतिः कलत्रे सप्तमेऽर्थान्मीनराशौ सूर्यांशकैर्द्वादशभिरंशैरूपलक्षितस्तिष्ठेत् । अत्र सिंहस्यबुधात् मीनस्थगुरुरष्टमेऽतः षट्काष्टके दृष्ट्यभावात् तयोर्मियो दृष्टिर्नास्ति । अथ तयोर्भिन्नः उभयदृश्यमूर्तिर्बुधगुरुदृष्टः शीघ्रः बुधगुर्वपेक्षया शीघ्रगतिग्रहचन्द्रः, चापे धनुषि अष्टभागैर्वा वृषे भवांशैरेकादशांशैरुपलक्षितः सन् बुधतः पृष्ठसंस्थात् तेज आदाय जीवाय पुरोवर्त्तिने यद्ददौ, तस्मात् कारणात् परतः अन्यसाहाय्यात् स्त्रिया लाभः स्यात्, अर्थात्स्वबुद्धिबलेन नहि स्त्रीलाभः ।। २६—२७ ।।

ज्योति — अब नतयोग का उदाहरण बताते हुए कहते हैं कि जैसे किसी ने आकर पूछा कि मुझे स्त्री मिलेगी या नहीं ? मान लो प्रश्न के समय कन्या लग्न है । उसका स्वामी बुध दस अंशों से उपलक्षित होता हुआ द्वादश स्थान की सिंह राशि में बैठा हुआ है और कार्येश बृहस्पति बारह अंशों से उपलक्षित होते हुए कलत्रभाव अर्थात् सातवें घर में विद्यमान है । यहाँ लग्नस्वामी बुध और कार्यस्वामी बृहस्पति इनके छठें और आठवें स्थान में पड़ जाने के कारण परस्पर दृष्टि नहीं पड़ रही है । चन्द्रमा शीघ्र गति ग्रह है और वह बुध तथा बृहस्पति के मध्य में विद्यमान रहता हुआ धनु या वृष राशि में पड़ा है । इस को उपर्युक्तत दोनों ग्रह देख रहे हैं । यह चन्द्रमा आठ या ग्यारह अंशों से उपलक्षित होकर बुध का तेज अर्थात् सामर्थ्य लेकर बृहस्पति को प्रदान करता है । इस योग में लग्नेश बुध का तेज हरण हो रहा है अतएव स्त्री की प्राप्ति स्वतः नहीं होगी । बीच में बैठे हुए तृतीय शीघ्रगति ग्रह चन्द्रमा ने लग्नेश का तेज हर कर मन्द गति ग्रह बृहस्पति को दे दिया है । इस कारण किसी मध्यस्थ मनुष्य के द्वारा स्त्री का लाभ होगा, ऐसा कहना चाहिए ।। २६—२७ ।।

अथ यमयायोगलक्षणकथनम्—

अन्तःस्थितो मन्दगतिस्तु पश्येद्दीप्तांशकैर्द्वावथ शीघ्रतस्तु ।
नीत्वा महो यच्छति मन्दगाय कार्यस्य सिद्ध्यै यमयः प्रदिष्टः ॥ २८ ॥

कुन्तला — यदिमन्दगतिर्ग्रहः, लग्नेशकार्येशयोरन्तःस्थितः, मध्ये वर्त्तमानः, सन् द्वौ लग्नेशकार्येशौ पश्येत्, अथ लग्नेशकार्येशयोर्योऽधिकगतिः ततः शीघ्रतः महस्तेजो नीत्वाऽऽदाय मन्दगाय मन्दगतिग्रहाय यच्छति, एवं यमयः कार्यस्य सिद्धचै प्रदिष्टः ॥ २८ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश और कार्येश इन दोनों की परस्पर दृष्टि न पड़ती हो अर्थात् लग्नेश की दृष्टि कार्येश पर और कार्येश की दृष्टि लग्नेश पर न पड़ती हो तथा इन दोनों के बीच में बैठा हुआ मन्दगति ग्रह अपने दीप्तांशों से लग्नेश तथा कार्येश को स्थानदृष्टि से देखता हो और वह मन्द गति ग्रह शीघ्र गति ग्रह का तेज लेकर मन्दगति ग्रह को अर्पण करता हो तो इसे यमया योग कहते है । यह योग वांछित कार्य सिद्ध करता है ॥ २८ ॥

अथ यमयायोगोदाहरणकथनम्—

राज्याप्तिपृच्छातुललग्ननाथो मेषे सितस्त्वष्टिलवैर्वृषस्थः ।
चन्द्रो रसांशैर्यदि राज्यनाथो दृष्टिस्तयोर्नास्ति गुरुस्तु मन्दः ॥ २९॥
दिगंशकैः कर्कगतस्तु पश्यन्नुभौ महो दीप्तलवैः स चान्द्रम् ।
ददौ सितायेति पदस्य लाभोऽमात्येन भावीति विमृश्य वाच्यम् ॥ ३०॥

कुन्तला — राज्यप्राप्तिप्रश्ने यदि तुलालग्नं स्यातत्रः सितः शुक्रः, अष्टिलवैः षोडशांशैर्मेषे स्थितः । तत्र कार्यं राज्यप्राप्तिः, तद्दशमभावाद्विचारणीयम्, तत्र प्रश्न लग्नात्तुलातो दशमः कर्कः, अतस्तत्स्वामी राज्याधिपतिः चन्द्रः रसांशैः षडंशैर्वृषस्थः । अत्र तयोर्लग्नेशकार्येशयोः शुक्रचन्द्रयोर्द्विर्द्वादशस्थानस्थितत्त्वेन मिथो दृष्टिर्नास्ति, तत्र चन्द्रशुक्रापेक्षया मन्दगतिग्रहः गुरुर्दिगंशकैदेशांशैः कर्कगतः सन् उभौ लग्नेश कार्येशौ पश्यन्, दीप्तलवैः स्वदीप्तांशैः नवनिरंशैः स चान्द्रं चन्द्रसम्बन्धि तेजः सिताय शुक्राय ददौ । इति हेतोः अमात्येन मन्त्रिणा पदस्य राज्यस्थानस्य लाभौ भावीति विमृश्य कथनीयम् ॥ २९—३०॥

ज्योति — किसी ने पूछा कि मुझे राज्य मिलेगा या नहीं ? इस अवसर पर प्रश्नलग्न तुला है । तुला राशि का स्वामी शुक्र आठ अंशों से उपलक्षित होकर मेष अर्थात् सप्तम स्थान में बैठा हुआ है । राज्येश चन्द्रमा छ अंशों से उपलक्षित होकर वृष अर्थात् आठवें स्थान में बैठा है । यहां लग्नेश और कार्येश की परस्पर दृष्टि नहीं है । मन्दगति ग्रह बृहस्पति दश अंशों से उपलक्षित होकर चक अर्थात् दशम स्थान में बैठद । लग्नेश और

कार्येश को स्थानदृष्टि से देखता हुआ चन्द्रमा तथा शुक्र से अधिक दीप्तांशों द्वारा चन्द्रमा का तेज लेकर शुक्र को प्रदान करता है । इस कारण प्रश्नकर्ता को मंत्री द्वारा राज्य की प्राप्ति होगी, ऐसा कहना चाहिए ।। २९–३० ।।

अथ मणऊयोगलक्षणकथनम्—

वक्रः शनिर्वा यदि शीघ्रखेटात्पश्चात्पुरस्तिष्ठति तुर्यदृष्ट्या ।
एकर्क्षसप्तर्क्षभुवा दृशा वा पश्यन्नथांशैरधिकोनकैश्चेत् ।। ३१।।
तेजो हरेत्कार्यपदेत्थशाली स्थितोऽपि वाऽसो मणऊ शुभो न ।

कुन्तला —— वक्रः = कुजः, वाशनिः, शीघ्रखेटात् = शीघ्रंगतिग्रहात्, पश्चात्, वा पुरः = अग्रे, तिष्ठति। तुर्यदृष्टया = चतुर्थदृष्ट्य = गुप्तारिभावाख्ययेति भावः । वा एकर्क्षसप्तर्क्षभुवा = प्रथमसप्तमस्थानदृष्टया = शत्रुदृष्टया, अधिकोनकैरंशैः शीघ्रग्रहतोऽ–धिकांशैः किन्तु तद्दीप्तांशाल्पैरंशेः शीघ्रग्रहस्य तेजो हरेत्तथा भौमशन्योर्मध्ये एकतरः कार्यपदेत्थशाली = इष्टकार्य—— स्थानेशग्रहेत्थशालयोगवान् स्थितश्चेद्भवति, तदाऽसौ मणऊयोगः स्यात्, स शुभो न ।। ३१ ।।

ज्योति —— मणउ योग में लग्नेश तथा कार्येश की परस्पर स्थानदृष्टि अवश्य होनी चाहिए । यदि शीघ्रगति ग्रह से मङ्गल तथा शनैश्चर पीछे या आगे बैठे हों अर्थात् लग्नेश तथा कार्येश इन दोनों में जो शीघ्रगति वाला ग्रह हो, उसके अंशादि से पूर्व या परभाग में अपने अंशों से युक्त वक्र भौम तथा शनि बैठा हो वह भौम एवं शनि चतुर्थ, प्रथम तथा सप्तम स्थान की दृष्टि द्वारा अधिक या न्यून अंशों से देखता हुआ शीघ्रगति ग्रह का तेज हरण करे और निर्बल शीघ्रगति ग्रह कार्येश के स्थान के स्वामी के साथ मुथशिल योग करता हुआ विद्यमान रहे तो उसे मणउ योग कहेंगे । यह मणउ योग शुभदायक नहीं होता ।। ३१।।

अथ मणऊयोगोदाहरणम्—

स्त्रीलाभपृच्छा तनुरस्ति कन्याऽत्र ज्ञो दिगंशैस्तिथिभिः सुरेज्यः ।। ३२।।
कलत्रगः खेऽवनिजो भवांशैः पूर्वे बुधो भौमहृतस्वतेजाः ।
जीवेन पश्चान्मिलतीति लाभो नार्यास्तु नो पृष्ठगतेऽथवाऽस्मिन् ।। ३३।।

कुन्तला —— स्त्रीलाभपृच्छातनुः = स्त्रीलाभविषयकप्रश्नलग्नं, कन्याराशिर्यथाऽस्ति, तदीशः, ज्ञो बुधः, दिगंशैरत्र कन्यायां विद्यते, सुरेज्यः == गुरुः, तिथिभिः = पञ्चदशभिरंशैः कलत्रगः = सप्तमस्थानगतः, अर्थान्मीनराशिगतोऽस्ति, अवनिजः = कुजः, भषांशैः = एकादशांशैः, खे = दशमे, अर्थान्मिथुनेऽस्ति । अत्र स्थितौ पूर्वं भौमहृतस्वतेजा बुधः पश्चाज्जीवेन गुरुणा सह मिलति । इति हेतोर्नार्याः स्त्रिया लाभो नो भवेत् । अथवा

उक्तयोगेऽस्मिन् कुजे पृष्ठगते अर्थात् बुधापेक्षयाऽल्पेंऽशे भौमः स्यात्तथापि मणऊयोगः स्यात् । अयं योगः कार्यसाधको नेति ज्ञेयम् ।। ३२–३३।।

ज्योति — उदाहरण जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे स्त्री मिलेगी या नहीं ? मान लो कि इस समय कन्या लग्न है । इसका स्वामी बुध दस अंशों से उपलक्षित होकर लग्न में विराजमान है और बृहस्पति पन्द्रह अंशों से उपलक्षित होकर मीन अर्थात् सप्तम स्थान पर विराजमान है । भौम ग्यारह अंशों से उपलक्षित होकर दसम स्थान में बैठा हुआ है । इस स्थिति में भौम चतुर्थ स्थान की दृष्टि से बुध को देखता है । वह एक अन्श से अधिक होकर आगे चला गया और उसने बुध का तेज हर कर उसे पीछे कर दिया और शीघ्र गति ग्रह होने के कारण कार्येश बृहस्पति से योग कर लिया है । इसलिए प्रश्नकर्ता को स्त्री प्राप्ति नहीं होगी । मणउ योग यह एक प्रकार हुआ । दूसरा प्रकार यह है कि पूर्वोक्त रीति से स्थित बुध के अंशों की अपेक्षा न्यून अंशों से युक्त मङ्गल पृष्ठगत हो तो भी सर्वकर्मनाशक मणउयोग होता है ।। ३२–३३ ।।

अथवा मणऊयोगोदाहरणभेदकथनम् —

यदीत्थशालोऽस्त्युभयोः स्वदीप्तहीनाधिकांशैः शनिभूसुतौ चेत् ।
एकर्क्षगौ लग्नपकार्यपोः स्तस्तेजोहरौ कार्यहरौ निरुक्तौ ।। ३४ ।।

कुन्तला — यदि उभयोर्लग्नेशकार्येशयोरित्थशालोऽस्ति, तत्र चेत् = यदि एकर्क्षगौ = एकराशिगतौ शनिभूसुतौ = शनिकुजौ स्वदीप्तहीनाधिकांशैर्लग्नपकार्यपोस्तेजोहरौ, अतस्तौ कार्यहरौ निरुक्तौ कथितौ ।। ३४।।

ज्योति — यदि लग्नेश और कार्येश इन दोनों का मुथशिल योग हो और शनि तथा मङ्गल ये दोनों एक राशि में बैठे हों और लग्नेश तथा कार्येश के दीप्तांश की अपेक्षा न्यून या अधिक दीप्तांश शनि मङ्गल का होकर मध्य में हो तो वे लग्नेश और कार्येश का तेज हरण करते हुए वांछित का नाश करते हैं, ऐसा विद्वानों का कहना है ।। ३४ ।।

अथोदाहरणम्—

राज्याप्तिपृच्छातुलग्ननाथः कर्कः सितोंशैस्तिथिभिर्दिगंशैः ।
वृषे शशी भूपलवैः कुजश्च हरन् द्वयोर्भा हरन् द्वयोर्भां हरते च राज्यम् ।। ३५ ।।

कुन्तला — राज्याप्तिपृच्छातुललग्ननाथः = राज्यलाभप्रश्नकालिकतुलालग्नेशः सितः= शुक्रः, तिथिभिः = पञ्चदशभिः, अंशैः, कर्के स्थितः । शशी = चन्द्रः दिगंशैर्दशभिरंशैः, तथा कुजो मङ्गलः, भूपलवैः चकाराच्छनिश्च षोड़शांशैः । तदा कुजो द्वयोर्लग्नेशकार्येशयोर्वा तेजो हरन् राज्यं हरते ।। ३५।।

ज्योति — यदि कोई पूछे कि मुझे राज्य मिलेगा या नहीं ? मान लो कि उस समय तुला लग्न है । तुला का स्वामी शुक्र पन्द्रह अंशों से उपलक्षित होकर कर्क अर्थात् दशम स्थान पर बैठा हुआ है और मङ्गल सोलह अंशों से उपलक्षित है और शनि भी सोलह की अंशों से उपलक्षित है । भौम लग्नेश तथा कार्येश का इत्शाल होकर मुथशिल योग पड़ रहा है तो वे दोनों लग्नेश तथा कार्येश का तेज हरण करते हैं। इससे कहना चाहिए कि प्रश्नकर्ता राज्य नहीं पायेगा ।। ३५।।

अथ कबूलयोगस्य सामान्यलक्षणकथनम्—

लग्नकार्येशयोरित्थशालेऽन्त्रेन्द्वित्थशालतः ।
कबूलं श्रेष्ठमध्यदिभदैर्नानाविधं स्मृतम् ।। ३६ ।।

कुन्तला — लग्नकार्येशयोः = लग्नाधिपतिकार्याधिपयोः, इत्थशाले, मुथशिले, सति । अत्र तयोरेकतरेण सह इन्द्वित्यशालतः = चन्द्रस्येत्थशालतः, श्रेष्ठमध्यादिभेदैः = उत्तम मध्यसाधमभेदैर्नानाविधं = षोडशप्रकारकं कबूलं स्मृतम् । कबूलं = स्वीकारबोधकम् ।। ३६।।

ज्योति — कम्बूल योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं— यदि लग्नेश तथा कार्येश इन दोनों का परस्पर इत्थशाल योग हो और इनमें से किसी एक के साथ चन्द्रमा भी इत्थशाल योग करे तो उत्तम, मध्यम आदि भेदों से अनेक प्रकार का कम्बूल योग होता है । यह कम्बूल योग लग्नेश, कार्येश और चन्द्रमा के चतुर्विध योग होता है । यह कम्बूल योग लग्नेश, कार्येश और चन्द्रमा के चतुर्विध अधिकार भेद से सोलह प्रकार का होता है । जैसे — १ उत्तमोत्तम, २ उत्तममध्यम, ३ उत्तम, ४ उत्तमाधम, ५ मध्यमोत्तम, ६ मध्यममध्यम, ७ मध्यम ८ मध्यमाधम ९ उत्तम, १० मध्यम, ११ मध्यममध्यम १२ अधम १३ अधमोत्तम, १४ अधममध्यम १५ अधम १६ अधमाधम । अपने घर और अपने उच्च में लग्नेश तथा कार्येश के रहने पर उत्तम अपनी हद्दा और अपनी नवांश अधिकार में मध्यम और अपने शत्रु तथा नीच स्थान में लग्नेश और कार्येश के रहने पर अधम कम्बूल होता है ।। ३६।।

स्पष्टता के लिए चक्र देखें—

चन्द्रः	ल०प०का०प०	ल०प०का०प०	ल०प०का०प०	ल०प०का०प०	समाधिकार
उत्तमाधिकार	उ०अ०	उ०अ०	म०अ०	अ०अ०	स० अधिकार
मध्यमाधिकार	उ०अ०	उ०अ०	म०अ०	अ०अ०	स० अधिकार
अधमाधिकार	उ०अ०	उ०अ०	म०अ०	अ०अ०	स० अधिकार
समाधिकार	उ०अ०	उ०अ०	म०अ०	अ०अ०	स० अधिकार

तत्रोत्तमोत्तमकबूलकथनम्—

यदीन्दुः स्वगृहोच्चस्थस्तादृशौ लग्नकार्यपौ ।
इत्थशाली कबूलं तदुत्तमोत्तममुच्यते ।। ३७ ।।

कुन्तला — यदि इन्दुः = चन्द्रः, स्वगृहोच्चस्थः = कर्कवृषान्यतमराशिगतः, लग्नकार्यपौ = तादृशौ, किन्तु स्वगृहोच्चस्थौ । तत्र तयोरन्यतरेण केनापि सह चन्द्र इत्थशाली = इत्थशालयोगकर्त्ता, तदा तत् कबूलम्, उत्तमोत्तमम्, उच्यते ।। ३७।।

ज्योति — अब उत्तमोत्तम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा अपनी राशि तथा अपने से उच्च स्थान में स्थित हो और लग्न स्वामी तथा कार्यस्वामी दोनों अपने घर तथा अपने उच्च स्थान में स्थित होकर परस्पर इत्थशाल करें और चन्द्रमा इन्हीं में से किसी के साथ इत्थशाल करे तो वह उत्तमोत्तम कम्बूल योग कहा जाता है । क्योंकि तीनों को उत्तम अधिकार प्राप्त है । उपर्युक्त सोलह अधिकारियों में से यह प्रथम भेद है ।

अपने हद्दा, अपने द्रेष्काण तथा अपने नवांश में लग्नेश तथा कार्येश हों और वे दोनों परस्पर इत्थशाल करते हों और यदि चन्द्रमा अपने घर तथा अपने उच्च स्थान में स्थित होकर कार्येश के साथ इत्थशालयोग करे तो उत्तम मध्यम कम्बूल होता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा को उत्तम अधिकार प्राप्त है । और लग्नेश तथा कार्येश को मध्यम अधिकार प्राप्त है ।। ३७ ।।

उदाहरण — जैसे किसी ने पूछा कि मेरा भाग्योदय होगा या नहीं ? मान लो कि उस समय तुला लग्न है । उसका स्वामी शुक्र दस अंशों से युक्त होकर दसवें स्थान और अपनी हद्दा में स्थित है । भाग्यभाव का स्वामी बुध १४ अंशों से युक्त होकर सप्तम स्थान तथा अपनी हद्दा में स्थित है । इन दोनों का परस्पर मुथशिल योग है । यहाँ चन्द्रमा १८ अंशों से युक्त होकर अपने घर अर्थात् कर्कराशि में स्थित होकर कार्येश के साथ इत्थशाल करता है, इस लिए यह उत्तम–मध्यम नाम का कम्बूल योग हुआ । इसलिये कहना चाहिये कि पहले भाग्य की अधिक वृद्धि होगी और इसके बाद मध्यम । यह कम्बूल योग का दूसरा भेद हुआ ।

यदि लग्नेश तथा कार्येश उत्तम मध्यम और अधम अधिकार से हीन हों और उनके साथ मुथशिलयोग करता हुआ चन्द्रमा अपने घर या उच्च स्थान में बैठा हुआ इत्थशाल योग करे तो उत्तम कम्बूल योग होता है । क्योंकि यहाँ केवल चन्द्रमा को उत्तम अधिकार प्राप्त है और लग्नेश तथा कार्येश का अधिकार समान है ।। ३७ ।।

अथ मध्यमोत्तमस्य, उत्तमस्य च लक्षणकथनम्—

स्वीयहद्द्रिक्काणांकभागस्थेनेत्थशालतः ।
मध्यमोत्तमकम्बूलं हीनाधिकृतिनोत्तमम् ।। ३८।।

कुन्तला — यदि स्वीयहद्वाद्रेष्काणनवांशस्थितेन अन्योन्यं कृतममुथशिलेन लग्नकार्येशयोरन्यतरग्रहेण सह इत्थशालतः मध्यमोत्तमकबूलं भवति । तथा स्वगृहोच्चगतस्य चन्द्रस्य हीनाधिकृतिना = लग्नकार्येशान्यतरेण, इत्थशालत उत्तमं कबूलं भवति ॥ ३८॥

ज्योति — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे राज्य प्राप्त होगा या नहीं ? उस समय मिथुन लग्न है । लग्न का स्वामी बुध सम घर में स्थित है और राज्यभाव का स्वामी बृहस्पति अपने समगृह अर्थात् कन्या राशि में स्थित है । इस प्रकार तीनों ग्रहों का मुथशिल योग होते हुए उत्तम नाम का कम्बूल योग हुआ । इस योग में प्रश्नकर्ता को उत्तम राज्यप्राप्ति कहनी चाहिये । कम्बूल योग का यह तृतीय भेद हुआ ॥ ३८॥

अथोत्तमाधमकंबूल—मध्यमोत्तमकंबूल—मध्यमध्यमकंबूललक्षणकथनम्—

उत्तमाघमता नीचरिपुगेहस्थितेन चेत् ।
स्वद्रेक्काणांशगश्चन्द्रः स्वभोच्चस्थेत्थशालकृत् ॥ ३९॥
मध्यमोत्तममेतच्च पूर्वस्मान्न विशिष्यते ।
स्वहद्वादिपस्थेन कंबूलं मध्यमध्यमम् ॥ ४०॥

कुन्तला — यदि स्वगृहोच्चस्थस्य चन्द्रस्य नीचरिपुगेहस्थितेन लग्नेशकार्येशयोरन्य-तरेणेत्थ शालत उत्तमाधमता स्यात् । तथा स्वद्रेष्काणांशगश्चन्द्रः स्वभोच्चस्थेन तयोरन्यतरैणेत्थशालं करोति तदा मध्यमोत्तमं कबूलं स्यात् । इदं पूर्वस्मात् ३८ श्लोकोक्तान्न विशिष्यते, तत्तुल्यमेवेत्यर्थः ।

यदि स्वद्रेष्काणनवांशगतस्य चन्द्रस्य स्वहद्वादिपदस्येन तयोरन्यतरेणेत्थशालतः मध्यमध्यमं कबूलं स्यात् ॥ ३९—४०॥

ज्योति — अब उत्तमाधम कम्बूल योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नेश तथा कार्येश ये दोनों अपने नीच अथवा शत्रु की राशि में रहते हुए परस्पर मुथशिल योग करें और चन्द्रमा अपने घर तथा अपने उच्च स्वर में प्राप्त होकर लग्नेश तथा कार्येश इनमें से किसी के साथ इत्थशाल करे तो यह उत्तमाधम कम्बूल कहाता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा को उत्तम और लग्नेश तथा कार्येश को अधम अधिकार प्राप्त है ॥ ३९—४० ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे स्त्री प्राप्त होगी या नहीं ? उस समय तुला लग्न है और उसका स्वामी १० अंशों से युक्त होकर कन्या राशि में स्थित है और स्त्रीभाव का स्वामी १५ अंशों से युक्त होकर अपने से नीच कर्क राशि में स्थित है और चन्द्रमा १२ अंशों से युक्त होकर अपने से नीच कर्क राशि में स्थित है और चन्द्रमा १२ अंशों से युक्त होकर अपनी कर्कराशि में विराजमान है । इनका परस्पर इत्थशाल योग है । अतएव यह उत्तमाधम नामक कम्बूल योग कहलाता हैं । इस योग में कुछ कठिनाई से स्त्रीप्राप्ति की बात कहना चाहिए, यह कम्बूल योग का चौथा भेद है ।

अब मध्यमोत्तम कम्बूल का लक्षण बताते हुए-कहते हैं कि यदि चन्द्रमा अपने द्रेष्काण या नवांश में स्थित होकर अपने से उच्च, अपने घर या अपने से उच्च राशि में विद्यमान और मुथशिल योग को प्राप्त लग्नेश या कार्येश के साथ इत्थशाल योग करता हो तो उसे मध्यमोत्तम नामक कम्बूल योग कहते हैं । क्योंकि इससे चन्द्रमा को मध्यम अधिकार प्राप्त है और लग्नेश तथा कार्येश उत्तमाधिकार को प्राप्त है । यह मध्यमोत्तम कम्बूल पूर्वोक्त उत्तम मध्यम कम्बूल की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं रखता ।

उदाहरण — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे स्त्री–प्राप्ति होगी या नहीं ? उस समय तुला लग्न है । उसका स्वामी शुक्र २४ अंशों से युक्त होकर अपने घर में बैठा है । उससे सप्तम भाव मेष का स्वामी भौम २८ अंशों से युक्त होकर अपने घर अर्थात् मेष राशि में बैठा है और चन्द्रमा वृष तथा कर्कराशि को त्याग और २२ अंशों से युक्त होकर मकर के नवांश में विद्यमान है और इनमें परस्पर मुथशिलयोग है । अतएव यह मध्यमोत्तम नामक कम्बूल योग कहाता है, इन योग में प्रश्नकर्ता को उत्तम स्त्री प्राप्त होगी ।

अब मध्यमध्यम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं अपनी हद्दा, अपने द्रेष्काण अथवा अपने नवांश में स्थित लग्नेश तथा कार्येश परस्वर मुथशिल योग करते हों और चन्द्रमा अपने द्रेष्काण तथा अपने नवांश में स्थित होकर मुथशिल योग कराता हो तो उसे मध्यमध्यम कम्बूल कहते हैं । क्योंकि इसमें सबको मध्यम अधिकार प्राप्त है ।

उदाहरण — जैसे किसी ने पूछा कि मेरे कोई सन्तति होगी या नहीं ? उस समय मिथुन लग्न है । मिथुन लग्न का स्वामी बुध ८ अंशों से युक्त होकर अपनी हद्दा अर्थात् तुला राशि में बैठा हुआ है । सुतभवन का स्वामी शुक्र ८ अंशों से युक्त होकर मिथुन राशि मे बैठा है । चन्द्रमा कर्क राशि, प्रथम द्रेष्काण तथा अपने नवांश में बैठा है । इन तीनों का परस्पर मुथशिल योग है । अतएव यह मध्यमध्यम कम्बूल योग है । इस योग में प्रश्न करने वाले से प्रयत्न करने पर सन्तति प्राप्त होने की बात कहनी चाहिए ॥ ३९–४०॥

अथ मध्यमकबूललक्षणकथनम्—

कबूलं मध्यमं च स्याद्धीनाधिकृतिखेटजम् ।
मध्यमाथमकंबूलं नीचारिभगखेटजम् ॥ ४१ ॥

कुन्तला — हीनाधिकृतिखेटज = हीनाधिकार ग्रहजनितं मध्यमं कबूलं स्यात्। नीचारिभगखेटकं = नीचशत्रुग्रहगृहगतग्रहजनितं मध्यमाधमकंबूलं स्यात् ॥ ४१ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश अपना उत्तम तथा मध्यम अधिकार त्याग कर सम अधिकार को प्राप्त हो और लग्नाधीश तथा कार्येश में परस्पर इत्थशाल योग हो एवं चन्द्रमा मध्यम अधिकार को प्राप्त होकर उन दोनों के साथ इत्थशाल करता हो तो उसे मध्यम कम्बूल कहेंगे । क्योंकि इसमें चन्द्रमा को मध्यम अधिकार प्राप्त है और लग्नेश तथा कार्येश समान अधिकारी हैं ॥ ४१ ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने पूछा कि मुझे सन्तति प्राप्त होगी या नहीं? उस समय वृष लग्न है । वृष का स्वामी शुक्र ४ अंशों से युक्त होकर अपनी हद्दा और मकर राशि में विराजमान है । पंचम भाव का स्वामी बुध ५ अंशों से युक्त होकर अपने समान हद्दा अर्थात् तुला राशि में विराजमान है । चन्द्रमा अंशों से युक्त होकर अपने द्रेष्काण अर्थात् कर्क राशि में बैठा हुआ है । इनमें परस्पर मुथशिल योग है । इसलिए यहां मध्यम कम्बूल योग है । इससे कहा जायगा कि कठिनाई से सन्तान की प्राप्ति होगी ।। ४१ ।।

अथापरमुत्तमकबूललक्षणकथनम्—

इन्दुः पदोनः स्वर्क्षोच्च स्थितेनाप्युत्तमं तु तत् ।
स्वहद्दादिगतेनापि पूर्ववन्मध्यमुच्यते ।। ४२ ।।

कुन्तला — पदोनः स्वभोच्चाद्यधिकारहीन इन्दुश्चन्द्रः स्वर्क्षोच्चस्थितेन लग्नाधीशकार्याधीशयोरन्यतरेण इत्थशाली तदाऽपि उत्तमं तत् कबूलं स्यात् । तादृशश्चन्द्रः स्वहद्दादिगतेन तयोर्लग्नाधीशकार्याधीशयोरन्यतरेणेत्थशाली तदा पूर्ववन्मध्यमं कबूलं स्यात् ।। ४२ ।।

ज्योति — अब उत्तम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा अपने घर, अपने से उच्च, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश, अपने से नीच, अपने शत्रु तथा अपने क्षेत्ररूपी अधिकार से हीन होकर सम आदि गृहों में बैठा हो और अपनी राशि या अपने से उच्च घर में बैठे हुए लग्नेश तथा कार्येश परस्वर मुथशिल योग करते हों तो उत्तम कम्बूल योग होता है । क्योंकि इसमें चन्द्रमा को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और लग्नेश तथा कार्येश को उत्तम अधिकार प्राप्त है ।। ४२ ।।

उदाहरण — जैसे किसी ने धन सम्बन्धी प्रश्न किया । उस समय तुला लग्न है । लग्न का स्वामी शुक्र अपने घर में बैठा हुआ है । धनभाव का अधिपति अपने से उच्च मकर राशि में विराजमान है । चन्द्रमा समान द्रेष्काण अर्थात् मिथुन राशि में बैठा है । इनमें परस्पर मुथशिल योग है । अतएव इसे उत्तम कम्बूल योग कहेंगे । इस समय प्रश्न करने वाले से कहना चाहिए कि धनप्राप्ति अवश्य होगी । इसके बाद मध्यम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नाधीश तथा कार्याधीश अपनी हद्दा, अपने द्रेष्काण तथा अपने नवांश में बैठकर परस्पर मुथशिल योग करता हो, अथवा चन्द्रमा ही मुथशिल योग हो तो मध्यम कम्बूल होता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा अधिकाररहित है । इस कारण लग्नेश और कार्येश मध्यमाधिकारी हो गए हैं । यह भी पूर्वोक्त मध्यम कम्बूल के समान ही फलदायक है ।

उदाहरण — जैसे किसी ने धनलाभविषयक प्रश्न किया तो उस समय तुला लग्न है । तुला का स्वामी शुक्र १० अंशों से सिंहराशि एवं अपनी हद्दा में विद्यमान है । धनलाभ का अधिपति मङ्गल २२ अंशों से उपलक्षित होकर धनराशि एवं अपनी हद्दा में

बैठा हुआ है । चन्द्रमा १० अंशों से उपलक्षित होकर मिथुन राशि एवं अपने मध्यम द्रेष्काण में बैठा है । यहाँ लग्नाधीश कार्याधीश तथा चन्द्रमा का परस्पर इत्थशाल है । इसीलिए यह मध्यम कम्बूल कहा जायगा । इससे कहा जायगा कि प्रश्नकर्ता को मध्यम धन लाभ होगा ॥ ४२ ॥

अथ पुनर्मध्यमकबूललक्षणकथनम्—

पदोनेनापि मध्य स्यादिति युक्तं प्रतीयते ।
नीचारिस्थेनेत्थशालेऽधमकंबूलमुच्यते ॥ ४३ ॥

कुन्तला — समाधिकारी चन्द्रः पदोनेन = स्वर्क्षादिपदरहितेन लग्नाधीशकार्याधीश–योरन्यतरेण सहेत्थशाली तदा मध्यमं कबूलं स्यादिति युक्तं समीचीनं प्रतीयते = ज्ञायते। तथा तादृशश्चन्द्रः नीचारिस्थेन तयोरन्यतरेण सहेत्थशाली तदा अधमं कबूलम् उच्यते ॥ ४३॥

ज्योति — इसके बाद प्रकारान्तरसे मध्यम कंबूलका लक्षण बनाते हुए कहते हैं कि उत्तम अधिकार से हीन किन्तु परस्पर इत्थशाल करते हुए लग्नाधीश तथा कार्याधीश के साथ समानाधिकारी चन्द्रमा भी मुथशिल योग करता हो तो भी मध्यम कम्बूल होता है ॥ ४३ ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे धन प्राप्त होगा या नहीं ? उस समय मेष लग्न का स्वामी मङ्गल १० अंशों से उपलक्षित होकर सिंहराशि में और कार्येश शुक्र भी १० अंशों से उपलक्षित होकर सिंहराशि में और कार्येश शुक्र भी १० अंशों में उपलक्षित होकर कुम्भ राशि में एवं चन्द्रमा १० अंशों से उपलक्षित होकर तुलाराशि में बैठा हुआ है । इनका परस्पर मुथशिल योग है । इस वास्ते इसे मध्यम कम्बूल कहेंगे । प्रश्नकर्ता से कहा जा सकता है कि तुम्हें साधारण तौर पर धनलाभ होगा ।

इसके बाद अधम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि अपनी या अपने शत्रु की राशि में विद्यमान लग्नाधीश तथा कार्याधीश में परस्पर मुथशिल होता हो और समानाधिकारी चन्द्रमा भी मुथशिली हो तो अधम कम्बूल होता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा समानाधिकारी और लग्नेश तथा कार्येश अधमाधिकारी हैं ।

उदाहरण — जैसे किसी ने पूछा कि मुझे कोई सन्तान होगी या नहीं ? इस समय मिथुन लग्न है और उसका स्वामी बुध मीन अर्थात् नीच राशि में बैठा है । पुत्रभाव का अधिपति शुक्र कन्या यानी नीच राशि में हैं । यहाँ चन्द्रमा का कोई अधिकार नहीं है । इन तीनों का परस्पर मुथशिल योग होने के कारण अधम कम्बूल योग है। इसलिए कहना पड़ेगा कि पुत्रप्राप्ति कुछ कठिनाई से होगी ॥ ४३ ॥

नीचशत्रुभगश्चन्द्रः स्वभोच्चस्थेत्थशालकृत् ।
अधमोत्तमकम्बूलं पूर्वतुल्यफलप्रदम् ॥ ४४ ॥

कुन्तला — नीचशत्रुभगः = वृश्चिक= शत्रुराशिगतः, चन्द्रः, स्वभोच्चस्थेत्थ–शालंकृतं = निजगृहोच्चस्थितेन लग्नकामेंशान्यतरग्रहेणेत्थशालकृत् तदा अधमोत्तमकंबूलं स्यातत्पूर्वतुल्यफलप्रदम् ।। ४४।।

ज्योति — अब अधमोत्तम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा नीच या शत्रुराशि में जा बैठा हो और लग्नाधीश तथा कार्येश परस्पर मुथशिल करते हुए अपने या अपने से उच्च स्थान में बैठे हों तो अधमोत्तम कम्बूल होता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा का अधिकार अधम है और लग्नेश तथा कार्येश उत्तमाधिकारी है । पूर्वोक्त उत्तमाधम कम्बूल के समान ही इनका भी फल होता है ।। ४४ ।।

उदाहरण — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे सुख प्राप्त होगा या नहीं ? उस समय सिंहलग्न है । उसका स्वामी सूर्य मेष अर्थात् उच्च स्थान में है । सुख भाव का स्वामी मङ्गल मकर अर्थात् उच्च राशि में बैठा हुआ है । चन्द्रमा नीच अर्थात् वृश्चिक राशि में विराजमान है । इन तीनों का परस्पर मुथशिल होने पर अधमोत्तम कम्बूल हुआ, इसलिये कहा जायगा कि कुछ परिश्रम करने पर सुख की प्राप्ति होगी ।। ४४ ।।

चन्द्रो नीचारिगेहस्थः स्वहद्दादिगतेन चेत् ।
तत्रेत्थशाली कम्बूलमुच्यतेऽधममध्यमम् ।। ४५ ।।

कुन्तला — नीचारिगेहस्थश्चन्द्रः स्वहद्दादिगतेन निजहद्दानिजदृक्काणनवांशादि–पदस्येन लग्नकार्येशान्यतरेण चेदित्थशाली = मुथशिलयोगकर्त्ता भवेत्तदाऽधममध्यमं कबूलमुच्यते ।। ४५ ।।

ज्योति — अब अधममध्यम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा नीच राशि में अथवा शत्रु के घर में बैठा हो और लग्नेश तथा कार्येश अपनी हद्दा, अपने द्रेष्काण तथा अपने नवांश में बैठकर परस्पर मुथशिल योग करते हों तो अधममध्यम कम्बूल होगा । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा का अधिकार अधम है और लग्नेश तथा कार्येश मध्यमाधिकारी हैं ।। ४५ ।।

उदाहरण — जैसे किसी ने पूछा कि मेरे कोई सन्तान होगी या नहीं? उस समय कन्या लग्न है और उसका स्वामी बुध ३ अंशों से उपलक्षित होकर अपनी हद्दा अर्थात् मकर राशि में विद्यमान है । पुत्रभाव का अधिपति शनि ५ अंशों से उपलक्षित होकर अपनी हद्दा अर्थात् मीन राशि में विद्यमान है और चन्द्रमा ३ अंशों से उपलक्षित होकर अपने से नीच अर्थात् वृश्चिक राशि में बैठा हुआ है । इन तीनों का परस्वर मुथशिल होने पर अधममध्यम कम्बूल हुआ । इसलिए कहा जायगा कि बड़ी कठिनाई से सन्तति प्राप्त हो सकेगी ।। ४५ ।।

इन्दुर्नीचारिगेहस्थः पदोनेनेत्थशालकृत् ।
कम्बूलमधमं ज्ञेयं पूर्वतुल्यफलप्रदम् ॥ ४६॥

कुन्तला — नीचारिगेहस्थ इन्दुश्चन्द्रः पदोनेन लग्नकार्येशान्यतरग्रहेणेत्थशालकृत, तदा पूर्वतुल्यफलप्रदमधमं कबूलं ज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

ज्योति — अब दूसरे अधम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि उत्तम मध्यम अधिकार से हीन चन्द्रमा अपने से नीच अथवा अपने शत्रु की राशि में बैठकर लग्नेश और कार्येश के साथ परस्वर मुथशिल योग करता हो तो अधम कम्बूल होता है । क्योंकि यहाँ चन्द्रमा का अधिकार अधम है और लग्नेश तथा कार्येश समानाधिकारी हैं । यह पूर्वोक्त कम्बूल योग के समान ही फल प्रदान करता है ॥ ४६ ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने राज्य प्राप्ति सम्बन्धी प्रश्न किया । उस समय वृष लग्न है और उसका स्वामी शुक्र ६ अंशों से उपलक्षित होता हुआ सिंहराशि में है । राज्याधीश शनि १० अंशों से उपलक्षित होता हुआ वृषराशि में बैठा है और ३ अंशों से उपलक्षित चन्द्रमा अपने से नीच वृश्चिक राशि में विराजमान है। इन तीनों का परस्वर मुथशिल होने पर अधम कम्बूल हुआ । इससे कहना पड़ेगा कि प्रश्न करने वाले को राज्यप्राप्ति बड़ी कठिनाई से होगी ॥ ४६ ॥

नीचारिभस्थखेटेन नीचारिभगतः शशी ।
तदित्थशाली कम्बूलमधमाधममुच्यते ॥ ४७ ॥

कुन्तला — नीचारिभगतः = नीचशत्रुराशिस्थः, शशी = नीचारिभस्थखेटेन = नीच शत्रुराशिगतग्रहेण = लग्नेशकार्येशयोरन्यतरेण सह इत्थशाली = मुथशिली, तदा अधमाधर्म कबूलमुच्यते ॥ ४७॥

ज्योति — अब अधमाधम कम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नाधीश और कार्याधीश अपने नीच या शत्रु की राशि में बैठकर परस्पर मुथशिल योग करते हों और चन्द्रमा भी अपने नीच या अपने शत्रु की राशि में रहकर मुथशिलयोग करता हो तो अधमाधम कम्बूल कहेंगे । क्योंकि इसमें चन्द्रमा लग्नेश तथा कार्येश अधमाधिकार को प्राप्त हैं ॥ ४७ ॥

उदाहरण — जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे पुत्र लाभ होगा या नहीं ? उस समय धनलग्न है और उसका स्वामी बृहस्पति नीच अर्थात् मकर राशि में बैठा हुआ है । पुत्रभाव का स्वामी मङ्गल नीच यानी कर्कराशि में है । चंद्रमा भी मीन अथवा वृश्चिकराशि में बैठा है । यहाँ तीनों का परस्पर मुथशिल हो रहा है । इसलिए यह अधमाधम कम्बूल कहा जायगा । जिसका फल यह होगा कि प्रश्नकर्ता को पुत्रलाभ नहीं होगा ॥ ४७ ॥

अथोत्तमोत्तमकबूलयोगोदाहरणकथनम्—

मेषे रविः कुजो वाऽपि वृषे कर्केऽथवा शशी ।
तत्रेत्थशाली कम्बूलमुत्तमोत्तमकार्यकृत् ॥ ४८ ॥

कुन्तला — सन्तानलाभप्रश्ने कल्प्यते यथा मेषलग्नं तत्र रविः कार्येशः, कुजो मङ्गलो लग्नेशोऽपि वा भवेत्, तत्र शशी वृषे स्वोच्चे, वा कर्के स्वगृहे भवेत् तत्र रविकुजयोरेकतरेण सह मुथशिलं करोति तदा उत्तमोत्तमकार्यकृत् उत्तमोत्तमं कबूलं भवति ॥ ४८॥

ज्योति — इस प्रकार कम्बूल योग के १६ भेद बताये गये । अब पूर्वोक्त कम्बूल के भेदों से उत्तमोत्तम कम्बूल योग का उदाहरण बताते हुए कहते हैं कि जैसे किसी ने पूछा कि मुझे सन्तान लाभ होगा या नहीं ? उस समय मेष लग्न है, उसका स्वामी भौम अपने घर अर्थात् मेषराशि में बैठा हुआ है । पंचम भाव का स्वामी सूर्य भी उच्च अर्थात् मेषराशि ही में बैठा हुआ है । यहाँ लग्नेश तथा कार्येश परस्पर मुथशिलयोग करते हैं और चन्द्रमा उच्च यानी वृषराशि में या कर्क अर्थात् अपने घर मे बैठा है । लग्नेश और कार्येश के मध्य में बैठा हुआ चन्द्रमा मुथशिलयोग कर रहा है । इसलिए इसे उत्तमोत्तम कम्बूलयोग कहेंगे । इसका फल यह होगा कि प्रश्नकर्ता की वांछासिद्धि अवश्य होगी ॥ ४८ ॥

अथाधमाधमकंबूलस्योदाहरणम्—

वृश्चिकस्थः शशी भौमः कर्के तत्रेत्थशालतः ।
अधमाधमकम्बूलं कार्यविध्वंसदुःखदम् ॥ ४९॥

कुन्तला — पुत्रलाभप्रश्ने धनुर्लग्नं, तदीशो गुरुर्मकरेऽस्ति, शशी चन्द्रो वृश्चिकस्थाऽर्थात्स्वनीचस्यः, भौमोऽपत्येश अतएव स एव कार्येशः कर्के स्वनीचराशौ भवेत् तत्र तयोरेकतरेण चन्द्रो मुथशिलयोगकारी च भवेत्तदा कार्यनाशकरमधमाधयम कबूलं भवेत् ॥ ४९॥

ज्योति — अब अन्तिम अधमाधम कम्बूल योग का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे पुत्रलाभ होगा या नहीं ? उस समय धन लग्न है और लग्नेश बृहस्पति नीच अर्थात् मकर राशि में बैठा हुआ है । पुत्रभाव का स्वामी भौम नीच अर्थात् कर्कराशि में बैठा हुआ है । चन्द्रमा भी नीच यानी वृश्चिक राशि में बैठा हुआ है । इसका परस्पर मुथशिलयोग होने से अधमाधम कम्बूलयोग होगा । यह वांछित कार्य का विध्वंस करने वाला और दुःखदायक है ॥ ४९ ॥

एवं पूर्वोक्तभेदानामुदाहरणयोजना ।
उक्तलक्षणसम्बन्धादूहनीया विचक्षणैः ॥ ५० ॥

कुन्तला — एवमुक्तप्रकारेण पूर्वोक्तभेदानां प्रागुक्तकंबूलयोगभेदानामुक्तलक्षणसम्बन्धाद्वि—चक्षणैः पाण्डितैरुदाहरणयोजना उदाहरणकल्पना ऊहनीया ॥ ५० ॥

ज्योति — आदिम और अन्तिम कम्बूलोक्त उदाहरणों के समान ही कम्बूलों के उदाहरणों की कल्पना करने का निर्देश देते हुए कहते हैं कि इसी प्रकार कम्बूलों के अन्य भेदों का भी उदाहरण समझ लीजिए । अन्य कम्बूलों के लक्षण सुस्पष्ट हैं इस कारण उनके उदाहरण नहीं दिये गये हैं । (यह कथन मूल ग्रन्थकार का है । टीकाकार ने तो प्रायः सभी कम्बूलों के उदाहरण दे दिये हैं) ॥ ५० ॥

मेषस्थेऽब्जे शनीत्यादिदृष्टान्तान्मन्दशीघ्रयोः ।
एकर्क्षावस्थितावित्थशालादिनपरे जगुः ॥ ५१ ॥
तदयुक्तं नीचगस्य नीचेन रिपुणा रिपोः ।
इत्थशालः कार्यनाशीत्युक्तं तत्र यतः स्फुटम् ॥ ५२ ॥

कुन्तला — 'मेषस्थेऽब्जेशनी' त्यादिदृष्टान्तात् ।
'मेषस्थेऽब्जे शनिना कर्कस्थे भूभुवा स्त्रियां कविना ।
मकरस्थे गुरुणा सह मीनस्थे ज्ञेन न शुभं च ॥
इत्युक्तोदाहरणप्रदर्शनात् मन्दशीघ्रयोरेकर्क्षावस्थितौ एकाराशिगतसंस्थायां इत्थशालादीनपरे आचार्या जगुराहुः । तन्मतयुक्तं युक्तिरहितं वर्त्तते यतः नीचगस्यरिपोः शत्रोर्नीचगतेन रिपुणा शत्रुणा कृत इत्थशालः कार्यनाशी इति ।

ज्योति — कुछ विद्वानों का कथन है कि जब शीघ्र और मन्दगति ग्रह दोनों एक राशि पर बैठते हैं, तभी मुथशिल योग होता है, अन्यथा नहीं । उनका कथन है कि यदि चन्द्रमा मेष राशि पर हो और मेष राशि पर ही शनि भी बैठा हो तब जो मुथशिल योग होकर कम्बूलयोग होगा, वह मध्यमाधमसंज्ञक कम्बूल होगा । क्योंकि यहाँ शीघ्र और मन्दगति दोनों प्रकार के ग्रह एक ही राशि पर बैठे हुए हैं । यह ईसराफ आदि ताजिक शास्त्रज्ञों का मत है ।

कुछ विद्वानों का जो यह कथन है कि जब शीघ्र और मन्दगति ग्रह एक राशि पर स्थित होते हैं, तभी मुथशिल आदि योग होते हैं, यह युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि ऐसा पहले ही कहा जा चुका है कि लग्नाधीश और कार्याधीश इनमें से कोई एक भी ग्रह यदि अपने नीच राशि में गया हुआ हो और अपने से नीच राशि में गये हुए किसी तरह ग्रह के साथ इत्थशाल करता हो तो वह काम बिगाड़ देता है । लग्नाधीश और कार्याधीश के एक स्थान पर होने की बात तो कही ही नहीं गयी है । यदि लग्नेश और कार्येश में परस्पर वैर हो और इन दोनों का इत्थशाल हो जाय, तब भी काम बिगड़ जाता है । क्योंकि समरसिंह ने भी अपने बनाये ताजिक संज्ञातंत्र नामक ग्रन्थ में यह बात साफ–साफ बता दी है । इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि कहीं लग्नेश और कार्येश एक राशि पर पड़ जायँ तो भी इत्थशाल हो ही जाता है । ग्रन्थकार ने जो इस उक्ति का विरोध किया है, वह केवल सिद्धान्तग्रन्थों के आधार पर ही किया है । उनका यह अभिप्राय नहीं है कि लग्नेश और कार्येश के एक राशि पर स्थित होने से इत्थशाल हो ही नहीं सकता ॥ ५२ ॥

अथ प्रकारान्तरेण कम्बूलयोगस्य लक्षणकथनम् —

लग्नकार्यपयोरित्थाशाले चैकोऽस्ति नीचगः ।
स्वर्क्षादिपदहीनोऽन्योऽत्रेन्दु कम्बूलयोगकृत् ॥ ५३ ॥
तत्र कार्याल्पता ज्ञेया यथा जात्यन्यमर्थनम् ।
अन्यजातिः पुमानर्थं तथैतत्कवयो विदुः ॥ ५४ ॥

कुन्तला — लग्नकार्यपयोर्लग्नेशकार्येशयोरित्थशाले सति, तयोरेकतरो लग्नेशोऽथवा कार्येशः, नीचगोऽस्ति, अन्यत्तदन्यतरः स्वर्क्षादिपदहीनः स्यादत्र इन्दुर्यदि कबूलयोगकृद्भवति, तदा कार्याल्पता ज्ञेया । तत्रोदाहरणकथनम् — यथा अन्यजातिः पुमान् पुरुषो याचकः जात्यन्यं भिन्नजातिकं जनमर्थयन् याचयन् सन् अर्थ धनं स्वल्पं लभते, तथा कवयः पण्डिता एतत्कम्बूलं विदुः जानन्ति ॥ ५३–५४॥

ज्योति — अब प्रकारान्तर से फलोत्पत्ति जानने के लिए कम्बूल योग के अन्य भेद बताते हुए कहते हैं कि पूर्व में यह बात कह आये हैं कि जब लग्नेश तथा कार्येश समान अधिकार में स्थित होकर चन्द्रमा के साथ मुथशिल योग करे तभी कम्बूल होता है । अब उन दोनों (लग्नेश तथा कार्येश) का अधिकार–भेद बताते हुए कहते हैं कि जहाँ लग्नाधीश और कार्याधीश के मुथशिल योग का विचार किया जाता है, वहाँ उन दोनों में से यदि एक अपने से नीच राशि में बैठा हुआ हो और दूसरा अपने स्वक्षेत्र आदि पदों से हीन, (अपने घर, अपने उच्च घर, अपनी हद्दा, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश, अपने नीच अथवा शत्रु के क्षेत्र में न हो अर्थात् समान अधिकारी हो) और वह समान अधिकारी चन्द्रमा के साथ मुथशिल योग करता हो, तब भी कम्बूल योग होता है ॥ ३९॥

अब दृष्टांत के साथ इस कम्बूल योग का फल बताते हुए कहते हैं कि इस प्रकार के कम्बूलयोग होने पर कार्यसिद्धि कम ही होती है । जैसे कोई अन्य जाति का मनुष्य किसी विजातीय से अपना कार्य करने के लिए कहता है, और वह विजातीय उसकी प्रार्थना पर जितना ध्यान दे सकता है, वही बात यहाँ कम्बूल के विषय में भी लागू होती है । विज्ञजन कम्बूल की परिभाषा भी इसी तरह करते हैं । हाँ, लोक में जैसे कोई सजातीय अपने किसी सजातीय से किसी बात के लिये विनय करता है तो कभी–कभी वह सजातीय बहुत कुछ दे डालता है । उसी प्रकार यह कम्बूल योग भी कभी–कभी अच्छा फल दे जाता है ॥ ५३–५४ ॥

अथ गैरिकम्बूलं वक्तुकामस्तदुपयोगिशून्याध्वलक्षणकथनम्—

यस्याधिकारः स्वर्क्षादिः शुथो नाप्यशुभोऽपि च ।
केनष्यदृश्यमूर्तिश्च स शून्याध्वग इष्यते ॥ ५५ ॥

कुन्तला — यस्य कस्यचिद्ग्रहस्य शुभः शुभप्रदः स्वर्क्षादिरधिकारो नास्ति, तथा शुभोऽपि नीचशत्रुवर्गाद्यधिकारो नास्ति केनापि ग्रहेण अदृश्यमूर्त्तिः दृष्टोऽपि न स ग्रहाः शून्याध्वगः शून्यमार्गगत इष्यते उच्यते ॥ ५५॥

ज्योति — अब गैरिकम्बूल योग का लक्षण बताने के प्रसंग में शून्यमार्गगामी ग्रहों का लक्षण बताते हैं । क्योंकि आगे चलकर इनका उपयोग होने को है । जिस ग्रह का स्वर्क्षादि अधिकार न हो, जिसका अपना घर, अपना उच्च, अपनी हद्दा, अपना द्रेष्काण तथा अपने नीच अंश युक्त तथा शुभ फलों का देने वाला अधिकार न दिखाई दे और कोई अशुभ अधिकार न हो और कोई शुभ ग्रह और पापग्रह न देखते हों तो वह ग्रह शून्यमार्गगामी ग्रह कहा जाता है । इस विषय में कोई प्रमाणवाक्य नहीं मिलता । क्योंकि समरसिंह ने भी कुछ नहीं कहा है ॥ ५५ ॥

अथ गैरिकम्बूललक्षणकथनम्—

लग्नकार्येशयोरित्थशाले शून्याध्वगः शशी ।
उच्चादिपदशून्यत्वान्नेत्थशालोऽस्य केनचित् ॥ ५६ ॥
यद्यन्यक्षे प्रविश्यैष स्वर्क्षोच्चस्थेत्थशालवान् ।
गैरिकम्बूलमेतत्तु पदोनेनाशुभं स्मृतम् ॥ ५७ ॥

कुन्तला — लग्नकार्येशयोरित्थशाले सति शशी चन्द्रः शून्याध्वगः अस्ति, अस्य चन्द्रस्य स्वर्क्षादिपदशून्यत्वात् केनचिद् ग्रहेण इत्थशालो न, अथ ईदृश एष चन्द्रोऽन्यर्क्ष = अग्रिमराशि प्रविश्य स्वर्क्षोच्चस्थेत्थशालवान् भवति, तदेतत् गैरिकम्बूलं ज्ञेयं, एतत् पदोनेन स्वर्क्षादिपदहीनेन इत्थशालतोऽशुभं स्मृतम् ॥ ५६– ५७ ॥

ज्योति — शून्यमार्गगामी का लक्षण बताने के बाद अब गैरिकम्बूल का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नेश और कार्येश परस्पर इत्थशाल करते हों और चन्द्रमा शून्यमार्गी हो और लग्नेश तथा कार्येश चन्द्रमा के साथ रहते हुए मुथशिल योम न करते हों, ऐसा चन्द्रमा राशि के अंत में विद्यमान रहता हुआ अग्रिम राशि में प्रवेश करता हो । वह जिस राशि में प्रविष्ट हुआ हो, वह जिस ग्रह का, अपने घर या अपने उच्च हो वह उसी में रहे और चंद्रमा के साथ मुथशिल योग करे तो उसे गैरिकम्बूल योग कहेंगे । यह गैरिकम्बूल भी पूर्वोक्त कम्बूल के समान ही फलदायक होता है । यदि अन्य राशि में स्थित चन्द्रम स्वगृह आदि अधिकारों से हीन ग्रह के साथ इत्थशाल करे तो वह कम्बूल अशुभ फलदायक होता है ॥ ५६ – ५७ ॥

अथ गैरिकम्बूलस्योदाहरणकथनम्—

लप्स्ये सुखमिति प्रश्ने सिंहलग्ने रविः क्रिये ।
अष्टांशैः सुखपः कुम्भे भौमोंऽशै रविभिस्तयोः ॥ ५८॥

इत्थशालोऽस्ति तत्रेन्दुः कन्यायां चरमेंऽशके ।
स्वर्क्षादिपदहीनस्य नेत्थशालोऽस्य केनचित् ॥ ५९॥
स स्वोच्चगेन शशिनाऽन्यर्क्षस्थेनेत्थशालकृत् ।
गैरिकम्बूलमन्येन सहायाल्लाभदायकम् ॥ ६०॥

कुन्तला — अहं सुखं लप्स्ये प्राप्स्यामि नवेति प्रश्ने, सिंहलग्ने सति तत्र रविरर्थाल्लग्नेशोऽष्टांशैः क्रिये मेषेऽस्ति, सुखपः सुखकार्येशः भौमो रविभिरंशैः कुम्भेऽस्ति, तयोर्यदि इत्थशालोऽस्ति तत्र इन्दुश्चन्द्रः कन्यायां चरमेऽन्तिमे २९। ३० अंशे भवेत् । अत्र स्वर्क्षादिपदहीनस्य अस्य चन्द्रस्य केनचिद्ग्रहेण लग्नकार्येशान्यतरेण इत्थशालो नास्ति, स ईदृशश्चन्द्रः स्वोच्चगेन तुलागतेन अन्यर्क्षस्थेन शनिना इत्थशालकृत् = मुथशिली, तदा एतद्गैरिकंबूलं स्यात्. । तदन्येन जनेन सहायाल्लाभदायकम् भवति ॥ ५८ — ६०॥

ज्योति — अब गैरिकम्बूल योग का उदाहरण बताते हुए कहते हैं कि जैसे किसी ने प्रश्न किया कि मुझे सुख मिलेगा या नहीं ? यह प्रश्न किये जाने के समय सिंह लग्न है । उसका स्वामी सूर्य आठ अंशों से उपलक्षित होकर मेष लग्न में बैठा हुआ है । चौथा सुखभाव वृश्चिक है । उसका स्वामी मङ्गल १२ अंशों से उपलक्षित होकर कुंभलग्न में बैठा हुआ है । यहाँ लग्नेश और कार्येश अर्थात् सूर्य और मङ्गल में परस्वर मुथशिल योग है । इस योग में चन्द्रमा कन्या राशि के अन्तिम (३० वें) अंश में विद्यमान है । यहाँ चन्द्रमा नक्षत्र आदि सभी शुभ अधिकारों से हीन होकर इस तरह बैठा है कि उसका लग्नेश तथा कार्येश के साथ मुथशिल योग नहीं होता । किन्तु चन्द्रमा तुला के घर में जाना चाहता है । वह तुला का गृह शनि का उच्च है । अतएव तुलागृह में बैठे हुए शनि के साथ शीघ्रगामी चन्द्रा शशिमुलकारी हो गया है । इस प्रकार ग्रहों की स्थिति होने के कारण गैरिकंबूल योग पड़ गया है । जिस गैरिकंबूल योग में तृतीय सहायक से सहायता मिल रही हो तो वांछित कार्य की सिद्धि होती है ॥ ५८–६० ॥

उदाहरण — जैसे इसी योग में तुला राशि में बुध आदि ग्रह बैठे हैं और इनमें से किसी का कोई भी शुभ या अशुभ अधिकार नहीं है और इस में विद्यमान चन्द्रमा बुध आदि के साथ मुथशिल योग कर रहा है । इसलिए वह अनिष्ट फलदायक हो गया है । इस उदाहरण के विषय में ग्रन्थकार की कोई सम्मति नहीं है । क्योंकि ताजिकशास्त्र के आचार्य समरसिंह ने कुछ नहीं कहा है । ॥ ५८–६० ॥

अथ खल्लासरयोगलक्षणकथनम्—

शून्येऽध्वनीन्दुरुभयोर्नेत्थशालो न वा युतिः ।
खल्लासरो न शुभदः कम्बूलफलनाशनः ॥ ६१॥

कुन्तला — इन्दुश्चन्द्रः शून्येऽध्वनि मार्गे स्थितः, तथा च उभयोर्लग्नेशकार्येशयोर्मध्ये केनापि ग्रहेण इत्थशालो न, वा युतः = एकराशौ स्थितोऽपि न, तदाऽयं योगः कबूलफलनाशनः खल्लासरः स्यात्, अयं शुभदो न भवति ।। ६१ ।।.

ज्योति — अब खल्लासर योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा शून्य मार्गगामी होकर लग्नाधीश तथा कार्याधीश इनमें से किसी के साथ इत्थशाल योग न करे और न इनमें से किसी के साथ ही हो तो उसे खल्लासरयोग कहेंगे कि यह खल्लासर योग कम्बूलयोग का सारा फल नष्ट कर देता है ।। ६१ ।।

अथ रद्दयोगलक्षणकथनम्—

अस्तनीचरिपुवकहीनभा दुर्बलो मुथशिलं करोति चेत् ।
नेतुमेष न विभुर्यतो महोऽन्ते मुखेऽपि न स कार्यसाधकः ।। ६२ ।।

कुन्तला — अस्तनीचरिपुवकहीनभाः = अस्तः सूर्यात्कालांशान्तर्गतो भवति । नीचं स्वनीचराशिस्तद्गताः । रिपुः = शत्रुस्तद्गृहगत् वक्रो विलोमगमनशीलः हीनभाः = तेजो विहीनः, ईदृशो ग्रहो दुर्बलो बलहीनो भवति, चेत् = यदि ईदृशोग्रहः केचिन्मुथशिलमपि करोति तदा एष दुर्बलो यतो यस्मान्महस्तेजो नेतुं ग्रहीतुं न विभुः न समर्थो भवति, अतः स ग्रहोऽन्ते वर्षान्ते, मुखे वर्षादौ अपि कार्यसाधको न भवति असमर्थत्वात् । स्वयमसमर्थः कथं परार्थसाधनयोग्यः स्यादिति भावः ।। ६२ ।।

ज्योति — अब रद्दयोग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जो ग्रह अस्त हो गया हो, अपनी नीच घर में हो, वक्री अथवा तेज रहित हो, ऐसा ग्रह दुर्बल माना जाता है । यदि कोई दुर्बल ग्रह किसी भाव के स्वामी के साथ इत्थशाल योग करे तो वह ग्रह आदि और अन्त में उस भाव के स्वामी के कार्यों का साधन नहीं करता । क्योंकि उस ग्रह में यह सामर्थ्य नहीं रहती कि किसी का तेज ग्रहण कर सके ।। ६२ ।।

अथ रद्दयोगस्यैव स्थितिवशेन फलमेदकथनम्—

केन्द्रस्थ आपोक्लिमगं युनक्ति भूत्वाऽदितो नश्यति कार्यमन्ते ।
आपोक्लिमस्थो यदि केन्द्रयातं विनश्य पूर्वं भवतीह पश्चात् ।। ६३ ।।

कुन्तला — लग्नेशकार्येशयोरेकतरो ग्रहः केन्द्रस्थः १ । ४ । ७ । १० एतदन्यतस्थानगतो भूत्वा आपोक्लिमगं = ३ । ६ । ९ । १२ एतदन्यतमस्थानस्थमन्यतरग्रहं युनक्ति इत्थशालं करोति तदा पूर्वस्थानात्परस्थानस्य निकृष्टत्वात्, आदितः प्रथमतः कार्यभूत्वाऽन्तेवसाने नश्यति । एवं च यदि आपोक्लिमगः ३ । ६ । ९ । १२ एतदन्यतमस्थानस्थितो ग्रहः केन्द्रस्थं १ । ४ । ७ । १० ग्रहं युनक्ति, तदा पूर्वकार्यंविनश्य विनष्टं भूत्वा पश्चात् परस्मिन् कार्य भवतीति । निकृष्टस्थानात्प्रकृष्टस्थानगत्वात् ।। ६३ ।।

ज्योति — अब रद्दसंज्ञक निर्बल ग्रह के स्थानविशेष में रहने पर पलपाक का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि कोई दुर्बल ग्रह कार्याधीश होकर केन्द्र में बैठा हुआ आपोक्लिम स्थान में विद्यमान लग्नेश के साथ मुथशिलयोग करता हो तो कार्य प्रारम्भ में अच्छी तरह से होता दीखता है, किन्तु अन्त में नष्ट ही हो जाता है । यदि आपोक्लिम स्थान में बैठा हुआ ग्रह केन्द्र स्थान में बैठे हुए किसी ग्रह के साथ मुथशिल योग करता हो तो कार्य आदि में बिगड़ता हुआ दीखता है, किन्तु अन्त में सिद्ध हो जाता है ।। ६३ ।।

अथ दुष्फालिकुत्थयोगलक्षणकथनम्—

मन्दः स्वभोच्चादिपदे स्थितश्चेत् पदोनशीघ्रेण कृतेत्थशालः ।
तत्रापि कार्ये भवतीति वाच्यं वक्रादिनिर्वीर्यपदे न चेत्स्यात् ।। ६४ ।।

कुन्तला — मन्दो मन्दगतिग्रहः स्वभोच्चदिपदे स्थितः सन् पदोनशीघ्रेण = स्ववर्गाधिकारशून्यशीघ्रगतिग्रहेण, चेत् = कृतेत्थशालः, तदा तत्रापि स्थितौ कार्यं भवति, इति वाच्यम्। चेत् = यदि, शीघ्रगतिर्ग्रहो वक्रादिनिर्वीयपदे —वक्रनीचरिपुक्षेत्रे न भवेत्तदैवेति ।। ६४ ।।

ज्योति — अब दुष्फालिकुत्थ योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि कोई मन्द गति ग्रह अपनी राशि, अपने उच्च स्थान, अपनी हद्दा, अपने द्रेष्काण तथा अपने नवांश में स्थित होकर अपनी राशि आदि शुभ अधिकारों से हीन शीघ्रगति ग्रह के साथ इत्थशाल करता हो तो अभीष्ट कार्य सिद्ध होता है । यदि व शीघ्रगति ग्रह वक्र आदि निर्बल पद पर आसीन हो तो वांछित कार्य का साधन करने वाला नहीं होता ।। ६४ ।।

अथ दुत्थोत्थदिवीरयोगकथनम्—

वीर्योनितौ कार्यविलग्ननाथौ स्वर्क्षादिगेनान्यतरो युनक्ति ।
अन्यौ यदा द्वौ बलिनौ तदाऽन्यसाहाय्यतः कार्यमुशन्ति सन्तः ।। ६५।।

कुन्तला — कार्यविलग्ननाथौ = कार्येशलग्नेशौ, वीर्योनितौ = बलहीनौ, स्तस्तयोरन्यतरो ग्रहः स्वर्क्षादिगेन केनचिदितरेण ग्रहेण युनक्ति, मुथशिलं करोति । तदा सन्तः कार्यमुशन्ति । वा बलिनौ बलयुक्तौ अन्यौ भिन्नौ लग्नेशकार्येशान्यतर ग्रहेणेत्थशालं कुरुतस्तदाऽप्यन्यसाहाय्यतः कार्यं सफलमुशन्ति ।। ६५ ।।

ज्योति — अब दुत्थोत्थदिवीर योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नेश और कार्येश हीनवीर्य होकर अस्त, नीच तथा शत्रु के घर में हों अथवा वक्र होते हुए तेजहीन अतएव निर्बल हों और लग्नाधीश तथा कार्याधीश इन दोनों मे से कोई ग्रह किसी स्वर्क्षादिगामी तथा स्वगृह, स्वोच्च एवं अपनी हद्दा आदि में विद्यमान ग्रह के साथ मुथशिल योग करता हो और उसका सहायक तृतीय ग्रह सहायता पहुँचा रहा हो तो विद्वान् लोगों का मत है कि कार्य बड़ी आसानी के साथ सम्पन्न हो जाता है ।। ६५ ।।

बलीराश्यन्तगोऽन्यर्क्षगामी दीप्तांशकैर्महः ।
दत्तेऽन्यस्मै कार्यकरस्तंबीरो लग्नकार्यपोः ।। ६६ ।।

कुन्तला — लग्नकार्यपोः लग्नेशकार्येशयोर्मध्ये एकतरो बली ग्रहो राश्यन्तगः अतएवान्यर्क्षगामी अग्रिमराशि गन्तुमिच्छुः सन् दीप्तांशकैर्महस्तेजोऽन्यस्मै ग्रहाय दत्ते, तदा कार्यकरः कार्यसिद्धिकरस्तम्बीरयोगः स्यात् ।। ६६।।

ज्योति — अब तंबीर योग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यदि लग्नेश और कार्येश का परस्पर मुथशिल योग न हो और इनमें से कोई बलवान् ग्रह राशि के अन्तिम अंश अर्थात् ३० वें अंश में विद्यमान रहता हुआ अन्य राशि में गमन कर रहा हो तो वह अपने दीप्त अंशों द्वारा अगली राशि में विद्यमान ग्रह को अपना तेज प्रदान करता है । इसी को तंबीर योग कहते हैं । अग्रिम राशि में बैठा हुआ ग्रह यदि अपने गृह आदि बलों से युक्त हो तो यह योग अभीष्ट कार्य सिद्ध करने वाला होता है ।। ६६।।

अथ कुत्थयोगलक्षणकथनम्—

लग्नेऽथ केन्द्रे निकटेऽपि वाऽस्य विलग्नदर्शी स्वगृहोच्चदृक्के ।
मुसल्लहे स्वे नीजहद्दगो वा बली ग्रहो मध्यगतिस्त्वशीघ्रः ।। ६७।।

कुन्तला — यः कश्चिद्ग्रहो लग्ने, ऽथ केन्द्रे ४। ७। १०, अपि वा अस्य केन्द्रस्य निकटे पणफरेऽपि स्थितः, विलग्नदर्शी, स्वगृहोच्चयुक्तः, स्वे मुसल्लहे नवांशे स्थितो निजहद्दगः, मध्यगतिः, अशीघ्रः = मन्दगतिग्रहः, बली, स्यात् ।। ६७।।

ज्योति — अब कुत्थयोग का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यवन भाषा में कुत्थ बलवान् ग्रह को कहते हैं । बल भी अनेक तरह के होते हैं । जिनमें एक प्रकार का बल यह है कि जैसे सब की अपेक्षा लग्न में विद्यमान ग्रह बलवान् होता है । उसके अभाव में केन्द्र (४ । ७। १०) चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में स्थित ग्रह बलवान् होते हैं । लेकिन लग्न में विद्यमान ग्रह की अपेक्षा ये भी निर्बल रहते हैं । उसके अभाव में केन्द्र के निकट पणफर अर्थात् द्वितीय पंचम, अष्टम और एकादश स्थान में स्थित ग्रह बली होता है । पणफर में विद्यमान ग्रह केन्द्रस्थ ग्रहों से किसी दशा में निर्बल नहीं होते । इसके अभाव में विलग्नदर्शी एवं तृतीय और नवम स्थान में स्थित स्थित ग्रह बलवान् होते हैं । केन्द्र के निकट पणफर आपोक्लिम में स्थित विलग्नदर्शी तथा तृतीय, पंचम और नवम तथा एकादश स्थान में स्थित ग्रह बलवान् होते हैं । इनके अतिरिक्त, छठें, आठवें, बारहवें स्थान को त्यागकर पणफर तथा आपोक्लिम स्थानों के निकट शब्द का तात्पर्य है । गणित करने पर यदि दृष्टि पड़ रही हो तो वह भी किसी प्रकार बलवान् हो जाता है । जो ग्रह अपने घर, अपने उच्च, अपने मुसल्लह, अपने नवाँश अथवा अपनी हद्दा में विद्यमान हो तो बलवान् होता है । 'नन्दाक्षा भुजगा रवेः' इत्यादि श्लोक में कहे गये मध्यगति तुल्य

और जिनकी गति स्पष्ट है, वे ग्रह भी बलवान् होते हैं । अशीघ्र अर्थात् मन्दगतिग्रह भी मध्यगमनशील ग्रह की अपेक्षा कभी–कभी बलवान् हो जाया करते हैं ।। ६७ ।।

कृतोदयो मार्गगतिः शुभेन युतेक्षितः क्रूरखगस्य दृष्ट्या ।
क्षुताख्यया नाविगतो न युक्तः क्रूरेण सायं च सितेन्दुभौमाः ।। ६८ ।।
यदोदयन्ते पररात्रिभागैर्जीवार्कजावह्नि नराः सवीर्याः ।
अन्ये निशीनस्य नवैकभागे स्थिताः स्थिरर्क्षे च बलेन युक्ताः ।। ६९ ।।
स्त्रियश्चतुर्थात्पुरुषा वियद्भाद्भषट्कगा ओजभगाः पुमांसः ।
समे परे स्युर्बलिनौ विमृश्य विशेषमेतेषु फलं निगद्यम् ।। ७० ।।

कुन्तला — कृतोदयः कृतउदयो येन स सूर्यसामीप्यादस्तंगतो न, मार्गपतिः पूर्वाभिमुखक्रमगमनशीलः । शुभेन = पूर्णचन्द्रबुधगुरुभृगूणामन्यतमेन केनापि युतेक्षितः संयुतदृष्टः, क्रूरखगस्य = पापग्रहस्य क्षुताख्यया (१ । ४ । ७। १०) दृष्ट्यऽधिगतो दृष्टो न, क्रूरेण — पापेन, युक्तः = एकस्थानस्थितो न भवेत् , स ग्रहो बलवान् । सितेन्दुभौमाः शुक्रचन्द्रमङ्गलाः, सायंकाले यदोदयन्ते तदा बलिनः स्युः । जीवार्कज्ञौ गुरुशनी अपररात्रिभागे–ऽर्धरात्रादुपरिभागे बलिनौ स्तः । नराः पुरुषग्रहाः = सूर्यकुजगुरवः, अह्नि दिने सवीर्याः सबला भवन्ति । अन्ये = स्त्रीग्रहाः, निशि = रात्रौ, बलिनः स्युः । तथा सूर्यस्य एकभागे एकांशे न वा स्थिता ग्रहा चन्द्रबुधशुक्रशनयः, बलिनः, अर्थात्सूर्याधिष्ठितनवांशे स्थिता दुर्बला अतस्तदन्यत्र भागे बलिनः । तथा स्थिरर्क्षे स्थिरराशौ वृषसिंहालिघटराशौ स्थिता ग्रहा बलेन युक्ता भवन्ति । स्त्रियः स्त्रीग्रहाश्चन्द्रबुधशुक्रशनयः चतुर्थाच्चतुर्थभावाद्भषट्कगाः, चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्ठम–नवमगताः सन्तो बलिनः । पुरुषाः = सूर्जकुजगुरवः, वियद्भाद्दशमभावाद्भषट्गाः दशमैकादशद्वादशप्रथमद्वितीय तृतीयगता बलिनः स्युः । तथा पुमांसः = पुरुषग्रहाः, ओजभगाः = विषमराशिगताः (१। ३। ५। ७। ९। ११) एषु स्थिता बलिनः स्युः । परे = स्त्रीग्रहाः, समे = २। ४। ६। ८। १०। १२) एतत्संख्यकराश्यन्यतभगताः बलिनः स्युः । एतेषु विशेषं, स्वक्षेत्रोच्चमित्र वर्गादिभेदेन विमृश्य तारतम्यं कृत्वा फलं शुभाशुभं निगद्यं = वाच्यम् ।। ६८ – ७०।।

ज्योति — अब अन्य प्रकार बताते हुए कहते हैं कि जो ग्रह उदय को प्राप्त या मार्गी रहता है वह बली होता है और जिस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि रहती है जिस पर किसी पाप ग्रह की क्षुताख्य अर्थात् चतुर्थ, दशम, सप्तम तथा प्रथम राशि की दृष्टि न पड़ रही हो और जो किसी पापग्रह के साथ न हो, वह ग्रह भी बलवान् माना जाता है । इस प्रकार ग्रहबल बताकर समयबल बताते हुए कहते हैं कि यदि चन्द्रमा शुक्र और मङ्गल ये सायंकाल के समय उदय हों, तो बली होते हैं । बृहस्पति तथा शनि आदि अर्धरात्रि के बाद उदित हों तब बली होते हैं । सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति ये पुरुष ग्रह दिन के समय और चन्द्रमा, बुध, शुक्र तथा शनि रात्रि के समय बलवान् होते हैं । सूर्य जिस राशि के नवांश में हो, उसी राशि के नवांश में यदि अन्य ग्रह न हों तो बलवान् होते हैं । जो ग्रह वृष,

सिंह वृश्चिक और कुम्भ राशि में बैठे रहते हैं, वे भी बलवान् होते हैं । अब अन्य प्रकार बताते हुए कहते हैं कि सभी स्त्रीसंज्ञक ग्रह चतुर्थ भाव से लेकर छः राशि पर्यन्त किसी भी राशि में बैठे हों तो बलवान् होते हैं । इसी प्रकार विषम राशि में बैठे हुए सभी पुरुषसंज्ञक ग्रह और सम राशि में सब स्त्रीसंज्ञक ग्रह बलवान् होते है । उपर जितेने भी बल–भेद बताये गये हैं, उनका शुभाधिकार वैशिष्ट्य विचार कर ही फल कहना चाहिये ।। ६८–७०।।

अथ दुरुष्फलक्षणकथनम्—

लग्नात्षष्ठाष्टमेऽन्त्येऽनृजुररिगृहगो नीचगो वक्रगामी
क्रूरैर्युक्तोऽस्तगो वा यदि च मुथशिली क्रूरनीचादिभस्थैः ।
क्षुद्दृष्ट्य क्रूरदृष्टो व्ययरिपुमृतिगैरित्थशालं विधित्सुः
कुर्वन्वा निर्बलोऽयं स्वगृहनगभगो राहुपुच्छास्यवर्ती ।। ७१।।

कुन्तला — लग्नात् षष्ठाष्टमे, अन्त्ये = द्वादशे स्थितः, अनृजुः = वक्री अरिगृहगतः, नीचगः = नीचराशिगतः, वक्रगामी = वक्राभिलाषी, क्रूरैः = पापैः, युक्तः = संयुतः, वाऽस्तगतः = सूर्यसामीप्याल्लुप्तकिरणः, यदि वा क्रूरनीचारिभस्थैर्ग्रहैः — पापर्क्षनीचर्क्षशत्रुराशिगतैर्ग्रहैर्मुथशिली = इत्थशाली, क्षुद्दृष्ट्य (१। ४। ७। १०) एतत्संख्यादृष्ट्य क्रूरदृष्टः, क्रूरेण क्रूराभ्यां क्रूरैर्वा दृष्टः । व्ययरिपुमृतिगैः =द्वादशषष्ठाष्टमस्था नगतग्रहैरित्थशालं विधित्सुः = कर्तुमिच्छुः, वा तैरित्थशालं कुर्वन्, स्वगृहनगभगः = स्वराशेः सप्तमराशिगतः, राहुपुच्छास्यवर्ती = राहवाक्रान्तराशेर्भुक्तभोग्यांशवर्ती ग्रहो निर्बलः स्यात् ।। ७१ ।।

ज्योति — अब दुरुष्फ का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि यवन भाषा में दुरुष्फ का मतलब होता है निर्बल वह निर्बलत्व भी अनेक प्रकार का होता है । उनमें से कुछ प्रकारों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि जो ग्रह वर्ष, मास, दिन अथवा प्रश्नलग्न से छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में बैठे हों तो वह और वक्री ग्रह निर्बल होता है । इसी तरह शत्रु की राशि में विराजमान नीच राशि में बैठा हुआ वक्रगामी, पापग्रहों से युक्त, अस्तंगत और क्रूर नीच या शत्रुराशिगत ग्रह के साथ मुथशिल योग करने वाला ग्रह भी निर्बल होता है । जो ग्रह है किसी क्रूरग्रह की क्षुत् अर्थात् चतुर्थ सप्तम दशम तथा प्रथम दृष्टि से देखा जाता हो, जो द्वादश षष्ठ तथा अष्ट स्थान में स्थित ग्रहों के साथ इत्थशाल करना चाहता हो या मुथशिल योग कर रहा हो, वह निर्बल होता है । जो ग्रह अपने घर से सप्तम घर में बैठा हो और राहु के मुख या पुच्छ पर विराजमान हो वह भी निर्बल होता है ।। ७१।।

अथान्यानशुभप्रकारानाह—

अनीक्षमाणस्तनुमस्तभागस्थितः स्वभोच्चादिपदैश्च शून्यः ।
क्रूरेसराफी न स वीर्ययुक्तः कार्यं विधातुं न विभुर्यतोऽसौ ।। ७२ ।।

कुन्तला — यो ग्रहः तनु लग्नम्, अनीक्षमाणः = अदर्शकः, अस्तभागस्थितः = सूर्यनवांशात्सप्तमनवांशगतः, स्वभोच्चादिपदैः = निजराश्युच्चादिशुभाधिकारैः, शून्यः = वर्जितः । क्रूरेसराफी = पापेनेसराफयोगकर्त्ता, स ग्रहो वीर्ययुक्तः न भवति, यतः = यस्मात् । असौ ग्रहः कार्यं विधातुं = कर्त्तुं, विभुः = समर्थो न भवति ॥ ७२ ॥

ज्योति — अब अन्य अशुभ प्रकार बताते हुए कहते हैं कि जो ग्रह अपने लग्न को न देखता हो और सूर्य जिस राशि के नवांश में हो, उससे सप्तम नवांश में विराजमान ग्रह निर्बल होता है । जो ग्रह स्वगृह, स्वोच्च, स्वहद्दा, स्वद्रेष्काण तथा स्वनवांश आदि अधिकारों से हीन हो और जो किसी क्रूर ग्रह के साथ ईसराफ योग कर रहा हो, वह भी निर्बल होता है । क्योंकि वह ग्रह किसी का मनोऽभिलषित कार्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७२ ॥

चन्द्रः सूर्याद्द्वादशे वृश्चिकाद्ये खण्डे नेष्टोऽन्त्ये तुलायां विशेषात् ।
राशीशेनादृष्टमूर्तिर्न सर्वैर्दृष्टो ज्ञेयः शून्यमार्गः पदोनः ॥ ७३ ॥

कुन्तला — चन्द्रः, सूर्याद्द्वादशे स्थाने स्थितः, तथा वृश्चिकाद्ये खण्डे वृश्चिकपूर्वार्धे स्थितो नेष्टो भवति । तथा तुलाया अन्त्ये खण्डे = उत्तरार्धे वर्त्तमानश्चन्द्रो विशेषान्नेष्टः स्यात् । नीचारोहित्वात् । तथा राशीशेन = चन्द्राक्रान्तराशिपतिनाऽदृष्टमूर्त्तिः, सर्वैर्ग्रहैश्च न दृष्टः, एवं भूतश्चन्द्रः, शून्यमार्गः, पदोनः = अधिकारहीनश्च भवति ॥ ७३ ॥

ज्योति — अब समष्टिरूप से सब ग्रहों का दुरफ्फयोग कहकर चन्द्रमा का अत्यन्त दुरफ्फ बताते हुए कहते हैं —यदि सूर्य की राशि से बारहवें स्थान में चन्द्रमा बैठा हो तो निर्बल होता है । वृश्चिक राशि के आदिभाग अर्थात् पूर्वार्ध में बैठा हुआ चन्द्रमा अशुभ फलदायक होता है, अतएव निर्बल माना जाता है । तुलाराशि के उत्तरार्ध में बैठा हुआ चन्द्रमा विशेष रूप से निर्बल होता है । राशिपति के साथ चन्द्रमा जिस राशि में विराजमान हो, उस राशि का स्वामी यदि चन्द्रमा को न देखता हो तो निर्बल होता है और यदि चन्द्रमा शून्य मार्गगामी अथवा अधिकारहीन हो तो निर्बल होता है ॥ ७३ ॥

अथान्यदुरफ्फं चन्द्रस्याह—

क्षीणो भान्ते नो शुभो जन्मकाले पृच्छायां वा चंद्रः एवं विचिन्त्यः ।
शुक्ले भौमः कृष्णपक्षेऽर्कसूनुः क्षुद्दृष्टेन्दुं वीक्षते नो शुभोऽसौ ॥ ७४ ॥

कुन्तला — क्षीणः = कृष्णाष्टम्यादि शुक्लाष्टम्यवधिकः, भान्ते = राश्यन्तिमनवांशे वर्त्तमानः । चन्द्रः शुभो न भवति । एवं जन्मकाले, पृच्छायां =प्रश्नकाले, चन्द्रो विचिन्त्यः । शुक्लपक्षे भौमः क्षुद्दृष्ट्य चन्द्रं वीक्षते, तथा कृष्णपक्षेऽर्कसूनुः शनिः क्षुद्दृष्ट्य इन्दुं वीक्षते तदाऽसौ चन्द्रः शुभो न भवति ॥ ७४ ॥

ज्योति — क्षीण अर्थात् कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी पर्यन्त अथवा कृष्णपक्ष की एकादशी से अमावस्या पर्यन्त चन्द्रमा निर्बल रहता है । राशि के अन्तिम में नवांश में वर्तमान चन्द्रमा दुष्ट फलदायक होता हुआ निर्बल रहता है । जन्मलग्न और प्रश्नकाल में ही चन्द्रमा की निर्बलता और सबलता का विचार किया जाता है । शुक्लपक्ष में मङ्गल और कृष्णपक्ष में शनि ये दोनों यदि चतुर्थ, दशम, सप्तम तथा प्रथम दृष्टि से चन्द्रमा को देखते हों तो भी चन्द्रमा अशुभ फलदायक यानी निर्बल होता है ॥ ७४ ॥

शुक्ले दिवा नृगृहगोऽर्कसुतः शशांकं
कृष्णे कुजो निशि समर्क्षगतः प्रपश्येत् ।
दोषाल्पतां वितनुतेपरथा बहुत्वं प्रश्नेऽथवा
जनुषि बुद्धिमतोहनीयम् ॥ ७५ ॥

कुन्तला — शुक्ले = शुक्लपक्षे, दिवा = दिवसे, नृगृहगः = विषमराशिगतः, अर्कसुतः = शनिः, शशांकं = चन्द्रं, वीक्षते । कृष्णे = कृष्णपक्षे समर्क्षगतः = समराशिगः, कुजः = मङ्गलः, चन्द्रं प्रपश्येत् तदा दोषाल्पतां दोषस्य न्यूनतां वितनुते, परथा = अन्यथा, शनिकुजयोर्दृष्ट्यभावे, बहुत्वं = दोषबाहुल्यं भवति । प्रश्ने, अथवा जनुषि = जन्मकाले, बुद्धिमता एवमूहनीयम् = विचारणीयम् ॥ ७५॥

ज्योति — अब शुभ चन्द्रमा के भी किसी योगविशेष से अल्प दूषणता का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि यदि शुक्लपक्ष में दिन के समय मेष, मिथुन, सिंह आदि पुरुषसंज्ञक राशियों में विद्यमान शनि चन्द्रमा को देखता हो तो उसके दुरुफ योग में कुछ कमी आ जाती है । यदि शनि चन्द्रमा को न देख सके तो दुरुफ में अधिकता हो जाती है । इसी तरह कृष्णपक्ष में रात्रि के समय समसंज्ञक राशि में विद्यमान मङ्गल चन्द्रमा को देखता हो तो उसका दुरुफ न्यून हो जाता है और यदि मङ्गल चन्द्रमा को न देखे तो उक्त दोष बढ़ जाता है । इन सब बातों का विचार बुद्धिमान् लोग जन्मलग्न अथवा प्रश्नलग्न के समय में भी करते हैं । कभीं–कभीं वर्ष, मास और पक्ष आदि के लग्न में भी इसका विचार करना पड़ जाता है ॥ ७५॥

अथ हर्षस्थानान्याह—

नन्द ९ त्रि ३ षट्लग्न १ भवक्ष ११ पुत्र ५ व्यया १२ इनाद्धर्षपदं स्वभोच्चे ।
त्रिभं त्रिभं लग्नभतः क्रमेण स्त्रीणां नृणां रात्रिदिने च तेषाम् ॥ ७६ ॥

श्रीगर्गान्वयभूषणं गणितविञ्चिन्तामणिस्तत्सुतो
ऽनन्तोनन्तमतिर्व्यधात्स्वमतध्वस्त्यै जनुःपद्धतिम् ।
तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया
योगान् षोडश हर्षभानि च तथा संज्ञाविवेकेऽभ्यधात् ॥ ७७ ॥

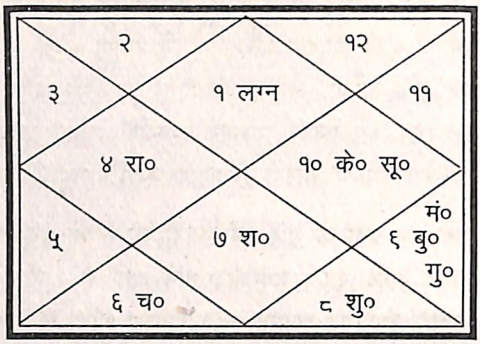
कुन्तला — इनात् = सूर्यात्, नन्दत्रिषट्लग्नभवर्क्षपुत्रव्ययाः क्रमेण हर्षस्थानानि । इदं स्थानबलम् । तथा स्वभोच्चे = निजनिजराशिनिजनिजोच्चे हर्षपदे भवतः । लग्नमतः = लग्नात् क्रमेण त्रिभं त्रिभं स्त्रीणां नृणां हर्षपदं, अर्थात् लग्नात् १.२।३।७।८।९। एतानि स्त्रीग्रहाणां, पुरुषग्रहाणां ४।५।६।१०।११।१२ एतानि स्थानानि हर्षपदानि । तथा तेषां रात्रिदिने च हर्षपदे । हर्षपदम् अर्थात् रात्रौ वर्षप्रवेशे स्त्रीग्रहा बलिनः । दिने वर्षप्रवेशे पुरुषग्रहा बलिनः ॥ ७६—७७ ॥

ज्योति — अब सब ग्रहों के चार हर्ष स्थानों को गिनते हुए कहते हैं कि सूर्य से लेकर सभी ग्रहों के नन्द आदि स्थान हर्षस्थान माने जाते है । जैसे — लग्न से नवम स्थान में स्थिर सूर्य, तृतीय स्थानगत चन्द्रमा, षष्ठस्थानस्थ भौम, लग्नस्थ बुध, एकादशस्थ बृहस्पति, पंचमस्थ शुक्र और व्यवभाव में (बारहवें) स्थित शनि हर्षदायक होता है ।

अब अन्य हर्ष स्थानों की विवेचना करते हुए कहते हैं कि यदि कोई ग्रह अपने घर में तथा अपने से उच्च स्थान में बैठा हो तो वह हर्षित ग्रह माना जाता है । ग्रहों का अपने घर में जितना बल होता है, उतना ही बल अपने से उच्च स्थान में बैठे हुए ग्रह का भी होता है, दूना नहीं । स्त्री—संज्ञक और पुरुष—संज्ञक दोनों प्रकार के ग्रह अपनी लग्नराशि से क्रमशः तीन—तीन राशि हर्षपद के मानें जाते हैं । तात्पर्य यह है कि लग्न से २।३ स्थान में वर्तमान स्त्रीसंज्ञक ग्रह हर्षित होते हैं । तदनन्तर चतुर्थ, पंचम और षष्ठ स्थान में स्थित पुरुषसंज्ञक ग्रह हर्षित होते हैं । तदनन्तर चतुर्थ, पंचम और षष्ठ स्थान में स्थित पुरुषसंज्ञक ग्रह हर्षित होते हैं । फिर सप्तम, अष्टम और नवम स्थान में स्थित स्त्रीसंज्ञक तथा दशम, एकादश और द्वादश स्थान में स्थित पुरुषग्रह हर्षित होते हैं ।

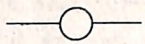
अब चतुर्थ हर्ष स्थान को बताते हुए कहते हैं कि रात्रि के समय यदि वर्षप्रवेश हो तो स्त्रीसंज्ञक ग्रह हर्षदायक होते हैं । दिन के समय यदि वर्ष प्रवेश हो तो पुरुषसंज्ञक ग्रह फलदायक होते हैं । इस ताजिकशास्त्र में चन्द्रमा, शनि, शुक्र और बुध ये ग्रह स्त्रीसंज्ञक और सूर्य, मङ्गल तथा बृहस्पति पुरुषसंज्ञक माने जाते हैं । नपुंसक ग्रह कोई भी नहीं हैं । पूर्वोक्त चारों प्रकार के हर्षबल में पाँच—पाँच विश्वा का बल होता है । जिस ग्रह में चारों प्रकार का बल पाया जाय वह पूरे २० विश्वा का बलवान् माना जायगा ॥ ७६—७७॥

	र०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
स्थान	०	०	०	०	०	०	०
उ० स्व०	०	०	०	०	५	०	५
त्रि०	५	०	०	५	०	५	५
दि०	५	०	५	०	५	०	०
योग	१०	०	५	५	१०	५	१०



नोट — *इस प्रकार सुप्रसिद्ध ताजिक ग्रन्थ नीलकण्ठी में सोलह योगों का वर्णन ग्रन्थकार ने दिखाया है । ये योग विशेष रूप से वर्षफल ज्ञापक हैं, परन्तु विज्ञ ज्योतिषशास्त्रज्ञ यदि जातक शास्त्र में अर्थात् जन्मकुण्डली के फलादेश में उपयोग करे तो भी सूक्ष्म फल की प्राप्ति ही होगी । मैंने वर्ष पत्रिका और जन्मपत्रिका दोनों में फलादेश करके देखा है ये फल सर्वत्र घटते हैं ।*

।। इति नीलकण्ठयां संज्ञातन्त्रे षोडशयोगाध्यायस्य 'कुन्तला' 'ज्योति' संस्कृत हिन्दी टीका सम्पूर्णा ।।



अथ सहमाध्यायः

तत्र तावत्पञ्चाशत्सहमनामान्याह —

पुण्यं गुरु–र्ज्ञान–यशोऽथ मित्रं कथनम्मात्म्य –माशा च समर्थता च ।
भ्राता ततो गौरव–राज–तात–माता सुतो जीवितमम्बु कर्म ॥ १॥
मान्द्यं च मन्मथ–कली परतः क्षमोक्ता
शास्त्रं सबन्धुसहमं त्वथ बन्दकं च ।
मृत्योश्च सद्म परदेश–धनाऽन्यदारा
स्यादन्यकर्म सवणिक् त्वथ कार्यसिद्धिः ॥ २ ॥
उद्वाह–सूति–सन्तापाः श्रद्धा प्रीतिर्बलं तनुः ।
जाड्य–व्यापारसहमे पानीयपतनं रिपुः ॥ ३ ॥
शौर्योपाय–दरिद्रत्वं गुरुतांऽबुपथाभिधम् ।
बन्धनं दुहिताऽश्वश्च पञ्चाशत्सहमानि हि ॥ ४ ॥

कुन्तला — १ पुण्यम् । २ गुरुः । ३ ज्ञानम् । ४ यशः । ५ मित्रम् । ६ माहात्म्यम्। ७ आशा, ८ समर्थता (सामर्थ्यम्) ९ भ्राता । १० गौरवम् । ११ राज्यम् । १२ तात (पितृ) सहमम् । १३ माता । १४ सुतः । १५ जीवितम् । १६ अम्बु । १७ कर्म । १८ मान्द्यम् (रोगसहमम्) १९ मन्मथः । २० कलिः । २१ क्षमा । २२ शास्त्रम् । २३ बन्धुः । २४ बन्दकम् । २५ मृत्युसहमम् । २६ परदेशः । २७ धनम् । २८ अन्यदारा । २९ अन्यकर्म । ३० वणिक् । ३१ कार्यसिद्धिः । ३२ उद्वाहः । ३३ सूतिः । ३४ सन्तापः । ३५ श्रद्धा । ३६ प्रीतिः । ३७ बलम् । ३८ तनुः (देहसहमम्)। ३९ जाड्यम् । ४० व्यापारः । ४१ पानीयपतनम् । ४२ रिपुः । ४३ शौर्यम् । ४४ उपाथसहमम् । ४५ दरिद्रत्वम् (दारिद्र्यम्) रू ४६ गौरवम् । ४७ अम्बुपथसहमम् । ४८ बन्धनं । ४९ दुहिता । ५० अश्वः' । एतानि पञ्चाशत्संख्यकानि सहमानि । यथा भावात्तत्तद्विषया विचार्यन्ते तथैव सहमेभ्योऽपि तत्तद्विषया विचिन्त्यन्ते ॥ इति ॥ १–४ ॥

ज्योति — उपरोक्त वर्णित (१ पुण्य, २ गुरु, ३ ज्ञानम्, ४ यशः, ५ मित्रम्,... ..... ५० अश्वः) इत्यादि पचास प्रकार के सहम होते हैं । जिनसे सभी विषयों के विचार किये जाते हैं ॥ १–४ ॥

तत्रादौ पुण्यसहमसाधनकथनम् —

सूर्योनचन्द्रान्वितमह्नि लग्नं वीन्द्वर्कयुक्तं निशि पुण्यसंज्ञम् ।
शोध्यर्क्षशुद्ध्याश्रयभान्तराले लग्नं न चेत्सैकभमेतदुक्तम् ॥ ५ ॥

कुन्तला — अहिन = दिने, वर्षारम्भश्चेत्तदा लग्नं सूर्योनचन्द्रान्वितं = रविराश्यादिना शोधितेन चन्द्रेण युतं कार्यम् । निशि = रात्रौ, वर्षप्रवेशश्चेत्तदा लग्नं वीन्द्रर्कयुक्तं = विगतः विशोधितश्चन्द्रोऽर्कादिति वीन्द्रर्कस्तेन संयुतं कार्यं, ततः शोध्यर्क्षशुद्धाश्रयभान्तराले लग्नं न चेतदा सैकभं कार्यम्, एतत्पुण्यसंज्ञं सहममुक्तम् । अत्र यो ग्रहः शोध्यते विशोध्यते स शोध्यः यथाऽत्र दिवसे वर्षप्रवेशे सूर्यः । यस्माद्ग्रहाच्छोध्यते तस्य भं शुद्ध्याश्रयभम्। यथा अत्र दिवसे वर्षप्रवेशे चन्द्रः । इति ॥ ५ ॥

ज्योति — इसके उपरान्त पुण्य सहम को साधने का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि यदि दिन के समय वर्ष प्रवेश हुआ हो तो चन्द्रमा में सूर्य को घटावें और यदि रात्रि में वर्ष प्रवेश हो तो सूर्य में चन्द्रमा को घटाना पड़ेगा । इस प्रकार शोधित सूर्य या चन्द्रमा में लग्न को जोड़ देने से पुण्यसहम बन जाता है । पुण्यसहम को साधन करने के विषय में इतना और ध्यान में रखना चाहिए कि यदि शोध्य तथा शुद्धचश्रय राशि के बीच में लग्न न आ सके तो १ राशि और जोड़नी पड़ती है । जो ग्रह घटाया जाता है, वह शोध्य और जिससे ग्रह शोधा जाता यानी जिसमें घटाया जाता है, वह शुद्धचश्रय कहलाता है ॥ ५ ॥

अथ गुरुविद्यायशःसहमानां साधनकथनम्—

व्यत्यस्तमस्माद्गुरुविद्ययोस्तु संसाधनं पुण्यवियुक्सुरेज्यः ।
दिवा विलोमं निशि पूर्ववत्तु यशोभिधं तत्सहमं वदन्ति ॥ ६ ॥

कुन्तला — अस्मात्पुण्यसहमसाधनात्, गुरुविद्ययोः सहमयोः संसाधनं व्यत्यस्तं = विलोमं ज्ञेयम् । अर्थाद्रात्रिसाधितं पुण्यसहमं दिवा गुरुसहमं, दिवासाधितं पुण्यसहमं रात्रौ पुण्यसहमम् । शोध्यशोधकयोर्वैपरीत्यम्, अर्थात् दिवाऽब्दप्रवेशे चंद्रात् सूर्यःशोध्यः, रात्रौ सूर्याच्चन्द्रः शोध्यः । लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा गुरुविद्ये सहमे भवतः ।

सुरेज्यो गुरुः, पुण्यवियुक् = पुण्यसहमेन शोधितः कार्यः । निशि रात्रौ विलोमम् । पुण्यसहमादेव सुरेज्यो विशोध्यः । पूर्ववत् = पूर्वोक्तवत्, लग्नयोगस्तथाशोध्यर्क्षशुद्ध्याश्रयभान्तराले लग्नं च चेत्तदा सैकमं कार्यमेव कृते यशोऽभिधं तत् सहमम्, आचार्या वदन्ति ॥ ६ ॥

ज्योति — इसके बाद गुरु, विद्या तथा यशसहम के साधन का उपाय बताते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त पुण्यसहम के ठीक विपरीत प्रकार के गुरु और विद्यासहम का साधन होता है । जैसे कि दिन के समय वर्षप्रवेश हो तो सूर्य में चन्द्रमा को घटाकर लग्न जोड़े और रात्रि को वर्ष प्रवेश हो तो चन्द्रमा मे सूर्य को घटाकर लग्न जोड़ना पड़ेगा । ऐसा करने से गुरु और विद्यासहम का साधन हो जायेगा। यशसहम का साधन करने के लिए यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो पुण्य–सहम को बृहस्पति में और रात्रि के समय वर्षप्रवेश हो तो पुण्य सहम में बृहस्पति को घटावे और लग्न मिलाकर संस्कार की रीति से एक जोड़े तो यशसहम की सिद्धि हो जाती है । उदाहरण संस्कृत टीका में स्पष्ट है ॥ ६ ॥

अथ मित्रसहमसाधनकथनम्—

पुण्यसद्म गुरुसद्मतस्त्यजेद्व्यत्ययो निशि सितान्वितं च तत् ।
सैकता तनुवदुक्तरीतितो मित्रनाम सहमं विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

कुन्तला — दिवा वर्षप्रवेशे, गुरुपद्तः = गुरुसहमतः, पुण्यसद्म = पुण्यसहमं, त्यजेत् विशोधयेत् । निशि = रात्रौ, व्यत्ययः वैपरीत्यम्, अर्थात् पुण्यसहमाद्गुरुसहमं त्यजेत् । शेषं सितान्वितं = शुक्रसंयुतं कार्यम् । अत्र लग्नयोगस्थाने शुक्रयोगो ज्ञेयः । तनुवत् = लग्नवत्, उक्तरीतिः = कथितविधिवत् सैकता = एकराशियोगः, अर्थात् शोध्यर्क्ष शुद्धयाश्रयमान्तराले शुक्रो न चेत्तदा सैकभं कार्यमित्यर्थः । तदा तन्मित्रनामसहमं बुधा जगुर्विदुः ॥ ७ ॥

ज्योति — इसके बाद मित्रसहम के साधन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि दिन में वर्ष प्रवेश हो तो गुरुसहम में पुण्यसहम को घटा दे और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो पुण्यसहम में गुरुसहम को घटा दे और लग्न को न जोड़कर शुक्र को जोड़ दे । यदि शोध्य और शोधक के मध्य में शुक्र न आता हो तो एक राशि और जोड़ दे तो मित्रसहम सिद्ध हो जायगा ॥ ७ ॥

अथ महात्म्याशासहमयोः साधनकथनम् —

पुण्याद्भौमं शोधयेदुक्तवत्स्यान्माहात्म्यं तन्नक्तमस्माद्विलोभम् ।
शुक्रं मन्दादह्नि नक्तं विलोममाशाख्यं स्यादुक्तवच्छेषमूह्यम् ॥ ८॥

कुन्तला — दिवा वर्षप्रवेशे पुण्याद्भौमं शोधयेत् नक्तं = रात्रौ, अस्माद्विलोमम्, अर्थात् भौमात् पुण्यं शोधयेत् । उक्तवत् = कथितवत्, लग्नयोगः सैकता च कार्या । तदा माहात्म्यं सहमं स्यात् । अह्नि दिवसे वर्षप्रवेशश्चेत् तदा मन्दात् =शनितः शुक्रं विशोध्य, नक्तं = रात्रौ विलोमं शुक्राच्छनिं विशोध्य, शेषमुक्तवत्, लग्नयोगः, सैकता चेति कार्यं तदा आशाख्य सहमं स्यात् ॥ ८ ॥

ज्योति — इसके उपरान्त माहात्म्य और आशासहम साधने का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो पूर्वोक्त पुण्यसहम को मङ्गल का घटावे और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में पुण्यसहम को घटा दे तो माहात्म्यसहम की सिद्धि हो जाती है । आशासहम का साधन करने के लिए दिन में वर्ष प्रवेश हो तो शनि में शुक्र को और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो शुक्र में शनि को घटा और लग्न जोड़ देने से आशासहम सिद्ध हो जाता है ॥ ८ ॥

अथ सामर्थ्यसहम—भ्रातृसहमयोः साधनकथनम्—

सामर्थ्यमारात्तनुपं विशोध्य नक्तं विलोमं तनुपे कुजे तु ।
जीवाद्विशुध्येत्सततं पुरावद् भ्राताऽकिंहीनाद्गुरुतः सदोह्यः ॥ ९ ॥

कुन्तला — दिवा वर्षप्रवेशे, आरात् = कुजात् । तनुपं = लग्नेशं, विशोध्य, नक्तं = रात्रौ विलोमं किन्तु लग्नेशात्कुजमेव विशोध्य लग्नयोगः सैकता च पूर्ववत्तदा सामर्थ्य सहमं स्यात् । तत्र तनुपे = लग्नेशे, कुजे = मङ्गले सति, सततं दिवा रात्रौ च जीवात् = गुरुतः, लग्नेशं विशुध्येत्, शेषं पूर्वोक्तवत् । अथ सदा दिवा रात्रौ च वर्षप्रवेश आर्किहीनाच्छनिविहीनिताद् गुरुतो बृहस्पतितो भ्राता ऊह्यः । अर्थात् गुरौ शनिं विशोध्य शेषं लग्नयुतं शोध्यर्क्षशुद्धयश्रयभान्तराले लग्नं न चेत्तदा सैकभं च कार्यं तदा भ्रातृसहमं स्यात् ।। ९।।

ज्योति — इसके उपरान्त सामर्थ्य और भ्रातृसहम साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं कि यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो लग्नस्वामी को मङ्गल में और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल के लग्नस्वामी में घटाकर लग्न जोड़ देने से सामर्थ्य सहम की सिद्धि हो जाती है । यदि संयोग से मङ्गल ही लग्नस्वामी हो तो दिन–रात्रि किसी भी समय लग्नस्वामी मङ्गल को बृहस्पति में घटाकर पूर्वोक्त रीति से सैकता कर देने से सामर्थ्यसहम सिद्ध हो जाता है । भ्रातृसहम साधने के लिए — दिन–रात्रि चाहे किसी समय वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में शनि को घटाकर एक जोड़ने पर भ्रातृसहम सिद्ध हो जायगा ।। ९ ।।

अथ गौरव–राज–तात–सहमसाधनकथनम्—

दिने गुरोश्चन्द्रमपास्य नक्तं रविं क्रमादर्कविधू च देयौ ।
रीत्योक्तया गौरवमर्कमार्केरपास्य वामं निशि राजतातौ ।। १० ।।

कुन्तला — दिवसे वर्षप्रवेशे गुरोः सकाशाच्चन्द्रं, अपास्य = विशोध्य, नक्तं रात्रौ, गुरो रविं विशोध्य क्रमात्तत्र शेषे अर्कविधू = सूर्यचन्द्रौ, देयौ = योज्यौ, उक्तया रीत्या क्रिया सैकता च कार्या । अर्थात् दिने गुरोश्चन्द्रं विशोध्य रवियोंज्यस्तत्र गुरुचन्द्रयोर्मध्ये रविश्चेन्न तदा सैकभं कार्यं, तदा गौरवं सहमम् । रात्रौ तु गुरो रविं विशोध्य चन्द्रो योज्यः, तत्र गुरुरव्योर्मध्ये चन्द्रश्चेन्न तदा सैकभं, कार्यं, तदा गौरवं सहमं स्यात् । अथ दिवसे वर्षप्रवेशे शनेरर्कं सूर्यमपास्य, निशि = रात्रौ वाममर्थात् अर्काच्छनिं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च पूर्ववत्, तदा राजतातौ सहमे भवतः ।। १० ।।

ज्योति — अब गौरव, राज तथा तातसहम को साधने की रीति बताते हुए कहते हैं कि यदि दिन को वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में चन्द्रमा को घटाकर सूर्य को जोड़ दे । रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में सूर्य को घटाकर चन्द्रमा को जोड़ देने से गौरवसहम सिद्ध हो जाता है । यदि शोध्य और शुद्धयश्रय के मध्य में दिन को सूर्य तथा रात्रि को चन्द्रमा न पड़ता हो तो एक जोड़ना चाहिए । राजसहम और तातसहम का साधन करने के लिए–दिन में वर्षप्रवेश हो तो शनैश्चर में सूर्य का और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो सूर्य में शनि को घटाकर और लग्न को जोड़कर एक जोड़ने से राजसहम तथा तातसहम की सिद्धि हो जाती है ।। १०।।

अथ मातृ–सुत–जीविताम्बुसहमसाधनकथनम्—

मातेन्दुतोपास्य सितं विलोमं नक्तं सुतोऽहर्निशमिन्दुमीज्यात् ।
स्याज्जीविताख्यं गुरुमाकितोऽह्नि वामं निशीदं सममम्बयाऽम्बु ।। ११ ।।

कुन्तला — दिवा इन्दुतश्चन्द्रात्, सितं = शुक्रम्, अपास्य, निशि = रात्रौ विलोममर्थात्, शुक्राच्चन्द्रं विशोध्य लग्नयोगः, सैकता च कार्या, तदा 'मातां सहमम् । अहर्निशं दिवारात्रौ वर्षप्रवेशे तु ईज्यात् = गुरुतः, इन्दुं = चन्द्रं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च पूर्ववत्कार्या तदा सुतःसुतसहम स्यात् । अथ अह्नि = दिने, आर्कितः =शनितः, गुरुं = बृहस्पतिं, विशोध्य, निशि = रात्रौ, वाम = गुरोःशनिं विशोध्य लग्नयोगः सैकताविधिः पूर्ववत्तदा एतज्जीवितसंज्ञं सहमं स्यात् । अथ अम्बया = मात्रा, समं = तुल्यमेव, अम्बु सहमंभवति ।। ११ ।।

ज्योति — इसके बाद माता, पुत्र, जीवित और अम्बुसहम साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन के समय वर्षप्रवेश हो तो शुक्र को चन्द्रमा में और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो शुक्र में चन्द्रमा को घटा और लग्न को जोड़ कर पूर्ववत् एक जोड़ने से मातृसहम की सिद्धि हो जाती है । दिन या रात्रि किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में चन्द्रमा को घटाकर एक जोड़ने से पुत्रसहम सिद्ध हो जाता है । यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में शनि को और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो भी बृहस्पति में शनि को घटाने और लग्न को जोड़ देने से जीवितसहम की सिद्धि हो जाती है । अम्बु सहम के साधन में मातृसहम के समान ही सब क्रिया करनी होती है ।। ११ ।।

अथ कर्म–रोग–मन्मथसहमानयनकथनम्—

कर्म ज्ञमारान्निशि वाममुक्तं रोगाख्यमिन्दुं तनुतः सदैव ।
स्यान्मन्मथो लग्नपमिन्दुतोऽह्नि वामं निशोन्दुं तनुपं सदाऽर्कात् ।। १२ ।।

कुन्तला — दिवा आरात् = कुजात्, ज्ञं = बुधं, निशि = रात्रौ, वामम् = विलोमं, अर्थात् बुधात् कुजं विशोध्यं लग्नयोगः सैकता च पूर्ववत् तदा कर्म सहमं स्यात् । सदैव दिवारात्रौ वर्षप्रवेशे तनुतः = लग्नात्, इन्दुं = चन्द्रं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च कार्या, तद्रोगाख्यं सहमं स्यात् । अहि = दिवसे, इन्दुतः = चन्द्रात्, लग्नपं = लग्नेशं, विशोध्य, निशि = रात्रौ, वामं = विलोमम्, लग्नेशाच्चन्द्रं विशोध्य शेषं कर्म प्राग्वत् तदा मन्मथसहमं स्यात् । यदि इन्दुश्चन्द्र एव तनुपो लग्नेशः, तदा सदैवार्कात् सूर्यात् तनुपं विशोध्य केवलं लग्नयोगः कार्यः अत्र सैकता न कार्या । तदुक्तं रसालायाम् "अत्र शुद्धाश्रय–योजकयोरेकरूपत्वादेक राशियोगो नैव भवतीति ।। १२ ।।

ज्योति — इसके बाद कर्म, रोग और मन्मथसहम के आनयन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि दिन के समय वर्षप्रवेश होने पर मङ्गल में बुध को घटावे और रात्रि के समय वर्ष प्रवेश होने पर बुध में मङ्गल को घटाकर लग्न जोड़ने और एक जोड़ने से रोग सहम का

साधन हो जाता है । मदनसहम साधन करने के लिए दिवावर्ष प्रवेश होने पर चन्द्रमा में लग्नेश को घटावे तथा रात्रि वर्षप्रवेश में लग्नेश में चन्द्रमा को घटाने और लग्न जोड़ने तथा एक जोड़ने से मदनसहम की सिद्धि हो जाती है ॥ १२ ॥

अथ कलिक्षमाशास्त्रसहमानयनकथनम्—

कलिक्षमे स्तो गुरुतो विशुद्धे कुजे विलोमं निशि पूर्वरीत्या ।
शास्त्रं दिने सौरिमपास्य जीवाद् वामं निशि ज्ञस्य युतिः पुरावत् ॥ १३ ॥

कुन्तला — दिवा गुरुतः कुजे विशुद्धे, निशि कुजाद्गुरौ विशुद्धे पूर्वरीत्यालग्नयोगः सैकता च कार्या, तदा कलिक्षमे सहमे स्तः । एतन्महद्वैचित्र्यं यत्कलिसहममेव क्षमा सहममुक्तम् । कलिक्षमयोर्मिथो विरुद्धत्वात् ।

दिने वर्षप्रवेशे जीवात् = गुरोः, सौरिं = शनिम्, रात्रौ वामं =विलोमम् । शनेर्गुरुं विशोध्य ज्ञस्य = बुधस्य, युतिर्योगः, अत्र लग्नयोगस्थले बुधयोगो ज्ञेयः । पुरावत् सैकता च कार्या तदा शास्त्रं सहमं स्यात् ॥ १३ ॥

ज्योति — तदुपरान्त कलि, क्षमा और शास्त्रसहम साधन करने की रीति बताते है । यदि दिवा वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में मङ्गल को और रात्रिप्रवेश में मङ्गल में बृहस्पति को घटाने और लग्न को जोड़ने तथा एक जोड़ने पर कलिसहम और क्षमासहम की सिद्धि होती है । इसी प्रकार दिवा वर्षप्रवेश में गुरु में शनि को घटाने एवं रात्रि वर्षप्रवेश होने पर शनि में बृहस्पति को घटाने और लग्न जोड़ने तथा एक जोड़ने पर शास्त्रसहम की सिद्धि हो जाती है ॥ १३ ॥

अथ बन्धुबन्दकमृत्युसहमानयनकथनम्—

दिवानिशं ज्ञाच्छशिनं विशोध्य बन्ध्वाख्यमेतन्निशि बन्दकं स्यात् ।
वामं दिवैतन्मृतिरष्टमर्क्षादिन्दुं विशोध्योक्तवदाकिंयोगात् ॥ १४ ॥

कुन्तला — दिवानिशं = दिवारात्रौ, ज्ञात् = बुधात्, शशिनं = चन्द्रं, विशोध्य, चन्द्रबुधयोर्मध्ये लग्नं न चेत्तदा सैकतालग्नयोगश्च कार्यस्तदा बन्धुसहमं स्यात् । निशि = रात्रौ, एतद्बन्धुसहममेव बन्दकसहमम् । दिवा वाममर्थाच्चन्द्राद् बुधं विशोध्य शेषं कर्म पूर्ववत् कार्यं तदा बन्दकसहमम् । दिवा रात्रौ वर्षप्रवेशे —अष्टमर्क्षान्मृत्युभावादिन्दुं चन्द्रं, विशोध्य उक्तवत् सैककरणं, आर्कियोगाच्छनियोगान्मृतिर्मृत्युसहमं स्यात् ॥ १४ ॥

ज्योति — इसके बाद बंधु, बंदक तथा मृत्युसहम साधने की रीति बताते हुए कहते हैं – दिन या रात्रि किसी भी समय वर्षप्रवेश होने पर बुध में चन्द्रमा को घटा दे और लग्न जोड़कर एक जोड़के बंधुसहम का साधन करना चाहिये । यदि रात्रि को वर्षप्रवेश हुआ रहता है तो पूर्वोक्त बंधुसहम ही बंदक सहम हो जाता है । यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो

चन्द्रमा में बुध को घटाने, लग्न को जोड़ने और एक जोड़ने से बंदकसहम की सिद्धि होती है । इसी तरह दिवा वर्ष प्रवेश होने पर अष्टमभाव में चन्द्रमा को घटा दे और शनि को जोड़ और उक्तरीति से एक जोड़ दे तो मृतिसहम की सिद्धि हो जाती है ।। १४ ।।

अथ देशान्तरसहमार्थसहमयोःसाधनकथनम् —

देशान्तराख्यं नवमाद्विशोध्य धर्मेश्वरं सन्ततमुक्तवत्स्यात् ।
अहर्निशं वित्तपमर्थभावाद्विशोध्य पूर्वोक्तवदर्थसद्म ।। १५ ।।

कुन्तला — सन्ततं = दिवा रात्रौ, च वर्षप्रवेशे, नवमान्नवमभावाद्धर्मेश्वरं = नवमभावेश्वरं विशोध्य शेषं कर्म उक्तवत् । लग्नयोगः सैकता च कार्येति, तदा देशान्तरसंज्ञं सहमं भवति ।

अहर्निशं = दिवारात्रौ, वर्षारम्भे, अर्थभावाद्धनभावाद्वित्तपं = धनेशं, विशोध्य पूर्वोक्तवत् कर्म कार्यम् तदाऽर्थद्म = धनसहमं स्यात् ।। १५ ।।

ज्योति — देशांतर और अर्थसहम साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन या रात्रि किसी समय वर्षप्रवेश हो तो नवम भाव में नवमभाव के स्वामी को घटा दे और लग्नयोग और एक जोड़ दे तो देशान्तरसहम सिद्ध हो जाता है । अर्थसहम के लिए दिन या रात किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो द्वितीय भाव में द्वितीय भाव के स्वामी को घटा दे । फिर उसमें लग्न को जोड़े और पूर्वोक्त रीति से एक जोड़ दे तो अर्थसहम सिद्ध हो जाता है ।। १५ ।।

अथ परदाराऽन्यकर्मवणिक्सहमसाधनकथनम् —

सितादपास्यर्कमथान्यदाराह्वयं सदा प्राग्वदथान्यकर्म ।
चन्द्राच्छनिं वाममथे निशायां शश्वद्वणिज्यं दिनबन्दकोक्त्या ।। १६ ।।

कुन्तला — सदा = दिवानिशं, सितात् = शुक्रात्, अर्क = सूर्य, अपास्य, शेषं लग्नयोगःकैता च कार्या तदा अन्यदारासंज्ञकं सहमम् । दिवा चन्द्राच्छनिं विशोध्य, निशायां वामं = शनेश्चन्द्रं विशोध्य शेषं कर्म पूर्ववत् तदाऽन्यकर्मसहमं भवति, अथोऽनन्तरं शश्वत् = सदा, वर्षप्रवेशे दिनबन्दकोक्त्या वणिज्यं सहमं भवति । एतदुक्तं भवति चन्द्राद्बुधं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा वणिज्यमिति ।। १६ ।।

ज्योति — परदारासहम साधने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन या रात्रि किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो शुक्र में सूर्य को घटावें और उसमें लग्न जोड़े और एक जोड़े तो परदारासहम सिद्ध हो जाता है । अन्य कर्मसहम साधन करने के लिए – यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रमा में शनि को और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो शनि में चन्द्रमा को घटाकर

लग्न जोड़े और एक जोड़े तो अन्यकर्मसहम सिद्ध हो जाता है । दिन या रात्रि किसी भी समय वर्ष प्रवेश हो तो पूर्वोक्त दिवा बंदक सहम के समान हो साधन करने पर वणिक सहम की सिद्धि हो जाती है ॥ १६ ॥

अथ कार्यसिद्धि–विवाहसहमयोः साधनकथनम्—

शनेर्दिवाऽर्क निशि चन्द्रमार्केर्विशोध्य सूर्येन्दुभनाथयोगात् ।
स्यात्कार्यसिद्धिः सततं विशोध्य मन्दं सितात्स्यात्तु विवाहसद्म ॥ १७ ॥

कुन्तला — दिवा वर्षप्रवेशे शनेरर्कं सूर्यं विशोध्य, निशि = रात्रौ, आर्केः = शनेः, चन्द्रं विशोध्य, क्रमेण सूर्येन्दुभनाथयोगात्, दिवा सूर्यराशीशयोगात्, रात्रौ चन्द्रराशीशयोगात् सैककरणाच्च कार्यसिद्धिः सहमं स्यात् । सततं = सदा, वर्षारम्भे, सितात् = शुक्रात्, मन्दं = शनिं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा विवाहसद्म = विवाहसहमं स्यात् ॥ १७ ॥

ज्योति — अब कार्यसिद्धि और विवाहसमय साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं यदि दिन में वर्षप्रवेश हो तो शनि में सूर्य को घटाकर उसमें सूर्य की राशि के स्वामी को जोड़ दें और रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो शनि में चन्द्रमा को घटावे और चन्द्रमा की राशि के स्वामी को जोड़ दे और एक जोड़े तो कार्यसिद्धि सहम की सिद्धि हो जाती है । इसी प्रकार दिन चाहे रात किसी भी समय वर्ष प्रवेश हो तो शुक्र में शनि को घटाकर लग्न को जोड़े और एक जोड़े तो विवाहसहम सिद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ प्रसव–सन्ताप–सहमयोः साधनकथनम्—

गुरोर्बुधं प्रोज्झय भवेत्प्रसूतिर्वामं निशीन्दुं शनितो विशोध्य ।
षष्ठं क्षिपेदुक्तदिशा सदैव सन्तापसद्माऽरमपास्यशुक्रात् ॥ १८ ॥
श्रद्धा सदा प्रोक्तदिशाऽथ पुण्यं विद्याख्यतः प्रोज्मय सदा पुरोतया ।
प्रीत्याख्यमुक्तं बलदेहसंज्ञे यशःसमे जाड्यमपास्य भौमात् ॥ १९ ॥
शनिं विलोमं निशि चान्द्रियोगाद् व्यापारमाराज्ज्ञमपास्य शश्वत् ।
पानीयपातः शशिनं विशोध्य सौरेर्विलोमं निशि पूर्ववत्स्यात् ॥ २० ॥

कुन्तला — दिवा वर्षारम्भे गुरोः सकाशाद् बुधं, प्रोज्झय = विशोध्य, निशि = रात्रौ, वामं विलोमं, बुधाद्गुरुं विशोध्य लग्नयोगः सैकता कार्या तदा तत् प्रसूतिसहमं स्यात् सदैव दिवारात्रौ नववर्षारम्भे शनितः इन्दुं चन्द्रं विशोध्य षष्ठं भावं क्षिपेद्योजयेत्, उक्तदिशा = कथितरीत्या, लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा सन्तापसहमं भवति । सदा = दिवारात्रौ, शुक्रात् आरं = कुजम् अपास्य विशोध्य, प्रोक्तदिशा लग्नयोगः सैकता च कार्था तदा श्रद्धासहमं स्यात् । अथ सदा विद्याख्यतः = शास्त्रसहमात्, पुण्यं पुण्यसहमं प्रोज्मय, पुरोक्त्या क्रिया लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा प्रीत्याख्यं सहमं प्रीतिसहमं भवति । अथ यशःसमे

यशःसहमसमाने एव बलदेहसंज्ञे सहमे स्तः । अर्थाद्बलदेयशःसहमानि एकरूपाण्येव भवन्ति । दिवा भौमात्, शनिं विशोध्य, निशि = रात्रौ विलोमं, शनेर्भौमं विशोध्य चान्द्रियोगात् = बुधयोगात् । शोध्यर्क्षेत्यादिना सैकविधानात्, जाड्यं सहमं, स्यात् । शश्वत् = दिवारात्रं आशत् = कुजात्, ज्ञं = बुधं, अपास्य लग्नयोगः सैकता चेति करणेन व्यापारसहम स्यात् दिवा सौरेः = शनेः, चन्द्रं, विशोध्य, निशि = रात्रौ, विलोमं = विपरीतं, चन्द्राच्छनिं विशोध्य पूर्ववत् क्रिया कार्या तदा पानीयपातः सहमं स्यात् ॥ १८—२० ॥

ज्योति — अब प्रसव और सन्तापसहम साधने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन में वर्षप्रवेश हो तो बृहस्पति में बुध को घटावे और यदि रात्रि में वर्ष प्रवेश हो तो बुध में गुरु को घटाकर लग्न जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो प्रसूतिसहम सिद्ध हो जाता है । दिन तथा रात्रि किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो शनि में चन्द्रमा को घटावे और उसमें षष्ठ भाव को जोड़कर पूर्ववत् एक जोड़ देने से सन्तापसहम की सिद्धि हो जाती है ॥ १८ ॥

अब श्रद्धा, प्रीति, बल और देहसहम को साधने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन या रात किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो शुक्र में मङ्गल को घटा कर लग्न जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो श्रद्धासहम का साधन हो जाता है । दिन या रात किसी समय भी वर्षप्रवेश हो तो विद्यासहम में पुण्यसहम को घटा दे और लग्न का योग करे और पूर्ववत् एक जोड़ दे तो प्रीतिसहम सिद्ध हो जाता है । पहले जो यशसहम कह आये हैं, उसी को बल और देहसहम समझना चाहिए ॥ १९॥

अब जाड्य व्यापार और पानीयपतन सहम साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं दिन में वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में शनि को घटावे और बुध को जोड़े । रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो शनि में मङ्गल को घटावे और बुध को जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो जाड्यसहम का साधन हो जाता है । दिन रात्रि किसी समय वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में बुध को घटाकर लग्न जोड़े और दिन में वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में शनि को घटाकर बुध को जोड़े और रात्रि को वर्ष प्रवेश हो तो चन्द्रमा में शनि को घटाकर लग्न जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो पानीयपतनसहम सिद्ध हो जाता है ॥ २०॥

अथ शत्रु—शौर्योपायदरिद्रगुरुतासहमानामानयनकथनम्—

मन्दं कुजात्प्रोज्झ्य रिपुर्विलोमं रात्रौ भवेद्भौमविहीनपुण्यात् ।
शौर्यं विलोमं निशि पूर्ववत्स्यादुपाय ईज्यं शनितो विशोध्य ॥ २१ ॥
वामं निशि ज्ञं तु विशोध्य पुण्याज्ज्ञं युग्विलोमं निशि तद्दरिद्रम् ।
सूर्योच्चतः सूर्यमपास्य नक्तं चन्द्रं तदुच्चाद् गुरुता पुरोक्त्या ॥ २२ ॥

कुन्तला — दिने कुजान्मन्दं =शनिं प्रोज्झय = विशोध्य, रात्रौ विलोमं शनेः = कुजं विशोध्य, लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा तद्रिपुसहमं स्यात् । दिने भौमविहीनपुण्यात् = पुण्य सहमात्कुजः, शोध्यः, निशि विलोमं = कुजात् पुण्यसहमं शोध्यं, पूर्ववत् लग्नयोगः सैकता च

कार्या, तदा शौर्य शौर्यसहमं भवेत् । दिने शनित ईज्यं = गुरुं, निशि = रात्रौ, वामं = विलोमं, गुरोः शनि विशोध्य लग्नयोगः सैकता च कार्या, तदा उपाय उपायसहमं भवेत्, दिने पुण्यात् = पुण्यसहमात् ज्ञं = बुधम्, विशोध्य, निशि = रात्रौ, विलोमं बुधात् पुण्यं विशोध्य, लग्नयोगस्थले ज्ञयुग्=बुधयुक्तः, तदा दरिद्रसहमं स्यात् ।

दिवा सूर्योच्चतः सूर्यमपास्य, नक्तं = रात्रौ, तदुच्चात्—चन्द्रोच्चात्, चन्द्रं, विशोध्य पुरोक्त्या क्रिया कार्या, तदा गुरुता सहमं स्यात् ॥ २१—२२॥

ज्योति — अब शत्रु और शौर्यसहम का साधन करते हुए कहते हैं कि दिन में वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में शनि को और रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो शनि में मङ्गल को घटावे और लग्न को जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो रिपुसहम सिद्ध हो जाता है । दिन में वर्षप्रवेश हो तो पुण्यसहम में मङ्गल को घटावे और रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो मङ्गल में पुण्यसहम को घटाकर लग्न जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़े तो शौर्यसहम की सिद्धि हो जाती है ॥ २१॥

इसके बाद उपाय, दरिद्र और गुरुतासहम के साधन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि दिवावर्षप्रवेश होने पर शनि में बृहस्पति को और रात्रि को वर्षप्रवेश होने पर बृहस्पति में शनि को घटाकर लग्न जोड़ने और एक जोड़ने से उपायसहम की सिद्धि हो जाती है । दिवा वर्ष प्रवेश होने पर पुण्यसहम में बुध को घटावे और बुध ही को जोड़ दे, एक जोड़े दरिद्रसहम की सिद्धि हो जाती है । दिन के समय वर्षप्रवेश हो तो सूर्य के उच्च में सूर्य को घटावे और रात को चन्द्रमा के उच्च में चन्द्रमा को घटावे और पूर्वोक्त रीति से लग्न का योग और एक जोड़े तो गुरुतासहम की सिद्धि हो जाती है ॥ २२ ॥

जलपथबन्धनसहमानयनकथनम् —

कर्कार्धतः ३।१५ **प्रोज्झय शनिं स्याज्जलाध्वान्यथा निशि ।**
पुण्याच्छनिं विशोध्याह्नि वामं निशि तु बन्धनम् ॥ २३ ॥

कुन्तला — दिवा कर्कार्धतः = सार्धराशित्रयात् ३।१५ शनिं विशोध्य, निशि = रात्रौ, अन्यथा शनेः सार्धराशित्रयं विशोध्य लग्नयोगः सैकता कार्यं, तदा जलाध्वसहमं स्यात् ।

अह्नि = दिने, पुण्यात् = पुण्यसहमात्, शनिं विशोध्य, निशि रात्रौ वाममर्थात्, शनेः पुण्यं विशोध्य लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा बन्धनं सहमं स्यात् ॥ २३॥

ज्योति — अब जल पथ और बन्धनसहम के आनयन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि दिन में वर्षप्रवेश हो तो कर्कार्ध (साढ़े तीन राशि) के बीच में शनि को घटाकर और रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो शनि में कर्कार्ध (साढ़े तीन राशि) को घटाकर लग्न का योग और एक जोड़े तो जलपथसहम का साधन हो जाता है । इसी प्रकार दिन में वर्षप्रवेश हो तो पुण्यसहम में शनि को और रात्रि को वर्षप्रवेश हो तो शनि में पुण्यसहम को घटाकर लग्न का योग और पूर्ववत् एक जोड़े तो बन्धनसहम का साधन हो जाता है ॥ २३ ॥

अथ कन्याऽश्वसहमयोः साधनकथनम् —

चन्द्रः सितादपास्योक्तं सदा कन्याख्यमुक्तवत् ।
पुण्यादर्कमपास्पाययोगादश्वोऽन्यथा निशि ।। २४ ।।

कुन्तला — सदा = दिने रात्रौ च सितात् = शुक्रात्, चन्द्रं, अपास्य उक्तवत् क्रिया लग्नयोगः सैकता च कार्या तदा कन्याख्यं सहममुक्तं = कथितम् । दिवा वर्षप्रवेशे पुण्यात् पुण्यसहमात्, अर्क=सूर्यम्, अपास्य=विशोध्य, निशि = रात्रौ, अन्यथा, सूर्यादेव पुण्यसहमं विशोध्य, लग्नयोगस्थले आयभावयोगात्, अश्वः =अश्वसहमं स्यात् ।। २४ ।।

ज्योति — अब कन्या और अश्वसहम साधन करने की रीति बताते हुए कहते हैं कि दिन या रात्रि किसी भी समय वर्षप्रवेश हो तो शुक्र में चन्द्रमा को घटावे और लग्नयोग और एक जोड़ने पर कन्यासहम की सिद्धि हो जाती है । दिन के समय वर्षप्रवेश हो तो पुण्यसहम में सूर्य को घटावे और रात को वर्षप्रवेश हो तो सूर्य में पुण्यसहम को घटावे और इसमें एकादश भाव जोड़े और पूर्ववत् एक जोड़ दे तो अश्वसहम का साधन हो जाता है ।। २४ ।।

अथ सहमफलप्राप्तिसमयसाधनकथनम् —

स्वनाथहीनं सहमं तदंशाः स्वीयोदयघ्ना विहृतास्त्रिशत्या ।
तत्सद्मपाको दिवसैर्हि लब्धैः स्यात्तद्दशायां तदसम्भवे वा ।। २५ ।।

कुन्तला — सहमं स्वनाथहीनं = तत्सहमेशग्रहवर्जितं कार्यम, तदंशाः = कार्याः, स्वीयोदयघ्नाः = सहमाश्रयराशेः स्वदेशोदयेन गुणिताः, शतत्रयेण विहृताः = भक्ताः, तत्र लब्धैर्दिवसैः तत्सद्मपाकः = तत्सहमफलप्राप्तिसमयः स्यात् । एतदागतफलं दिनादिकं सौरमानेन लवादिकम्, तदंशस्थाने शतत्रयेण भक्तं, तदा सौरमानेन मासादिकमर्थाद्राश्यादिकं जातं, तद्वर्षप्रवेशकालिकसूर्ये योजितं सद्यद्भवति, तत्तुल्ये सूर्ये तत्सहमफलं भवतीति स्पष्टम् । केषांचिदेवं मतम्—सहमेश्वरदशारंभदिनात्तावद्भिरेवानीतैः सौरदिनाद्यैस्तत्सहमफलप्राप्तिरिति। तदसम्भवे = तत्सहमफललाभसमयाभावे, तद्दशायां तत्सहमेश्वरदशायां तत्सहमफलं स्यात् । अर्थाद्यदा सहमराश्यादितुल्यमेव तत्सहमेश्वरग्रहराश्यादिमानं तदा स्वनाथहीनं सहममित्यादिना शेषस्य शून्यत्वात्तत्सहमफलप्राप्तिसमयः शून्यसम एवातस्तत्रोपायः प्रदर्शितः ।। २५ ।।

ज्योति — सहम साधने की रीतियाँ बताने के बाद अब उनका फल कहते हैं कि वर्षप्रवेश के कुछ ही दिनों बाद सहम का फल मिलने लगता है । इस आकांक्षा का परिहार करते हुए फलप्राप्ति के दिनों का आनयन करने की रीति बताना आवश्यक है । जिस सहम के शुभाशुभ दिवस जानने की इच्छा हो, उस सहम के राशिस्वामी को सहम में घटावे । जो अंश शेष बचे, उनसे सहम राशि के उदयांश से गुणा करे । फिर उसमें तीन सौ से भाग दे । जो शेष बचे, वही सहमफल की दिनसंख्या होती है ।। २५ ।।

उदाहरण — जैसे पुण्यसहम की राश्यादि ५। ५। २५। १ में सहमराशि के स्वामी बुध ३। ६। १। १२ को घटाया तो शेष रहा १। २९। १०। ४९ इसके अंश ५९। १०। ४९ को सहमराशि कन्या के उदय ३३५ से गुणा किया तो १९८२५। २३। ३५ हुए । इसमें ३०० का भाग दिया तो ६६ दिन ५ घटी का लाभ हुआ । जिसका तात्पर्य यह हुआ कि वर्षप्रवेश से इतने दिनों तक में पुण्यसहम का फल होगा ।। २५ ।।

अथ सहमफलानि व्याख्यायन्ते —

स्वोच्चादिसत्पदगतो यदि लग्नदर्शी वीर्यान्वितः सहमपो यदि नेक्षत्रेऽळम् ।
नासौबलीरविशशिश्रितमेशदर्शपूर्णान्तलग्नपबलस्य विचारणेत्थम् ।। २६।।

कुन्तला — यदि सहमपः = सहमस्वामी, स्वोच्चादिसत्पदगतः, लग्नदर्शी च भवेत्तदावीर्यान्वितः = बलयुक्तः, स्यात् । यदि च स्वोच्चादिसत्पदगतोऽपि अङ्गं = लग्नं, न ईक्षते = न पश्यति, तदाऽसौ सहमपः बली नैव भवति । अनेन प्रकारेण, रविशशिश्रितमेशदर्श—पूर्णान्तलग्नपबलस्य = रविराशीशस्य चन्द्रराशीशस्य, गतदर्शान्तकालिकलग्नेशस्य गतपूर्णान्त—कालिकलग्नेशस्य च विचारणा = बलाबलविवेचना, कार्या ।। २६ ।।

ज्योति — तदुपरान्त सहमों की सबलता और निर्बलता का निर्देश करते हुए कहते हैं कि यदि समहराशि का स्वामी अपने उच्च, स्वगृह, स्वोच्च, स्वहद्दा और स्वमुसल्लह (स्वनवांश) में रहता हुआ लग्न को देखता हो तो वह बलवान् माना जायगा । यदि सहमस्वामी पंचवर्गी में रहकर भी लग्न को न देखता हो तो उसे बलवान् नहीं कह सकेंगे । जन्म—समय में सूर्य और चन्द्रमा जिस—जिस राशि पर बैठे हों उस—उस राशि के स्वामी और जन्म काल से आगे या पीछे जितनी घटी अमावास्या तथा पूर्णिमा हो, उस समय लग्न बनाने पर जो—जो लग्न आवें, उन—उन लग्नों के स्वामी इन चारों के बल का विचार पूर्वोक्त रीति से ही करनी चाहिए ।। २६ ।।

अथ निर्बलग्रहलक्षणकथनम्—

पञ्चवर्गीबलेनोनो न हर्षस्थानमाश्रितः ।
अबलोऽयं लग्नदर्शी बली स्वल्पेऽस्ति चेत्पदे ।। २७ ।।

कुन्तला — यो ग्रहः पञ्चवर्गीबलेन = क्षेत्रोच्चहद्दादृक्कनवांशसिद्धबलयोगबलेन हीनो वर्षितः, पञ्चाल्पसंख्यात्मकबलवान् स्यात् । तथा हर्षस्थानं नन्दत्रिषडित्यादिविदितं न आश्रितः = स्थितः, तदा सोऽयं ग्रहोऽबलः स्यात् । चेत् स्वल्पेऽपि पदे स्थितो ग्रहो लग्नदर्शी भवेत्तदाऽसौ बली भवति । वा केचित्, लग्नादर्शीति पाठं मन्यन्ते, तत्र लग्नादर्शी = लग्नाद्द्वितीयषष्ठाष्ट—मव्ययस्थानगतो ग्रहोऽबलः स्यात्तेषु दृष्टत्वभावात् ।। २७ ।।

ज्योति — इसके बाद सहमो की निर्बलता और सबलता का लक्षण हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त पंचवर्गी बल से हीन चारों हर्षद स्थानों से पृथक् हो उसे निर्बल ग्रह कहते हैं ।

जो ग्रह स्वल्प अधिकार अर्थात् अपने त्रैराशिक और मुसल्लह में रहकर लग्न को देखता हो, उसे बलवान् ग्रह कहेंगे । स्वगृह और स्वोच्च स्थान में स्थित ग्रह महाधिकारी, अपनी हद्दा में स्थित ग्रह मध्यमाधिकारी और अपने त्रैराशिक एवं अपने मुसल्लह में स्थित ग्रह स्वल्पाधिकारी माने जाते हैं ।। २७ ।।

अथ सहमबलविवेककथनम् —

स्वस्वामिनाशुभखगैः सहितं च दृष्टं स्वामी बली च यदि तत्सहमस्यवृद्धिः ।
यत्स्वामिना शुभखगैश्चन युक्तदृष्टं तत्संभवो नहि भवेदिति चिन्त्यमादौ ।। २८।।

कुन्तला — यत् सहमं स्वस्वामिना, शुभखगैः = शुभग्रहैः = चन्द्रबुधगुरुभृगुभिः सहितं दृष्टं च भवेत्, तथा तस्य स्वामी ग्रहो बली = पञ्चवर्गबलाधिकः, हर्षस्थानस्वोच्चादिपदगतः । तदा तत्सहमस्य वृद्धिर्भवति । यत् सहमं स्वामिना = सहमपतिना, शुभखगैश्च न युक्तदृष्टं तत्सम्भवः = तत्सहमविषयलाभो नहि भवेदित्यादौ विचिन्त्यम् ।। २८ ।।

ज्योति — सहमाधिपतियों के बलाबल की विवेचना के अनन्तर अब सहमों की वृद्धि और ह्रासता का निर्देशन करते हुए कहते है कि जो सहम अपने स्वामी से देखा जाता हो अथवा शुभ ग्रह के साथ हो या उसे शुभ ग्रह देख रहे हों और पूर्वोक्त रीति से जो सहमस्वामी बली हो, वह वृद्धिशील होता और फल प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है। जो सहम अपने स्वामी तथा शुभ ग्रहों से न युक्त हो, न देखा गया हो, उस सहम में कुछ भी फल देने की सामर्थ्य नहीं रहती। वह अपने नामानुसार फल नहीं दे पाता । इन बातों का विचार पहले ही कर लेना चाहिए ।। २८ ।।

अथान्यत्सहमासम्भवलक्षणकथनम् —

अष्टमाधिपतिना युतेक्षितं पापदृग्युतमथेत्थशालि तैः ।
सम्भवेऽपि विलयं प्रयाति यत्तेन जन्मनि पुरेदमीक्ष्यताम् ।। २९।।

कुन्तला — यत् सहमं, अष्टमाधिपतिना = अष्टमेशेन युतेक्षितं, पापदृग्युतं; तैः पापः इत्थशालि, तत् सहमफलं, सम्भवेऽपि विलयं = नाशं प्रयाति, तेन हेतुना तदिदं पुरा पूर्वं, जन्मनि = जन्मकाले ईक्ष्यतां = विचार्यताम् ।। २९ ।।

ज्योति — जो सहम वर्षलग्न से अष्टम राशि के स्वामी से देखा जाता हो या उसके साथ हो अथवा पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो या कि अष्टम राशि के स्वामी तथा पापग्रहों से परस्पर इत्थशाल करता हो तो वह अपने स्वामी तथा शुभग्रहों द्वारा होने वाले शुभ फलों को असंभव कर देता है । अर्थात् वह सहम अपने नाम के अनुरूप फल नहीं प्रदान कर पाता । इसी कारण जन्मकाल में पूर्वोक्त पचासों सहमों के बलाबल का विचार पहले कर लेना चाहिए ।। २९ ।।

वर्षे बलिष्ठसहमस्यैव विचारः कार्यस्तदाह —

आदौ जन्मनि सर्वेषां सहमानां बलाबलम् ।
विमृश्य सम्भवो येषां वर्षे तानि विचिन्तयेत् ॥ ३० ॥

कुन्तला — आदौ = पूर्वं, जन्मनि = जन्मकाले, सर्वेषां सहमानां बलाबलं, विमृश्य = विचार्य, येषां सहमानां सम्भवः = फलदातृत्वसम्भवस्तान्येव सहमानि वर्षे विचिन्तयेत् ॥ ३०॥

ज्योति — इसके बाद बलवान् सहम के साधन और निर्बल सहमों के निराकरण का विचार करते हुए कहते हैं कि जन्म समय में सबसे पहले सब सहमों का बलाबल विचार करे और जिन सहमों की फलप्राप्ति संभव दिखे, उन्हीं को विचार कर वर्ष में स्थापित करे । जिस सहम का स्वामी बलहीन हो, उसे वर्ष में कभी कभी न विचारे ॥ ३० ॥

अथ पुण्यसहमविचारकथनम् —

सबले पुण्यसहमे धर्मसिद्धिर्धनागमः ।
शुभस्वामीक्षितयुते व्यत्यये व्यत्ययं विदुः ॥ ३१ ॥

कुन्तला — पुण्यसहमे सबले स्वामिशुभयुतदृष्टे, सति धर्मसिद्धिः, धनागमः स्यात् । व्यत्यये = विपरीतेऽर्थात्पुण्यसहमे = दुर्बले, व्यत्ययं = पापप्रवृत्तिः, अपव्ययश्चेति विदुः ॥ ३१॥

ज्योति — इस प्रकार वे सहम यदि सबल हों तो क्या फल होगा ? अब इस बात को विचारते हुए कहते हैं कि यदि पुण्य सहम सबल हो और शुभ ग्रह तथा उस राशि के स्वामी उसके साथ हों तथा देख रहे हों तो धार्मिक भावना जागृत हो और धन का आगम हो । यदि पुण्यसहम निर्बल होकर पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो धर्म और धन दोनों का नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ पुण्यसहमस्याशुभफलत्वं सापवादकथनम् —

लग्नात्षष्ठाष्टरिःफस्थं धर्मभाग्ययशोहरम् ।
शुभस्वामिदृशा प्रान्ते सुखधर्मादिसम्भवः ॥ ३२ ॥

कुन्तला — पुण्यसहमं वर्षलग्नात् षष्ठाष्टरिःफस्थं = रिपुमृत्युव्ययभागवतं, तदा धर्मभाग्ययशोहरं भवति । शुभस्वामिदृशा प्रान्ते = वर्षान्ते, सुखधर्मादिसम्भवो भवति ॥ ३२ ॥

ज्योति — यदि वर्षलग्न से छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में पुण्य सहम हो तो धर्म भाग्य तथा यश की हानि होती है । यदि पुण्यसहम छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित हो, और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ रही हो तो सुख और धर्म आदि की प्राप्ति होती है । अर्थात् वर्ष के पूर्वार्ध में अशुभ और उत्तरार्ध में शुभ फल होता है ॥ ३२ ॥

शुभपापग्रहसम्बन्धेन युतिदृष्ट्येः फलकथनम्—

पापयुक्शुभदृष्टं चेदशुभं प्राक् ततः शुभम् ।
शुभयुक्तं पापदृष्टमादौ शुभमसत्परे ।। ३३ ।।

कुन्तला — पुण्यसहमं पापयुक् शुभदृष्टं च भवेत्तदा प्राक् पूर्वमशुभं, ततः पश्चाच्छुभं भवेत् । यदि शुभयुक्तं पापदृष्टं तदाऽऽदौ शुभं परे = तत्परस्मिन् काले असदशुभं स्यादिति ।। ३३ ।।

ज्योति — अब पापग्रह और शुभ ग्रह के सम्बन्ध से होनेवाले युक्ति और दृष्टि का फल बताते हुए कहते हैं कि उक्त पुण्यसहम यदि पापग्रहों से युक्त और शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो वर्ष के पूर्वार्ध में अशुभ और उत्तरार्ध में शुभ हो जाता है । यदि पुण्यसहम पापग्रह के युक्त और पापग्रह से दृष्ट हो तो सारा वर्ष अशुभ हो जाता है । यदि पुण्य सहम शुभ ग्रह से युक्त और शुभ ग्रहों से ही दृष्ट हों तो सारा वर्ष शुभ फलदायक होता है ।। ३३ ।।

यत्राब्दे पुण्यसहमं शुभं सोऽत्र शुभावहः ।
अनिष्टेस्मिन् शुभो नेति पुण्यमादौ विचारयेत् ।। ३४ ।।

कुन्तला — यत्र = यस्मिन्, अब्दे = वर्षे, पुण्यसहमं शुभं अत्र सः अब्दः शुभावह = शुभप्रदो भवति । अस्मिन् =पुण्यसहमे, अनिष्टे = अशुभे, दुर्बले, पापयुतेक्षिते, तदा, शुभो नैवेत्यादौ पुण्यसहममेव विचारयेत् ।। ३४ ।।

ज्योति — अब पुण्य सहम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस वर्ष में पुण्यसहम शुभफलदायक हों वह वर्ष शुभ होता है । जिस वर्ष में पुण्य सहम अनिष्ट होता है तो वह पूरे वर्ष भर अशुभ फलदायक ही होता है । इसी कारण सर्वप्रथम पुण्य सहम का ही विचार करना चाहिए ।। ३४ ।।

सूतौ षष्ठाष्टरिःफस्थं मध्ये पापहतं पुनः ।
पुण्यधर्मार्थसौख्यघ्नं पत्यौ दग्धे फलं तथा ।। ३५ ।।

कुन्तला — सूतौ जन्मनि पुण्यं सहमं षष्ठाष्टरिःफस्थं, वर्षे पुनः पापहतं = पापयुतेक्षितं, तदा धर्मार्थसौख्यघ्नं धर्मधनसुखनाशकं भवति । तथा पुण्यसहमस्य पत्यो = स्वामिग्रहे, दग्धे = अस्तळते सत्यपि तथाऽनिष्टं फलं ज्ञेयम् ।। ३५।।

ज्योति — अब पुण्यसहम के जन्म लग्न में होने वाले अशुभ लक्षण का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि जन्मकाल में पुण्यसहम यदि छठें, आठवें या बारहवें स्थान में स्थित हो और उस वर्ष में वह पुण्यसहम पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो वह धर्म, अर्थ और सौख्य का घातक होता है । यदि पुण्य सहम का स्वामी दग्ध या अस्त हो गया हो तो वह भी धर्म, अर्थ और सुख का नाशक हो जाता है ।। ३५ ।।

सहमान्यखिलानीत्थं सूतौ वर्षे विचिन्तयेत् ।
मान्द्यारिकलिमृत्यूनां व्यत्ययादादिशेत्फलम् ।। ३६ ।।

कुन्तला — सूतौ = जन्मनि, वर्षे = वर्षकाले, इत्थममुना प्रकारेण अखिलानि = सर्वाणि, सहमानि विचिन्तयेत् । मान्द्यारिकलिमृत्यूनां सहमानां व्यत्ययात् = विलोमात्, फलमादिशेत् = कथयेत् । रोग—शत्रु—कलि—मृत्युसहमानां सबलत्वे तत्फलस्याशुभस्य पुष्टत्वाद्दुर्बलत्वे तदशुभफलस्य क्षीणत्वात्फलवैपरीत्यं ज्ञेयम् ।। ३६ ।।

ज्योति — इस रीति से जन्मकाल तथा वर्ष काल के सभी सहमों का विचार करना चाहिए । किन्तु रोग, शत्रु, कलि और मृत्युसहम का फल विपरीत क्रम से विचारना चाहिए । कहने का तात्पर्य यह कि ये सहम जितने बलवान् होंगे उतना ही उस सहम फल की हानि करेंगे और जितने निर्बल स्थान में होंगे उतना ही उस सहम की वृद्धि करेंगे ।। ३६ ।।

अथ कार्यसिद्धिसहमशुभाशुभफलकथनम् —

कार्यसिद्धिसहमं युतं शुभैर्दृष्टमूथशिलगं जयप्रदम् ।
संळरेऽथ शुभपापदृष्टियुक् क्लेशतो जय उदीरितो बुधैः ।। ३७ ।।

कुन्तला — कार्यसिद्धिसहमं शुभैर्युतं वा दृष्टमूथशिलगं दृष्टं कृतेत्थशालं च, तदा सळरे = संड्ग्रामे, जयप्रदं भवति । अथ तत् कार्यसिद्धिसहमं शुभपापदृष्टियुक् = शुभदृष्टं पापयुक्तं, वा शुभयुक्तं पापदृष्टं तदा क्लेशतः = कष्टात्, बुधैः, पण्डितैर्जयः = शत्रु पराजयः, उदीरितः = कथितः ।। ३७ ।।

ज्योति — कार्यसिद्धिसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहतें हैं कि यदि कार्यसिद्धि सहम शुभ ग्रहों से युक्त और दृष्ट हो और उनके साथ इत्थशाल करता हो तो वह संग्राम में विजयदायक, शत्रुनाशक और उत्कर्षकारी होता है । यदि कार्यसिद्धि सहम शुभ ग्रह अथवा पापग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो बड़ी कठिनाई से विजय होती है ।। ३७ ।।

अथ कलिसहमस्य शुभाशुभकथनम् —

कलिसद्म मिश्रखगदृष्टिसंयुतं यदि पापमूथशिलगं कलेर्मृतिम् ।
अथ तत्र सौम्यसहितावलोकिते जयमेति मिश्रदृशितः कलिव्यथे ।। ३८ ।।

कुन्तला — कलिसद्म = कलिसहमं, यदि मिश्रखगदृष्टि युतं = पापशुभदृष्टिसंयुतं, वा पापमूथशिलगं = पापग्रहेत्थशालयुक्तं, तदा कालेः = कलहात् झकटकात्, मृतिं मृत्यु प्राप्नोति । अथ तत्र = कलिसहमे सौम्यसहितावलोकिते = शुभयुक्ते शुभदृष्टे च सति जयमेति मिश्रदृशितः = पापशुभदृशितः, कलिव्यथे = कलहपीड़े, च भवतः ।। ३८ ।।

ज्योति — कलिसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि कलिसहम शुभ तथा पाप ग्रह दोनों से दृष्ट या युक्त न हो और पाप ग्रहों का उसके साथ मुथशिल योग

पड़ रहा हो तो लड़ाई–झगड़े से मृत्यु होने की सम्भावना रहती है । यदि कलिसहम शुभ ग्रहों से युक्त या अवलोकित हो तो लड़ाई में विजय प्राप्त होती है और यदि शुभ तथा पाप ग्रह दोनों की दृष्टि पड़ रही हो तो कलह और विवाद दोनों होता है ।। ३८ ।।

अथ विवाहसहमस्य शुभाशुभफलकथनम् —

विवाहसद्माधिपसौम्यदृष्टं युतं शुभैर्मूथशिलं शुभाप्तिम् ।
कुर्याद्यदा मिश्रसमेतदृष्टं कष्टादथ क्रूरमृतीश्वरैर्न ।। ३९।।

कुन्तला — विवाहसद्म, अधिपसौम्यदृष्टं = स्वस्वामिग्रहशुभग्रहाभ्यामवलोकितं वा युतं, शुभैर्मथशिलं = कृतेत्थशालं च भवेत्तदा शुभाप्ति = विवाहसम्भवं कुर्यात् । तत्रापि तत्सहमराशेः स्वामिनि शुभग्रहे, शुभयोगे बलवति तद्राशौ महतो जनस्य गृहे विवाहः । वा तत्सहमराशौ क्रूरे क्रूरस्वामिके, नीचगृहे विवाह इति स्वतर्कः कार्यः । यदा तत्सहमं मिश्रसमेतदृष्टं = पापशुभयुतवीक्षितं, तदा कष्टात् = प्रयासाधिक्यात् । विवाह सम्भवः । याद विवाहसहमं क्रूरैः पापैः मृतीश्चरेणाष्टमेश्वरेण युतं वीक्षितमित्थशालि च भवेत्तदा न विवाहसम्भवः ।। ३९ ।।

ज्योति — विवाह सहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि जिस मनुष्य के वर्षकाल में विवाह सहम अपने स्वामी से दृष्ट या युक्त हो अथवा मुथशिल योग करता हो या किसी अन्य शुभ ग्रह से देखा जाता हो तथा उनसे युक्त हो तथा मुथशिल योग करता हो तो शुभदायक होता है अर्थात् विवाहकार्य भली–भाँति सम्पन्न हो यदि विवाह सहम पापग्रह से युक्त दृष्ट हो और वर्षलग्न तथा अष्टम स्थान के अधिपति के साथ मुथशिल योग करता हो तो उस वर्ष विवाह नही होता ।। ३९ ।।

अथ यशःसहमस्य फलकथनम् —

यशोऽधिपे नैधनगे खलेन युतेक्षिते सद्यशसो विनाशः ।
पापार्जितस्यायशयाऽस्ति लाभौ नष्टौजसि स्यात्कुलकीर्तिनाशः ।। ४०।।

कुन्तला — यशोऽधिपे = यशः सहमनाथे, नैधनगेऽष्टमस्थानस्थिते, खलेन = पापेन, युतेक्षिते = संयुतदृष्टे तदा सति सद्यशसः सत्कीर्त्तेर्विनाशः = क्षयः, स्यात् । पापार्जितस्य = दुराचरणजनितस्य, अयशः = अपवादस्य, लाभः = प्राप्तिः, अस्ति । यशःसहमेश्वरे नष्टौजसि = अस्तगते, नितान्तक्षीणबले च सति कुलकीर्त्तिनाशः = वंशपरम्परागतप्रतिष्ठालोपः स्यात् ।। ४०।।

ज्योति — यशसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि यशसहम का स्वामी अष्टम स्थान में बैठा हो और वह किसी पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो बहुत समय का उपार्जित यश नष्ट हो जाता है और पापसंबन्ध से बहुत समय का अर्जित अपयश बढ़ जाता है । इस प्रकार यशसहम के स्वामी के अष्टम स्थान में स्थित रहने पर ही यदि वह अस्त हो जाय तो कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है ।। ४० ।।

शुमेत्थशाले शुभदृग्युते वा बलान्विते स्याद्यशसोऽभिवृद्धिः ।
युद्ध जयो वाहनशस्त्रलाभः पापेसराफादयशोऽर्थनाशः ।। ४१ ।।

कुन्तला — यशःसहमाधिपे, शुभेत्थशाले शुभदृग्युते, वा बलान्विते तदा सद्यशसः, अभिवृद्धिः = परिपूर्णत्वं स्यात् । युद्धे = संग्रामे, जयः = शत्रुपराजयपूर्वकस्वोन्नतिः स्यात् । वाहनशस्त्रलाभः स्यात् । पापेसराफात् = पापग्रहकृतेसराफयोगात्, अयशः, अर्थनाशः = धनक्षयः स्यात् ।। ४१ ।।

ज्योति — तदुपरान्त अब अन्य प्रकार से यशसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि यशसहम के स्वामी के साथ किसी शुभ ग्रह का मुथशिल योग हो रहा हो; शुभ ग्रह की दृष्टि पड़ रही हो अथवा वह शुभ ग्रह से युक्त और बली हो तो यश की वृद्धि होती है, युद्ध मे विजय प्राप्त होगी और विविध प्रकार के वाहन तथा अस्त्र, शस्त्र अनायास प्राप्त हो जाते हैं । यदि यशसहम का स्वामी पाप ग्रह के साथ ईसराफ योग कर रहा हो तो संसार में अपयश बढ़ता और धन नष्ट होता है ।। ४१ ।।

अथाशासहमविचारकथनम् —

आशा तदीशश्च षडष्टरिः फविवर्जितः सौम्ययुतेक्षितश्च ।
स्याद्वाञ्छितार्थाम्बरवाहनादिलाभः खलेक्षायुतितोऽतिदुःखम् ।। ४२ ।।

कुन्तला — आशासहमं, तदीशः = आशासहमेश्वरश्च, षडष्टरिःफवर्जितः = षष्ठाष्टमद्वादशस्थानेभ्योऽन्यत्र गतः, सौम्ययुतेक्षितः = शुभग्रहेण संयुतो दृष्टश्च भवेत्तदा वाञ्छितार्थाम्बरवाहनादिलाभः = अभीष्टार्थवस्त्रवाहनप्रभृतिलाभः, स्यात् । खलेक्षायुतितः = पापग्रहदृष्टियोगाद् अतिदुःखं स्यात् ।। ४२ ।।

ज्योति — आशासहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि आशासहम का स्वामी छठें, आठवें, बारहवें स्थान से भिन्न किसी स्थान में बैठा हो और वह किसी शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो इच्छानुसार धन, वस्त्र और वाहन प्राप्त होते हैं । यदि सहमस्वामी किसी पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो सब तरह से दुःख ही भोगना पड़ता है ।। ४२ ।।

अथ रोगसहमशुभाशुभविचारकथनम् —

मान्द्याधिपः पापयुतेक्षितश्च पापः स्वयं रोगकरो विचिन्त्यः ।
चेदित्थशालो मृतिपेन मृत्युस्तदा भवेद्धीनबलेऽतिकष्टात् ।। ४३ ।।

कुन्तला — मान्द्याधिपः = रोगसहमेश्वरः, पापयुतेक्षितः, स्वयमपि पापस्तदा रोगकरा विचिन्त्यः । चेत्तादृशः स रोगसहमेशः, मृतिपेन = अष्टमाधिपतिना, इत्थशाली = मुथशिली, तदा मृत्युः स्यात् । अथ तादृशे रोगसहमेशे हीनबले = क्षीणबले, सति अति कष्टाद्विशेषक्लेशान्मृत्युः स्यात् ।। ४३ ।।

ज्योति — अब रोग सहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि रोगसहम का स्वामी किसी पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो वह रोग उत्पन्न करता है और यदि सहमेश के साथ इत्थशाल योग करता हो तो मृत्यु होती है । यदि रोग सहम का स्वामी निर्बल हो तो बड़े कष्ट से मृत्यु होती है ॥ ४३ ॥

स्वस्वामिसौम्येक्षणभाजि मांद्ये नाथे सवीर्येऽष्टषडन्त्यवर्ज्ये ।
रोगस्तदा नैव भवेद्विमिश्रैर्युतेक्षिते रुग्भयमस्ति किंचित् ॥ ४४ ॥

कुन्तला — मान्द्ये = रोगसहमे, स्वस्वामिसौम्येक्षणभाजि = रोगसहमेशशुभग्रहदृष्टियुक्ते सति, तथा तन्नाथे सबलेऽष्टषडन्त्यवर्ज्ये = अष्टमषष्ठव्ययस्थानरहिते, तदा रोगो रोगप्राप्तिर्नैव भवेत् । विमिश्रैः = पापशुभैः, युतेक्षिते = संयुतदृष्टे, किंचित् = स्वल्पं, रुग्भय = रोगभयमस्ति । इति विज्ञेयम् ॥ ४४ ॥

ज्योति — अब दूसरे ढंग से रोगसहम का फल बताते हैं कि यदि रोगसहम का स्वामी शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो और वह पूर्वोक्त रीति से बलवान् होकर छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में न बैठकर अन्यत्र विराजमान हो तो रोग नहीं होता यदि रोगसहम के स्वामी को शुभ ग्रह तथा पाप ग्रह दोनों देख रहे हों या युक्त हो तो रोग का कुछ भय रहता है ॥ ४४ ॥

अथ अर्थसहमविचारकथनम् —

अर्थाख्यं शुभनाथदृष्टसहितं द्रव्यागमात्साख्यदं
पापैर्दृष्टयुतं च वित्तविलयं कुर्यादथां पापयुक् ।
सद्दृष्टं च शुभेत्थशालि यदि तत्पूर्वं धनं नाशये
त्पश्चादर्शसमुद्भवं च ससुखं व्यत्यासतो व्यत्ययः ॥ ४५ ॥

कुन्तला — अर्थाख्यं' = अर्थसहमं, शुभनाथदृष्टसहितं, तदा द्रव्यागमात् सौख्यदं भवति । यदि पापैर्दृष्टयुतं तदा वित्तविलयं = धनक्षयं, कुर्यात् । अथो यदि तदर्थसहमं पापयुक्, सद्दृष्टं = शुभग्रहदृष्टं, तथा शुभग्रहेण इत्थशालकर्तृ भवेत्, तदा पूर्वं = पूर्वार्जितं, धनं नाशयेत् । पश्चात् = अनन्तरं, ससुखं = सानन्दं, अर्थसमुद्भवं = धनलाभं कुर्यात् । व्यत्यासतः = उक्तविलोमात्, अर्थात् शुभयुक्, पापदृष्टं च यदि भवेत्तदाव्यत्ययः = उक्तफलविलोमर्थात् सदुःखं धनक्षयः स्यादिति ॥ ४५ ॥

ज्योति — अब अर्थसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं कि यदि अर्थसहम के स्वामी को शुभ ग्रह देख रहे हों या युक्त हो तो अर्थसहम सुखदायी होता है और यदि सहमेश पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो वह धन नष्टकारी होता है । यदि अर्थसहमेष शुभ एवं पाप ग्रह दोनों से दृष्ट या युक्त हो और शुभ ग्रह के साथ इत्थशाल भी हो तो पहले का सारा संचित धन नष्ट हो जाता है, किन्तु कुछ काल बाद धन का आगम होता और सब प्रकार के सुख प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

अथ शत्रुमित्रदृष्टचेः फलकथनम् —

रिपुदृष्टया रिपोर्भीतिस्तस्करादेर्धनक्षयः ।
मित्रदृष्टया मित्रयोगाद्धनं मानो यशः सुखम् ॥ ४६ ॥

कुन्तला — रिपुदृष्ट्य १। ४। ७। १० एतदन्यतमदृष्ट्य, रिपोः = शत्रोर्भीतिर्भयं स्यात् । तस्करादेः = चौरादेः, सकाशात्, धनक्षयः = धननाशः, स्यात् । मित्रदृष्ट्य ३। ५। ९। ११ एतदन्यतमदृष्ट्य, मित्रयोगाद्धनं, मानः = सम्मानः, यशः = प्रतिष्ठा, सुखम् = मनोविनोदश्च भवतीति ॥ ४६ ॥

ज्योति — अब शत्रु और मित्र ग्रह की शुभाशुभ दृष्टि का फल बताते हुए कहते हैं कि जो सहम किसी शुभग्रह या पापग्रह के द्वारा रिपुदृष्टि से देखा जाता हो तो उससे जातक को शत्रु से भय बना रहता है । जिस सहम को शुभ ग्रह या पापग्रह मित्रदृष्टि से देखता हों तो वह मित्र द्वारा धन, मान, यश और सुख प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

अथ पुत्रसहमविचारकथनम् —

सत्स्वामिदृष्टं युतमात्मजस्य लाभं सुखं यच्छति पुत्रसद्म् ।
पापान्वितं सौम्यखगेत्थशालि प्रागुद्दुःखदं पुत्रसुखाय पश्चात् ॥ ४७ ॥

कुन्तला — पुत्रसद्म = पुत्रसहमं, सत्स्वामिदृष्टं = शुभस्वामिवीक्षितं, युतं च भवेत् तदाऽऽत्मजस्य = पुत्रस्य, लाभं, सुखं च यच्छति = ददाति । यदि पुत्रसहमं पापान्वितं, सौम्यग्रहेत्थशालयुक्तं, तदा प्राक् = पूर्व, दुःखदं पश्चात् पुत्रसुखाय भवतीति स्पष्टम् ॥ ४७॥

ज्योति — अब पुत्रसहम का शुभाशुभ फल बतलाते हुए कहते हैं कि यदि पुत्रसहम को शुभग्रह देख रहे हों या युक्त हों तो वह पुत्रसहम जातक को पुत्र प्रदान करता है । यदि पुत्रसहम को पाप ग्रह देख रहे हों या युक्त हों, किन्तु शुभग्रह के साथ इत्थशाल योग पड़ रहा हो तो जातक को पहले पुत्रसम्बन्धी दुख होता है, किन्तु कुछ काल बाद पुत्रसुख प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

अथ पुनः पुत्रसहमविचारकथनम् —

पापान्वितं पापकृतेसराफं नाशाय पुत्रस्य गतौजसीशे ।
सूतौ सुतेशः सहमेश्वरोऽब्दे पुत्रस्य लब्ध्यै शुभमित्रदृष्टः ॥ ४८ ॥

कुन्तला — पुत्रसहमं पापयुतं, पापकृतेसराफे, तथा ईशे = तत्स्वामिनि, गतौजसि = निर्बलेऽस्तळते च सति, पुत्रस्य नाशाय भवति । अथवा सूतौ = जन्मकाले, यः सुतेशः = पञ्चमभावेशः, स यदि अब्दे = वर्षे, सहमेश्वरः = पुत्रसहमेशः स्यात्तथा शुभमित्रदृष्टश्च स्यात्तदा पुत्रस्य लब्ध्यै = प्राप्त्यै भवति ॥ ४८ ॥

ज्योति — यदि पुत्रसहम पापग्रह से युक्त हो या ईसराफयोग करता हो और पुण्यसहम का स्वामी निर्बल हो तो पुत्रनाश का कारण होता है। यदि वर्ष प्रवेश के समय पुत्रसहम का स्वामी ही जन्मकाल में पंचम भाव का अधिपति हो और उसे शुभग्रह देख रहे हों तो वह पुत्र लाभकारी होता है ।। ४८ ।।

अथ पित्र्यसहमशुभाशुभविचारकथनम् ——

पित्र्यं सदीक्षितयुतं पतियुक्तदृष्टं तातस्य यच्छति धनाम्बरमानसौख्यम् ।
पत्यौ गतौजसि मृतौ खलमूशरीफे नाशः पितुश्चरगृहे परदेशयानात् ।। ४९।।

कुन्तला — पित्र्यं = पितृसहमं, सदीक्षितयुतं = शुभग्रहदृष्टयुतं, पतियुक्तदृष्टं च भवेत्तदा तातस्य = पितुः धनाम्बरमानसौख्यं यच्छति । तथा पत्यौ = पितृसहमेशे, गतौजसि निर्बलेऽस्तऽते च सति मृतौ = अष्टमस्थानस्थे सति, खलमूसरीफे = पापग्रहमूसरिफे सति, चरगृहे = मेषकर्कतुलामकरराश्यन्यतमराशौ स्थिते सति परदेशयानात् = परदेशगमनात् पितृर्नाशः स्यात् ।। ४९।।

ज्योति — अब पितृसहम शुभाशुभ का फल बताते हुए कहते हैं कि यदि पितृसहम शुभग्रह अथवा अपने स्वामी से युक्त या दृष्ट हो तो वह अपने पिता को धन, वस्त्र, मान और सुख प्रदान करता है । यदि पितृसहम का स्वामी निर्बल अथवा अस्तंगत हो और लग्न से अष्टम स्थान में बैठकर किसी पापग्रह के साथ मूसरिफयोग कर रहा हो तो जातक के पिता का नाश होता है । यदि पितृसहमेश, मेष, कर्क, तुला तथा मकर राशि में स्थित हों तो परदेश में जाकर उसका पिता मर जाता है ।। ४९ ।।

पुनरपि पितृसहमशुभाशुभविचारकथनम् —

शुभेत्थशाले खलखेटयोगे गदप्रकोपः प्रथमं महान् स्यात् ।
पश्चात् सुखं विन्दति पूर्णवीर्ये नाथे नृपान्मानयशोऽभिवृद्धिः ।। ५० ।।

कुन्तला — पितृसहमे, तदीशे च शुभेत्थशाले, खलखेटयोगे = पापग्रहसंयोगे च प्रथमं महान् गदप्रकोपः = रोगोपद्रवः, स्यात् पश्चात् सुखं = कल्याणं, नैरुज्यं, विन्दति = प्राप्नोति । तथा नाथे = पितृसहमनाथे, पूर्णवीर्ये = पूर्णबले सति नृपात् = भूपात्, मानयशोऽभिवृद्धिः = सम्मानकीर्त्तिवृद्धिः स्यात् ।। ५०।।

ज्योति — अब फिर से पितृसहम का फल बताते हुए कहते हैं कि यदि पितृसहम और पुत्रसहम, इन दोनों में परस्पर इत्थशाल योग पड़ रहा हो और पापग्रह से युक्त हो तो पिता को पहले रुग्ण होना पड़ता है बाद में सुख मिलता है । यदि पितृसहम का स्वामी पूर्णबली हो तो राजा से सम्मान मिलता है और यश की वृद्धि होती है ।। ५० ।।

अथ बन्धनसहमविचारकथनम् —

बन्धनाख्यसहमं युतेक्षितं स्वामिना नहि तदाऽस्ति बन्धनम् ।
पापवीक्षितयुतेऽस्ति बन्धनं पापजे मुथशिले विशेषतः ।। ५१ ।।

कुन्तला — बन्धनाख्यसहमं स्वामिना, शुभखगैः = शुभग्रहैश्च युतेक्षितं तदा बन्धनं नहि अस्ति । वा तत्सहमे, सहमेश्वरे च पापवीक्षितयुते तदा बन्धनमस्ति, तत्रापि पापजे मुथशिले विशेषतो बन्धनयोगो भवति ।। ५१ ।।

ज्योति — अब बन्धनसहम का शुभाशुभ फल बताते हुए कहते हैं यदि बन्धनसहम अपने स्वामी से दृष्ट या युक्त हो तो कारागार की प्राप्ति नहीं होती । यदि उसको पापग्रह देखते हों या युक्त हों तो बन्धव में पड़ना अनिवार्य हो जाता है । यदि बन्धनसहम और उसका स्वामी किसी पापग्रह के साथ मुथशिल योग कर रहा हो तो विशेष रूप से बन्धन में पड़ता है ।। ५१ ।।

अथ गौरवसहमस्य शुभाशुभविचारकथनम् ——

गौरवाख्यसहमं युतेक्षितं स्वामिना शुभखगैः सुखाप्तये ।
राजगौरवयशोऽम्बराप्तये पापवीक्षितयुते पदक्षतिः ।। ५२ ।।

कुन्तला — गौरवाख्यसहमं = गौरवसहमं, स्वामिना, शुभखगैः = शुभग्रहैश्च युतेक्षितं, तदा सुखाप्तये भवति । राजगौरवयशोऽम्बराप्तये भवति । पापवीक्षितयुते पदक्षतिः = अधिकारनाशो भवति ।। ५२ ।।

ज्योति — गौरव सहम का स्वामी यदि शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो सुख मिले और राजसम्मान, यश तथा वस्त्र प्राप्त हों। यदि गौरव सहम का स्वामी पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो प्राप्त अधिकार का नाश होता है ।। ५२ ।।

अथ पुनर्गौरवसहमविचारकथनम् —

शुभाशुभैर्दृष्टयुतं खलैश्चेत् कृतेत्थशालं धनमाननाशम् ।
पूर्वं विधत्ते, चरमे शुमेत्थशाले सुखं वाहनशस्त्रलाभम् ।। ५३ ।।

कुन्तला — गौरवसहमं शुभाशुभैर्ग्रहैर्दृष्टयुतं, खलैः पापग्रहैश्चेत्कृतेत्थशालं तदा पूर्वं धनमाननाशं विधत्ते करोति । चरमे = पश्चात्, शुभेत्थशाले सति, सुखं, वाहनशस्त्रलाभं यच्छति ।। ५३ ।।

ज्योति — यदि गौरव सहम का स्वामी शुभ–अशुभ दोनों प्रकार के ग्रहों से दृष्ट या युक्त हो अथवा इत्थशाल कर रहा हो तो धन और मान का नाश होता है । यदि उसका किसी शुभग्रह के साथ इत्थशाल होता हो तो वर्ष के अन्त में वाहन तथा शस्त्र प्राप्त होते हैं ।। ५३ ।।

अथ कर्मसहमविचारकथनम् —

कर्मभावसहमाधिपाः शुभैः स्वामिना मुथशिला बलान्विताः ।
हेमबाजिगजभूमिलाभदाः पापदृष्टियुतितोऽशुभप्रदाः ॥ ५४ ॥

कुन्तला — कर्म–भावसहमाधिपाः = कर्मभावः कर्मसहमञ्च तयोरधिपौ स्वामिनौ, चैते शुभैः स्वामिना च मुथशिलाः, बलान्विताः, तदा हेमवाजिगजभूमिलाभदाः = सुवर्ण घोटक–हस्ति–भूक्षेत्रप्राप्तिकरा भवन्ति । पापदृष्टयुतितः, अशुभप्रदा धनक्षति–वाह–ननाश–क्षेत्रनाशकरा भवन्ति ॥ ५४॥

ज्योति – यदि कर्मभाव और कर्मसहम के स्वामी, बलवान् होकर शुभग्रह तथा अपने स्वामी के साथ इत्थशाल करते हों तो सुवर्ण, हाथी, घोड़े तथा भूमि की प्राप्ति होती है । यदि कर्मभाव और कर्मसहम के स्वामी पापग्रह से युक्त या दृष्ट हों अथवा इत्थशाल करते हों तो अशुभ फलदायक हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

अथ पुनरपि कर्मभावसहमाधिपाशुभविचारकथनम् —

दग्धा वक्राः कर्मवैकल्यदास्ते युक्ता दृष्ट्याः सौरिणा ते विशेषात् ।
राज्यभ्रंशः कर्मनाशश्च राजकर्मेशौ चेन्मूसरीफौ खलेन ॥ ५५॥

कुन्तला — ते कर्मभावकर्मसहमतन्नाथाश्च दग्धाः = अस्तंगताः, वक्राः = वक्रिणश्च स्युस्तदा कर्मवैकल्यदाः कर्महानिकरा भवन्ति । अथ तादृशास्ते सौरिणा = शनिना, युक्ता दृष्टास्तदा विशेषात् कर्मवैकल्यदा भवन्ति । तथा राजकर्मेशौ राजसहमकर्मसहमेशौ, वा राज्यसहमकर्मभावेशौ, खलेन = पापेन मूसरिफौ, तदा राज्यभ्रंशः = राज्यनाशः, कर्मनाशश्च भवतीति ॥ ५५ ॥

ज्योति — यदि वे दग्ध अथवा वक्र हों तो सब विफल कर देते हैं । यदि कर्मभाव तथा कर्मसहम के स्वामी शनि से युक्त या दृष्ट हों तो विशेषरूप से कर्म विफल करते हैं । यदि राजसहम तथा कर्मसहम के स्वामी किसी पापग्रह के साथ ईसराफ योग करते हों तो राज्य तथा कर्म दोनों के नाशकारक होते हैं ॥ ५५ ॥

अथ केषांचित्सन्दिग्धार्थानां सहमानां निःसन्दिग्धार्थकथनम् ——

उपदेष्टा गुरुर्ज्ञानं विद्या शास्त्रं श्रुतिस्मृती ।
मोहो जाड्यं बलं सैन्यमंगं देहो जलं द्युतिः ॥ ५६ ॥
मुरुता मण्डलेशत्वं गौरवं मानशालिता ।
निग्रहानुग्रहवि भूराजा छत्रादिलिङ्गभाक् ॥ ५७ ॥

कुन्तला — गुरुरुपदेष्टोपदेशकः, ज्ञानं तु विद्या, शास्त्रं श्रुतिस्मृती, जाड्यं जडता मोहः, बलं = सैन्यम्, देहोऽङ्गं, जलं = द्युतिः कान्तिरिति बोध्यम् ॥ ५६ ॥

गुरुता = मण्डलेशत्वं = खण्डभूस्वामित्वम्, गौरवम् = मानशालिता = संमानयुक्तत्वम् । राजा तु निग्रहानुग्रहविभुः = दुष्टदण्डशिष्टाभीष्टकरणसमर्थः । छत्रादिलिङ्गभाक् = छत्रचामरादिचिह्नयुक्तो भवति ।। ५७ ।।

ज्योति — जिन सहमों के नाम और अर्थ में कुछ भ्रम हो सकता है, उस भ्रम का निवारण करते हुए कहते हैं कि जैसे गुरु, गौरव, कर्म, राजबल, वपु आदि ऐसे शब्द हैं, जिनके अर्थ में भ्रम होना सम्भव है । सो गुरु से उपदेष्टा अर्थात् गायत्री मंत्र का उपदेश देने वाला, विद्या शब्द से ज्ञान, शास्त्र शब्द से वेद, स्मृति से धर्मशास्त्र, जाड्य से अज्ञान, बल से सेना, देह से शरीर और जल से शोभा का मतलब समझना चाहिये । कर्म के अर्थ में गरुता से मण्डलेशत्व, गौरव से प्रतिष्ठा, राजाशब्द से कृपा या कोप करने की सामर्थ्य रखने और छत्र—चामर आदि राजचिन्ह धारण करनेवाले को समझे ।। ५६ ।। ५७ ।।

महात्म्यं मन्त्रगाम्भीर्यं धृतिर्बुद्ध्यादिशालिता ।
सामर्थ्ये देहजा शक्तिः शौर्यं यत्नोऽरिनिग्रहे ।। ५८ ।।
आशोच्छोक्ता मतिर्धर्म्या श्रद्धाबन्दः पराश्रयः ।
पानीयपतनं वृष्टिर्जलेऽकस्माच्च मज्जनम् ।। ५९ ।।

कुन्तला — महात्मनो भाषो माहात्म्यं तु मन्त्रगाम्भीर्यं = तन्त्रमन्त्रज्ञानलब्धमहत्वं, धृतिः = बुद्ध्यदिशालिनी बुद्धिसमृद्धियुक्तता, देहजा शक्तिः = सामर्थ्य, शौर्यं तु अरिनिग्रहे = शत्रुशातने यत्नः = प्रयासः कथ्यते ।। ५८ ।।

आशा तु इच्छा उक्ता, धर्म्या = धर्मसम्बन्धिनी मतिः = श्रद्धा, बन्दः = पराश्रयः = पराधीनता, पानीयपतनं = वृष्टिः = जलवर्षणम् । जलेऽकस्मान्मज्जनं इति ज्ञायते ।। ५९ ।।

ज्योति — इसी तरह माहात्म्य—मंत्रगांभीर्य (मंत्रणा का गुप्त विचार), धैर्य तथा बुद्धि से युक्त होकर परिणाम का विचारना, सामर्थ्य—देह की शक्ति, शौर्य शत्रु को ध्वस्त करने का प्रयत्न, आशा—इच्छा, श्रद्धा—धार्मिक बुद्धि, बन्द पराधीनता और पानीयपतन—जल की वर्षा अथवा अकस्मात् जल में डूब जाना अर्थ होता है ।। ५८ ।। ५९ ।।

आधिव्याधी तापमान्द्ये सपिण्डा बन्धवः स्मृताः ।
सत्यालीकं वणिग्वृत्तिराधानं प्रसवः स्मृतः ।। ६० ।।
दासत्वं परकर्मोक्तमन्यत्स्पष्टं स्वनामतः ।
निरूप्याणि यथायोग्यं कुलजातिस्वरूपतः ।। ६१ ।

कुन्तला — तापमान्द्ये सन्तापरोगौ क्रमेण आधिव्याधी कथ्येते । बान्धवाः = सपिण्डाः सप्तपुरुषान्तर्गतसगोत्राः, स्मृताः = कथिताः । वणिग्वृत्तिः = सत्यालीकम् = सत्यमिथ्यात्मकम् । प्रसवः = प्रसूतिः, आधानं = गर्भाधानं स्मृतम् ।। ६० ।।

परकर्म दासत्वमुक्तं, अन्यसहमं स्वनामतः स्पष्टम् । तथा कुलजातिस्वरूपतः यथायोग्यं सहमानि निरुप्याणि ।। ६१ ।।

ज्योति — सन्ताप = मानसिक वेदना, मान्द्य = रोग, बन्धु = सगोत्री, वाणिज्य = झूठ–सच बोलकर व्यापार करना, प्रसूति = गर्भाधान और परकर्म = नौकरी समझना चाहिए । और सभी सहमों का नाम स्पष्ट है । कुल और जाति के अनुरूप सहमों का फल कहना चाहिए ।। ६० – ६१ ।।

शुभयोगेक्षणात्सौख्यं पत्युर्वीर्यानुसारतः ।
दारिद्र्यमृतिमांद्यारिकलिषूक्तो विपर्ययः ।। ६२ ।।

कुन्तला — शुभयोगेक्षणात् पत्युर्वीर्यानुसारतश्च सौख्यं भवति, दारिद्र्यमृतिमान्द्यारि–कलिषु = दरिद्र–मृति–रोग–शत्रु कलिसहमेषु विपर्यय उक्तः । पूर्वमप्युक्तम् ।। ६२ ।।

ज्योति — जिस सहम पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो शुभ और पापग्रह की दृष्टि हो तो अशुभ कहा जायगा । लेकिन दरिद्रता, मृत्यु, रोग, शत्रु तथा कलिसहम में विपरीत फल घटता है । तात्पर्य यह कि जिन योगों से अन्य सहमों का शुभ फल होता है, वे योग इन सहमों में अशुभ फलदायक हो जाते हैं ।। ६२ ।।

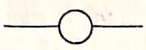
प्रश्नकालेऽपि सहमं विचार्यं प्रष्टुरिच्छया ।
सर्वेषामुपयोगोऽत्र चित्रं पृच्छन्ति यज्जनाः ।। ६३ ।।

कुन्तला — वर्षकाले तु सहमं विचार्यमेव परन्तु प्रश्नकालेऽपि प्रष्टुः = प्रश्नकर्तुः, इच्छया सर्व सहमं विचार्यम् ! अत्र वर्षे सर्वेषां सहमानामुपयोगो भवति, यतो यस्मात् कारणात्, जनाः = प्रच्छकाः लोकाश्चित्रमनेकरूपं प्रश्नं पृच्छन्ति ।। ६३ ।।

ज्योति — जिसकी जन्मपत्री न हो, वह यदि सहसम्बन्धी प्रश्न करे तो प्रश्नकर्ता की इच्छानुसार प्रश्न काल में भी सहमों का विचार करना चाहिए । प्रश्नकाल में भी सहमों का उपयोग होता है, क्योंकि प्रश्न करनेवालों के प्रश्न भी विविध प्रकार के हुआ करते हैं ।। ६३।।

।। इति सहमफलविचारप्रकरणम् संस्कृत 'कुन्तला' – 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

।। इति सहमफलविचारप्रकरणम् ।।



अथ पात्यायिनीदशानिरूपणम्

अथ दशानयनमाह —

स्पष्टान्सलग्नान्खचरान् विधाय राशीन्विनाऽत्यल्पलवं तु पूर्वम् ।
निवेश्य तस्मादधिकाधिकांशक्रमादयं स्यात्तु दशाक्रमोऽब्दे ।। १ ।।
ऊनं विशोध्याधिकतः क्रमेण शोध्यं विशुद्धांशकशेषकैक्यम् ।
सर्वाधिकांशोन्मितमेव तत्स्यादनेन वर्षस्य मितिस्तु भाज्या ।। २ ।।
शुद्धांशकांस्तान् गुणयेदनेन लब्धध्रुवाङ्केन भवेद्दशायाः ।
मानं दिनाद्यं खलु तद्ग्रहस्य फलान्यथासां निगदेत्तु शास्त्रात् ।। ३ ।।

कुन्तला — वर्ष प्रवेश काले प्रथमं स्पष्ट ग्रहान् प्रसाध्य तान् राशीन् विना कृत्वा केवलमंशादिकानेव स्थापयेत् तत्र सर्वप्रथमं अत्यल्प लवं (अंशं) निवेशयेत । तस्मात् सर्वाधिकांश क्रमात् स्थापयेत् । तदाऽयं दशाक्रमः स्यात् । अथ अधिकतः न्यूनं विशोध्य तृतीय पंक्तिस्थानात् द्वितीय पंक्तिस्थं विशोध्यम् । तत्र अष्टौ पात्यंशाः भवन्ति । तत्र विशुद्धांशक शेष कैक्यं अर्थात् सम्पूर्ण पात्यांशयोगमानं सर्वाधिकांशोन्मितमेव भविष्यति ।

अनेन शेषांश योगमानेन वर्षस्यमितिः सौरमानं ३६० एतावद्दिनमितिर्वा सावन दिनामिति । भास्कराचार्येण "पञ्चांगरामातिथयः खरामा" इत्यादिना ३६५।१५।३०।२२।३० कथिता ।

अत्र भक्ते सति यदुपलब्धं तत्प्रथम स्थानांकः । अवशेषं षष्ट्या संगुण्य पुनर्योगेन भक्तं तदा द्वितीयस्थानांकः साध्यः । अथनन्तरं तान शुद्धांशकान् अर्थात् पात्यांशान् उपलब्ध ध्रुवांकेन गुणयेत् । तत उर्ध्व अधश्च खण्डयोगो विधेयः । गुणकेन अनीतं फलं षष्ट्या विभज्य अर्थात् अन्ते षष्टि भजनेन् लवधमुपान्तिमे योज्यम् । उपान्तिमं षष्ट्या विभज्य उपोपान्तिमे योज्यमेव ग्रहाविशेषस्य दशायां दिनाद्यं मानं निश्चयेन भवति । अस्य पात्यंशा ध्रुवांकेन गुणिता ग्रहस्य दशामानं भवति । एवं शुभाशुभफलानि शास्त्रात् अर्थात् वर्षतन्त्रात् कथनीयमिति ।। १—३ ।।

ज्योति — अब दशा और अन्तर्दशा साधन करने का उपाय बताने के पहले कृशांश साधन की रीति बताते हुए कहते हैं कि वर्ष प्रवेश के समय लग्न सहित सब ग्रहों को स्पष्ट करके राशि को छोड़कर शेष सब अंश आदि को स्थापित करे । उनमें भी सबसे न्यून अंशवाले ग्रह को पहले रखें । उसके बाद उससे अधिक और उसके बाद उससे भी अधिक अंशवाले ग्रह क्रमशः लिखे । वर्ष में दशा लिखने का यही क्रम है ।। १ ।।

पात्यांश साधन करने की रीति यह है कि अल्प अंशवाले ग्रह को उससे अधिक अंशवाले ग्रह में घटाते हुए क्रमशः स्थापित करे । तदन्तर विशुद्ध अंश के शेष अंशों को जोड़े । वह जोड़ सबसे अधिक अंशवाले ग्रह के बराबर हो जाय तो समझ ले कि ठीक है । उसके बाद शेष अंश का योग करने पर जो हो उससे सौरमान दिन ३६० अथवा सावन मान दिन ३६५, १५ घटी, ३१ पल, ३० विपल, इस वर्षमान में भाग लेने से जो दिनादि लब्ध मिले वही ध्रुवांक होता है ।। २ ।।

दशादिवस लाने का क्रम यह है कि पूर्वोक्त लब्ध ध्रुवांक के सब शुद्ध अंशों को भी गुणा दे । ऐसा करने पर उस ग्रह के दिनादिक दशा का प्रमाण निकल आता है । इसी प्रकार दशा के भी दिन आदि का आनयन करके ज्योतिषी शास्त्रानुसार शुभाशुभ फल कहे ॥ ३ ॥

अथ शुद्धांशसाम्ये दशानिर्णयकथनम् —

शुद्धांशसाम्ये बलिनो दशाऽद्या बलस्य साम्येऽल्पगतेस्तु पूर्वा ।
साम्ये विलग्नस्य खगेन चिन्त्या बलाधिका लग्नपतेर्विचिन्त्या ॥ ४ ॥

कुन्तला — शुद्धांश साम्ये = अर्थात् पात्यांशसमत्वे सति द्वयोः ग्रहयोर्मध्ये यः वलवान् तस्य प्रथमादशा भवतीति । अथनन्तरं शुद्धांश साम्ये सति बलस्यापि समत्वेऽपि अल्पगतेः ग्रहद्वय–मध्ये यस्यगतिरल्पा तस्य प्रथमादशा तुल्याब्श ग्रहो भवेत्तदा यः विशेष वली तस्यैव प्रथमा दशा स्यात् । यदि द्वयोर्बलवत्वे सति यस्यगतिरल्या तस्यैव प्रथमा दशा भवष्यति ॥ ४ ॥

ज्योति — यदि दो ग्रहों के अंश बराबर रहते हैं तो पंचवर्गी में जिसका बल अधिक रहता है, उसकी प्रथम दशा मानी जाती है । तात्पर्य यह कि यदि शोध्य और शोधक दोनों ग्रहों के अंश समान हों और उन दोनों में से जिसका पंचवर्गीबल अधिक हो, उसकी पहली दशा कही जायगी । दशा का क्रम पहले अंश से ही चलता हैं, बाद को शुद्ध करने पर शुद्धांश होते हैं । यही नियम है । शोध्य और शोधक दोनों ग्रहों का शुद्धांश समान हो और पंचवर्गी में जिसका बल अधिक हो, उसी की पहली दशा मानी जायगी । इसके बाद दूसरे की और जो पचवर्गी बल में समान हो तो अल्पगति वाले ग्रह की दशा पहली मानी जायगी । यदि लग्न और ग्रह के अंश बराबर हों तो लग्नपति के बल से बलाबल देखना चाहिए ॥ ४ ॥

उदाहरण — जैसे सब ग्रहों की अपेक्षा क्रम अंशों वाला शनि है, इसलिए सब ग्रहों को छोड़कर प्रथम शनि को स्थापित करते हुए ६।४८।५४ लिखा । फिर सूर्य ७।३०।६, बुध १२।१६।८, भौम १४।३२।३६ लग्न १८।३।५४ चन्द्रमा २२।९।४७ शुक्र २४।३१।४८। बृहस्पति २९।३५।१३ इस क्रम से सबको स्थापित किया । फिर शनि के पात्यांश ६।४८।५४ रात्रिका हीनांश ७।३०।६ में शोधित रात्रिका पात्यांश ०।४१।१२ इस प्रकार पूर्वांश को आगे मध्य में सबके शोधित पात्यांश जैसे बुध का ४।४६।२ भौम का २।१६।२८ लग्न का ३।३१।१८ चन्द्रमा का ४।५।५३ शुक्र का २।२२।१ बृहस्पति का ५।३।२५ इनको जोड़ा और २९।३५।१३ इससे ३६० को ६० से गुणा किया तो १२९६ फल हुए । भाज्य–भाजक १०६।५।१३ यह दशागुणांक हुआ ।१२।१०।३ इससे शनि के पात्यांश ६।४८।५४ को गुणा किया तो शनि दशा के दिनादि ८२।५।५५।१८ हुए । इनको पात्यांश में जोड़ा और २९।३५।१३ वर्षमान ३६५।१५।३१ से भाग दिया और ११।२०।४२ से शनि के पात्यांश को गुणा किया तो शनि के दशा के दिनादि ४८।७।५२ हुए । इसी तरह अन्य ग्रहों का भी समझना चाहिए ॥ ४ ॥

अथान्तर्दशानयनकथनम् —

दशामानं समामानं प्रकल्प्योक्तेन वर्त्मना ।
अन्तर्दशा साधनीया प्राक्पात्यांशवशेन तु
आदावन्तर्दशापाकपतेस्तत्क्रमतोऽपरा ॥ ५ ॥

कुन्तला — यस्य ग्रहस्य दिनादिदशामानमागतं तदेव दशावर्षमानं, प्रकल्प्य कथित मार्गेण प्रात्यांशवशेन अन्तदर्शा संसाधनीया । यथा सम्पूर्णपात्यांशयोगेन कस्यापि दिनादि दशामानं लभ्यते तदा प्रत्येक पात्यांशेन किमित्यनुपातेन प्रत्येकस्य अन्तर्दशा भवति । इति दशानिरूपणम् ॥ ५ ॥

ज्योति — अब अन्तर्दशा के साधन की रीति बताते हुए कहते हैं कि दशामान को वर्षमान मानकर पूर्वोक्त पात्यांशो द्वारा दशा के ढंग से अन्तर्दशा का भी साधन करना चाहिए । तात्पर्य यह कि दशामान में पात्यांश के योग से भाग देकर लब्ध ध्रुवांक से पृथक्–पृथक् पात्यांश का गुणा करने से अन्तर्दशा का मान और दिनादिक निकल आता है । पहली अन्तर्दशा दशाधिपति की होती हैं । उसके बाद क्रम–क्रम से अन्य ग्रहों की दशा आती है ॥ ५ ॥

उदाहरण — जैसे शुक्र की दशा के दिनादि ४।२५।५२।३० हैं । इनको तीन बार ६० से गुणा किया तो ९८।२२।७१।५२ यह भाज्य हुआ । इसमें पात्यांश योगरूप २८।४०।०५ है । इसको भी तीन बार ६० से गुणा किया तो ६१९२३००० यह भाजक हुआ । इससे भाग दिया तो २।५६।४०।५२ गुणक हुआ । इसमें पात्यांशों की गोमूत्रिकाक्रम से शुक्रपात्यांश ६।५२।१० को गुणा किया तो २०।१३।४२ यह शुक्र की अन्तर्दशा के दिनादि हुए । इसी क्रम से प्रत्यन्तर्दशा का साधन भी किया जाता है ॥ ५ ॥

अथ मासदिनप्रवेशानयनकथनम् —

एकैकराशिवृद्ध्य चेतुल्योंऽशाद्यैयदा रविः ।
तदा मासप्रवेशो द्युप्रवेशश्चेत्कलासमः ॥ ६ ॥

कुन्तला — यदि अंश कलाविकलाभिर्यदा रविः स्यात्तदा मासप्रवेशो भवति । अर्थात् वर्ष प्रवेश कालिक सूर्यमध्ये १ राशि योजनेन द्वितीयमास प्रवेश कालिक सूर्य स्यात् । एवं वर्षप्रवेश कालिक सूर्यमध्ये राशिद्वययोजनेन तृतीयमास प्रवेश कालिक सूर्यो भवति । एवं अग्रेऽपि बोध्यम् । अनेन सिध्यते यत् वर्ष प्रवेशकालिक सूर्य एव प्रथमदिन प्रवेशकालिक सूर्यः भवति । तन्मध्ये अंशमेकं योजनेन द्वितीय दिन प्रवेश कालिक रविः भवति । एवं अंश द्वय योजनेन तृतीय दिन प्रवेशकालिक सूर्य स्यात् ॥ ६ ॥

ज्योति — मास प्रवेश में मुद्दा दशा लाने का क्रम यह है कि गत वर्ष को १ से गुणा करके अश्विनी से गिने, फिर उनमें जन्म नक्षत्र की संख्या को जोड़ दे । फिर उसमें दो

कम कर दे और मास प्रवेश की संख्या को जोड़कर ९ का भाग दे । जो शेष बचे, वही मुद्दा दशा होगी । १ बचे तो सूर्य और २ बचे तो चन्द्रमा इत्यादि क्रम से जाने ।। ६ ।।

उदाहरण — जैसे गत वर्ष २० है । जन्मनक्षत्र मृगशिरा और तीसरा मास प्रवेश है । गतवर्ष २० को १२ से गुणा तो २४० हुए । इसमें अश्विनी से गिनकर जन्मनक्षत्र भी जोड़ दिया तो २४५ हुए । इसमें २ कम किये तो २४३ हुए । फिर मास प्रवेश की संख्या जोड़ी तो २४६ हुए । ९ का भाग दिया तो ३ शेष बचे । इससे सिद्ध हुआ कि मङ्गल की दशा हुई ।

अब मास और दिन–प्रवेश आनयन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि जन्म कालीन स्पष्ट सूर्य और राशि आदि मिलने पर ही वर्षप्रवेश होता है । जितेन समय में सूर्य जन्मकाल के सूर्य के बराबर अंश, कला तथा विकला पर होता है, वही वर्षप्रवेश का इष्ट समय होता है । और एक राशि अधिक सूर्य जहाँ स्पष्ट के बराबर मिले वहीं द्वितीय मासप्रवेश का इष्ट समय होता है । एक–एक राशि बढ़ाते जाने से बारहों महीनों का इष्ट होता है और कला–विकला में समानता रहती है । इसी स्पष्ट में एक–एक अंश बढ़ाते जाने से दिन प्रवेश का इष्ट और दिन–प्रवेश दोनों निकल आते हैं ।। ६ ।।

अथ मासप्रवेशघटिकाद्यानयनकथनम् —

मासार्कस्य तदासन्नपंक्तिस्थेन सहान्तरम् ।
कलीकृत्वाऽर्कगत्याप्तदिनाद्येन युतोनितम् ।। ७ ।।
तत्पंक्तिस्थं वारपूर्यं मासार्केऽधिकहीनके ।
तद्वाराद्ये मासवेशो द्युवेशोऽप्येवमेव च ।। ८ ।।

कुन्तला — यस्य मासस्य मासप्रवेशानयनकर्त्तव्यमस्ति तस्य, मासार्कस्य = एंकेकराशि युक्तवर्षप्रवेशकालिकसूर्यस्य तस्य समीपवर्ती सूर्येन तयोरन्तरं कृत्वा षष्ट्या संगुण्य अर्करात्याविभाजितम् । लब्धं दिनादिकम् स्यात् । यदि पंक्तिस्थ सूर्येण मासार्करधिकश्चेत्तदा पंक्तिस्था दिनादिमध्ये योज्यम् यदि पंक्तिस्थ सूर्येण न्यूनस्तदा पंकिस्थ वारादि मध्ये हीनं कार्यम् । एवमेव मासेप्रवेश कालिक दिनादि इष्ट कालः स्यात् । अनेनैव दिन प्रवेशोऽपि बोध्यम् ।। ७–८ ।।

ज्योति — पंचांग से मासप्रवेश की घड़ी लाने की रीति बताते हुए कहते हैं । एक–एक राशि जोड़ने से द्वितीय आदि मासप्रवेश का सूर्य होता है । इसी के समीपवर्ती पंचांग में स्थित अवधि प्रस्तर तथा मासप्रवेश के सूर्य का अन्तर करे । फिर उस अन्तर की कला बना ले । उस अवधिस्थ सूर्य की गति से भाग देने पर वार, घटी और पल निकल आयेंगे । इनको अवधिस्थ वार घटी पल में जोड़ दे या घटा दे । अवधिस्थ सूर्य से यदि मासप्रवेश का सूर्य अधिक हो तो उसे अवधिस्थ वार आदि में जोड़ दें और यदि मासप्रवेश के सूर्य से अवधिस्थ सूर्य अधिक हो तो घटा दे । उसी शेष वार आदि अर्थात् वार–घटीपलात्मक समय में मासप्रवेश होगा । दिनप्रवेश निकालने की भी यही रीति है ।। ७–८ ।।

अथ वर्षेशानयनकथनम् —

भूः १ पञ्चचन्द्राः १५ कुगुणाः ३१ कुरामाः ३१
सिद्धाः २४ गताब्दैर्गुणिताः समेताः ।
खेना ० ब्धिदस्त्रं २४ गुणलोचनैश्च १३
तष्टा नगै ७ रर्कमुखोऽब्दपः स्यात् ॥ ९ ॥

कुन्तला — भूः १, पपञ्चचन्द्रा = १५, कुगुणाः ३१, कुरामाः ३१, सिद्धाः २४ एते, गतवर्षैः संगुण्य क्रमेण खेन = ० अब्धिदस्त्रैः = २४, गुणलोचनैः = २३ समेतः = युक्ता । नगैः = सप्तभिस्तष्टाः तदा अर्कमुखः = सूर्यादिकः वर्ष प्रवेशः स्यात् ॥ ९ ॥

ज्योति — एक वर्ष में दिनादि १।१५। ३१। ३१। २४ इतने को गतवर्ष से गुणा करे, २४। २३ जोड़े, सात से शेषित करे तो सूर्यादिक वर्षेश होंगे ॥ ९ ॥

अब्दौघतः शैलनखै २०७ विनिघ्नात् पुनर्मनुघ्नं गतवर्षवृन्दम् ।
शराब्धिभक्तं४५घटिकादिलब्धंयुतं नभोश्व्यग्नि३२०युतात्खखेभैः८००।
हृतादिनाद्यं गतवर्षयुक्तं सप्तोद्धृतं मेषमुखोऽब्दपः स्यात् ॥१०॥

कुन्तला — शैलनखैः २०७, विनिघ्नात् = गुणितात्, अष्ठौधतः = गतवर्ष समूहात् । पुनः गतवर्षवृन्द चतुर्दशघ्नं पञ्चचत्वारिशद्भक्तं लब्धं घटिकादियुतं नमोश्व्यग्नियुतात् खखेभौः ८०० हृतात् । लब्धं गतवर्षयुक्तं सप्तभक्तं मेषमुखोऽवदपः = मेषार्ककालिकः वर्षयतिः स्यात् ॥ १० ॥

ज्योति — गतवर्ष की संख्या को २०७ से गुणाकर पृथक् रखे । फिर गतवर्ष को १४ से गुणाकर उसमें ४५ से भाग देकर लब्ध घटिकादिक पूर्व के गुणनफल में जोड़े, उस योग में ३२० जोड़कर ८०० से भाग देने पर जो दिनादि लब्ध हो, उसमें गतवर्ष संख्या जोड़कर योग में ७ से भाग देकर शेषाङ्क तुल्य अब्दपति होता है यह अब्दपति मेषार्ककालिक होता है ॥ १० ॥

आसीदसीमगुणमण्डितपण्डिताग्रचेव्याख्यद्भुजंगपगवीः श्रुतिवित्सुवृत्तः ।
साहित्यरीतिनिपुणो गणितागमज्ञश्चिन्तामणिर्विपुलगर्गकुलावतंसः ॥ ११ ॥

कुन्तला — अगणितगुणालंकृतविद्वद्गणधुरीणः तथा च अध्यापितमहाभाष्यः येन, वदेज्ञः, सदाचारी अलंकारशास्त्रज्ञ एवं च श्लोक रचनापटु ज्योतिशास्त्रतत्त्वज्ञः विस्तृत गर्गवंशोत्पन्नः चिन्तामणिरेतन्नाम्नां प्रसिद्धो विद्वानासीत् ॥ ११ ॥

ज्योति — विश्वविख्यात गर्गवंश में चिन्तामणि नाम के एक प्रबल विद्वान् हो गये हैं । उनमें सभी अच्छे गुण विद्यमान थे और तत्कालीन पंडितों में उनका आसन ऊँचा था । बड़े–बड़े विद्वानों को यह बात मान्य है कि शेष भगवान् के कहे हुए महाभाष्य की वे

बड़ी सुन्दर व्याख्या करते थे ! (शुष्क वैयाकरण रहे हों, सो बात नहीं है) साहित्य शास्त्र के रस, ध्वनि तथा अलंकारों के भी वे पूर्ण विज्ञ थे और गणित ज्योतिष का भी उनको विशाल ज्ञान था ॥ ११ ॥

तदात्मजोऽनन्तगुणोऽस्त्यनन्तो योऽधोक्तदुक्तीः किल कामधेनुम् ।
सत्तुष्टये जातकपद्धतिं च न्यरूपयद् दुष्टमतं निरस्य ॥ १२ ॥

कुन्तला — तत्पुत्रः चिन्तामणि तनयः अनन्तरैवज्ञरभूत । स अनन्त दैवज्ञः प्रसिद्धोस्ति । पञ्चाङ्गसाधकं कामधेनुग्रन्थं च दुदोह । तथाच दुष्टमतं दुरीकृत्य विदुषां संतोषाय जातक पद्धतिं व विरचितवान् ॥ १२ ॥

ज्योति — उनके पुत्र हुए अनन्त पंडित अनन्त, अनन्त गुणों के भण्डार थे । उन्होंने अपने पिता के प्रतिपादित सिद्धन्तों का समर्थन करते हुए 'कामधेतु—सारिणी' पर सुन्दर टीका लिखी थी । जिसके लिखने का उद्देश्य तत्कालीन विद्वानों को उक्त ग्रन्थ का वास्तविक तात्पर्य बताकर संतुष्ट करना था । उसके अतिरिक्त दूषित मतों का खण्डन करते हुए उन्होंने 'जातकपद्धति' नाम के एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना भी की भी ॥ १२ ॥

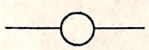
पद्माम्बयाऽसावि ततो विपश्चिच्छीनीलकण्ठः श्रुतिशास्त्रनिष्ठः ।
विद्वच्छिवप्रीतिकरं व्यधात्तं संज्ञाविवेके सहमावतंसम् ॥ ८ ॥

कुन्तला — ततो अनन्तदैविज्ञात पद्माम्बया = पद्मानाम्नी जननन्याः श्रुतिशास्त्रनिष्ठ = वेदशास्त्रज्ञः विद्वान् नीलकण्ठ दैवज्ञः प्रसूतः । स नीलकण्ठः पण्डित शिवहर्षदायकं संज्ञातंत्रे सहम प्रकरणं कृतवान् ॥ १३ ॥

ज्योति — पिता अनन्त और पद्मा माता द्वारा पाण्डित्य आदि सभी गुणों से सम्पन्न नीलकंठ नामक उनके पुत्र की उत्पत्ति हुई । नीलकंठ ने सहमों का विषदीकरण करते हुए पंडितों तथा शंकर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए 'संज्ञातन्त्र' की रचना की ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठज्योतिर्विंत्कृत संज्ञातन्त्रे ज्योतिषाचार्य डा० रामचन्द्रपाठकेन कृता संस्कृत 'कुन्तला' — 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठ्यां संज्ञातन्त्रम् ॥



अथ वर्षतन्त्रम्

स्वस्वाभिलाषं नहि लब्धुमीशा निर्विघ्नमीशानमुखाः सुरौघाः ।
बिना प्रसादं किल यस्य नौमि तं दुण्ढिराजं मतिलाभहेतुम् ।। १ ।।

कुन्तला — यस्य देवस्य प्रसादं विना, ईशानमुखाः = शिवादयो सुरौधाः देवगणाः स्वस्वभिलाषं = निजाभिलाषं निर्विघ्नं प्राप्तुं निश्चयेन समर्थाः न भवन्ति तं दुष्ठिराजं गणेशं नमस्करोमि ।। १ ।।

ज्योति — जिनकी कृपा के बिना शंकर भगवान् जैसे बड़े–बड़े देवताओं की भी अभिलाषायें नहीं पूर्ण होतीं । उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए मैं उन्हीं ढुंढिराज गणपति की वन्दना करता हूँ ।। १ ।।

अथ वर्षफलद्योतकं वर्षपत्रकरणप्रयोजनकथनम् —

जातकोदितदशाफलं च यत् स्थूलकालफलदं स्फुटं नृणाम् ।
तत्र न स्फुरति दैवविन्मतिस्तद्ब्रुवेऽब्दफलमादिताजिकात् ।। २ ।।

कुन्तला – शुभाशुभफलजिज्ञासूनां मनुष्याणं जातक शास्त्रयोक्तदशाफलं स्थूल कालेन फलदं भवति । तत्र स्थूलकालफले गणकानां बुद्धि न स्फुरति तस्मात् समर सिंहादिकृत ताजिक ग्रन्थात् वर्षफलमहं कथयामि इति ।। २ ।।

ज्योति — विविधजातकशास्त्र में मनुष्यों के लिए जो शुभाशुभ फल कहे गये हैं, वे बहुत समय बाद फलदायक होते हैं । क्योंकि इस शास्त्र में ग्रहों के वर्षादि समूह की दशा गणित करने से आती है । बहुत विस्तार के साथ गणित करने पर दिनादि के फल निकलते हैं । उसका फल कहने में बड़े–बड़े पंडितों की भी बुद्धि कुंठित हो जाती है । इसलिए मैं प्राचीन ताजिक ग्रन्थों से फल का संकलन करके कह रहा हूँ ।। २ ।।

गताः समाः पादयुताः प्रकृतिघ्नसमागणात् ।
खवेदाप्तघटीयुक्ता जन्मवारादिसंयुताः ।। ३ ।।
अब्दप्रवेशे वारादि सप्ततष्टेऽत्र निर्दिशेत् ।
शिवघ्नोऽब्दः स्वखाद्रीन्दुलवाढ्यः खग्निशेषितः ।। ४ ।।
जन्मतिथ्यन्वितस्तत्र तिथावब्दप्रवेशनम् ।
तत्कालेऽर्को जन्मकालरविण स्याद्यतः समः ।। ५ ।।
तदैधाब्दप्रवेशः स्यात् तिथ्यादेनियमो न तु ।

एकैकराशिवृद्ध्या चेत्तुल्योंऽशाद्यैर्यदा रविः ।
तदा मासप्रवेशो द्युप्रवेशश्चेत्कलासमः ॥ ६ ॥

कुन्तला — उपर्युक्त श्लोकानां व्याख्याः संज्ञातंत्रेकृताः । अतः श्लोकचतुष्ट्यस्य ज्योति कुन्तला टीका अस्यैव ग्रन्थस्य संज्ञतंत्रे अवलोकनीयम् ॥ ३—६॥

ज्योति — 'गताः समाः पादयुताः प्रकृतिघ्नसमा गणात्।' यहाँ से लेकर 'द्युप्रवेशश्चेत्कला समाः' यहाँ तक के चार श्लोकों की टीका पीछे संज्ञातन्त्र में लिख आये हैं, इसलिए फिर से लिखना ठीक नहीं है ॥ ३—६ ॥

अथ वर्षप्रवेशोपकरणान्याह —

तात्कालिकास्तु खचराः सुधिया विधेयाः स्पष्टोविलग्नमुखभावगणो विधेयः ।
वीर्यं तथोक्तविधिना निखिलग्रहाणा मब्दाधिपस्य विधये कथयामि युक्तिम् ॥ ७ ॥

कुन्तला — वर्ष प्रवेश कालिकाः ग्रहाः विद्वद्भिः विधेयाः अर्थात् वर्ष कालिक ग्रहानयनं कार्यमित्यर्थः । तदनन्तरं स्पष्टं ग्रहाः स्पष्टलग्नं द्वादशभावादि कार्यम् अथनन्तरं च पञ्चवर्गीबल साध्यम् । अत्र वर्षेशनिर्णयविधिः सयुक्तिकं विचारयामि ॥ ७ ॥

ज्योति — विद्वान् पण्डितों का यह कर्तव्य है कि वे प्रश्न तथा वर्षप्रवेश के समय में तात्कालिक ग्रहों को गति सहित स्पष्ट करके उनका पंचवर्गी बल भी साध लें । पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही वर्षेश का भी परिज्ञान कर लेना चाहिए ॥ ७ ॥

अथ प्रश्नलग्नात् वर्षपत्रानयनकथनम् —

द्विघ्नं प्रश्नांगभागाद्यं शरलब्धं स्फुटेन्थिहा ।
प्रश्नाऽद्धायनफले तुर्येशो लग्नपो भवेत् ॥ ८ ॥

कुन्तला — यस्य जन्मपत्रं न विद्यते, तस्य वर्षपत्रसाधनाय प्रकारोऽयम् । तत्र हायनफले = वर्षशुभाशुभत्वनिर्णये कर्त्तव्ये, प्रश्नाङ्गभागाद्यं = प्रश्नकालिकलग्नांशादिकं, द्विघ्नं = द्विगुणं, शरलब्धं = पञ्चभिर्विज्य यत् प्राप्तं, सा स्फुटा इन्थिहा = मुथहा, भवेत् । तत्र प्रश्नाङ्गात् = प्रश्नलग्नात् तुर्येशः = चतुर्थराशीशग्रहः, लग्नपः = वर्षलग्नेशः, भवेत् । तथा चोक्तं ताजिकसारे — "प्रश्नाङ्गपो वर्षपतिः प्रकल्प्यस्तुर्येश्वरो जन्मविलग्ननाथः । मुन्थाधिपः प्रश्नविलपञ्च त्रैराशिपो घस्त्रपतिः पुरावत् ॥"

ज्योति — प्रश्नकालीन लग्न की राशि को त्यागकर केवल अंश आदि को २ से गुणा कर ५ का भाग देने से लब्ध राश्यादि स्पष्ट मुंथहा होती है और प्रश्नकालीनन लग्न से वर्षफल कहने में चतुर्थेश ही लग्नेश हो जाया करता है ॥ ८ ॥

अथ वर्षेश्वरनिर्णयकथनम् —

जन्मलग्नपतिरब्दलग्नपो मुन्थहाधिप इति त्रिराशिपः ।
सूर्यराशिपतिरह्नि चन्द्रभावीश्रवरो निशि विमृश्य पञ्चकम् ॥ ९॥
बली य एषां तनुमीक्षमाणः स वर्षपो लग्नमनीक्षमाणः ।
नवाब्दपो दृष्ट्यतिरेकतः स्याद् बलस्य साम्ये विदुरेवमाद्याः ॥ १०॥
दृगादिसाम्येऽप्यथ निर्बलत्वे वर्षाधिपः स्यान्मुथहेश्वरस्तु ।
पञ्चापि नो चेत्तनुमीक्षमाणा वीर्याधिकोऽब्दस्य विभुर्विचिन्त्यः ॥ ११॥

अथ केषाञ्चिन्मतकथनम् —

बलादिसाम्ये रविराशिपोऽह्नि निशीन्दुराशीडिति केचिदाहुः ।
येनेत्थशाल्यब्दविभुः शशी स वर्षाधिपश्चन्द्रभपोऽन्यथात्वे ॥ १२ ॥

कुन्तला — ९, १०, ११, १२ श्लोकानां कुन्तला टीका संज्ञातन्त्रे लिखितमस्ति ।

ज्योति — ९, १०, ११, १२ श्लोकों की कुन्तला टीका और ज्योति हिन्दी संज्ञाध्याय में दी गई है ।

अथ वर्षफलाध्यायः —

अब्दाधिपो व्ययषडष्टमभिन्नसंस्थो लब्धोदयोऽब्दजनुषोः सदृशो बलेन ।
निःशेषमुत्तमफलं विदधाति काये नैरुज्यराज्यबललब्धिरतीव सौख्यम ॥ १३ ॥

कुन्तला — अब्दाधिपतिः व्ययषड्, अष्टमभिन्नस्थानादन्यत्र स्थिते सति उदितः स्यात् (अस्तङ्गतो नेत्यर्थः) तथा च जन्मकाले बलवान्; तदा शुभं फलं भवति । शरीरे आरोग्यं, बलं, पुष्टिः, राज्यप्राप्ति रतीव सौख्यं च भवति ॥ १३ ॥

ज्योति — वर्ष का स्वामी यदि द्वादश, षष्ठ और अष्टम स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान में स्थित हो या उदय को प्राप्त हो और जन्मसमय में बली हो तो वह पूर्ण उत्तम फल अर्थात् शारीरिक आरोग्य, राज्य लाभ तथा अत्यधिक सुख प्रदान करता है ॥ १३ ॥

अथ बलानुसारेण वर्षेश्वरफलकथनम् —

बलपूर्णेऽब्दपे पूर्णं शुभं मध्ये च मध्यमम् ।
अधमे दुःखशोकारिभयानि विविधाः शुचः ॥ १४॥

कुन्तला — बलपूर्णे अब्दपे शुभफलं भवति । मध्यवले अब्दपे मध्यमं फलं विज्ञेयम् वर्षेशेऽधमे क्लेश—शोक—शत्रुभयानि च अनेकाः रोगाः भवन्ति ॥ १४ ॥

ज्योति — यदि गणितागत रीति के अनुसार वर्षेश पूर्ण बली हो तो समस्त वर्ष शुभफलदायक होता है । यदि वंह मध्य बलशाली हो तो मध्यम फल देता है । यदि हीनबल हो तो दुःख रोग, भय आदि विविध प्रकार की विपत्तियाँ घेरे रहती हैं ॥ १४ ॥

अथ सूर्यस्य वर्षेशत्वफलं, तत्र पूर्णबलिनो वर्षेशसूर्यस्य फलकथनम् —

सूर्येऽब्दपेबलिनि राज्यसुखात्मजार्थलाभः कुलोचितविभुः परिवारसौख्यम् ।
पुष्टं यशो गृहसुखं विविधा प्रतिष्ठा शत्रुर्विनश्यति फलं जनिखेटयुक्तया ॥ १५॥

अथ मध्यबलसूर्यस्य वर्षेशफलम् —

स्यान्मध्यमेफलमिदं निखिलं तु मध्यं स्वल्पं सुखं स्वजनतोऽपि विषादमाहुः ।
स्थानच्युतिर्न च सुखं कृशता शरीरे भीतिनृपान्मुथशिलो न शुभेन चेत्स्यात् ॥ १६॥

अथ हीनबलसूर्यस्य वर्षेशफलकथनम् —

सूर्ये बलेन रहितेऽब्दपतौ विदेशयानं धनक्षयशुचोऽरिभयं च तन्द्राः ।
लोकापवादभयमुद्ररुजोऽतिदुःखं पिवादितोऽपिन सुखं सुतमित्रभीतिः ॥ १७ ॥

कुन्तला — बलिनी सूर्ये अब्दपे सति राज्यसुखस्य, पुत्रस्यापि लाभः स्यात् । कुलपरम्परानुसारेण सुमुचिताधिकारः, परिजन सुखं, अधिकं यशः, धनधान्यस्त्रीपुत्रसुखं अनेकरूपाख्यातिः भवति । शत्रुः विनश्यति । एवं जन्मकालिक ग्रहाणां वलवत्ता विचार्य फलं कथनीयमिति । उभयय पूर्णबलत्वे पूर्णशुभम् । एकत्रपूर्वावलवृत्वे अन्यत्र च मध्यवलवत्वे सति किञ्चिन्यून पूर्णफलं भवति । यदि एकस्मिन् काले पूर्णवलीरन्यत्र च हीनबलीस्तदा समं फलं बोध्यम् । उभयत्र वलवत्वे सति मध्यमं फलं ज्ञेयम् । यदि एकस्मिन् काले मध्यबलीः तथा च अन्यत्र हीनबलीस्तदाल्पं फलं भवति । यदि उभयत्र हीनबलस्तदा अत्यन्तहीनफलं वाच्यम् ॥ १५ ॥

मध्यबले सूर्ये वर्षेशे सति पूर्वोक्त सम्पूर्णं फलं मध्यममेव बोध्यम् । तथा च सुखमपि स्वल्पं मिलति । स्त्रीपुत्रभ्रातृभिः विवादमपि कथनीयमिति । स्थानच्युतिः तदा सुखं न मिलति । शरीरे दुर्बलत्वं, नृपात् भयमपि वाच्यम् । यदि शुभग्रहेण वर्षेशस्य मुथशिल इत्थशालो न स्यात् । इत्थशाले शुभेसति फलं शुभं वाच्यम् ॥ १६ ॥

बलेन रहिते सूर्येऽब्दपतौ विदेशरामनं, क्षनक्षयः रोराः, अग्निभयं, तन्द्रा (आलस्यम्), लोकापवाद, कठिनरोगाः, अतिदुखं, ज़नकादिपरिजनगणात् सुखं न मिलति । पुत्रमित्रादिभिः भयमपि भवति ॥ १७ ॥

ज्योति — यदि पूर्ण बली होता हुआ सूर्य वर्ष का स्वामी हो तो राज्य, पुत्र, धन, कुल परिवार, सुयश और गृहसुख प्राप्त होता और समाज में प्रतिष्ठा होती है । उसके सभी शत्रु अनायास नष्ट हो जाते हैं । इस विषय में इतना और समझ लेना चाहिए कि

जन्मकालीन सूर्य के अनुसार ही वर्षकाल के तारतम्य से फल घटता है — अन्यथा नहीं। यदि सूर्य मध्यबली होकर वर्षेश हो तो मध्यरूप से उपर्युक्त फल घटते हैं। जिससे सुख कम मिलता, अपने परिवार वालों से ही झगड़ा हो जाता, स्थान छूट जाता, शरीर में कृशता आती और राजा से भय बना रहता है। किन्तु ये उपद्रव तभी होते हैं, जब वह किसी शुभ ग्रह के साथ मुथशिल नहीं करता। यदि निर्बल सूर्य वर्षेश हो तो विदेशयात्रा, धन का नाश, शोक, शत्रुभय, आलस्य, लोकापवाद, भय, कोई बड़ा रोग, अत्यन्त दुःख, पिता आदि से भी निराशा और पुत्र तथा मित्र से भय बना रहता है ॥ १५ – १७ ॥

अथ चन्द्रस्य वर्षेशफलकथनम् –

चन्द्रेऽब्दपे मुथशिलं येनासावब्दपोऽस्य चेत् ।
कम्बूलमिन्दुना जन्म निशि वर्षं तदोत्तमम् ॥ १८ ॥

कुन्तला — चन्द्रे वर्षेशे सति येन ग्रहेण चन्द्रस्य मुथशिलं भवति स एव वर्षेशः स्यात् । यदि वर्षेशः चन्द्रेण कम्बूलयोगः करोति तथा च रात्रौ जन्म तदा वर्षशुभफलयुतं भवति ॥ १८ ॥

ज्योति — यदि रात्रि में जन्म हो और उस समय चन्द्रराशि का स्वामी जिस ग्रह के साथ इत्थशाल कर रहा हों, वही वर्षस्वामी हो उसका चन्द्रमा के साथ कम्बूल योग भी हो तो वह वर्ष अत्यन्त उत्तम होता है ॥ १८ ॥

अथ पूर्णबलचन्द्रस्य वर्षेशत्वफलकथनम् —

धीर्यान्विते शशिनि वित्तकलत्रपुत्र मित्रालयस्य विविधं सुखमाहुरार्याः ।
स्रग्गन्धमौक्तिकदुकूलसुखानुभूतिर्लाभः कुलोचितपदस्य नृपैः सखित्वम् ॥ १९ ॥

कुन्तला — वीर्यान्विते चन्द्रे सति वित्तकलत्र, सुत—मित्र–गृहस्य च अनेक प्रकारकं सुखं आर्याः = पूज्यगणकाः आहुः । माल्य, सुगन्ध द्रव्य, मौक्तिक वस्त्रनुभूति कुलोचित पदस्य लाभः स्यात् । एवं च नृपैः मित्रत्वं भवति ॥ १९ ॥

ज्योति — यदि वर्ष समय में चन्द्रमा पूर्ण बली होकर वर्षेश हो तो वह प्राणी धन स्त्री–पुत्र–मित्र–घर व अनेक प्रकार से सुखी, माला, सुगन्धित चन्दन, इत्र, मोती, वस्त्र तथा परमैश्वर्यवान् होकर कुल के उचित पद को प्राप्त होता हुआ राजाओं का मित्र होता है ॥ १९ ॥

अथ मध्यबलचन्द्रस्य वर्षेशबलकथनम् —

वर्षाधिपे शशिनि मध्यबले फलानि मध्यान्यमूनि रिपुता सुतमित्रवर्गैः ।
स्थानान्तरे गतिरथो कृशता शरीरेश्लेष्मोद्भवश्च यदि पापकृतेसराफः ॥ २० ॥

कुन्तला — मध्यबले चन्द्रे वर्षेशेसति वित्त कलत्रपुत्र मित्रालपस्य विविधसुखं मध्यानिफलानि अर्थात् सामान्य फलानि भवेयुः । सुतमित्रवर्गौः शत्रुता, शरीरे कृशता च भवति । यदि मध्यवली चन्द्रः वर्षेशः स्यात् तथा च दूसराफयोगं करोति तदा श्लेष्माविकारो भवतीति बोध्यम् ।। २० ।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा मध्यम बली होकर वर्ष का स्वामी हो तो वह प्राणी मध्यम फल भोगता हुआ अपने पुत्र व मित्र से शत्रुता प्राप्त करने वाला और अपने स्थान से भ्रष्ट होकर दूसरे स्थान को प्राप्त होता हुआ शरीर से दुर्बलता को प्राप्त होता है । यदि पापग्रह के साथ चन्द्रमा का ईसराफयोग हो तो वह कफ, खाँसी और श्वास रोग से पीड़ित होकर ज्वर तथा कफ से दुखी रहता है ।। २० ।।

अथ क्षीणबलचन्द्रस्य वर्षेशफलकथनम् —

नष्टेऽब्दपे शशिनि शीतकफादिरोगश्चौर्यादिभीः स्वजनविग्रहमप्युशन्ति ।
दूरे गतिः सुतकलत्रसुखक्षयश्च स्यान्मृत्युतुल्यमतिहीनबले शशांके ।। २१।।

कुन्तला — अस्तं गते चन्द्रे वर्षेशे सति शीतकफादि रोगः, तस्करभयं, स्वजनविग्रहं, अपि ज्योतिषशास्त्रज्ञाः कथयन्ति । एवं च अतिहीन वले चन्द्रे वर्षेशे सति दूरे गमनं, सुत कलत्रसुखक्षयः मृत्युतुल्यं कष्टं च भवति ।। २१ ।।

ज्योति — यदि वर्ष समय में चन्द्रमा नष्ट होकर वर्ष का स्वामी हो तो वह प्राणी शीत, कफ आदि रोगों से पीड़ित व चोर आदि दुष्टों से भयभीत तथा अपने बन्धुओं के साथ कलहादि करके क्लेश पाता है । यदि चन्द्रमा अत्यन्त हीनबली होकर अर्थात् नीच का होकर वर्षेश हो तो वह प्राणी दूर देश का जाने वाला, स्त्री पुत्रादिकों के दुःख से दुखी तथा मृत्यु के समान कष्टपाता है ।। २१।।

अथपूर्णबलभौमस्य वर्षेशफलकथनम् —

भौमेऽब्दपे बलिनि कीर्तिजयारिनाशः सेनापतित्त्वरणनायकता प्रदिष्टा ।
लाभः कुलोचितधनस्य नमस्यता च लोकेषु मित्रसुतवित्तकलत्रसौख्यम् ।। २२।।

कुन्तला — पूर्णबलयुते भौमे वर्षेशे सति, कीर्तिजयः अरिनाशः, सेनापतित्त्वरणनायकता प्रदिष्टा । कुलोचितधनस्य लाभः स्यात् । लोकेषु सम्मान, सुतत्रिकलत्र सौख्यं च भवति।। २२।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय मङ्गल पूर्णबली होकर वर्षपति हो तो वह प्राणी अच्छी कीर्तिवाला, शत्रुओं का क्षय करने वाला और सेना का मालिक होता है । जिससे वह रणनायक होता हुआ और कुल से उचित धन पाकर लोक में मनुष्यों से सम्मानित होता हुआ मित्र, पुत्र, धन तथा स्त्रीसुख को भोगता है ।। २२ ।।

अथ मध्यबलभौमस्य वर्षेशफलकथनम् —

मध्येऽब्दपेऽवनिसुते रुधिरस्रुतिश्चकोपोऽधिको झकटशस्त्रहतिक्षतानि ।
स्वामित्वमात्मगणतो बलगौरवं च मध्यं सुखं निखिलमुक्तफलं विचिन्त्यम् ।। २३।।

कुन्तला — मध्यबले भौमे वर्षेश सति रुधिरक्षरणं, अधिककोपः, कलह, शस्त्राघात् व्रणानि आत्मीयगणतः स्वामित्वं बलगौरवं च भवति । तथा च सम्पूर्ण सुखं मध्यमं विचिन्त्यम् ।। २३ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय मङ्गल मध्यम बली होकर वर्ष का मालिक हो तो उस प्राणी के रक्तस्रुति अर्थात् फोड़ा—फुन्सी आदि से रुधिर व पीव का विकार हो और वह बहुत क्रोधी हो । झगड़े में शस्त्र की चोट से घाववाला, अपने गणों का स्वामी, बल और गुरुतासहित थोड़ा सुख पाता है, इन सब कहे हुए फलों पर पण्डितों को विचार करना उचित है ।। २३ ।।

अथ क्षीणबलकुजस्य वर्षेशफलकथनम् —

हीनेऽब्दपेऽसृजि भयं रिपुतस्कराग्निलोकापवादभयमात्मधियां विनाशः ।
कार्यस्य विघ्नमतिरोगभयं विदेशयानं क्षयोऽपनयतो गुरुदृष्टभावे।। २४।।

कुन्तला — हीनबलेकुजे वर्षेशे सति भयं रिपुः तस्कराग्निलोकापवादभयं, स्वबुद्धिनां विनाशः कार्यसिद्धौ विघ्नं च बोध्यम् । तथा च अतिरोगभयं, विदेशयानं गुरुदृष्टया भावे अन्यायात्क्षयो भवतीति ।। २४ ।।

ज्योति — यदि प्रवेश के समय मङ्गल हीनबल होकर वर्षेश हो तो वह प्राणी शत्रुओं, चोरों, अग्नि, लोक के अपवाद अर्थात् मिथ्याकलंक के भय से युक्त होकर अपनी बुद्धि से नष्ट हो जाता है । वह जिस कार्य को आरम्भ करता है उसमें विघ्न होते हैं । कठिन रोगों से युक्त होकर विदेश की यात्रा करता है । यदि मङ्गल को बृहस्पति न देखता हो तो अपनी कुचाल से नष्ट हो जाता है ।। २४ ।।

अथ पूर्णबलस्य बुधस्य वर्षेशफलकथनम् —

सौम्येऽब्दपे बलवति प्रतिवादलेख्य सच्छास्त्रसद्व्यवहृतौ विजयोऽर्थलाभः ।
ज्ञानं कलागणितवैद्यभवं गुरुत्वं राजाश्रयेण नृपता नृपमन्त्रिता वा ।। २५।।

कुन्तला — सौम्ये = बुधे बलवति वर्षेशे सति विवाद लिपिकर्म शुभशास्त्रव्यवहारे च विजयः, अर्थ लाभः, ज्ञानं, राजाश्रयेण गुरुत्वं, नृपत्वं वा भूपमन्त्रित्वं च भवति ।। २५ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय बुध पूर्ण बलवान् होकर वर्षेश हो तो वह प्राणी प्रतिवाद करने पर शीघ्र उत्तर देने में चतुर, लिखने व अच्छे वेदान्तादि शास्त्रों में प्रवीण होता हुआ व्यवहार में विजय व धन पाता है । वह ज्ञानवान् सब कलाओं में कुशल, गणित तथा वैद्य–विद्या की गुरुता को जानता हुआ राजा के आश्रय से राजा के समान अथवा राजमन्त्री होता है ।। २५ ।।

अथ मध्यबलबुधस्य वर्षेशफलकथनम् —

अब्दाधिपे शशिसुते खलुमध्यवीर्ये स्यान्मध्यमं निखिलमेतदथाध्वयानम् ।
वाणिज्यवर्तनमथात्मजमित्रसौख्यं सौम्येत्थशालवशतोऽपरथा न सम्यक् ।। २६ ।।

कुन्तला — मध्यबले बुधे वर्षेशे सति पूर्वोक्तं सम्पूर्णं फलं मध्यमं भवति इत्यर्थः । अथनन्तरं, अध्वयानं = परदेश गमनं, वाणिज्यवर्त्तनं = व्यापार प्रचारः, अथ सौम्येत्थशालवशतः = शुभग्रहेभ्य इत्थशालयोगवशात्, आत्म = पुत्र, मित्रसौ ख्यमपि भवति । अपरंथा = अन्यथा शुभग्रहेभ्यः इत्थशालाभावे शोभनं फलं न भवति ।। २६ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय बुध मध्यम बली होकर वर्ष का स्वामी हो तो पूर्वोक्त सब फल मध्यम होता और वह प्राणी यात्रा द्वारा व्यापार करता है । उसी से वह अपने पुत्र व मित्रवर्गो को सुख देता है, परन्तु बुध शुभग्रहों के साथ इत्थशाल करे तो शुभफल होता है । इससे अन्यथा अर्थात् बुध का पाप ग्रहों के साथ ईसराफ योग हो तो अनिष्ट फल होता है ।। २६ ।।

अथ हीनबलबुधस्य वर्षेशफलकथनम् —

सौम्येऽब्दपेऽधमबले बलबुद्धिहानिर्धर्मक्षयः परिभवो निजवाक्यदोषात् ।
निक्षेपतो विपदतीव मृषैव साक्ष्यं हानिः परव्यवहृतेः सुतवित्तमित्रैः ।। २७ ।।

कुन्तला — बुधस्य हीनबले वर्षेशे सति बलबुद्धिहानिः धर्मनाशः, स्ववाक्यदोषात् परामणः भवति । 'एवं च गति' स्थित धन निमित्तं कष्टं आपततीति भावः । मृषैव साक्ष्यं कर्त्तव्यं भवति । अन्यजन व्यवहारात् सुतवित्तमित्रैः हानिः भवति ।। २७ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय बुध नष्टबली होकर वर्ष का स्वामी हो तो उस प्राणी के बल और बुद्धि की हानि होती है । वह प्राणी धर्म का नाश करता हुआ अपने वाक्यदोष से अनादर भाव को प्राप्त होता है और मतवाला सा होकर अनेकानेक विपत्तियों को सहता और झूठी गवाही देता हुआ पराये व्यवहार से अपने पुत्र, मित्र व धन से हानि को प्राप्त होता है ।। २७ ।।

अथ गुरोरुत्तमबलिनो वर्षेशफलकथनम् —

जीवेऽब्दपे बलयुते परिवारसौख्यंधर्मो गुणग्रहिलता धनकीतिपुत्राः ।
विश्वास्यता जगति सम्मतिविक्रमाप्तिर्लाभो निधेर्नृपतिगौरवमष्यरिघ्नम् ॥ २८ ॥

कुन्तला — पूर्ववली जीवे अब्दपे संति परिवारसुखं, धर्मः गुणग्रहणः, प्रेमः धनं यशः, पुत्रप्राप्तिंश्च शुभफलानि भवन्ति लोके विश्वासपात्रता, तीव्रबुद्धिः, पराक्रमस्योपलाब्धिः गर्त्तस्थित धनलाभः, तथा च शत्रुविनाशकनृपतिगौरवं च मिलति ॥ २८ ॥

ज्योति — यदि वर्ष प्रवेश के समय बृहस्पति पूर्ण बली होकर वर्ष का स्वामी हो तो वह मनुष्य परिवार से सुखी, धर्मात्मा, गुणों का ग्राहक, कीर्ति, धन, पुत्र इनसे सुखी, लोक में विश्वास योग्य, उत्तम बुद्धि तथा बल की प्राप्ति और निधि का लाभ करता है । वह राजा से सम्मान पाता है तथा शत्रुओं का नाश भी करता है ॥ २८ ॥

अथ मध्यबलगुरोर्वर्षेशफलकथनम् —

अब्दाधिपे सुरगुरौ किल मध्यवीर्य स्यान्मध्यमं फलमिदं नृपसङ्गमश्च ।
विज्ञानशास्त्रपरताऽप्यशुमेसराफे दारिद्यमर्थविलयश्च कलत्रपीडा ॥ २९॥

कुन्तला — मध्यवले बृहस्पतौ अब्दपे सति इदं पूर्वोक्त फलं साधारणं बोध्यम् । नृपसंगमः विज्ञानशास्त्र परता, च स्यात् । यदि पापग्रहेण ईसराफयोगो भवेत्तदा दरिद्रता, धनहानिः, स्त्रीकष्टादि अशुभफलं भवति ॥ २९ ॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय बृहस्पति मध्यमबली होकर वर्ष का स्वामी हो तो पूर्वोक्त सम्पूर्ण उत्तम फल मध्यम प्रकार से प्राप्त होता है । वह प्राणी ज्ञानवान् होकर शास्त्रों का ज्ञाता होता है । यदि बृहस्पति पापग्रहों के साथ ईसराफ योग करे तो वह दरिद्र होकर अपनी स्त्री के सहित कष्ट पाता है तथा पूर्व संचित धन नष्ट करता है ॥ २९ ॥

अथ हीनबलस्य गुरोर्वर्षेशफलकथनम् —

जीवेऽब्दपेऽधमबले धनधर्मसौख्यहानिस्त्यजन्ति सुतमित्रजनाः सभार्याः ।
लोकापवादभयमाकुलताऽतिकष्टं वृत्तिस्तनौ कफरुजो रिपुभोः कलिश्च ॥ ३० ॥

कुन्तला — हीनवले गुरौ अब्दपे सति, धनधर्म सौख्यहानिः, स्त्री सहितं पुत्रमित्रजनानां च त्यागं करोति तथा लोकोपवादभयात् व्याकुलता अतिकष्टं, शरीरे कफरुजो च भवति । एतदतिरिक्त शत्रुभयं कलहं च भवतीति बोध्यम् ॥ ३० ॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय बृहस्पति नष्टबली होकर वर्ष का स्वामी हो तो धन, धर्म तथा सुख की हानि हो और पुत्र—मित्र—कुटुम्बीजन तथा स्त्री भी उसको छोड़ देती है । लोक के अपवाद अर्थात् मिथ्या कलंक से व्याकुल होकर वह कष्ट पाता है । उसके शरीर भर

में कफादि रोग आकर के घर कर लेते हैं, जिससे हीनबली होकर वह मनुष्य कलह आदि करता और शत्रु से भयभीत रहता हुआ बन्धुजनों से तिरस्कार को प्राप्त होता है ।। ३० ।।

अथ पूर्णबलस्य शुक्रस्य वर्षेशफलकथनम् —

शुक्रेऽब्दपे बलिनि नीरुजता विलाससच्छास्त्ररत्नमधुराशनभोगतोषाः ।
क्षेमप्रतापविजया वनिताविलासो हास्यं नृपाश्रयवशेन धनं सुखं च ।। ३१ ।।

कुन्तला — बलिनी शुक्रे अब्दपे सति नीरुजता = आरोग्यम्, विलासः, सच्छास्त्रप्रेम, रत्नप्राप्ति, मिष्ठान्न भोजनम्, इच्छित वस्तु सुख भोगः, संतोषः कल्याण भाग्योदय शत्रुपराजयश्च भवन्ति । वनिता विलासः = स्त्रीसंङः हस्यं नृपाश्रय वशेन धनलाभः सुख च प्राप्नोति ।। ३१ ।।

ज्योति — यदि किसी मनुष्य के वर्षप्रवेश समय में शुक्र उत्तम बली होकर वर्षेश हो तो वह प्राणी रोगरहित, सुन्दर, शास्त्र और रत्नों का विलासी, मीठे पदार्थो का भोजन करने वाला, रोगों से रहित, कल्याणयुक्त, प्रतापी, शत्रुओं को जीतने वाला, वनिताओं के हाव–भाव–कटाक्षों से आनन्दित और सदा प्रसन्न रहता हुआ राजा के आश्रय से धन तथा सुख प्राप्त करता है ।। ३१ ।।

अथ मध्यबलस्य शुक्रस्य वर्षेशफलकथनम् —

अब्दाधिपे भृगुसुते खलु मध्यवीर्ये स्यान्मध्यमं निखिलमेतदथाल्पवृत्तिः ।
गुप्तं च दुःखमखिलं सुनिबद्धवृत्तिः पापारिवीक्षितयुते विपदोऽर्थनाशः ।। ३२ ।।

कुन्तला — मध्यवले शुक्रे वर्षेशे सति एतत् पूर्वोक्तं सफलं साधारण फलं बोध्यम् । स्वल्पजीविका अनेकानेक गुप्त दुखं, जीविका वरोधं च बोध्यम् । यदि वर्षेशेः पाप ग्रहेण युक्तो भवेत्तदाविपत्तिधननाशं च भवति ।। ३२ ।।

ज्योति — वर्षप्रवेश के समय जिसका शुक्र मध्यम बली होकर वर्षस्वामी हो तो पूर्वोक्त सब फल मध्यम हो और वह प्राणी थोड़ी जीविका करने वाला होता है । उसका सम्पूर्ण दुःख छिपा रहता है । कोई दुःख देखने में प्रगट नहीं होता और जीविका बँधी हुई होती है । यदि शुक्र पापग्रह और शत्रु से दृष्ट व युक्त हो तो विपत्ति आती और धन का नाश होता है ।। ३२ ।।

अथ हीनबलस्य शुक्रस्य वर्षेशफलकथनम् —

शुक्रेऽब्दपेऽधमबले मनसोऽतितापो लोकोपहासविपदो निजवृत्तिनाशः ।
द्वेषः कलत्रसुतमित्रजनेषु कष्टादन्नाशनं च विफलक्रियता न सौख्यम् ।। ३३ ।।

कुन्तला — हीनवले शुक्रे वर्षेशे सति चित्तस्य सन्तापः लोकनिन्दाविपत्तयः स्वजीविकानाश स्त्रीसुतभिमेषु द्वेषः, क्लेशात् अन्ननाशं कृतकार्येषु विफलता सुखाभावं च भवति ।। ३३ ।।

ज्योति —'यदि वर्षप्रवेश के समय शुक्र नष्टबली होकर वर्ष का स्वामी हो तो उस प्राणी के मन को बहुत संताप, लोक में उपहास, विपत्ति, अपनी जीविका का नाश और स्त्री, पुत्र मित्रों पर द्वेषभाव हो जाता तथा कंष्ट से अन्न मिलता है । वह जो जो कार्य आरम्भ करता है वह सब निष्फल हो जाता है ॥ ३३ ॥

अथ पूर्णबलस्य शनेर्वर्षेशफलकथनम् —

मन्देऽब्दपे बलिनि नूतनभूमिवेश्मक्षेत्राप्तिरर्थनिचयो यवनावनीशात् ।
आरामनिर्मितिजलाशयसौख्यमंऽपुष्टिः कुलोचितपदाप्तिगुणाग्रणित्वम् ॥ ३४ ॥

कुन्तला — पूर्णबलेशनौ अब्दपेसति नूतन भूमिवेश्मक्षेत्राप्तिः, म्लेच्छभूपात् धनलाभः स्यात् । पुष्पवाटिका निर्माण, जलाशय विहारसुखं, अंऽ पुष्टिः, कुलपरम्परानुसारेण स्थान लाभः, गुणज्ञानां अग्रगण्यो भवतीति बोध्यम् ॥ ३४ ॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय शनि उत्तम बल को प्राप्त होकर वर्ष का स्वामी हो तो उसको भूमि, घर तथा खेत की प्राप्ति हो और हीन वर्ण से धन मिले । वह बगीचा, तालाब, कुआँ तथा बावली बनवावे और सौख्यवान् तथा पुष्ट शरीर हो और अपने कुल के उचित पद को प्राप्त होता हुआ वह मनुष्य गुणियों में गुणवान् गिना जाय ॥ ३४ ॥

अथ मध्यबलस्य शनेर्वर्षेशफलकथनम् —

अब्दाधिपे रविसुते खलु मध्यवीर्येस्यान्मध्यमं निखिलमन्नभुजिस्तु कष्टात् ।
दासोष्ट्रमाहिषकुलान्यरतस्तु लाभः पापं फलं भवति पापयुगीक्षणेन ॥ ३५॥

कुन्तला — मध्यवीये रविसुते (शनौ) वर्षेशे सति पूर्वोक्तं सर्वं फलं मध्यमं ज्ञेयम् । कष्टात् अत्र भोजनं (अन्नमुनि) मिलति । दासजनरतः, उष्ट्र,महिष, तथाचान्यनीचजनसंसर्गी भवति । लाभः स्यात् तथाच पापग्रहसंयोगात् दृष्टिवशाच्चाशुभफलं भवति ॥ ३५ ॥

ज्योति — जिसके वर्षसमय में वर्षेश शनैश्चर हो और वह मध्यम बली हो तो पूर्व कहा हुआ मध्यम प्रकार का फल हो और वह मनुष्य बड़े कष्ट से भोजन पाता हुआ दास, ऊँट व महिषों के समूह को प्राप्त करके उनका उपयोग करे । अपने कुल की अन्य स्त्रियों में अथवा वेश्याओं में रमण करता हुआ सामान्य लाभ युक्त हो । शनैश्चर को पापग्रह देखता हो वा युक्त हो तो वह प्राणी अशुभफल पाता है ॥ ३५॥

अथ हीनबलशनेर्वर्षेशफलकथनम् —

मन्दे बलेन रहितेऽब्दपतौ क्रियाणां वन्ध्यत्वमर्थविलयो विपदोऽरिभीतिः ।
स्त्रीपुत्रमित्रजनवैरकदन्नभुक्तं सौम्येत्थशालयुजि सौख्यमपीषदाहुः ॥ ३६ ॥

कुन्तला — हीनवले शनौ अब्दपे सति क्रियाणां व्यर्थत्वम्, धननाशः, विपत्तयः, अरिभयं, एवं च स्त्रीपुत्र सुहृदजन विरोधः क्रुभोजनं च भवतीति । अब्दपे शनौ शुभग्रहेत्थाल युक्ते सति स्वल्पं सुखं भवति इति प्राचीनाचार्याः कथयन्ति ।। ३६ ।।

ज्योति — जिसके वर्षप्रवेश के समय नष्टवली शनैश्चर वर्ष का अधिपति हो, उस प्राणी की सम्पूर्ण क्रियाओं का बाधक तथा धन का विनाश, विपत्ति, दुश्मनों से भय और स्त्री तथा अपने जन से वैर हो और सावाँ, काकुन आदि अन्न प्राप्त हो, शनैश्चर के साथ शुभग्रहों का इत्थशाल हो तो कुछ सुख हो, ऐसा पूर्वाचार्यो का कथन है ।। ३६।।

अथ विशेषकथनम् —

वर्षेश्वरो भवति यः सदशाधिपोऽब्देज्ञेयोऽखिलेऽब्दजनुषोर्बलमस्य चिन्त्यम् ।
वीर्यान्वितेऽत्र निखिलं शुभमब्दमाहुर्हीने त्वनिष्टफलता समता समत्वे ।। ३७ ।।

कुन्तला — यो ग्रहः वर्षेशः स सम्पूर्णे अब्दे दशाधिपो ज्ञेयस्तस्य दशाफलं सम्पूर्णेऽपिवर्षे बोध्यमित्यर्थः । न तु पात्यायनी मुद्दादशामात्र समयपर्यन्तं भवेत्यर्थः । अस्य वर्षेशस्य बलं वर्षजन्म कालयोः विचिन्त्यम् । अत्रोभयत्र जन्मनि वर्षे च अब्दपे वीर्यान्विते सति सम्पूर्ण वर्ष शुभफलमेवाहुः । हीने बले सति अशुभफलं बोध्यमिति । उभयत्र बलस्य मध्यमत्वे मध्य फलं कथनीयमिति ।। ३७ ।।

ज्योति — जो ग्रह वर्ष का स्वामी हो, उसी को सम्पूर्ण वर्ष का स्वामी जाने । क्योंकि उसका फल सब ग्रहों के योग से होता है । उसका फल जन्मसमय और वर्ष समय पूर्व कहे पञ्चवर्गी द्वारा विचार करना चाहिए । यदि वह बलवान् हो तो सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त शुभ फल जाने । हीनबली हो तो अनिष्ट (नष्ट) फल और मध्य बली हो तो मध्यम (मिश्रित) फल जाने ।। ३७ ।।

येनेत्थशालोऽब्दपतेर्ग्रहोऽसी स्वीयस्वभावात्सुफलं ददाति ।
शुभेसराफे शुभमस्ति किञ्चिदनिष्टमेवाशुभमूसरीफे ।। ३८।।

कुन्तला — येन ग्रहेण अब्दपते इत्थशालो भवति सः खेटः निजप्रकृत्यानुसारेण शुभफलं ददाति । शुभग्रहेण इसराफयोगत्वात् शुभं फलं बोध्यम् । पापकृत मूसरीफयोगे सति अशुभमेव फलं भवति ।। ३८ ।।

ज्योति — वर्षेश जिस ग्रह के साथ इत्थशाल योग करे, वह ग्रह अपने स्वभाव (संज्ञातन्त्र में कहे हुए स्वरूप) वश शुभ फल देता है । यदि वर्षेश शुभ ग्रह के साथ ईसराफ योग करे तो थोड़ा शुभ फल हो और पापग्रह के साथ ईसराफ योग करे तो कुछ अनिष्ट फल हो । इसलिए बलाबल से उत्तम, मध्यम व अधम फल का विचार करना उचित है ।। ३८ ।।

हद्द यादृशि यः खेट आधत्तेऽत्र च यो महः ।
जन्मन्यब्दे च तादृक्चेत्तदात्मफलदस्त्वसौ ॥ ३९ ॥

कुन्तला — वर्ष कुण्डल्यांय कश्चिद् ग्रहो वर्षेशो यादृशि हद्दायां भवति तेजश्च धारयति सः जन्मकाले वर्षकालेऽपि तादृशमेव फलं ददाति ॥ ३९ ॥

ज्योति — जो ग्रह वर्षेश होकर अपने मित्र अथवा शत्रु की हद्दा में हो और मित्रदृष्टि के तेज को धारण कर अर्थात् इत्थशालयोग हो तथा जन्मसमय या वर्ष समय में उक्त दोनों समान हों तो वह ग्रह शुभ वा अशुभ फल हद्दा के अनुसार देता है । यदि शुभ ग्रह हो तो शुभ और पापग्रह हो तो अशुभ फल देता है ॥ ३९ ॥

यो जन्मनि फलं दातुं विभुर्मूसरिफोऽस्य चेत् ।
अब्दलग्नाब्दपभवस्तस्मिन्नब्दे न तत्फलम् ॥ ४० ॥
व्यत्यासे फलमादेश्यमित्थशाले विशेषतः ।
नोभयं चेत्तदाऽप्यस्ति जन्माश्रयमिति स्फुटम् ॥ ४१ ॥

कुन्तला — जन्मकाले (जन्मनि) यो ग्रहो यत् फलं दातुं समर्थः तस्य ग्रहस्य वर्ष काले वर्षामग्नाधिपति तथा वर्षेशयोः मध्ये ईसराफ योगः स्यात्तदा तस्मिन् वर्षे तस्योत्पन्न फलं न वाच्यम् । विरीत च इस राफयोगाभावे उक्त ग्रहस्य जन्मकालिक फलं कथनीय मित्यर्थः । यदि वर्ष लग्नेश वर्षेशयोर्मध्ये इत्थशाले विशेष फलं कथनीयम् । यदि वर्ष लग्नेश वर्षेशर्योमध्ये न ईसराफ न च इत्थशालो भवेत्तदाऽपि जन्मकालस्यैव फलं वाच्यम् ॥ ४०—४१ ॥

ज्योति – जो ग्रह जन्मकाल में अपने भाव का फल देने को समर्थ हो और उस ग्रह का यदि वर्षलग्नेश और वर्षेश के साथ ईसराफ योग हो तो उस वर्ष में जन्मकालीन भाव से उत्पन्न फल नहीं होता है ॥ ४० ॥

इससे विपरीत अर्थात् ईसराफयोग न हो तो जन्मकालिक भाव से उत्पन्न फल होता ही है । यदि इत्थशाल हो तो विशेष करके वह फल जरूर होता है और यदि इत्थशाल और मूसरीफ दोनों में से कोई योग हो तो भी जन्मकाल से उत्पन्न भावफल होता है । क्योंकि कोई इसमें बाधक नहीं है ॥ ४१ ॥

पुत्राधिपो जन्मनि पुत्रभावं पश्यन् सुतं दातुमसौ समर्थः ।
वर्षेशपुत्राधिपमूसरीफे पुत्रस्य नाशो भवतीति वर्षे ॥ ४२ ॥

कुन्तला — जन्मकुण्डल्यां (जन्मनि) पञ्चमाधिपतिः पञ्चमभावं पश्यन् असौ ग्रहः पुत्रं दातुं समर्थः भवति । वर्षेश पञ्चमाधिपमूसरीफे सति पुत्रस्य विनाशो भवतीति बोध्यम् ॥ ४२ ॥

ज्योति — यदि जन्मसमय में पञ्चमेश पञ्चम भाव को देखे या पञ्चम भाव में बैठे तो अपनी दशा में वह ग्रह पुत्र देता है । पञ्चमेश वर्ष में जहाँ कहीं स्थित हो और लग्नेश वर्षेश के साथ ईसराफयोग करता हो तो उस वर्ष में वह पुत्र का नाशकारक होगा ।

इसी तरह अन्य भावों में वर्षलग्नेश और वर्षेश इन दोनों के साथ भावेश का ईसराफयोग रहते उदाहरण समझ लें ।। ४२ ।।

हद्दे यादृशीत्यादि सोदाहरणं स्पष्टयति —

अब्देश्वरो गुरुर्मित्रहद्दे मित्रदृशा शशी ।
महोऽत्राधादमूक्स वर्षेऽब्दस्तेन शोभनः ।। ४३ ।।

कुन्तला — अब्देश्वरो = वर्षाधिपतिः गुरुः मित्रस्य हद्दायां स्थितः चन्द्रः मित्रं दृष्ट्यां महस्तेजः उक्तग्रहं ददाति । वर्षप्रवेशे चन्द्रः गुरुं पश्यति तदा शुभं फलं बोध्यम् ।। ४३ ।।

ज्योति — यदि वर्षलग्नेश बृहस्पति जन्मसमय में मित्र की हद्दा में हो और मित्र की दृष्टि से चन्द्रमा के साथ इत्थशाल योग करता हो अर्थात् चन्द्रमा बृहस्पति को अपना तेज देता हो तो शुभ फलदायक जाने ।। ४३ ।।

अथोपसंहरन्नाह —

एवमुन्नेयमन्यच्च शुभाशुभफलं बुधैः ।
बलाबलविवेकेन योगत्रयविमर्शतः ।। ४४ ।।

कुन्तला — अनेन प्रकारेण शुभाशुभ फलयोगकारक ग्रहाणां बलावल विचारेण तथा च ईत्थशाल, कबूल, ईसराफ योगानां विचारेण फलं बोध्यमिति ।। ४४ ।।

ज्योति — अब वर्षेश के फलाध्याय को समाप्त करते हुए कहते हैं — इसी प्रकार अन्य शुभ व अशुभ फल बलाबल के अनुसार और मुथशिल, कम्बूल, ईसराफ इन तीनों योगों का ज्ञान करके पण्डित शुभाशुभ फल कहें ।। ४४ ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठज्योतिर्विदकृत वर्षेश फलाध्याय संस्कृत 'कुन्तला' — ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

अथ मुथहाफलाध्यायः

तत्र तावन्मुथहाऽऽनयनकथनम् —

स्वजन्मलग्नात्प्रतिवर्षमेकैकराशिभोगान्मुथहा भ्रमेण ।
स्वजन्मलग्नं रवितष्टयातशरद्युतं सा भमुखेन्थिहा स्यात् ॥ १॥

कुन्तला — स्वजन्मलग्नात् प्रतिवर्षमेकैकराशिभोगाद् भ्रमणवशात् मुथहा भवति इति । स्वजन्मलग्नं द्वादश भाजिते सति यच्छेषं जन्मलग्नमध्ये जन्मलग्नस्य राशि स्थाने युतम् । तदा साभमुखा = राश्यादिका, इन्थिहा =मुथहा भवति ।

अत्र गत वर्ष = ५०
जन्म लग्न = ५। १९। २६। ४१
गत वर्ष ५० ÷ १२ = १२) ५० (४
४८
२ शेषम्
अत्र शेष =
जन्मलग्नम् ५। १९। २६। ४१
शेषम् = २
७। १९। २६। ४१ मुथहा स्यात् ।

ज्योति — मुन्थहा अपने जन्मलग्न से प्रति वर्ष एक–एक राशि भोग करती हुई भ्रमण करती है । अर्थात् जन्मलग्न से प्रति वर्ष एक–एक राशि भोग करती हुई वह तेरहवें वर्ष फिर जन्मलग्न पर आ जाती है । इसका व्यवहार इस तरह जाने कि अपनी जन्मलग्न की संख्या में गतवर्ष की संख्या जोड़कर बाहर का भाग दे । जो शेषांक रहे वही मेष से मुन्थहा की राशि होती है । इसका उदाहरण संज्ञातन्त्र में कहा जा चुका है ॥ १॥

अथ मुथहाया दैनिकमासिकगती आह —

प्रत्यह शरलिप्ताभिर्वर्द्धते साऽनुपाततः ।
सार्धमंशद्वयं मास इत्याहुः केऽपि सूरयः ॥ २ ॥

कुन्तला — प्रत्यहं = प्रतिदिनं, सा मुथहाऽनुपाततः शरलिप्ताभिः = पञ्चकलाभिः वर्द्धते चलतीत्यर्थः । मासे अर्थात् प्रत्येक मासे तु सा मुथहा, सार्द्धमंशद्वय = त्रिंशत्कलायुत मंशद्वयम् अर्थात् २। ३० वृद्धिर्भवतीति स्पष्टार्थः । मासप्रवेश दिन प्रवेश प्रयोजनार्थं केऽपि अन्ये सूरयः = विद्वांसः आहुः । उदाहरणार्थं कल्प्यातां प्रतिदिनं मुथहा ५ कला वर्धते । अतः मासे अर्थात् त्रिंशत्दिने ५ × ३० = १५० कला = २। ३० जातम् । केचिदाहुः द्वादश मासे १ राशिः = ३० अंशः चलति तदा एकस्मिन् मासे किमिति । $\frac{३० \times १२}{१२}$ = २। ३०

इयमेवमासिकी गति । यदि ३६० दिवसेषु ३० अंशः तदा एकस्मिन् दिने किमिति ।

$\frac{३० \times १}{३६०} = \frac{१}{१२}$ अस्य कलात्मकरणार्थं षष्टि गुणितम् ।

$\frac{१ \times ६०}{१२} = ५$

ज्योति — अब इन्थहा की उत्पत्ति पर विचार करते हुए कहते हैं कि जिसे जातक ग्रन्थकर्ता आचार्य्यों ने मुन्था, मिन्थिहा, इन्थिहा, मुन्थहा आदि शब्दों से अभिहित किया है, वास्तव में यह इन्थहा, इन्तिहा शब्द का अपभ्रंश है । जिसका अर्थ समाप्ति है । जहाँ वर्षक्रम के गिनने से जन्मलग्न की समाप्ति होती हो, उसी को वर्षफल में इन्तिहा कहते हैं अर्थात् पहिले वर्ष में जन्मलग्न की राशि, दूसरे वर्ष में दूसरे स्थान की राशि, तीसरे वर्ष में तीसरे स्थान की राशि इत्यादि क्रमानुसार तेरहवें वर्ष में फिर जन्मलग्न की राशि, चौदहवें में दूसरे वर्ष की एवं २५। ३७। ४९ वर्ष में फिर जन्मलग्न की राशि ही पर इन्थहा होती है । इसी प्रकार प्रति दिवस के अनुपात अर्थात् त्रैराशिक से पाँच–पाँच कला बढ़ती जाती है । इस तरह एक मास में अढ़ाई अंश बढ़ती है, यह कुछ विद्वानों का मत है ॥ २ ॥

अथ सामान्यतो मुथहाफलकथनम् —

स्वामिसौम्येक्षणात्सौख्यं क्षुतदृष्ट्या भयं रुजः ।
भावालोकन संयोगात्फलमस्या निरूप्यते ॥ ३ ॥

कुन्तला — स्वामिसौम्येक्षणाम् = मुथहेशस्य शुभग्रह दृष्टिवशात् सौख्यं भवति । तत्र क्षुतदृष्ट्या अर्थात् १, ४, ७, १० दृष्ट्या भयं, रूजः = रोगाः भवन्ति । अस्यामुथहायाः भावालोकन संयोगात् ग्रहदृष्टि संगोयेन च यत्फलं तत् पुरतो निरूप्यते = वक्ष्यते ॥ ३ ॥

ज्योति — जिस राशि में मुन्था हो, उसका मालिक मुन्थेश कहलाता है । अपने स्वामी वा शुभग्रह द्वारा देखे जाने से मुन्थहा सुख देती है । यदि मुन्थहा का शुभग्रह वा पापग्रह स्वामी हो और वह क्षुत दृष्टि से देखा जाता हो तो भयदायक होती है ॥ ३ ॥

अथ स्थानवशेन मुथहायाः फलकथनम् —

वर्षलग्नात्सुखास्तांत्यरिपुरंध्रेष्वशोभना ।
पुण्यकर्मायगा स्वाम्यं दत्तेऽन्यत्रोद्यमाद्धनम् ॥ ४ ॥

कुन्तला — वर्षलग्नात् चतुर्थ सप्तमद्वादश षष्टाष्टमस्थानेषु स्थितामुथहा अनिष्ट फलदा भवति । नव दशमैकादशगता मुथहा स्वाम्यमाधिपत्यं दत्ते । तथाऽन्यत्र उद्यमात् = उद्योगात् धनं ददाति ॥ ४ ॥

ज्योति — वर्षलग्न से ४। ७। १२। ६। ८ इन स्थानों में स्थित मुन्था का अशुभ फल और ९। १०। ११। इन स्थानों में मुन्था के जाने से स्वामित्व सुख मिलता है । अन्य १। २। ३। ५ स्थानों में मुन्थहा स्थित हो तो उद्यम से धन प्राप्त हो ॥ ४ ॥

अथ मुथहाभावफलम्, तत्रादौ तनुभावस्थमुथहाफलम् —

शत्रुक्षयं मानसुताश्ववलाभं प्रतापवृद्धि नृपतः प्रसादम् ।
शरीरपुष्टिं विविधोद्यमांश्च ददाति वित्तं मुथहा तनुस्था ॥ ५ ॥

कुन्तला — तनुस्था मुथहा शत्रुक्षयं, मानसुताश्वलाभं = सम्मान पुत्राश्व प्राप्ति, प्रतापवृद्धिम्, नृपतेः = राज्ञः, प्रसादम् = प्रसन्नताम्, शरीर पुष्टिम् = शरीरस्य विकासं, विविध, उद्यमान् = उद्योगान् वित्तं च ददाति ॥ ५ ॥

ज्योति — लग्न में स्थित मुन्थहा शत्रुनाशक, मन में प्रसन्नताकारक, लाभदायक, प्रताप की वृद्धि करने वाली, राजा की प्रसन्नता तथा देह की पुष्टता करती है और अनेक उद्यमों में धन देती है ॥ ५ ॥

अथ धनभावस्थमुथहाफलम् —

उत्साहतोऽर्थागमनं यशश्च स्वबन्धुसन्माननृपाश्रयाश्च ।
मिष्टान्नभोगो बलपुष्टिसौख्यं स्यादर्थभावे मुथहा यदाऽब्दे ॥ ६ ॥

कुन्तला — यदा मुथहा धनभावे भवेत् तदा प्रयत्नतः अर्थागमनं, यशः स्वबन्धु–सन्मान नृपाश्रयाः भवन्ति । मिष्ठान्नभोगः = मधुरभोजनं, बल पुष्टि सौख्यं च भवति ॥ ६ ॥

ज्योति — वर्षप्रवेश के समय यदि मुन्थहा दूसरे भाव में हो तो अपने उत्साह से धन प्राप्त कर वह प्राणी लोक में यश का भागी बनता और अपने बन्धुजनों से सम्मान प्राप्त करता हुआ राजा के आश्रय से मिष्टान्नभोग, बल तथा पुष्टि आदि सुख प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

अथ सहजभावस्थमुथहाफलम् —

पराक्रमाद्वित्तयशः सुखानि सोदर्यसौख्यं द्विजदेवपूजा ।
सर्वोपकारस्तनुपुष्टिकीर्तिर्नृपाश्रयश्चेन्मुथहा तृतीया ॥ ७ ॥

कुन्तला — अथ मुथहा, तृतीया = सहजभावगता भवति तदा पराक्रमात् वित्तयशः सुखानि, सोदर्यसौख्यं = सहोदरबन्धुसुखं द्विजदेवपूजा, सर्वोपकारः शरीर पुष्टिः, यशश्च, राज्ञाश्रयश्च भवति ॥ ७ ॥

ज्योति — यदि मुन्थहा तीसरे भाव में हो तो वह प्राणी अपने ही पराक्रम से धन, यश, सुख, ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, सबका उपकार, दृढ़ शरीर, यश तथा राजा का आश्रय आदि फल प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

अथ चतुर्थभावस्थितमुथहाफलम् —

शरीरपीडा रिपुभीः स्ववर्ग्यवैरं मनस्तापनिरुद्यमत्वे ।
स्यान्मुन्थहायां सुखभावगायां जनापवादामयवृद्धिदुःखम् ॥ ८ ॥

कुन्तला — सुखभावगायां = चतुर्थस्थानगता मुथहायां शरीर पीड़ा, शत्रु कष्टं, भयं, स्ववर्ग्यवैरं = स्वबन्धुजन विरोधः, मनसः सन्तापः, उद्योगहीनत्वं, जनापवादः, अभयवृद्धि = रोगवृद्धिः, क्लेशश्च भवति ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि चौथे भाव में मुन्था स्थित हो तो शरीर पीड़ा, शत्रुभय, अपने कुटुम्बी जनों से बैर, मन को ताप, निरुद्यमता (बेकारी), मनुष्यों में अपवाद और अनेक प्रकार के रोग की वृद्धि होती है ॥ ८ ॥

अथ पञ्चमभावस्थमुथहाफलम् —

यदीन्थिहा पञ्चभागऽब्दवेशे सद्बुद्धिसौख्यात्मजवित्तलाभः ।
प्रतापवृद्धिं विविधा विलासा देवद्विजार्चा नृपतेः प्रसादः ॥ ९ ॥

कुन्तला — यदि अब्दप्रवेशे मुथहा पञ्चमभावगता भवेत्तदा, सद्बुद्धिः, सौख्य (सुखप्राप्ति), धनलाभश्य भवति । प्रतापवृद्धिः, विविधाः = अनेकाः, विलासाः, देवद्विजपूजा, नृपतेः अनुकूलत्वं (प्रसादः) च एतत् फलं प्राप्नोतीति भावः ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय मुन्था पाँचवें स्थान में स्थित हो तो सुन्दर बुद्धि सुख, पुत्र और द्रव्य का लाभ, प्रताप की वृद्धि, अनेक प्रकार के विलास, देवता और ब्राह्मणों में भक्ति तथा राजा की प्रसन्नता ये फल होते हैं ॥ ९ ॥

अथ षष्ठस्थानस्थितमुथहाफलम् —

कुशत्वमङ्गेषु रिपूदयश्च भयं रुजस्तस्करतो नृपाद्वा ।
कार्यार्थनाशो मुथहाऽरिगा चेद् दुर्बुद्धिवृद्धिः स्वकृतेऽनुतापः ॥ १० ॥

कुन्तला — यदि चेत् मुथहा अरिगा अर्थात् षष्ठभावगता भवेत्तदा अङ्गेषु कृशत्वं, शत्रुवृद्धिः, भयं, रूजः अथवा चौरात् (तस्करतः) नृपात् भयं कार्यार्थनाशः (कार्यनाशः धन–नाशश्च) कुमति बुद्धिः निजकृते कर्मणि पश्चातापः भवति ॥ १० ॥

ज्यौति — यदि छठें भाव में मुन्थहा विद्यमान हो तो शरीर में दुर्बलता, शत्रुओं की उत्पत्ति, रोग, चोर तथा राजा से भय, कार्य तथा धन का नाश, दुष्ट बुद्धि की वृद्धि, अपने ही किये हुए कार्यों से पछतावा, ये फल होते हैं ॥ १० ॥

अथ सप्तमभावगतमुथहाफलम् —

कलत्रबन्धुव्यसनारिभीतिरुत्साहभंऽी धनधर्मनाशः ।
द्यूनोपगा चेन्मुथहा तनौ स्याद्रुजा मनोमोहविरुद्धचेष्टा ॥ ११ ॥

कुन्तला — चेत् यदि मुथहा सप्तमभावगता भवेत्तदा कलत्रभय, बन्धुभय, व्यसनभय, शत्रुभयं च भवन्ति । उत्साहभंग, धनधर्मनाशः, तनौ (शरीरे) रुजा (रोगेण), मनोमोह = मनसिभ्रमः, विरुद्धचेष्टा अर्थात् प्रतिकूल व्यापारश्च भवतीति ॥ ११ ॥

ज्योति — वर्षप्रवेश के समय यदि मुन्थहा सातवें घर में स्थित हो तो स्त्री तथा बन्धुजनों से दुःख, शत्रुभय, उत्साहभंग, धन तथा धर्म की हानि, शरीर में रोग, मन में मोह और शरीर के विरुद्ध चेष्टा ये अशुभ फल होते हैं ॥ ११ ॥

अथाष्टमभावगतमुथहाफलम् —

भयं रिपोस्तस्करतो विनाशो धर्मार्थयोर्दुर्व्यसनामयश्च ।
मृत्युस्थिता चेन्मुथहा नराणां बलक्षयः स्याद्गमनं सुदूरे ॥ १२ ॥

कुन्तला — यदि मुथहा अष्टमभावगता भवेत्तदा नराणां रिपोर्भयं, चौरभयं, धर्मार्थयोः विनाशः दुर्व्यसनामयश्च = क्लेशाधिक्यरोगप्राप्तिः, बलक्षयः, सुदूरे = दूरदेश गमनं च भवन्ति ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि मुन्था आठवें स्थान में हो तो मनुष्य को शत्रुभय, चोर भय तथा धन, धर्म तथा अर्थ का नाश, शरीर को कष्ट देने वाली, रोग, बल का क्षय और दूर देश गमन, ये अशुभ फल होते हैं ॥ १२ ॥

अथ धर्मभावगतमुथहाफलम् —

स्वामित्वमर्थोपगमो नृपेभ्यो धर्मोत्सवः पुत्रकलत्रसौख्यम् ।
देवद्विजार्चा परमं यशश्च भाग्योदयो भाग्यगतेंथिद्दहायाम् ॥ १३ ॥

कुन्तला — भाग्यगतेन्यिहायां = नवमभावगतमुथहायां स्वायित्वं, नृपेभ्य, अर्थोपगमः = धनागमः, धर्मोत्सवः पुत्रकलत्रसौख्यं देवद्विजार्चा = देव ब्राह्मणपूजा, अत्यंत कीर्तिः भाग्योदयश्च भवति ॥ १३ ॥

ज्योति — नवम स्थान में मुन्थहा हो तो प्राणी स्वामित्व पद प्राप्त कर राजा से धन की प्राप्ति करता है । साथ ही, धर्म का उत्सव, पुत्र, सुख, देवता और ब्राह्मणों का पूजन, सुन्दर यश तथा भाग्य का उदय भी करता है ॥ १३ ॥

अथ कर्मभावस्थितमुथहाफलम् —

नृपप्रसादं स्वजनोपकारं सत्कर्मसिद्धिं द्विजदेवभक्तिम् ।
यशोऽभिवृद्धिं विविधार्थलाभं दत्तेऽम्बरस्था मुथहा पदाप्तिम् ॥ १४ ॥

कुन्तला — अम्बरस्था = दशमभावगता मुथहा नृपप्रसादं, स्वजनोपकारं सत्कर्म सिद्धिं = शुभकार्यसाफल्यं; देवद्विजभक्तिं, यशोऽभिवृद्धिं = कीतिसमुन्नतिं, विविधार्थलाभं च, दत्ते = ददाति इत्यर्थः ॥ १४ ॥

ज्योति — दशम भाव स्थित मुन्था राजा की प्रसन्नता, स्वजनों का उपकार, अच्छे कर्मों की सिद्धि, ब्राह्मण तथा देवताओं की भक्ति व यश की वृद्धि, अनेक प्रकार के धनों का लाभ तथा स्थान की प्राप्ति आदि फल देती है ॥ १४ ॥

अथैकादशभावगतमुथहाफलम् —

यदीन्थिहा लाभगता विलाससौभाग्यनैरुज्यमनः प्रसादाः ।
भवन्ति राजाश्रयतो धनानि सन्मित्रपुत्राभिमताप्तयश्च ॥ १५॥

कुन्तला — यदि मुथहा, लाभगता = एकादश भावगता स्यात्तदा विलासः = मनोविनोदः, सौभाग्यम् = भाग्यवृद्धिः, नैरुज्यं = आरोग्यता, मनः प्रसादः = मनसिहर्षोल्लासश्च भवन्ति ॥ १५ ॥

ज्योति — ग्यारहवें भाव में यदि मुन्था हो तो स्त्रियों के विलास, सौभाग्य, आरोग्यता चित्त में प्रसन्नता, राजा के आश्रय से धन की प्राप्ति, उत्तम ज्ञान, मित्र का लाभ, पुत्र और वांछित पदार्थो की प्राप्ति आदि उत्तम फल होते हैं ॥ १५ ॥

अथ व्ययस्थानस्थितमुथहाफलम् —

व्ययोऽधिको दुष्टजनैश्च सङ्गो रुजा तनौ विक्रमतोऽप्यसिद्धिः ।
धर्मार्थहानिर्मुथहा व्ययस्था यदा तदा सज्जनतोऽपि वैरम् ॥ १६ ॥

कुन्तला — यदा मुथहा द्वादशभाव स्थिता स्यात्तदाऽधिकव्ययः, दुर्जनैः सङ्गः शरीरे, रुजा = रोगेण पराक्रमतः, असिद्धिः = कार्यवौफल्यं, धमधनयोर्हानिः, सज्जनतः वैरं च भवन्तीति ॥ १६ ॥

ज्योति — बारहवें स्थान में यदि मुंथहा हो तो ज्यादा खर्च, दुष्ट मनुष्य का संग, देह में रोग, अपने पराक्रम से भी कार्य की असिद्धि, धर्म व धन की हानि, अपने या अन्य जनों से वैर आदि अशुभ फल होते हैं ॥ १६ ॥

अथ मुथहास्थितिवशेन विशेषफलम् —

क्रूरेर्दृष्टः क्षुतदृशा यो भावो मुथहाऽत्र चेत् ।
शुभं तद्भावजं नश्येदशुभं चापि वर्द्धते ॥ १७ ॥

कुन्तला — क्रूरैः ग्रहैः कश्चित् भावः, क्षुतदृशा = शत्रुदृष्ट्या दृष्टः किन्तु अत्र पापदृष्टभावे मुथहाचेत् स्यात् तदा तद् भावजं शुभं फलं, नश्येत् = नश्यति इति भावः । अशुभं फलं वर्द्धते च ॥ १७ ॥

ज्योति — जिस भाव को पापग्रह शत्रुदृष्टि से देखता हो और उसी भाव में मुंथा हो तो उस भाव से उत्पन्न शुभ फल भी नष्ट हो जाता है और उस भाव संबन्धी अशुभ फल को बढ़ाती है ॥ १७ ॥

अथ मुथहाविशेषफलम् —

शुभस्वामियुक्तेक्षिता वीर्ययुक्तेन्थिहा स्वामिसौम्येत्थालं प्रपन्ना ।
शुभं भावजं पोषयेन्नाशुभं साऽन्यथात्वेऽन्यथाभाव ऊह्ये विमृश्य ॥ १८॥

कुन्तला — इन्थिहा = मुथहा शुभस्वामियुक्तेक्षिता सा वीर्ययुक्ता यस्मिन् भावे स्यात्तदा भावजं शुभं फलं पोषयेत = वर्धयेत् । अशुभं फलं न भवेत् । अन्यथात्वे = विपरीतं च फलं बोध्यम् । अर्थात् पापग्रहः शत्रुग्रह ग्रहेण युतं दृष्टं च भूत्वा पापग्रहेण इत्थशालेन्थिहा दुर्बलो भवेत्तदा तद्भावजं शुभं फलं नाशयेद् शुभं फल वर्धयेत् । एवं विचार्य उह्यः = ज्ञातव्यः ॥ १८ ॥

ज्योति — यदि मुंथा शुभग्रह व अपने स्वामी से युक्त हो या देखी जाती हो अथवा पञ्चवर्गी में उत्तम बलवाली हो अथवा शुभ ग्रह या अपने स्वामी के साथ इत्थशाल योग करे तो वह उस भाव सम्बन्धी फल को बढ़ाती हुई अशुभ फल का नाश करती है । अन्यथा जो मुंथा शुभस्वामी से युक्त न हो और शुभ ग्रहों के साथ इत्थशाल न करती हो, पापग्रहों से दृष्ट होकर पापग्रहों के साथ मिलाप करती हो तो वह अपने पापसम्बन्धी अशुभ फल बढ़ाती हुई शुभ फल का नाश करती है । वह भाव अपने भावसम्बन्धी अशुभ फल बढ़ाता हुआ शुभ फल का नाश करता है । मुंथहा यदि शुभ वा पापग्रह से दृष्ट होकर शुभ व पापग्रहों स मिलाप करती हो तो उस ग्रह का बल विचार कर शुभ व अशुभ फल कहना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ स्थानवशेन मुथहाफलम् —

जनुर्लग्नतोऽस्तांत्यषण्मृत्युबन्धुस्थिताऽब्दे हता क्रूरखेटैस्तु सा चेत् ।
विनश्येत्स यत्रेन्थिहा भाव एवं शुभस्वामिदृष्टौ ना नाशः शुभञ्च ॥ १९ ॥

कुन्तला — जनुर्लग्नतः = जन्मलग्नात् सप्तम द्वादशषष्टाष्टम चतुर्थस्थानान्यतम् स्थानराता अर्थात् वर्ष पत्रिकायां जन्मलग्नराशिर्यत्र भवेत्तत तदुक्त स्थानस्थित मुथहा वर्षे पापग्रहैः हता, युता, दृष्टा च चेत् स्यात् तदा तादृशौ सा मुथहा यत्र मुखे भवेत् स भावे विनश्येत । एवं शुभस्वामिदृष्टौ तस्यां नाशः न स्यात् । परन्तु फलं शुभमेव भवति ॥ १९ ॥

ज्योति — यदि वर्ष प्रवेश के समय जन्मलग्न से ७।१२।६।८।४ इन स्थानों में से किसी स्थान में पापग्रह युक्त मुन्था स्थित हो तो वह उस वर्ष में जिस भाव में स्थित हो, उस भाव का नाश हो । जैसे द्वितीया में धन का, तृतीया में भाई का इत्यादि । यदि मुन्था शुभग्रह या शुभ स्वामी से दृष्ट या युक्त हो अर्थात् देखी जाती हो तो उसका नाश नहीं होता अपितु सर्वदा शुभ फल ही होता है ॥ १९ ॥

यदोभयत्रापि हता भावो नश्येत्स सर्वथा ।
उभयत्र शुभत्वे तु भावोऽसौ वर्धतेतराम् ॥ २० ॥

कुन्तला — यदा उभयत्र अर्थात् जन्मकाले वर्षकालेऽपि यत्र भावे स्थिता मुथहा पापैः युतदृष्टा भवेत् तदा स च भावः सर्वथा नश्येत् । यदि उभयत्र जन्मकाले वर्षकाले च यद्भावे स्थिता मुथहा शुभैः युतदृष्टा तदा असौ भावो निश्चयेन वर्धते इति ॥ २० ॥

ज्योति — जन्मलग्न तथा वर्षलग्न से निन्दित स्थान में स्थित पापग्रह युक्त मुन्था हो तो वह भाव सम्बन्धी अशुभ फल देती है । यदि मुन्था जन्मकाल व वर्षलग्न में शुभ ग्रहों से युक्त व दृष्ट हो तो वह मुन्था युत भाव अवश्य शुभ फल देता है ।। २० ।।

वर्षेऽप्यनिष्टगेहस्था यद्भावं जनुषि स्थिता ।
क्रूरोपघातात्तं भावं नाशयेच्छुभयुक् शुभा ।। २१ ।।

कुन्तला — वर्षेऽपि अनिष्ट गेहस्था जनुषि = जन्मनि यद्भावे स्थिता भवेत् तत्र पापग्रहयोगेक्षणात् तं जन्मांस्थ भावं नाशयेत् । यदि वर्षेऽनिष्टगेहस्थाऽपि शुभयुक तदा सा मुथहा शुभफलदायिनी भवति ।। २१ ।।

ज्योति — वर्षप्रवेश के समय वर्षलग्न व जन्मलग्न से अनष्टि स्थान अर्थात् चौथे, छठें, आठवें या बारहवें स्थान में मुन्था, हो तो जन्मसमय में लग्न से जिस भाव में मुन्था स्थित हो, यदि वह भाव वर्षसमय में पापग्रहों से युक्त हो तो उस जन्मस्थिति मुन्थायुक्त भाव को नष्ट कर देता है । यदि वर्ष प्रवेश के समय अनिष्ट स्थान में स्थित मुन्थहा शुभ ग्रहों से युक्त हो तो शुभ फल प्रदान करती है ।। २१ ।।

उदाहरति —

जनुर्लग्नतस्तुर्यगा सौम्ययुक्ताऽब्दवेशे पितृस्वस्य लाभं विधत्ते ।
नृपाद्भीतिदा पापयुक्ताऽतिकष्टप्रदाऽऽदावपीत्थं विमर्शो विधेयः ।। २२ ।।

कुन्तला — अब्द प्रवेशे जनुर्लग्नतः वर्षकुण्डल्यां जन्मलग्नं यत्रभवेत् तस्मात् स्थानात् यदि मुथहा चतुर्थ स्थानगता शुभग्रह दृष्टा भवेत्तदा पितृधनख्य लाभं प्राप्नोति । यदि तादृशी मुथहा पाप युक्ता तदा नृपात् भयदायिनी अतिकष्टं च भवति । इत्थं विमर्शो विधेयः ।। २२ ।।

ज्योति — जन्मलग्न से चौथे स्थान में स्थित मुन्थहा वर्षप्रवेश के समय यदि शुभग्रह से युक्त हो तो उस प्राणी को पिता का द्रव्य, जन तथा भूम्यादि का लाभ होता है । यदि वह पापयुक्त हो तो राजा से भय होता है और वह प्राणी अति कष्ट पाता और जीविका से हीन हो जाता है । इसी तरह अन्य अनिष्ट स्थानों का भी विचार करना चाहिये ।। २२ ।।

यस्मिन्भावे स्वामिसीम्येक्षिता चेद्भावी जन्मन्येष यस्तस्य वृद्धिः ।
एवं पापैर्नाश उक्तस्य तस्येत्यूह्यं वीर्याद्वर्षपः सौख्यमेव ।। २३ ।।

कुन्तला — स्वामी शुभग्रह दृष्टा मुथहा वर्ष प्रवेशकाले यस्मिन् भावे स्थिताऽस्ति जन्मकाले यो भावः तस्य वृद्धि भवति । एवं पापयुतदृष्टा मुथहा वर्ष कुण्डल्यां यद् भावे स च भावराशिर्जन्मनि यो भावस्तस्य नाशः स्यात् । तत्र मुथहाकृता निष्टफलेऽपि अब्दपः बलाधिक्यात् सौख्यं बोध्यम् । अब्दपे पूर्णवाले शुभयुत दृष्टे मुन्थाकृतमनिष्टं न भवति ।। २३ ।।

ज्योति — वर्षप्रवेश के समय वर्षलग्न से मुन्थहा जिस भाव में स्थित हो, उस भाव के स्वामी व शुभग्रह से दृष्ट हो तो वह राशि जन्म समय में जिस भाव में हो, उस

भाव का फल प्राप्त होता है । जैसे वर्षलग्न से चतुर्थ भाव शुभ ग्रह से युक्त व दृष्ट है, किन्तु जन्मलग्न व जन्मराशि की गणना से तीसरे भाव का नाश होता है और वर्षस्वामी ग्रह बलवान् हो तो मुन्थहाकृत अशुभ फल नहीं होता अर्थात् शुभ ही होता है ।। २३ ।।

अथ सूर्ययुतदृष्टतद्राशिंस्थमुथहाफलम् ——

यदींथिहा सूर्यगृहे युता वा सूर्येण राज्यं नृपसऽमं च ।
दत्ते गुणानां परमामवाप्तिं स्थानांतरस्येति फलं दृशोऽपि ।। २४ ।।

कुन्तला —— यदि इन्थिहा सूर्यगृहे अर्थात् सिंहराशौ भवेद्वा सूर्येण युता भवेत्तदा राज्यं, नृपसऽमं, गुणानां उत्कर्षत्वं, स्थानान्तरस्य अवप्तिश्च भवति । सूर्यदृष्टमुथहाया: फलं इत्येवं वाच्यम् ।। २४ ।।

ज्योति —— यदि मुन्थहा सूर्य की राशि (सिंह) में स्थित हो या सूर्य से युक्त या दृष्ट हो तो उस मनुष्य को अर्थ, राज्य और राजा की संगति देती है और वह परम उच्च स्थान को पाकर विदेशी होता है और अपने कुलानुसार राज्यसुख, स्त्री, वस्त्र तथा भूषणादि का भोग करता है ।। २४ ।।

अथ चन्द्रयुतदृष्टतद्राशिस्थमुथहाफलम् ——

चन्द्रेण युक्तेन्दुगृहेऽथ दृष्टेन्दुनाऽपि वा धर्मयशोऽभिवृद्धिम् ।
नैरुज्यसन्तोषमतिप्रवृत्ति ददाति पापेक्षणतोऽतिदुःखम् ।। २५।।

कुन्तला —— यदि मुथहा चन्द्रेण युक्ता इन्दुगृहेस्थिताऽपि वा इन्दुना दृष्टा तदा धर्मयशो–ऽभिवृद्धिं, नैरुज्य सन्तोषमति प्रवृत्तिं ददाति । पापग्रहस्य दृष्टिवशाच्चातिदुखं ददाति ।। २५ ।।

ज्योति —— यदि किसी मनुष्य के वर्षप्रवेश समय में मुन्थहा चन्द्रमा से युक्त हो या चन्द्रमा के घर (कर्कराशि) स्थित हो अथवा चन्द्रमा देखता हो तो उस प्राणी के अर्थ तथा यश की वृद्धि, आरोग्यता, सन्तोष तथा बुद्धि की वृद्धि, इन शुभ फलों को देती है । यदि मुन्थहा पापग्रहों से दृश्यभाव हो तो अति दुःखदायक होती है ।। २५ ।।

अथ कुजयुक्तदृष्टतद्भस्थमुथहाफलम् ——

कुजेन युक्ता कुजभे कुजेन दृष्टा च पित्तोष्णरुजं करोति ।
शस्त्राभिघातं रुधिरप्रकोपं सौरीक्षिता सौरिगृहे विशेषात् ।। २६ ।।

कुन्तला —— मुथहा यदि कुजेन युक्ता, कुजभे = मेषवृश्चिकराशौ स्थिता भौमेन दृष्टा तदा पित्तविकारजमुष्णरोगं करोति । शस्याभिघातं, रुधिर प्रकोपं च करोति । यदि भौमयुत दृष्टतद्राशिस्थेन्थिहा शनिदृष्टा, शनिगृहे स्थिता तदा विशेषरूपेण पूर्वोक्त फलं भवति ।। २६ ।।

ज्योति — जिस किसी मनुष्य के वर्षप्रवेश समय में मुन्थहा मङ्गल से युक्त हो, मङ्गल की राशि (मेष— वृश्चिक) में हो अथवा मङ्गल से दृष्ट हो तो वह ऊष्णता सहित पित्तज्वर करती और हथियार से घाव या रुधिर विकार करती है । यदि मुन्थहा शनैश्चर के घर अर्थात् (मकर कुम्भ) में हो तो पूर्व कहा हुआ फल विशेषरूप से घटता है और शनि तथा मङ्गल की मुन्था का फल समान होता है ।। २६ ।।

बुधशुक्रयोराह —

बुधेन शुक्रेण युतेक्षिता वा तद्भेऽपि वा स्त्रीमतिलाभसौख्यम् ।
धर्मं यशश्चाप्यतुलं विधत्ते कष्टं च पापेक्षणयोगतः स्यात् ।। २७ ।।

कुन्तला — यदि मुथहा बुधेन वा शुक्रेण युता दृष्टा वा, तद्भे = बुधशुक्रयोः राशौ स्थिता स्यात्तदा स्त्रीलाभो, मतिलाभः, सौख्यं च भवति । धर्मं अतुलं यशश्च भवति । पापयुतदृष्टा च कष्टं स्यात् ।। २७ ।।

ज्योति — यदि मुन्थहा बुध और शुक्र से युत वा दृष्ट हो अथवा इनकी ३। ६। २। ७ राशि में स्थिति हो तो स्त्रियों से सुख, मति (बुद्धि) का प्रकाश व धन का लाभ, सुख, धर्म तथा यश प्राप्त होता है । पापग्रहों की दृष्टि तथा योग से मुन्थहा अति कष्टदायक होती है अर्थात् उस मनुष्य को बहुत कष्ट मिलता है ।। २७ ।।

अथगुरोराह —

युतेक्षिता वा गुरुणा गुरोर्भं यदीन्थिहा पुत्रकलत्रसौख्यम् ।
ददाति हेमाम्बररत्नभोगं शुभेत्थशालादिह राज्यलाभः ।। २८।।

कुन्तला — यदि, इन्थिहा = मुथहा गुरुणा युतेक्षिता = युतावलोकिता, गुरोर्मै = गुरुराशौ (धनुमीनस्था) तदा पुत्रकलत्रसौख्यं सुवर्ण वस्त्ररत्नादिसुखं च प्रयच्छति । यदि मुथहाशुभेत्थशालयोगत्वात् राज्यलाभो भवतीति ।। २८ ।।

ज्योति — यदि मुन्थहा बृहस्पति से युक्त व बृहस्पति की (९। १२) राशि में स्थित हो तो पुत्र तथा स्त्री का सुख देती और सुवर्ण, वस्त्र, रत्न तथा भोग भी प्रदान करती है । यदि शुभ ग्रह के साथ इत्थशाल योग हो तो राज्य का लाभ होता है ।। २८ ।।

अथ शनेराह —

शनेर्गृहे तेन युतेक्षिता वा यदीन्थिहा वातरुजं विधत्ते ।
मानक्षय वह्निभयं धनस्य हानिं च जीवेक्षणतः शुभाप्तिम् ।। २९।।

कुन्तला — यदि मुथहा शनेर्गृहे अर्था शनेः राशौ स्थिता भवेत्तथा च शनिना युतेक्षिता स्यात् तदा, वातरुजं = वायुविकार सम्बन्धी रोगो भवतीत्यर्थः; मानक्षयं = अपमानं, वह्निभयं, धनस्य हानिं च करोति । गुरुणा दृष्टे सति उत्तमफलोपलब्धि च भवति ।। २९ ।।

ज्योति — यदि मुन्थहा शनि की राशि अर्थात् मकर, कुम्भ अथवा शनैश्चर से युक्त अथवा शश्नैचर की दृष्टि से युक्त हो तो वातरोग, मान का क्षय तथा अग्नि से धन की हानि करती है । यदि मुन्थहा पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो वह मनुष्य शुभ फल प्राप्त करता है ।। २९।।

तमोमुखे चेन्मुथहा धनाप्तिं यशः सुखं धर्मसमुन्नतिं च ।
सितेज्ययोगेक्षणतः पदाप्ति सुवर्णरत्नाम्बरलब्धयश्च ।। ३० ।।

कुन्तला — यदि मुथहा, तमो मुखे = राहुमुखे स्यत्तदा धनाप्तिं, यशः, सुखं, धर्मसमुन्नतिं च करोति । सितेज्ययोगेक्षणतः पदाप्तिं सुवर्णरत्नवस्त्रादिप्राप्तिरपि भवति ।। ३० ।।

ज्योति — जिस मनुष्य के वर्षप्रवेश के समय मुन्थहा राहु के मुखसंज्ञक अंशों में विद्यमान हो तो धन की प्राप्ति, यश, सुख व धर्म की उन्नति हो । यदि मुन्थहा शुक्र या बृहस्पति के योग से व दृष्टि से युक्त हो तो अधिकार की प्राप्ति सुवर्ण रत्न और वस्त्र प्राप्त कराती है ।। ३० ।।

अथ राहोर्मुखपृष्ठपुच्छसंज्ञालक्षणकथनम् —

भोग्या राहोर्लवास्तस्य मुखं पृष्ठं गता लवाः ।
ततः सप्तमभं पुच्छं विमृश्येति फलं वदेत् ।। ३१।।

कुन्तला — अथ राहोर्मुखपृष्ठ पुच्छसंज्ञालक्षकथनम्—राहोः भोग्यालवाः तस्य मुखं भवन्ति । तस्य भुक्तालवाः पृष्ठं भवन्ति । एवं विमृश्य = विचार्य, शुभाशुभं वदेत् ।। ३१ ।।

ज्योति — जिस राशि पर राहु हो, वक्रगति से उसका जो भोग्य अंश हो उसको मुख कहते है । जो मुक्त अंश हो, वह पृष्ठसंज्ञक जाने । किसी आचार्य के मत से राहुस्थित राशि के अंश से १५–१५ अंश पूर्व और पर लेते हैं । जैसे कन्या के दस अंशों पर राहु हैं तो दश अंश मुखसंज्ञक है । वक्रगति से जो बीस अंश पृष्ठ संज्ञक है और जिस राशि पर राहु स्थित है, उससे सातवीं राशि पुच्छ कहाती है । जैसे कि कन्या राशि से सातवीं मीन राशि पुच्छ संज्ञक है । इस प्रकार विचार करके फल कहे ।। ३१।।

तत्पृष्ठभागे न शुभप्रदा स्यात्तत्पुच्छभागाद्रिपुभीतिकष्टम् ।
पापेक्षणादर्थसुखस्य हानिश्चेज्जन्मनीत्थं गृहवित्तनाशः ।। ३२ ।।

कुन्तला — मुथहा तद्भुक्तांशे (तत्पृष्ठभागे) शुभप्रदा न स्यात् । तत्पुच्छभागात् रिपुमीतिकष्टं भवति । पापेक्षणात् अर्थसुखस्य हानिः स्यात् । इत्थं यदि जन्मकाले भवेत्तदा लग्नभवे राहोः पुच्छ संज्ञः स्यात् । तत्र यतो जन्मकाले जन्मलग्नतुल्या एव मुथहाऽतः सिद्धं जन्मनि सप्तम स्थानगते राहौ मुथहा राहुपुच्छे भवति। तत्र वित्तविनाशः, अर्थहानिः भवतीति बोध्यम् ।। ३२ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय राहु के पृष्ठभाग में मुन्थहा स्थित हो तो वह उस प्राणी का कल्याण करती है । जिसके राहु की पूँछ में मुन्थहा विद्यमान हो तो शत्रु से भय व कष्ट हो । जिनकी मुन्थहा को पापग्रह देखते हों उसके धन सुख की हानि होती है । यदि जन्मकाल में भी इसी प्रकार की मुन्था होवे तो घर और धन का नाश होता है ॥ ३२ ॥

ये जन्मकाले बलिनोऽब्दकाले चेद्दुर्बलास्तैरशुभं समान्ते ।
विपर्यये पूर्वमनिष्टमुक्तं तुल्यं फलं स्यादुभयत्र साम्ये ॥ ३३ ॥

कुन्तला — जन्मकाले वलिनो ग्रहाः अब्दकाले दुर्बला स्युस्तदा वर्षान्ते अशुभफलं भवति । यदि जन्मकाले दुर्बलाः वर्षकाले सबलाः भवन्ति तदा पूर्वम शुभफलं पश्चाच्च शुभफल भवति । यदि जन्म काले दुर्बलाः, वर्षकालेऽपि दुर्बलास्तदा वर्ष पर्यन्तमं शुभमेव फलं ददाति इति ॥ ३३ ॥

ज्योति — जन्म समय में भी जो ग्रह बलवान् हों, वे यदि वर्ष प्रवेश के समय निर्बल हों तो वर्ष के अन्त में अशुभ फल देते हैं । इसके विपरीत अर्थात् जन्म समय में निर्बल और वर्ष समय में बलवान् हों तो वे ग्रह वर्ष के आदि मूं अशुभ फल देते है । यदि जन्म तथा वर्षकाल में तुल्य बल हो तो समान फल देते हैं ॥ ३३ ॥

अथ मुथहेशफलकथनम् —

षष्ठेऽष्टमेऽन्त्ये भुवि वेन्थिहेशोऽस्तगोऽथ वक्रोऽशुभदृष्टयुक्तः ।
क्रूराच्चतुर्थास्तगतश्च भव्यो न स्याद्रुजं यच्छति वित्तनाशम् ॥ ३४ ॥

कुन्तला — यदि मुथहेशः षष्टाष्टम द्वादश चतुर्थे च भवेदथवास्तगः वक्रगः, पापैयुतदृष्टो वा पापकान्तराशितः चतुर्थ सप्तमान्यगतस्तदा रोगं वित्तनाशं च यच्छति ॥ ३४ ॥

ज्योति — जिसके वर्ष प्रवेश के समय मुन्था की लग्न का स्वामी छठे, आठवें, बारहवें तथा चौथे इन अनिष्ट स्थानों में स्थित हो, वह अस्त हो गया हो या वक्री हो तथा पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो अथवा क्रूरग्रहों के स्थान से चौथे या सातवें स्थान में स्थित हो तो शुभ फलदायक नहीं होता, बल्कि रोग न देकर धन की हानि करता है ॥ ३४ ॥

अथ मुथहेशफलमेवाह —

यद्यष्टमेशेन युतोऽथ दृष्टः क्षुताख्यदृष्ट्या न शुभस्तदाऽपि ।
योगद्वये स्यान्निधनं यदैकयोगस्तदा मृत्युसमत्वमाहुः ॥ ३५ ॥

कुन्तला — यदि मुथहेशोऽष्टमेशेन वर्षलग्नादष्टमस्थानेशग्रहेण युतो वा १, ४, ७, १० दृष्ट्या दृष्टः तदा शुभो नैव भवति । योगद्वये मरणं स्यात् । यदा एकयोगोऽर्याष्टमेशेन क्षुतादृष्ट्या (१, ४, ७, १०) दृष्टस्तदा मृत्युसमत्वं स्यात् । तत्र योगद्वयस्य युगपत्यसम्भवतु तदैव यदा एकस्मिन्नेव राशौ मुथहेशाष्टमेशौ भवतस्तदानीमेव क्षुतदृष्टिश्चेति ॥ ३५ ॥

ज्योति — यदि वर्षलग्न से आठवें स्थान का स्वामी शुभग्रह तथा पापग्रह से युक्त अथवा मुन्थहा का स्वामी हो या क्षुत् दृष्टि अर्थात् चौथी, सातवीं; पहली तथा दसवीं दृष्टि से देखा जाता हो तो शुभ फल देता है । जिसके पूर्वोक्त 'षष्ठेष्टमेऽन्त्ये' यह दोनों योग हों तो उस प्राणी का मरण होता है । कदाचित् क ही योग हो तो केवल मृत्यु के समान कष्ट होता है ॥ ३५ ॥

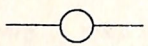
मुथहा तत्पतिर्वापि जन्मनीक्षितयुक् शुभैः ।
वर्षारम्भे शुभं दत्तेऽब्दे चेदन्तेऽन्यथाऽशुभम् ॥ ३६ ॥

कुन्तला — यदि मुथहा, मुथहेशोवा जन्मकुण्डलयां यत्र भवेत् तद्राशावेव जन्मकुण्डल्यां मुथहा लेख्या तदा मुथहा मुथहेशौ यदिशुभैरीक्षितयुतौ भवतस्तदा वर्षारम्भे शुभं दत्ते एवं वर्षप्रवेशे मुथहा मुथहेशौ शुभैर्हष्टयुतौ भवतो जन्मनि तथा न तदाऽन्ते शुभं भवति । अन्यथा उभयत्र शुभयोगदृष्ट्याभावे सकलं वर्षमशुभं भवति ॥ ३६ ॥

ज्योति — जिसके वर्षप्रवेश के समय मुन्था तथा उसका स्वामी शुभग्रहों से युक्त व दृष्ट हो तो वह वर्ष के पूर्व भाग में शुभफल देता है । और इससे विपरीत हो अर्थात् पापग्रहों से युक्त दृष्ट हो तो वर्ष के अन्त में अशुभ फल देता है ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठज्योतिर्वित्कृत वर्षतन्त्रे मुथहा फलाध्यायः संस्कृत 'कुन्तला' — 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ॥

॥ इति मुथहा फलाध्यायः ॥



अथारिष्टाध्यायः

तत्र लग्नेशाद्यरिष्टकथनम् —

लग्नेशेऽष्टमगेऽष्टेशे तनुस्थे वा कुजेक्षिते ।
ज्ञजीवयोरस्तगयोः शस्त्रघातो विपन्मृतिः ।। १ ।।

कुन्तला — लग्नेशे अष्टमे, अष्टमेशे लग्ने कुजेक्षितः, अथवा ज्ञजीवयोः अस्तंगते सति शस्त्रधातः, विपत्तिः, मरणं च भवतीति बोध्यम् ।। १ ।।

ज्योति — जिस मनुष्य के वर्षप्रवेश के समय लग्न का स्वामी आठवें स्थान में हो अथवा आठवें घर का स्वामी लग्न में हो और मङ्गल की दृष्टि भी पड़ रही हो तथा बुध और बृहस्पति ये दोनों अस्त हों अर्थात् सूर्य के साथ अस्तांश को प्राप्त हों तो वह किसी हथियार के लगने तथा अनेक विपत्तियों से मृत्यु को प्राप्त होता है ।। १ ।।

अब्दलग्नेशरन्ध्रेशौ व्ययाष्टहिबुकोपगौ ।
मुथहासंयुतौ मृत्युप्रदौ तद्धातुकोपतः ।। २ ।।

कुन्तला — अब्दलग्नेशरन्ध्रेशौ = वर्षलग्नेशाष्टमेशौ; व्ययाष्टहिबुकोपगौ = १२। ८। ४ स्थानगतौ, मुथहायुतौ तदा तत्तदग्रहधातुदोषात् मृत्युप्रदौ भवतः ।। २ ।।

ज्योति — वर्षलग्न और आठवें घर का स्वामी, ये दोनों बारहवें, आठवें तथा चौथे इनमें से किसी स्थान में स्थित हों और मुन्था से युक्त हों तो उस प्राणी को वे ग्रह वात–पित्तादि से उत्पन्न विकार तथा मृत्यु देने वाले होते हैं । यहाँ लग्नेश अष्टमेश और मुन्थहा इन तीनों को मिलाकर एक ही योग होता है । इन तीनों के अलग होने से योग नहीं हो सकता । जब पृथक् पृथक् योग हो तो क्लेश ही होता है ।। २ ।।

जन्मलग्नाधिपोऽवीर्यो मृतीशो लग्नगो यदा ।
सूर्यदृष्टो मृतिं दत्ते कुष्ठं कण्डूं तथाऽऽपदः ।। ३।।

कुन्तला — यदा जनमलग्नाधिपः वलहीनः, मृतीशः = अब्दमेशः, लग्नस्थः तथा सूर्यदृष्टस्तदा मरणं, कुष्ठरोगं, कण्डूं तथा विपर्दश्च ददाति ।। ३ ।।

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश के समय जन्मलग्न का स्वामी निर्बल हो और वर्षलग्न से अष्टम स्थान का स्वामी वर्षलग्न से सातवें घर में विद्यमान होकर सूर्य से दृष्ट हो तो मरण, कुष्ठ, खुजली तथा अनेक कष्ट होते हैं ।। ३ ।।

अस्तगौ मुथहालग्ननाथौ मन्देक्षितौ यदा ।
सर्वनाशो मृतिः कष्टमाधिव्याधिभयंरुजाः ।। ४ ।।

कुन्तला — यदा मुथहालग्ननाथौ अस्तगौ मन्देक्षितौ अर्थात् शनिना क्षुतदृष्ट्या दृष्टौ तदा सर्वनाशः मरणं कष्टं, आधिव्याधिभयं रोगाश्च भवन्ति ॥ ४ ॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश में मुन्थहा लग्न स्वामी और वर्षलग्न का स्वामी, ये दोनों सूर्य के सान्निध्यवश अस्त को प्राप्त हों और शनैचर से देखे जाते हों तो उस प्राणी के सब अर्थ यानी द्रव्य, स्त्री, पुत्र आदि का नाश, मृत्यु, कष्ट व आधि (मानसिक दुःख) व्याधि (शरीरपीड़ा) भय तथा रोग आदि होते हैं ॥ ४ ॥

क्रूरमूसरिफोऽब्देशी जन्मेशः कूरितिः शुभैः ।
कम्बूलेऽपि विपन्मृत्युरित्थमन्याधिकारतः ॥ ५ ॥

कुन्तला — वर्षेशः क्रूरमूसरिफः अर्थात् पापग्रहेण कृतेसराफयोगः, जन्मलग्नेशः पापयुतदृष्टः तत्र शुभग्रहैः कम्बूले जातेऽपि विपत्, मृत्युश्च भवति । अन्यग्रहस्य अधिकार—तारतभ्यात्फलस्य न्यूनाधिकत्वं चिन्त्यम् ॥ ५ ॥

ज्योति — जिसके वर्षप्रवेश के समय वर्षेश पापग्रह के साथ स्थित होकर ईसराफ योग करे और जन्मलग्न का स्वामी अस्तंगत ग्रहों से क्रूर भाव को प्राप्त हों और वर्षस्वामी व लग्नस्वामी इनमें से किसी एक के साथ कम्बूल योग हो और शुभ ग्रहों तथा जन्मलग्नेश और वर्षेश या इनमें से किसी के भी साथ चन्द्रमा मुथशिल योग करता हो तो नाना प्रकार के दुःख भोगकर उस प्राणी की मृत्यु होती या विविध विपत्तियाँ आती हैं । ऐसे ही पञ्चाधिकारियों का भी फल समझें ॥ ५ ॥

क्रूराः वीर्याधिकाः सौम्या निर्बला रिपुरन्ध्रगाः ।
तदाऽऽधिव्याधिभीतिः स्यात्कलिर्हानिस्तथा विपत् ॥ ६ ॥

कुन्तला — क्रूरा ग्रहाः वीर्याधिकाः शुभग्रहोः निर्बलाः रिपुरन्ध्रगाः (६,८,गाः) तदाऽऽधिकव्याधिभीतिः, कलिः = कलहः, हानिः तथा विपत् स्यात् ॥ ६ ॥

ज्योति — यदि क्रूरग्रह अधिक बली हों और शुभगृह निर्बल हों या छठें तथा आठवें स्थान में स्थित हों तो आधि, व्याधि, कलह, हानि तथा विपत्ति आती है ॥ ६ ॥

नीचे शुक्रो गुरुः शत्रुभागे सौख्यलवोऽपि न ।
लग्नेशेऽष्टमगेऽष्टेशे तनौ वा मृतिमादिशेत् ॥ ७ ॥

कुन्तला — शुक्रो नीचे अर्थात् कन्याराशौः गुरुः शत्रुभागे स्थितस्तदा सुखलेशोऽपिम भवति । वर्ष लग्नेशे अष्टमगे, अष्टमेशे लग्ने सति मरणमादिशेत् ॥ ७ ॥

ज्योति — यदि शुक्र नीच राशि में बैठा हो और बृहस्पति शत्रु के नवांश हो तो तनिक भी सुख न मिले । यदि वर्षलग्न का स्वामी आठवें स्थान में हो तथा आठवें स्थान का स्वामी वर्षलग्न में हो तो उस प्राणी की मृत्यु हो जाती है ॥ ७ ॥

निर्बलौ धर्मवित्तेशौ दुष्टखेटास्तनौ स्थिताः ।
लक्ष्मीश्चिरार्जिता नश्येद्यदि शक्रोपरक्षिता ॥ ८॥

कुन्तला — धर्मवित्तेशौ = नवमेश द्वितीयेशौ निर्बले = हीनबले, तथा च पापग्रहाः लग्ने स्थिताः भवेयुस्तदा शक्रोपरक्षिता लक्ष्मीः नश्येत् = नश्यति अर्थात् धनाढ्योऽपि दरिद्रो भवतीति ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि धर्मेश और धनेश के स्थान का स्वामी निर्बल हो और लग्न में पापग्रह हों तो उस प्राणी की बहुत काल से संचित की हुई लक्ष्मी—यदि इन्द्र भी रक्षा करे तो भी नहीं बच सकती ॥ ८ ॥

नीचे चन्द्रेऽस्तगाः सौम्या वियोगः स्वजनः सह ।
शरीरपीडा मृत्युर्वा साधिव्याधिभयं द्रुतम् ॥ ९॥

कुन्तला — चन्द्रनीचे अर्थात् वृश्चिक राशौ गते सति शुभग्रहाः अस्तगाः तदा स्वजनैः वियोगः स्यात् । शरीरपीडा, साधिव्याधिभयं मरणं च शीघ्रं भवेत् ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि चन्द्रमा नीच अर्थात् वृश्चिक राशि में हो और बुध, गुरु तथा शुक्र ये शुभ ग्रह अस्त हों तो वह प्राणी स्वजनों से पृथक होता हुआ पीड़ा युक्त हो तथा विविध आधि व्याधि से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

अब्दलग्नं जन्मलग्नराशिभ्यामष्टमं यदा ।
कष्टं महाव्याधिभयं मृत्युः पापयुतेक्षणात् ॥ १०॥

कुन्तला — यदा जन्म लग्नराशिभ्यामष्टमं वर्षलग्नं स्यात्तदा कष्टं महाव्याधिभयं ज्ञेयम् । तत्र पापयुतेक्षणात् मृत्युर्भवति ॥ १० ॥

ज्योति — यदि जन्मलग्न या जन्मराशि से आठवाँ वर्षलग्न हो तो कष्ट तथा महाव्याधियों का भय होता है । यदि वह वर्षलग्न पापग्रहों से भी युक्त हो या पापग्रह देखते हों तो मृत्यु होती है ॥ १० ॥

जन्मन्यष्टमगः पापो वर्षलग्ने रुगाधिदः ।
चन्द्राब्दलग्नपौ नष्टवलौ चेत्स्यात्तदा मृतिः ॥ ११॥

कुन्तला — जन्मकुण्डल्यां पापग्रहो अष्टमस्थो भवेत्तदा रोगमनो व्यथा प्रदो भवति । चन्द्राब्द लग्नपतौ यदि नष्टबलौचेत् तदा मरणं स्यात् ॥ ११ ॥

ज्योति — यदि जन्मलग्न से आठवाँ पापग्रह हो और वही यदि वर्षलग्न में बैठा हो तो रोग तथा आधि मानसिक कष्ट देता है । यदि चन्द्रमा तथा वर्षलग्नेश निर्बल हो अथवा चन्द्रराशि और वर्षलग्न के स्वामी ये दोनों पंचवर्गी बल से नष्टबली हों तो उस प्राणी की मृत्यु हो जाती है ॥ ११॥

जन्माब्दलग्नपौ पापयुक्तौ पतितभस्थितौ ।
रोगाधिदौ मृत्युकरावस्तगौ नेक्षितौ शुभैः ॥ १२ ॥

कुन्तला — जन्माब्दलग्नपौ पापयुतौ पतितमस्थितौ अर्थात् ४, ६, ८, १२ गतौतदा रोगाधिदौ भवतः । यदि अस्तगौ शुभैः नेक्षितौ तदा मृत्युकरौ भवतः ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि जन्मलग्नेश और वर्षलग्नेश ये दोनों पापग्रहों के साथ वर्षलग्न से चौथे छठें, आठवें तथा बारहवें इनमें से किसी स्थान में हो तो उस प्राणी को रोग और मानसी व्याधि देते हैं । यदि वे अस्त हों और उनको शुभग्रह भी न देखें तों उस मनुष्य के लिए मृत्यु कारक होते हैं ॥ १२ ॥

व्ययाम्बुनिधनारिस्था जन्मेशाब्दपमुन्थहाः ।
एकर्क्षगास्तदा मृत्युः पापक्षुतदृशा ध्रुवम् ॥ १३॥

कुन्तला — एकर्क्षगाः जन्मेशाब्दपमुन्थहा द्वादश चतुर्थाष्टम षष्ठस्थान न्यतमस्थिताः तदा मरणं स्यात् । तत्र पापक्षुतदृष्ट्या अर्थात् पापग्रहस्य १, ४, ७, १० दृष्ट्या दृष्टास्तदा ध्रुवं मृत्युः स्यात् ॥ १३ ॥

ज्योति — यदि एक–एक राशि में प्राप्त जन्मलग्नेश वर्षलग्नेश और मुथहा ये तीनों वर्षलग्न से बारहवें, चौथे तथा आठवें और छठें इनमें से किसी स्थान में स्थित हों तो उस प्राणी की मृत्यु होती है । यदि जन्मलग्नेश, वर्षलग्नेश और मुंथहा ये तीनों पापग्रहों से क्षुतदृष्टि से देखे जावें तो भी उस प्राणी की मृत्यु होती है ॥ १३ ॥

चन्द्रो व्यये शनियुतः शुभः षष्ठोऽर्थनाशकृत ।
चित्तवैकल्यमशुभेसराफान्न शुभेक्षणात् ॥ १४ ॥

कुन्तला — शनियुत चन्द्रो व्यये स्थितः, शुभग्रहः षष्ठस्थानस्थितस्तदा धनस्य नाशो भवति । अशुभेसराफात् = पापग्रहेण ईसराफ योगस्तदा चित्तवैकल्यं भवति । शुभेक्षणात् उक्तं योगो न भवतीति बोध्यम् ॥ १४ ॥

ज्योति — यदि शनैश्चर से युक्त चन्द्रमा बारहवें स्थान में स्थित हो और छठें स्थान में शुभग्रह हो तो उस मनुष्य के धन का नाश होता है । यदि पापग्रहों के साथ योग कारक ग्रहों का ईसराफ योग हो तो उस प्राणी के चित्त को व्याकुलता होती है । यदि उस पर शुभग्रहों की दृष्टि पड़ रही हो तो धन का नाश और चित्त की विकलता दोनों नहीं होते हैं ॥ १४ ॥

चन्द्रोऽर्कमण्डलगतो रिपुरिःफाष्टबन्धुगः ।
त्रिदोषतस्तस्य रुजा विविधेज्यदृशा शुभम् ॥ १५॥

कुन्तला — अस्ताऽतः चन्द्ररिपुरिःफाष्टबन्धुगः अर्थात् ६, ८, १२, स्थानेषु गतस्तदा त्रिदोषादनेकरोगाः भवन्ति । गुरुदृष्ट्या च शुभं वाच्यम् ॥ १५ ॥

ज्योति — यदि चन्द्रमा सूर्य के सन्निध्य से अस्तभाव को प्राप्त होकर वर्षलग्न से छठें, बारहवें, आठवें चौथे इनमें से किसी स्थान में स्थित हो तो उस मनुष्य को बात—पित्त कफ से उत्पन्न अनेक रोग होते हैं । यदि चन्द्रमा को बृहस्पति देखता हो तो उस मनुष्य के लिए शुभ फल होता है ॥ १५ ॥

हद्दाहायनलग्नेशौ सप्ताष्टान्त्ये खलान्वितौ ।
स्वदशायां निधनदौ शुभदृष्ट्य शुभं वदेत् ॥ १६॥

कुन्तला — खलान्वितौ हद्दाहायनलग्नेशौ सप्ताष्टमद्वादश स्थाने स्थितौ तदा स्वदशायां मृत्युप्रदौ भवतः । तत्र शुभ दृष्ट्या शुभं भवेत् । तौ निधनदौ न भवतः ॥ १६ ॥

ज्योति — यदि लग्न में हद्देश और वर्षलग्नेश ये दोनों सातवें, आठवें या बारहवें इनमें से किसी स्थान में पापग्रहों से युक्त होकर स्थित हों तो अपनी दशा में अथवा अन्तर्दशा में उस मनुष्य को मार डालते हैं । यदि उनको शुभग्रह मित्र दृष्टि से देखते हों तो मरण नहीं होता ॥ १६ ॥

अब्दलग्नादृज्वनृजू व्ययार्थस्थौ रुजा तदा ।
एवं वर्षाब्दलग्नेशजन्मेशैरपि बन्धनम् ॥ १७॥

कुन्तला — अब्दलग्नात् ऋज्वनृजू = मार्गि वक्रौ ग्रहौ द्वादशद्वितीयगतौ अर्थात् द्वादशै मार्गी द्वितीये च वक्रीस्तदा रोगः स्यात् । एवमेव वर्षेशवर्षलग्नेश जन्मलग्नेशानां योगत्वात् बन्धनं भवति ॥ १७ ॥

ज्योति — यदि मार्गी ग्रह और वक्रीग्रह ये दोनों वर्षलग्न से क्रमशः बारहवें और दूसरे स्थान में हों तो उस प्राणी के शरीर में विविध रोग होते हैं । यदि वर्षेश, वर्षलग्नेश तथा जन्मलग्नेश ये बारहवें और दूसरे स्थान में विद्यमान हों तो उस प्राणी को कारागार की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

नीचे त्रिराशिपे पापदृष्टे कार्यं विनश्यति ।
इन्थिहेशेऽब्दपे वाऽरिमेऽस्तं याते रुजा विपत् ॥ १८ ॥

कुन्तला — त्रिराशिपे नीचराशौ स्थिते पाप दृष्टे, तदा कार्यं विनश्यति । इन्थिहेशे = मुथहेशे वर्षेशे शत्रुराशौ स्थिते अस्तं याते च रोग विपत्क्लेशाश्च भवन्ति ॥ १८ ॥

ज्योति — यदि वर्षकाल में त्रिराशिपति नीच राशि में स्थित होता हुआ पापग्रहों से देखा जाता हो तो प्राणी के कार्य नष्ट हो जाते हैं । मुन्थहास्वामी और वर्षस्वामी यदि शत्रु की राशि में अस्त को प्राप्त हों तो उस प्राणी को नानाप्रकार के रोग और अनेक विपत्तियाँ घेर लेती हैं ॥ १८ ॥

अथ चन्द्रारिष्टं सापवादकथनम् —

चन्द्रो रि:फषडष्टभूद्युनगतो दृष्टोऽशुभैर्नो शुभैः
सोऽरिष्टं विदधाति मृत्युमथवा भौमेक्षणादग्निभीः ।
शस्त्राद्वा शनिराहुकेतुभिररेर्भीतिं रुजं वायुजां
दारिद्र्यं रविण शुभं शुभदृशेज्यालोकनादादिशेत् ॥ १९॥

कुन्तला — चन्द्रः रि:फषड्ष्टभूद्युनगतः = द्वादशषष्ठाष्टमचतुर्थ सप्तम स्थान स्थितः पापैः दृष्टः शुभैर्ना दृष्टस्तदा सः चन्द्रः अरिष्टं मृत्युं विदधाति । तत्र कुजेक्षणात् वह्निभयं, शनिराहुकेतुभिर्दर्शनात् शस्त्रभयं, शत्रुभयं वायुविकारात् रोगं करोति । रविणादृष्टस्तदा चन्द्रः दारिद्र्यं करोति । गुरुदृष्ट्य च शुभदो वाच्यः ॥ १९ ॥

ज्योति — यदि बारहवें, छठें, आठवें, पहले तथा सातवें, इनमें से किसी स्थान में चन्द्रमा हो और उसको पापग्रह देखते हों, तो वह चन्द्रमा उस प्राणी को अशुभ फल अथवा मृत्यु देता है । यदि चन्द्रमा मङ्गल से देखा जाता हो तो उस प्राणी को अग्नि का भय होता अथवा किसी हथियार से भय रहता है । शनि, राहु और केतु इनसे देखा जाता हुआ चन्द्रमा शत्रुभय देने वाला और केवल सूर्य से देखा जाता हुआ चन्द्रमा वातजनित रोग तथा दरिद्रत्व प्रदान करता है । यदि केवल बृहस्पति चन्द्रमा को देखता हो तो शुभफल होता है ॥ १९॥

अथ मुथहाकृतारिष्टकथनम् —

क्रूरान्वितेक्षितयुता शनिनेन्थिहाधिव्याधिप्रदा जनुषिरि:फसुखारिरन्ध्रे ।
द्यूने च वर्षतनुनैधनगा मृतिं सा दत्ते खलेक्षितयुतेत्यपि चिन्त्यमार्यैः ॥ २०॥

कुन्तला — पापग्रहयुतदृष्टा मुथहा शनिनाऽपि युतदृष्टा तदा अधिव्याधिप्रदास्यात् । वर्षकुण्डल्यां यत्र जन्मलग्नं तस्मात् राशितो द्वादश चतुर्थ षष्टाष्टम स्थाने स्थिता सप्तमे वर्षतनु–नैधनगा स्यात्तथा पापग्रहदृष्टयुक्ता तदा सा मृत्युं ददाति ॥ २० ॥

ज्योति — यदि दो पापग्रहों से युक्त मुन्था को शनैश्चर देखता हो अथवा युक्त हो तो उस प्राणी को मानसी व्याधि और रोग होता है । यदि मुंथा जन्मसमय में बारहवें, चौथे, छठें और सातवें इनमें से किसी स्थान में स्थित हो अथवा वर्षलग्न से आठवें स्थान में विराजमान हो और उनको पापग्रह देखते हों तो उस प्राणी की मृत्यु होती है । यह पण्डितों को विचारना चाहिये ॥ २० ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठयामरिष्टाध्यायः संस्कृत 'कुन्तला' – 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ॥

॥ इति नीलकण्ठयामरिष्टाध्यायः समाप्तः ॥

अथारिष्टभंगाध्यायः

लग्नाधिपो बलयुतः शुभेक्षितयुतोऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणगोऽरिष्टं नाशयेत्सुखवित्तदः ॥ १ ॥

कुन्तला — बलयुतः, लग्नाधिपः = लग्नेशः, केन्द्रत्रिकोणगः = १ । ४ । ७ । १० । ५ । ९ एतदन्यतमस्थाने स्थितः । शुभेक्षितयुतः, वा भवेत्तदाऽरिष्टं = अनिष्टं, नाशयेत्, तथा सुखवित्ततदः = आनन्दोदयपूर्वकधनलाभप्रदो भवतीति ॥ १ ॥

ज्योति — यदि लग्न का स्वामी पञ्चवर्गी के बलवान् (उत्तम बली) हो और शुभग्रह देखते या शुभग्रह युक्त हों और केन्द्र (१ । ४ । १०) स्थान तथा त्रिकोण (९ । ५ ।) स्थान में स्थित हो तो वह सम्पूर्ण अरिष्टों को नष्ट करके सुख और धन देता है ॥ १ ॥

गुरुः केन्द्रे त्रिकोणे वा पापादृष्टः शुभेक्षितः ।
लग्नचन्द्रेन्थिहारिष्ट विनाशार्थसुखं दिशेत् ॥ २ ॥

कुन्तला — गुरुर्बृहस्पतिः, केन्द्रे १ । ४ । ७ । १० वा त्रिकोणे ५ । ९ स्थितः, पापादृष्टः, शुभेक्षितः = शुभग्रहदृष्टः, तदा लग्नचन्द्रेन्थिहारिष्टविनाशार्थसुखं = वर्षलग्नचन्द्रमुथहा—जनिताशुभफलध्वं सपूर्वकधनलाभसुखं, दिशेत् = वक्तव्यमिति ॥ २ ॥

ज्योति — यदि बृहस्पति केन्द्र तथा त्रिकोण में हो उसे पापग्रह न देखें, बल्कि शुभग्रह देखते हों तो वह उस प्राणी के लग्न, चन्द्रमा और मुन्थहा इनसे उत्पन्न अरिष्ट नष्ट करके धन व सुख प्रदान करता है ॥ २ ॥

सुखं स्वामियुतं सब्द्रिर्दृष्टं सौख्ययशोऽर्थदम् ।
लग्ने तृतीयेऽथ गुरुर्जन्मेट् सौख्यार्थदः सुखे ॥ ३ ॥

कुन्तला — सुखं = चतुर्थभावं, स्वामियुतं = लग्नेशयुतं, सब्द्रिः = शुभग्रहैः, दृष्टं = वीक्षितं, तदा सौख्ययशोऽर्थदं भवेत् अथवा गुरुर्लग्नेऽथवा तृतीये स्यात्, जन्मेट् = जन्मलग्नेशो भूत्वा सुखे = चतुर्थस्थाने, भवेत्तदाऽपि सौख्ययशोऽर्थदो भवति ॥ ३ ॥

ज्योति — चतुर्थ स्थान यदि अपने स्वामी से दृष्ट या युक्त हो तो वह उस प्राणी को सुख, यश और धन देता है । यदि जन्म लग्नेश होकर बृहस्पति लग्न तथा तीसरे या चौथे स्थान में हो तो वह भी सुख और धन देता है ॥ ३ ॥

लग्ने द्युनेशस्तनुगः सुरेज्यः क्रूरैरदृष्टः शुभमित्रदृष्टः ।
रिष्टं निहंत्यर्थयशःसुखाप्ति दिशेत्स्वपाके नृपतिप्रसादम् ॥ ४ ॥

कुन्तला — द्युनेशः = वर्षलग्नात्सप्तमेशः, लग्ने स्थितः, सुरेज्यः = गुरुः, तनुगः = वर्षलग्नातः, क्रूरैः = पापैः, अदृष्टः = न दृष्टः, शुभमित्रदृष्टः, तदा रिष्टमशुभफलं निहन्ति =

नाशयति । अर्थयशः सुखाप्ति दिशेत्तथा स्वपाके = निजदशायां, नृपतिप्रसादं = राजप्रसन्नातां, दिशेत् = कथयेत् ।। ४ ।।

ज्योति —— यदि सातवें स्थान का स्वामी और बृहस्पति लग्न में हो परन्तु उन दोनों (सप्तमेश तथा बृहस्पति) को पापग्रह न देखते हों किन्तु उसे शुभग्रह वा मित्रग्रह देखते हों तो वे उस प्राणी के अरिष्टों को दूर कर देते और अपनी दशा में राजा को प्रसन्नता से धन, यश तथा सुख प्राप्त करते हैं ।। ४ ।।

बलान्विता धर्मधनाधिनाथा क्रूरैरदृष्टो तनुगौ यदाऽऽस्ताम् ।
राज्यं गजाश्वाम्बररत्नपूर्णं रिष्टस्य नाशोऽप्यतुलं यशश्च ।। ५ ।।

कुन्तला —— नवमेशद्वितीयेशौ, बलान्वितौ, क्रूरैः = पापैः, अदृष्टौ = अनालोकितौ, तनुगौ = लग्नगतौ, च यदा स्याताम्, तदा राज्यं, गजाश्वाम्बररत्नपूर्ण, तथा रिष्टस्य = अशुभफलस्य नाशः, अतुलं = अधिकं, यशश्च भवति ।। ५ ।।

ज्योति —— यदि नवमेश और धनेश ये दोनों पञ्चवर्गी बल से बलिष्ठ होकर पापग्रहों की दृष्टि से हीन लग्न में हों तो उस प्राणी का अरिष्ट नष्ट हो जाता है । वह प्राणी हाथी, घोड़ा, कपड़े व रत्नों से परिपूर्ण राज्य और अनुपम यश प्राप्त करता है ।। ५ ।।

त्रिषष्ठलाभोपगतैरसौम्यैः केन्द्रत्रिकोणोपगतैश्च सौम्यैः ।
रत्नाम्बरस्वर्णयशः सुखाप्तिर्नाशोऽप्यरिष्टस्य तनोश्च पुष्टिः ।। ६ ।।

कुन्तला —— असौम्यैः पापग्रहैः, त्रिषष्ठलाभोपगतैः = तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैः, सौम्यैः = शुभग्रहैः केन्द्रत्रिकोणोपगतैः = १।४।७।१०।५।९ एतेषु स्थितैः, तदा रत्नाम्बरस्वर्ण यशः सुखाप्तिः, तथा अरिष्टस्य = अशुभफलस्य, नाशः, तनोर्देहस्य पुष्टिः, भवति ।। ६ ।।

ज्योति —— यदि तीसरे, छठें, ग्यारहवें इनमें से किसी स्थान में पापग्रह हों और केन्द्र (१।४।७।१०) तथा त्रिकोण (९।५) इनमें से किसी भी स्थान में शुभग्रह हों तो वह प्राणी रत्न, कपड़े, सोना और यश प्राप्त करता है । उसके अरिष्ट नष्ट हो जाते और उसका शरीर हृष्ट–पुष्ट रहता है ।। ६ ।।

यदा सवीर्या मुथहाधिनाथो लग्नाधिपो जन्मविलग्नपो वा ।
केन्द्रत्रिकोणायधनस्थितास्ते सुखार्थहेमाम्बरलाभदाः स्युः ।। ७ ।।

कुन्तला —— यदा मुथहाधिनाथोः = मुथहेशः, सवीर्यः = सबलः, लग्नाधिपः = वर्षलग्नेशः, वा जन्मविलग्नपः = जन्मलग्नेशः, केन्द्रत्रिकोणायधनस्थिताः = १।४।७।१०।५।९।११।२ एषु गता भवेयुस्तदा ते सुखार्थ हेमाम्बरलाभदाः स्युः ।। ७ ।।

ज्योति —— यदि मुन्थहा का स्वामी तथा वर्ष और जन्मलग्न का स्वामी ये तीनों पञ्चवर्गों के बल से युक्त होकर केन्द्र, त्रिकोण, ग्यारहवें और दूसरे इन स्थानों में से किसी भी स्थान में स्थित हों तो, वह प्राणी सुख, धन, सुवर्ण और वस्त्र पाता है ।। ७ ।।

तुंगे शनिर्वा भृगुजो गुरुर्वा शुभेत्थशालाद्यवनाद्धनाप्तिम् ।
बली कुजो वित्तगतो यशोऽर्थतेजांस्यकस्माच्च सुखानि दद्यात् ॥ ८ ॥

कुन्तला — शनिस्तुंगे = तुलायमित्यर्थ, वा भृगुजः = शुक्रः, तुंगे = उच्चे—मीने, वा गुरुः = बृहस्पतिः, तुंगे = कर्के भवेत् तत्र शुभेत्थाशालात्, यवनाद्धनाप्तिं दद्यात् । वा बली कुजो मङ्गलः, वित्तगतः = द्वितीयस्थानस्थितः, तदा यशोऽर्थतेजांसि दद्यात्, तथा अकस्मात् = दैवात्, सुखानि दद्यात् ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि शनि, शुक्र और गुरु से तीनों ग्रह अपने अपने उच्च स्थानों में हों और शुभ ग्रहों के साथ इत्थशाल योग भी करते रहें तो उसे यवनों से धन प्राप्त होता है । यदि उक्त तीनों ग्रह शुभ ग्रहों के साथ इत्थशाल करते हुए अपने अपने उच्च स्थानों में हो तो बहुत धन मिले । यदि बलवान् मङ्गल दूसरे स्थान में हो तो उस प्राणी को यश, कान्ति और अनायास सुख मिलता है ॥ ८ ॥

सूर्येज्यशुक्रा मिथ इत्थशालं कुर्युस्तदा राज्ययशःसुखार्थीः ।
सूर्यः कुजो वोपचये ददाति भद्रं यशो मङ्गलमिथिहायाः ॥ ९॥

कुन्तला — यदि सूर्येज्यशुक्रा मिथः परस्परमित्थशालं कुर्युस्तदा राज्ययशः सुखार्थाः स्युः । यदि सूर्यः = रविः, वा कुजः = मङ्गलः, इन्थिहायाः मुथहायाः सकाशात् उपचये = त्रिषडैकादशदशस्थाने भवेत्तदा, भद्रं = कुशलं, यशः, मङ्गलम् = उपनयनविवाहादि, ददाति ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि सूर्य, गुरु और शुक्र तीनों ग्रह परस्पर इत्थशाल योग करें तो उस प्राणी को राज्य, यश, सुख और धन की प्राप्ति होती है । जिस प्राणी के जिस किसी भी स्थान में मुन्था स्थित हो उस स्थान से ३। ६। १०। ११ इन उपचयस्थानों में से किसी भी स्थान में सूर्य या मङ्गल स्थित हो तो उसको कल्याण, यश और मङ्गल का अवसर प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

शुक्रज्ञचन्द्रा हद्दे स्वे पापास्त्र्यायगता यदि ।
स्वबाहुबलतो हेमसुखकीर्तीर्नरोऽश्नुते ॥ १० ॥

कुन्तला — यदि शुक्रज्ञचन्द्राः ग्रहाः स्वे = स्वकीये, हद्दे स्थिताः, पापाः पापग्रहाः, त्र्यायगताः = तृतीयैकादशगताः स्युस्तदा नरः = मानवः, स्वबाहुबलतः = स्वपराक्रमतः, हेम सुखकीर्त्तीः, अश्नुते = भुनक्ति ॥ १० ॥

ज्योति — यदि शुक्र, बुध, चन्द्र ये तीनों अपनी हद्दा में हों और सूर्य, मङ्गल, शनैश्चर ये तीनों ग्रह तीसरे अथवा ग्यारहवें स्थान में हों तो वह मनुष्य अपने पराक्रम से सुवर्ण, सुख और कीर्ति का भोग करता हैं ॥ १० ॥

बुधशुक्रौ मूसरीफौ गुरुर्विक्रमभावगः ।
तदा राजयशोहेममुक्ताविद्रुमलब्धयः ॥ ११ ॥

कुन्तला — यदि बुधशुक्रौ मूसरिफौ = मूसरीफयोगकरौ, गुरुः, विक्रमभावगः = तृतीयस्थावस्थितः, तदा राजयशोहेममुक्ताविद्रुमलब्धयः स्युः ॥ ११ ॥

ज्योति — यदि बुध और शुक्र ये दोनों मूसरीफ योग करते हैं और बृहस्पति वर्षलग्न ये तीसरे स्थान में हो तो वह प्राणी राज्य, यश, सुवर्ण, मोती और मूँगा आदि वस्तुओं को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

भौमो मित्रगृहेऽब्देशः कम्बूली स्वगृहादिगैः ।
गजाश्वहेमाम्बरभूलाभं धत्ते सुखादिकम् ॥ १२ ॥

कुन्तला — अब्देशो भूत्वा भौमः कुजो मित्रगृहे = मित्रग्रहराशौ भवेत्, तथा स्वगृहादिगैः = निजराशिस्थैः ग्रहैः, कम्बूली = कम्बूलयोगकरो भवेत् तदा गजाश्वहेमाम्बरभूलाभं, सुखादिकं च धत्ते ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि मङ्गल वर्षेश होकर अपने मित्र के घर में हो और अपने घर व उच्चादि स्थानों में स्थित ग्रहों के साथ कंबूलयोग करता हो तो उस प्राणी को हाथी, घोड़ा, सोना, कपड़े, पृथ्वी और अधिक से अधिक सुख प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

इत्थं जन्मनि वर्षे च योगकर्तुर्बलाबलम् ।
विमृश्य कथयेद्राजयोगं तद्भंगमेव च ॥ १३ ॥

कुन्तला — अनेन प्रकारेण जन्मनि = जन्मकाले, वर्षे = वर्षकाले, च योगकर्त्तुः = योगकारक ग्रहस्य, बलाबलं, विमृश्य = विचार्य, राजयोगं, वा तद्भंग च कथयेत् ॥ १३ ॥

ज्योति — इसी तरह जन्मकाल और वर्षकाल में राजयोग करने वाले ग्रह के बलाबल का विचार करके राजयोग वा राजभंग योग को विचार कर कहे ॥ १३ ॥

अथ राजयोगभंगकथनम् —

अब्देन्थिहेशादिखगाः खलैश्चेद्युतेक्षिता अस्तगनीचगा वा ।
सौम्या बलीना नृपयोगभंगं तदा वदेद्वित्तसुखक्षयांश्च ॥ १४ ॥

कुन्तला — वर्षेशमुथहेशादिग्रहाः, आदिपदेन जन्मलग्नवर्षलग्न स्वामी च एते यदि खलैः = पापैः, युतेक्षिताः वा अस्तगनीचगा भवेयुः । अथवा सौम्याः = शुभग्रहाः, बलोनाः = हीनबलाः पञ्चाल्पबलाः, तदा नृपयोगभंगं = राजयोगनाशं, वित्तसुखक्षयं = धनसुखनाशं, च वदेत् = कथयेत् ॥ १४ ॥

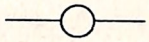
ज्योति — यदि वर्षस्वामी, मुन्थास्वामी और वर्षलग्नस्वामी ये पापग्रहों से युक्त वा दृष्ट हों और शुभ ग्रह हीन बली हों तो राजभंग योग कहे । पूर्वोक्त वर्षेशादि ग्रह सूर्य के सान्निध्यवश अस्तंगत हों अथवा नीच राशि में हों और शुभ ग्रह पंचवर्गी बल से निर्बल हों तो राजभंग योग होता है । इन योगों से धन और सुख का नाश कहना चाहिए ।। १४ ।।

श्रीगर्गान्वयभूषणं गणितविच्चिन्तामणिस्तत्सुतो—
ऽनन्तोऽनन्तमतिर्व्यधात्खलमतध्वस्त्यै जनुःपद्धतिम् ।
तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया—
ऽवोचद्वर्षपमुंथहाफलमथारिष्टादिसद्योगयुक् ।। १५ ।।

श्लोकोऽयं पूर्वोक्तमस्ति ।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां अरिष्टभङ्गांध्यायस्य संस्कृत 'कुन्तला' — 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां अरिष्टभङ्गांध्याय ।।



अथ भावविचाराध्यायः

तत्रादौ तनुभावस्य विचारः —

यो भावः स्वामिसौम्याभ्यां दृष्टो युक्तोऽसमेधते ।
पापदृष्टयुतौ नाशो मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत् ॥ १ ॥

कुन्तला — यः कश्चिदपि भावः स्वामिशुभग्रहाभ्यां दृष्टः, वा युक्तः, भवेत् सोऽयं भावः एधते = वर्धते । यदि पापदृष्टयुतस्तदा नाशस्तद्भावफलक्षयो भवति । मिश्रैः = पापशुभैर्युतदृष्टस्तदा मिश्रफलं = शुभमशुभं च वदेत् ॥ १ ॥

ज्योति — जो भाव अपने स्वामी और शुभग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो वह भाव वृद्धि प्राप्त करता है । जो भाव पापग्रहों से देखा जाता हो वा उनसे युक्त हो तो भाव का नाश होता है । जो भाव मिश्र अर्थात् शुभग्रह तथा पापग्रह दोनों से देखा जाता हो या युक्त हो तो उस भाव का मिश्र अर्थात् शुभाशुभ से मिश्रित फल होता है ॥ १ ॥

लग्नाधिपे वीर्ययुते सुखानि नैरुज्यमर्थागमनं विलासः ।
स्यान्मध्यवीर्येऽल्पसुखार्थलाभः क्लेशाधिकत्वं विपदल्पवीर्ये ॥ २ ॥

कुन्तला — लग्नाधिपे वीर्ययुते = दशाधिकवले, सति सुखानि भवन्ति, नैरुज्यम् = आरोग्यं भवति । अर्थागमनं = धनागमः, विलासः = मनोविनोदः, भवति । लग्नेशे मध्यबले सति अल्पसुखार्थलाभः स्यात्, अल्पवीर्ये लग्नेश सति क्लेशाधिकत्वं = कष्टप्राचुर्यम्, विपच्च भवति ॥ २ ॥

ज्योति — लग्नेश पंचवर्गी बल से बलवान् हो तो शरीर सुख, आरोग्यता, द्रव्य का लाभ और आनन्द देता है । यदि लग्नेश मध्यम बली हो तो कम सुख और कम धन मिले और यदि अल्प बली हो तो क्लेश अधिक हो और बराबर विपत्ति आती रहती है ॥ २ ॥

जन्माब्दांगपतीन्थिहापतिसमानाथाद्यधीकारवान्
सूर्यो नष्टबलस्त्वगक्षिविलयं कुर्यान्निरुत्साहताम् ।
नीचत्वं पितृमातृतोऽप्यभिभवश्चन्द्रेऽक्षिकार्यक्षयो
दारिद्र्यं च पराभवो गृहकलिर्व्याध्याधिभीतिस्तदा ॥ ३ ॥

कुन्तला — जन्मलग्नेश– वर्षलग्नेश–मुथहेश–वर्षेश–त्रिराशीशानामन्यतमाधिकारी भूत्वा सूर्यः, यदि नष्टबलः = क्षीणबलः स्यात्तदा त्वगक्षिविलयं = त्वचानयनयोर्नाशं, कुर्यात् । निरुत्साहतां = आलस्यं, च कुर्यात् । नीचत्वम् = नीचवृत्या वर्त्तनं, पितृमातृतः अपि अभिभवः = पराभवः, अन्येषां का कथा, एतावदनिष्टफलं भवति । अथ तेषां पञ्चाधिकारिणां मध्ये कोऽप्य–

धिकारी भूत्वा यदि चन्द्रो हीनबलः स्यात्तदाऽक्षिकार्यक्षयः = नयनस्य कायस्य च नाशः, दारिद्र्यम् = धनहीनत्वं, पराभवः = विशेषक्लेशागमः, गृहकलिः = परिजनकलहः, व्याधि–भीतिः = व्याधेर्मनोव्यथायाश्च भयं भवतीति ।। ३ ।।

ज्योति — जिस मनुष्य के जन्मलग्नेश, वर्षलग्नेश, मुन्थापति, त्रिराशिपति, दिनरात्रि के पति इन पंच अधिकारियों में किसी अधिकार को प्राप्त होकर सूर्य नष्टबली हो तो वह मनुष्य त्वचा रोग से कष्ट भोगता हुआ नेत्ररोग से पीड़ित हो और उत्साह से रहित होता हुआ माता–पिता से अनादर पावे । यदि पूर्वोक्त अधिकारियों में से किसी अधिकार को प्राप्त चन्द्रमा नष्टबली हो तो उस प्राणी के नेत्र और वांछित कार्य नष्ट हों और वह दरिद्र हो, सर्वत्र अनादर को प्राप्त हो और स्त्रियों से कलह करता रहे तथा आधि–व्याधि से सदा भयभीत होता है ।। ३ ।।

भौमे चलत्वं भीरुत्वं बुधे माहपराभवौ ।
जीवे धर्मक्षयः कष्टफला जीवनवृत्तयः ।। ४ ।।
शुक्रे विलाससौख्यानां नाशः स्त्रीभिः समं कलिः ।
सौरे भृत्यजनाद्दुःखं रुजो वातप्रकोपतः ।। ५ ।।

कुन्तला — भौमे = पञ्चाधिकारी भूत्वा यदि निर्बले सति चलत्वं = चापल्यं, भीरुत्वं, भवति । एवं तदधिकारवति बुधे क्षीणबले सति मोहपराभवौ = मतिभ्रमक्लेशविशेषौ भवतः । तथा तदधिकारवति गुरौ निर्बले सति धर्मक्षयः, कष्टफलाः = क्लेशपरिणामाः, जीवनवृत्तयः = जीवनव्यापारा भवन्ति । एवं तदधिकारवति । शुक्रे निर्बले सति, विलाससौख्यानां नाशः, स्त्रीभिः समे कलिः = कलहः, भवति । एवं तदधिकारवति सौरे = शनौ, निर्बले सति, भृत्यजनाद् दुःखं, वातप्रकोपतः, रुजो = रोगा भवन्ति ।। ४–५ ।।

ज्योति — यदि उक्त पञ्चाधिकारियों में से किसी अधिकार को प्राप्त मङ्गल हीनबली हो तो उस प्राणी का मन सदा चलायमान रहता है और वह चोर आदि से भयभीत रहता है । यदि उक्त अधिकारियों में से बुध नष्टबली हो तो उस प्राणी का मोह और पराभव होता है । यदि उक्त अधिकारियों में बृहस्पति नष्टबली हो तो उस प्राणी के धर्म का क्षय होता है और वह कन्द–मूल–फलादि खाकर बड़े कष्ट से जीवन व्यतीत करता है ।

यदि शुक्र बलहीन हो तो उस प्राणी के विलास–क्रीड़ा आदि और सौख्य का नाश और स्त्रियों के साथ कलह होता रहता है । यदि शनि नष्टबली हो तो नौकर से क्लेश होता हो और वातरोग की पीड़ा बनी रहती है ।। ५ ।।

वर्षलग्न का फल

लग्नं पापयुतं सौम्यैरदृष्टं सहित नृणाम् ।
विवादं वञ्चनां दुष्टमशनं चापि विन्दति ।। ६ ।।

कुन्तला — वर्षलग्नं = पापग्रहयुतं, सौम्यैः = शुभग्रहैः, न दृष्टं, न युतं, तदा नृणां = नराणां विवादं, वञ्चनां = अन्यजनकृतं प्रतारणं, दुष्टं = कुत्सितं, अशनं = भोजनं, च विन्दति = प्राप्नोति ।। ६ ।।

ज्योति — यदि वर्षलग्न पापग्रहों से युक्त हो और शुभ ग्रहों से न देखा जाय और न युक्त हो तो वह प्राणी विवाद और चौरादिकों से ठगा जाता तथा दुष्ट भोजन आदि फलों को भोगता है ।। ६ ।।

जन्माब्दांगपरन्ध्रपाब्दमुथहानाथा बलाढ्यास्तदा
रम्यं वर्षमुशन्ति सर्वमतुलं सौख्यं यशोऽर्थागमः ।
षष्ठाष्टान्त्यगता न चेदिह पुनस्ते दुःखभीतिप्रदा
निर्वीर्या यदि वर्षमेतदशुभं वाच्य शुभेक्षां विना ।। ७ ।।

कुन्तला — यस्मिन् वर्षे जन्मलग्नेश – वर्षलग्नेशाष्टमेश – वर्षेश–मुथहेशाः यदा बलयुक्ताः, षष्ठाष्टान्त्यगता न स्युस्तदा तस्मिन वर्षे सर्वं रम्यं रमणीयमुशन्ति = वदन्ति । तथा सौख्यं, यशः, अर्थागमः = धनागमः भवति । चेत्ते ग्रहाः पुनर्निर्वीर्याः, षष्ठाष्टान्त्यगताश्च स्युस्तदा दुःख–भीतिप्रदाः स्युः । अत्र शुभेक्षां = शुभग्रहदृष्टि विना, एतत्सकलं वर्षमशुभं वाच्यम् ।। ७ ।।

ज्योति — यदि जन्मकाल का स्वामी, वर्षलग्न का स्वामी, आठवें स्थान का स्वामी और मुन्थहा का स्वामी ये बलिष्ठ होते हुए यदि छठें, आठवें और बाहरवें इन स्थानों में स्थित न हों तो उस प्राणी के लिए वह सम्पूर्ण वर्ष शुभ कहा जाता है और उसे अतुल सौख्य, यश और धन मिलता है । जन्मलग्न आदि के स्वामी यदि बली होकर छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में स्थित हों तो दुःख देते हैं । यदि चारों बलरहित होकर छठें, आठवें तथा बारहवें स्थान में हों तो दुःख व चोरादिकों से भय देते हैं। यदि वे चारों शुभ ग्रहों से न देखे जायँ तो सम्पूर्ण वर्ष अशुभ फल देते हैं । यदि उक्त चारों को शुभ ग्रह देखते हों तो शुभ फल ही होता है ।। ७ ।।

सूतौ धनप्रदः खेटो धनाधीशश्च तौ यदि ।
वर्षे नष्टौ वित्तनाशोऽन्यनिःक्षेपापवाददौ ।। ८ ।।

कुन्तला — सूतौ = जन्मसमये, धनप्रदः = धनलाभयोगकर्त्ता ग्रहः, तथा धना–धीशः = धनेशश्च तौ यदि वर्षे नष्टौ = अस्तंगतौ, भवतस्तदा वित्तनाशः = धननाशः, स्यात् । अन्यनिःक्षेपापवाददौ = अन्यस्य निःक्षेपो रक्षितार्थस्तस्यापवादः = असत्यप्रचारस्तं ददतः । अर्थाद्देवतदत्तस्य भवदत्तसकाशे पूर्वतो यद् धनं रक्षितमासीत्तद्भवदत्तेन देवदत्ताय समर्पितमपि न मम तद्धनं त्वया दत्तमिति मिथ्याऽपवादः, अन्यनिःक्षे पापवादः, इति ।। ८ ।।

ज्योति — जिसके जन्मकाल में धनयोग का एक ग्रह और धनेश, ये दोनों वर्ष में नष्टबली हों तो उस पुरुष का धन नष्ट हो जाय और जिसके यहाँ धन रखने को दिया हो, वह बदल जाय कि हमारे पास तुम्हारा कुछ नहीं है ।। ८ ।।

एवं समस्तभावानां सूतौ नाथाश्च पोषकाः ।
अब्दे नष्टबलास्तेषां नाशायोह्या विचक्षणः ॥ ९ ॥

कुन्तला — अनेन प्रकारेण सूतौ जन्मकाले समस्तभावानं ये नाथास्तथा पोषका—स्तद्भावविषयपुष्टिकाराश्च ये ग्रहाः ते यदि वर्षे नष्टबलास्तदा तेषां भावविषयाणां नाशाय विचक्षणैः पण्डितैरुह्या इति ॥ ९ ॥

ज्योति — जिस मनुष्य के जन्मकाल में सब भावों के स्वामी फल देने को समर्थ होवें यदि वे ही वर्षकाल में बलहीन हों तो उस मनुष्य को अपने उन भावों को नष्ट कर देते हैं । अर्थात् उन भावों का जैसा फल है, उसको नहीं देते हैं ॥ ९ ॥

अथ द्वितीय (धन) भावविचारः

वित्ताधिपो जन्मनि वित्तगोऽब्दे जीवो यदा लग्नपतीत्थशाली ।
तदा धनाप्तिः सकलेऽपि वर्षे क्रूरेसराफे धनधान्यहानिः ॥ १ ॥

कुन्तला — जन्मनि = जन्मकाले, वित्ताधिपः = धनेशः, जीवः = गुरुः, अब्दे = वर्षे, वित्तगः = धनभावगतः, जन्मलग्नाद्द्वितीयेशो गुरुर्वर्षलग्नाद्द्वितीयगत इत्यर्थः । अथवा यत्र जन्मलग्नं वृश्चिककुम्भयोरन्यतरं स्यात्तत्रैव द्वितीयेशो गुरुर्भवितुं शक्यते । तादृशो जीवो लग्नपतीत्थशाली = वर्षलग्नेशेन सह मुथशिली, तदा सकले = सम्पूर्णेऽपि वर्षे धनाप्तिर्भवति । अथ तादृशस्य जीवस्य क्रूरेसराफे = पापग्रहकृतेसराफे, धनधान्यहानिः स्यात् ॥ १ ॥

ज्योति — जिनके जन्मसमय में बृहस्पति धनेश होकर वर्षलग्न से दूसरे स्थान में स्थित हो और लग्नेश के साथ इत्थशाल योग करता हो तो उस प्राणी को वर्ष भर धर की प्राप्ति होती है । यदि बृहस्पति लग्नेश को छोड़कर अन्य किसी पापग्रह के साथ ईसराफ योग करता हो तो वर्ष भर धन—धान्य की हानि होती है ॥ १ ॥

जन्मन्यर्थावलोकीज्योऽब्देऽब्देशो बलवान्यदा ।
तदा धाप्तिर्बहुला विनाऽऽयासेन जायते ॥ २ ॥

कुन्तला — ईज्यः = गुरुः, अर्थावलोकी = धनभावद्रष्टा भवेत्, अब्दे = वर्षे, बलवान् = बली भूत्वा यदि वर्षेशः स्यात्, तदा आयासेन = उद्यमेन, विनाऽपि बहुधा धनाप्ति—र्जायते धनस्य प्राप्तिर्भवतीति बोध्यम् ॥ २ ॥

ज्योति — यदि जन्मकाल का बृहस्पति दूसरे स्थान को देखता हो और वही वर्षेश होकर बलवान् हों तो उस वर्ष में उस मनुष्य को अनायास धन प्राप्त होता है ॥ २ ॥

एवं यद्भावपो जन्मन्यब्दे तद्भावगो गुरुः ।
लग्नेशेनेत्थशाली चेत्तद्भावजसुखं भवेत् ॥ ३ ॥

कुन्तला —— इत्थं जन्मकाले, गुरुः = बृहस्पतिः, यद्भावपः = यद्भावेशः, स्याद्वर्षे तु तद्भावगः = तस्मिन्नेव भावे गतो भवेत् । यथा जन्मनि लग्नेशो भूत्वा वर्षे लग्नगतः, अथवा जन्मनि धनेशो भूत्वा वर्षे धनगतः । जन्मनि सहजेशो भूत्वा वर्षे सहजे स्यात्तथा लग्नेशेन = वर्षलग्नेशेन, इत्थशाली = मुथशिली, तदा तद्भावजं सुखं भवेत् । इति सामान्यतः सकलभाविचार निदर्शनं कृतं ग्रन्थकारेणेति ।। ३ ।।

ज्योति —— बृहस्पति जिस भाव का स्वामी हो वह यदि उसी वर्षप्रवेश के समय उसी भाव में हो और लग्नेश के साथ इत्थशाल योग करे तो वह उसी भाव से उत्पन्न सुख पाता है ।। ३ ।।

तथा जनुषि यं पश्येद्भावमब्देऽब्दपो गुरुः ।
तदा तद्भावजं सौख्यमुक्तं ताजिकवेदिभिः ।। ४ ।।

कुन्तला —— तथा जनुषि = जन्मकुण्डल्यां, गुरुः यं भावं पश्येत्, तथा वर्षेऽब्दपो वर्षेशः स्यात्तदा ताजिकशास्त्रज्ञाःतद्भावजं सौख्यमुक्तं कथितमिति ।। ४ ।।

ज्योति —— जन्मकाल में बृहस्पति जिस भाव को देखता हो वही यदि वर्षेश हो तो वह उस भाव के सुख को प्राप्त होता है ।। ४ ।।

जन्मषष्ठाधिपः सौम्यः षष्ठोऽब्दे स्वल्पलाभदः ।
पापार्दिते गुरौ रन्ध्रेऽर्थे वा दण्डः पतेद्ध्रुवम् ।। ५ ।।

कुन्तला ——जन्मषष्ठाधिपः = जन्मलग्नाद्रिपुभावनाथः, सौम्यः = बुधः, अब्दे = वर्षे, षष्ठः = षष्ठस्थानस्थः, तदा स्वल्पलाभदः = परिमितधनप्राप्तिकरः स्यात् । वा वर्षे गुरौ पापादिते = पापाक्रान्ते, रन्ध्रे = अष्टमे, वा अर्थे = द्वितीयभावे, सति, तदा ध्रुवं दण्डः पतेत् ।। ५ ।।

ज्योति —— बुध यदि षष्ठेश होकर वर्षलग्न से छठें भाव में स्थित हो तो वह थोड़ा धन पाता है । बृहस्पति यदि पापग्रहों से पीड़ित होकर वर्षलग्न से आठवें अथवा धन भाव में स्थित हो तो उसको अवश्य राजदण्ड होता है ।। ५ ।।

गुरुर्वित्ते शुभैर्दृष्टयुतो वा राज्यसौख्यदः ।
जन्मन्यब्दे च मुथहाराशिं पश्यन्विशेषः ।। ६ ।।

कुन्तला —— वित्ते = धनभावे, वर्त्तमानः, गुरुः = बृहस्पतिः, शुभैः = शुभग्रहैः, दृष्टयुतस्तदा राज्यसौख्यदो भवति । वा जन्मनि—जन्मकाले, अब्दे = वर्षे, च मुथहाराशि = मुथहाक्रान्तराशि, पश्यन् सन् विशेषतो राज्यसौख्यदो भवति । वर्षे यद्राशौ मुथहा भवेत् तं राशि जन्मनि वर्षे च गुरुर्यदि पश्येत्तदोक्तफलमित्यर्थः ।। ६ ।।

ज्योति —— यदि बृहस्पति धन भाव में हो और उसे शुभग्रह देखते हों या वह शुभग्रहों से युक्त हों तो उस मनुष्य को राज और सुख दोनों मिलता है । वर्षलग्न में स्थित होकर बृहस्पति यदि मुन्था को भी देखता हो तो विशेष करके राज्या या सुख प्राप्त होता है ।। ६ ।।

एवं सितेऽब्दपे भूरि द्रव्यं धान्यं च जायते ।
वित्तलग्नेशसंयोगो वित्तसौख्यविनाशदः ॥ ७ ॥

कुन्तला — एवममुना प्रकारेण, सिते = शुक्रे, अब्दपे = वर्षेशे, सति, भूरि = प्रचुरं, धनं धान्यं च जायते । तथा वित्तलग्नेशसंयोगः = धनेशलग्नेशयोर्योगो वित्तसौख्यविनाशदः, भवति ॥ ७ ॥

ज्योति — इस प्रकार यदि शुक्र वर्षेश होकर धन स्थान में हो और उसे शुभग्रह देखते हों या शुभग्रह का योग हो तो उसे बहुत धन–धान्य मिलता है । धन स्थान में यदि धनेश और लग्नेश का इसराफ योग हो तो धन–सौख्य का विनाश होता है ॥ ७॥

एवं बुधे सवीर्ये स्याल्लिपिज्ञानोद्यमैर्धनम् ।
जन्मलग्नगताः सौम्या वर्षेऽर्थे धनलाभदाः ॥ ८ ॥

कुन्तला — एवममुना प्रकारेण सवीर्ये = सबले बुधे, वर्षेशे वित्तस्थानगते च सति लिपिज्ञानोद्यमैः = लेखबुद्धिप्रयासैर्द्धनं भवेत् । वा सौम्याः = शुभाः, जन्मलग्नगताः = जन्मकाले लग्नगताः, वर्ष = वर्षकुण्डल्याम्, = अर्थे = द्वितीयभावे यदि स्थिता भवन्ति, तदा धनलाभदा भवन्तीति ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि बुध सबल और वर्षेश होकर धनभाव में बैठा हो और उसको शुभग्रह देखते हों अथवा शुभग्रहों से युक्त हो तो लिखने व ज्ञान अर्थात् व्याख्यानादि उद्यम से धन प्राप्त होता है । यदि जन्मलग्न में शुभग्रह स्थित हों और वे ही धनभाव में हो तो भी धनलाभ होता है ॥ ८ ॥

मालसद्मनि वित्ते वा बुधेज्यसितसंयुते ।
तैर्वा दृष्टे धनं भूरि स्वकुले राज्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

कुन्तला — मालसद्मनि = अर्थसहमे, वित्ते = धनभावे, बुधेज्यसितसंयुते = बुध–गुरुशुक्रसहितेवा, तैः = बुधेज्यशुक्रैः, दृष्टे = वीक्षिते तदा भूरि = बहुलं, धनं भवति । स्वकुले राज्यं धनाधिपत्यम् आप्नुयात् = प्राप्नुयात् । यवनभाषायां मालशब्देन धनं गृह्यते ॥ ९ ॥

ज्योति — जिसके मालसद्म (धन–सहम) और धनभाव ये दोनों बुध, बृहस्पति तथा शुक्र से युक्त हों या इनके द्वारा देखे जाते हों तो उसको बहुत धन तथा अपने कुल का राज्य प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

अर्थार्थसहमेशौ चेच्छुभैर्मित्रदृशेक्षितौ ।
बलिनौ सुखतो लाभप्रदौ यत्नादरेर्दृशा ॥ १० ॥

कुन्तला — चेत् = यदि, अर्थार्थसहमेशौ = धनभावेश–धनसहमेशौ, शुभैः = शुभग्रहैः, मित्रदृशा ३।५।९।११ एतदन्यतमदृष्ट्या दृष्टौ, तथा बलिनौ तदा सुखतः = अप्रयासात्,

लाभप्रदौ भवतः । यदि तौ शुभैरेर्दृशा = शत्रुदृष्ट्या (१।४।७।१०) एतन्यतमदृष्ट्या दृष्टौ तदा यत्नात् = आयासात्, लाभप्रदौ भवतः ॥ १० ॥

ज्योति — यदि धनभावेश और अर्थसहमेश ये दोनों बली होकर शुभग्रहों द्वारा मित्र दृष्टि से देखे जाते हों तो उस प्राणी को सुख तथा बहुत धन लाभ होता है । और यदि पूर्वोक्त अर्थ सहमेश और धनभवनेश को शुभग्रह शत्रु दृष्टि से देखते हों तो बड़े यत्न से धन मिलता है ॥ १० ॥

मित्रदृष्ट्या मुथशिलेऽर्थांगपोः सुखतो धनम् ।
तयोर्मूसरिफे वित्तनाशदुर्नयभीतयः ॥ ११ ॥

कुन्तला — अर्थांगपोः = धनेशलग्नेशयोः, मित्रदृष्ट्या (३।५।९।११) दृशा, मुथशिले = इत्थशाले, सति सुखतः = अक्लेशात्, धनं जायते । तयोर्लग्नेशयोर्मसरिफे = ईसराफयोगे, सति वित्तनाशदुर्नयभीतयः = धनहानिः, दुर्नयेन = अन्यायेन, भीतयः भयानि— राजभयानि भवन्तीति ॥ १ ॥

ज्योति — धनेश और वर्षलग्नेश में मित्रदृष्टि से इत्थशाल योग हो तो बिना परिश्रम के धन प्राप्त होता है । यदि उन दोनों में ईसराफ योग हो तो धन का नाश होता और कुमार्ग से बर्ताव करने के कारण वह सदा भयभीत रहता है ॥ ११ ॥

जन्मनीज्योऽस्ति यद्राशौ स राशिर्वर्षलग्नगः ।
शुभस्वामीक्षितयुतो नैरुज्यस्वाम्यवित्तदः ॥ १२ ॥

कुन्तला — जन्मनि = जन्मकुण्डल्यां, ईज्यः = गुरुः, यद्राशौ = यस्मिन् राशौ, भवेत्स च राशिर्वर्षलग्नगः स्यात् तथा शुभस्वामीक्षितयुतः = शुभैः, स्वामिना च दृष्टो वा युतस्तदा नैरुज्यस्वाम्यवित्तदः = आरोग्याधिपत्यधनप्रदो भवति ॥ १२ ॥

ज्योति — जन्मकाल में बृहस्पति जिस राशि में हो यदि वही राशि वर्षलग्न हो और शुभग्रहों अथवा अपने स्वामी से दृष्ट वा युक्त हो तो आरोग्य, स्वामित्व तथा धन मिलता है ॥ १२ ॥

सूतौ लग्ने रविर्वर्षे धनस्थो धनसौख्यदः ।
शनौ वित्ते कार्यनाशो लाभोऽल्पोऽथ धनव्ययः ॥ १३ ॥

कुन्तला — सूतौ = जन्मनि, रविर्लग्ने स्थितः, वर्षे = वर्षकुण्डल्यां, धनस्थः = द्वितीयस्थानस्थितो भवेत् तदा धनसौख्यदो भवति । वा शनौ वित्ते = द्वितीयभावे सति, कार्यनाशः, अल्पः = स्वल्पः, लाभः तथा धनव्ययः = धनहानिर्भवति ॥ १३ ॥

ज्योति — जन्म समय में यदि सूर्य लग्न में हो और वर्षप्रवेश के समय सूर्य धन स्थान में बैठा हो तो धन तथा सुख देता है । यदि धनभाव में शनि हो तो कार्य नष्ट करता है और थोड़ा लाभ देकर धन खर्च करा देता है ॥ १३ ॥

भ्रातृसौख्यं गुरुयुते भूतयः स्युः शुभेक्षणात् ।
क्रूरयोगेक्षणात्सर्वं विपरीतं फलं भवेत् ॥ १४ ॥

कुन्तला — धनस्थे शनौ गुरुयुते तदा भ्रातृसौख्यं भवति । तत्रैव शुभेक्षणात् = शुभग्रहदर्शनात्, भूतयः = ऐश्वर्याणि, भवन्ति । क्रूरयोगेक्षणात् = पापग्रहसंयोगवीक्षणात्, सर्वमुक्तं कथितं शुभफलं, विपरीतं = अशुभं, भवेत् ॥ १४ ॥

ज्योति — यदि धनभाव में स्थित शनैश्चर बृहस्पति से युक्त हो तो उसको अपने भाई बन्धुओं से सुख होता है । यदि धनलाभकारक ग्रह पापग्रहों से युक्त व दृष्ट हो तो सम्पूर्ण फल नष्ट हो जाता है अर्थात् धन की हानि होती है ॥ १४ ॥

वित्तेशो जन्मनि गुरुर्वर्षे वर्षेशतां दधत् ।
यद्भावगस्तमाश्रित्य लाभदो लग्न आत्मनः ॥ १५ ॥

वित्ते सुवर्णरूप्यादेर्भ्रात्रादेः सहजर्क्षगः ।
पितृमातृक्षमादिभ्यो वित्तं सुहृदि पञ्चमे ॥ १६ ॥

सुहृत्तनयतः षष्ठेऽरिवर्गाद्धानिभीतिदः ।
स्त्रीभ्यो द्यूनेऽष्टमे मृत्युरर्थहेतुः पथोऽंकगे ॥ १७ ॥

खे नृपादेर्नृपकुलादायेऽन्त्ये व्ययदो भवेत् ।
इत्थं विमृश्य सुधिया वाच्यमित्थं परे जगुः ॥ १८ ॥

कुन्तला — जन्मनि = जन्मकाले, वित्तेशः = धनेशो भवन् गुरुः = बृहस्पतिर्यदि वर्षे = वर्षेशतां = वर्षेश्वरत्वं, दधत् = धारयेत्तदाऽसौ वर्षेशगुरुर्यद्भावगः = वर्षलग्नाद्यस्मिन् भावे स्थितो भवेत्तं भावमाश्रित्य लाभदो भवति । यथा — यदि लग्ने स्थितस्तदाऽऽत्मनः = स्वस्मात् लाभः । एवं धने तदा कुटुम्बात् । सहजे सहजात् । चतुर्थे मातृतः । पञ्चमे पुत्रतः । षष्ठे शत्रुतः । सप्तमे स्त्रीतः । अष्टमे मृत्युतः । नवमे धर्मात् एवं सर्वत्रज्ञेयम् । जन्मनि धनेशो वर्षे वर्षेशो भवन् गुरुर्यदि वित्ते = धनभावे, भवेत्तदा सुवर्णरूप्यादे लाभः । यदि सहजर्क्षगः = तृतीयगतः, तदा भ्रात्रादेः धनलाभः स्यात् । यदि तादृशो गुरुः, सुहृदि = चतुर्थस्थाने, भवेत्तदा पितृमातृक्षमादिभ्यः = पितृमातृभूमिक्षेत्रतः, लाभः । पञ्चमे तु सुहृत्तनयतः = मित्रपुत्रतः, धन—लाभः । षष्ठेऽरिवर्गात् = शत्रुपक्षात्, हानिभीतिदः = धनकार्यक्षयभयप्रदः । यदि तादृशो गुरुर्द्यूने = सप्तमे भवेत् तदा स्त्रीभ्यो धनलाभः । अष्टमे गुरुस्तदा मृत्युर्मरणम् , यदि तोदृशे गुरावंकगे = नवमस्थे सति अर्थहेतुः = धनलाभकृत्, पथो मार्गः स्यात् । खे दशमे यदि तादृशो गुरुस्तदा नृपादेः = धनलाभकृत्, पथो मार्गः स्यात् । खे दशमे यदि तादृशो गुरुस्तदा नृपादेः = भूपादेर्लाभः । आये = लाभभावे, नृपकुलात् = राजवंशात्, लाभः । अन्त्ये = व्ययभावे, यदि गुरुस्तदा व्ययदो भवेत् । इत्थमुक्तप्रकारेण सुधिया = पिण्डतेन, विमृश्य = विचार्थ, फलं वाच्यम् । इत्यपरे आचार्य जगुरिति ॥ १५—१८ ॥

ज्योति — धनभाव का स्वामी बृहस्पति यदि वर्षप्रवेशकाल में वर्ष का स्वामी हो और वह जिस भाव में बैठा हो तो उसी भाव का फल देता है । जैसे लग्न में हो तो आत्मसुख, धन भाव में हो तो सुवर्ण—चाँदी आदि का लाभ, तीसरे भाव में हो तो भाई—बन्धु आदि द्वारा लाभ, चौथे भाव में स्थित हो तो पिता—माता, खेती व ग्राम आदिकों से सुख, पंचम स्थान में हो तो मित्रों व लड़कों से सौख्य, छठें स्थान में हो तो मृत्यु, सातवें भाव में तो स्त्रीसंबन्धी सुख, आठवें घर में हो तो मृत्यु, नवम स्थान में हो तो मार्ग चलते चलते द्रव्यलाभ, दशम स्थान में हो तो राजा से और ग्यारहवें हो तो राजकुल से धन का लाभ और बारहवें स्थान में हो तो परमार्थ में बहुत सा धन खर्च करा देता है ॥ १५—१८ ॥

अथ तृतीय (सहज) भावविचारः —

अब्देशेऽर्के सिते वाऽपि सबले पापवर्जिते ।
सौख्यं मिथः सोदराणां व्यत्ययाद्व्यत्ययं वदेत् ॥ १ ॥

कुन्तला — सबले = बलयुक्तेऽर्के = सूर्येऽपि वा सबले सिते = शुक्रे, अब्देशे = वर्षेशे, पापवर्जिते = पापयोगदृष्टिवञ्चिते, सति, सोदराणां = सहजानां, मिथः = परस्परं, सौख्यं भवति । व्यत्ययात् = विलोमाद्यत्ययं = विलोमं फलं, वदेत् = कथयेत् । यथा दुर्बले वर्षेशे सूर्ये शुक्रे वा शुभग्रहदृष्टियोगहीने, पापयुतदृष्टे च सति सहोदराणां मिथः कलहों भवेत् ॥ १ ॥

ज्योति — यदि वर्षेश सूर्य वा शुक्र हो और वह बलिष्ठ होता हुआ पापग्रहों से युक्त या दृष्ट न हो तो उसको भाइयों से सुख प्राप्त हो । यदि वर्षेश सूर्य तथा शुक्र निर्बल होकर पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो भाइयों में परस्पर झगड़ा आदि हो ॥ १ ॥

दग्धे कलिः सहजपेऽब्दपतौ तयोर्वा जीवे बलेन रहिते सहजे सहोत्थैः ।
वैरं तृतीयभवनाधिपतीसराफेमांद्यंकलिं स्वजनसोदरतश्च विद्यात् ॥ २ ॥

कुन्तला — सहजपे = वर्षलग्नात्तृतीयस्थानेशे, अब्दपतौ = वर्षेशे च, दग्धेऽस्तंगते सति तदा कलिः = कलहो भवति । वा तयोरर्कशुक्रयोरेकतरे ग्रहे सहजपे वर्षेशेऽस्तंगते च सति कलहः स्यात् । वा बलेन रहिते जीवे = गुरौ, सहजे = तृतीयस्थाने सति सहोत्थैः = सहजैः, वैरम् = विरोधः स्यात् । वा तादृशस्य वर्षेशस्य, तृतीयभवनाधिपतीसराफे = सहजेशेन ईसराफयोगे सति, मान्द्यम् = शरीरकष्टं, स्वजनसोदरतश्च कलिं = कलहं, विद्यात् = जानीयात् ॥ २ ॥

ज्योति — तीसरे भाव का स्वामी वर्षेश सूर्य के सान्निध्य से अस्त हो जाय अथवा दृष्ट स्थान में स्थित हो तो वह मनुष्य कलहादिकों से दुःख प्राप्त करता है । यदि सूर्य और शुक्र इन में से कोई वर्ष का स्वामी होकर अस्तंगत या नष्टबली हो जाय तो भी वह कलह कराता है । यदि बृहस्पति अधम बल से युक्त होकर तीसरे भाव में स्थित हो तो भाइयों के साथ बैर होता है । यदि वर्षेश तीसरे भाव के स्वामी (पराक्रमेश) के साथ ईसराफ योग करे तो उसके शरीर को बड़ा भारी कष्ट मिलता है और वह निर्बल होकर अपने बन्धुओं से लड़ाई करता है ॥ २ ॥

यदेत्थशालः सहजेश्वरेण गुरुस्तृतीये सहजात्सुखाप्तिः ।
सारे विधौ स्यात्कलहस्तृतीये दृष्टौ युतौ नो गुरुणा यदा तौ ।। ३ ।।

कुन्तला — यदा गुरोः, सहजेश्वरेण = तृतीयेशेन, इत्थशालस्तदा सहजात् सुखम् । वा यदा सबलो गुरुः, तृतीये स्थाने भवेत्तदाऽपि सहजात् = सहोदरात् सुखाप्तिः स्यात् । वा सारे = कुजयुक्ते, विधौ = चन्द्रे तृतीये सति यदा तौ कुजचन्द्रौ गुरुणा = जीवेन, दृष्टौ वा युतौ नो भवेतां, तदा तु कलहः सहजतो स्यादिति ।। ३ ।।

ज्योति — यदि लग्नेश तथा वर्षेश इन दोनों में से किसी का तृतीयेश के साथ इत्थशाल योग हो तो उस प्राणी को भाइयों से सुख होता है । बृहस्पति तीसरे भाव में हो तो भी भाइयों से सुख मिलता है । यदि तीसरे भाव में मङ्गल से युक्त चन्द्रमा बैठा हो और यदि उन दोनों को बृहस्पति न देखे, न युक्त हो तो भाइयों के साथ लड़ाई होती है ।। ३ ।।

सहजे सहजाधीशेऽधिकारिणि समापतेः ।
लग्नपो वामुथशिले मिथः सौख्यं सहोत्थयोः ।। ४ ।।

कुन्तला — सहजाधीशे = तृतीयेशे, सहजे = तृतीयस्थानगते, तथा समापतेः = वर्षेशस्य, अधिकारिणि = पञ्चाधिकाराणामेकतमाधिकारयुक्ते, वा तेन सह लग्नपः = लग्नेशस्य मुथशिले सति तदा सहोत्थयोः = सहजयोः, मिथः सौख्यं भवेत् ।। ४ ।।

ज्योति — यदि तृतीयेश पाँच अधिकारों में से किसी अधिकार में हो तथा तीसरे भाव में बैठा हो और उसके साथ वर्षेश तथा लग्नेश इन में से किसी के साथ इत्थशाल योग हो तो उसके भाइयों को उससे सुख मिलता है ।। ४ ।।

क्रूरेसराफे कलहः शनौ भौमर्क्षगे रुजः ।
ज्ञर्क्षेऽसृज्यनुजे मान्द्यं वदेत्सहजगे स्फुटम् ।। ५ ।।

मन्दर्क्षगेऽसृजि बुधे कुजर्क्षे सहजे शुभैः ।
युतेक्षिते सोदराणां मिथः सौख्यं सुखं बहु ।। ६ ।।

कुन्तला — यहजेशस्य क्रूरेसराफे = पापग्रहकृते सराफयोगे सति, कलहः = विरोधः स्यात् । शनौ भौमर्क्षगे = मेषवृश्चिकान्यतरराशिगते सहजगते च सति, तदा सहजस्य रुजः = रोगाः, स्युः । तथा असृजि = कुजे, ज्ञर्क्षे = मिथुनकन्याऽन्यतरराशिगते, सहजस्थानस्थिते च सति मान्द्यं = मन्दता = आलस्यं रोगः स्फुटं स्यात् ।। ५ ।।

असृजि = कुजे, मन्दर्क्षगे = मकरकुम्भान्यतरराशौ गतवति, सहजे = तृतीयभावे च गते, वा बुधे कुजर्क्षे = मेषवृश्चिकान्यतरराशौ विद्यमाने सति सहजे च गतवति अत्रोक्तयोगद्वयेऽपि शुभैः = शुभग्रहैः, युते सिते सति सोदराणां = सहजभ्रातृणां मिथ = परस्परं सौख्यं, बहुसुखं च भवति ।। ६ ।।

ज्योति — यदि तृतीयेश के साथ पापग्रह ईसराफ योग करे तो उसके भाइयों में कलह हो । यदि शनि मङ्गल के घर अर्थात् मेष—वृश्चिक इनमें से किसी राशि का होकर तीसरे भाव में हो तो उस प्राणी के भाई रोग से पीड़ित हों । यदि मङ्गल बुध के घर अर्थात् मिथुन—कन्या इनमें से किसी राशि का होकर तीसरे स्थान में स्थित हो तो भाइयों को रोग धर दबाता है, ऐसा फल कहे ॥ ५ ॥

यदि शनि के घर अर्थात् मकर व कुम्भ में मङ्गल हो और बुध मङ्गल के घर (मेष—वृश्चिक) में हो और तीसरे स्थान में शुभग्रह हो, उसे शुभग्रह देखते हों तो उससे भाइयों को बहुत सौख्य मिलता है ॥ ६ ॥

जन्माब्दपौ बुधसितौ सबलौ तृतीये सौदर्यबन्धुगणसौख्यकरौ गुरुश्च ।
वीर्यान्वितेन्दुगृहगो भृगुजोऽधिकारी सूत्यब्दयोः सहजबन्धुगणस्य वृद्ध्यै ॥ ७ ॥

कुन्तला — जन्माब्दपौ = जन्मलग्नवर्षलग्नेशौ, वा जन्मलग्नेशवर्षेशौ, वा जन्माब्दयोरिति विश्वनाथांगीकृतपाठे जन्मवर्षकालयोः, बुधसितौ = बुद्धशुक्रौ सबलौ, तृतीये स्थितौ, च पुनः गुरुः सबलः सहजगतश्च चेद्भवति तदा तौ सोदर्यबन्धुगणसौख्यकरौ भवतः । तथा भृगुजः = शुक्रः, वीर्यान्वितेन्दुगृहगः = सबलचन्द्रराशिगतः, सूत्यब्दयोः = जन्मवर्षकालयो—रधिकारी = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारवान् भवेत् तदा सह जबन्धुगणस्य वृद्ध्यै भवति ॥ ७ ॥

ज्योति — यदि बुध और शुक्र ये दोनों बलवान् होकर तीसरे भाव में हो और बृहस्पति बलवान् होकर तीसरे घर में हो तो वे जातक के भाई और बन्धु, बान्धवों को सुखदायक होते हैं । अपने घर व अपनी हद्दा आदि को प्राप्त होकर बुध यदि लग्न में स्थित हो तो भी भाइयों की सब प्रकार से वृद्धि हो ॥ ७ ॥

पापान्विते तु सहजे सहमेशभावनाथेक्षणेन रहिते सहजस्य दुःखम् ।
एवं सहोत्थसहमेऽपि वदेत्तदीशो दग्धौ यदा सहजनाशकरौ विचिन्त्यौ ॥ ८ ॥

कुन्तला — सहजे = वर्षलग्नात्तृतीयस्थाने, पापान्विते = पापग्रहयुक्ते, सहजेशभावनाथे—क्षणेन = भ्रातृसहमेशसहजभावेशदृष्ट्या रहिते सति, सहजस्य दुःखं भवति । एवं सहोत्थसहमे = भ्रातृसहमेऽपि, वदेत्, अर्थाद्भ्रातृसहमेशे पापान्विते भ्रातृसहमेश सहजेशदृष्टिरहिते तदाऽपि सहजस्य दुःखं भवति । अथ यदा तदीशौ = भ्रातृसहम भातृभावेशौ, दग्धौ = अस्तंगतौ, स्यातां तदा सहजनाशकरौ विचिन्त्यौ ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि तीसरा भाव पापग्रहों से युक्त हो और उसको भ्रातृसहमेश तथा सहजभाव का स्वामी ये दोनों न देखते हों तो उस प्राणी के भाई को दुःख होता है । यदि भ्रातृसहम पापग्रहों से युक्त हो और उसको उसका स्वामी तथा तीसरे भाव का स्वामी ये दोनों न देखते हों तो भी भाइयों को कष्ट होता है । यदि भ्रातृ सहमेश व पराक्रमेश दोनों अस्तंगत होकर दुष्ट स्थान में बैठे हों तो उसके भाइयों की हानि होती है ॥ ८ ॥

तृतीयपादब्दपतौ द्युनस्थे लग्नेश्वरे वा सहजैर्विवादः ।
तृतीयपो जन्मनि तादृगब्दे शुभेक्षितस्तत्र सहोत्थतुष्ट्यै ।। ९ ।।

कुन्तला —— तृतीयपात् = सहजेशात्, अब्दपतौ = वर्षेशे, द्युनस्थे = सप्तमस्थे, वा लग्नेश्वरे = वर्षलग्नेशे, सहजेशात् सप्तमस्ये, तदा सहजैः = सहोदरैः, विवादः स्यात् । अथ जन्मनि = जन्मकाले तृतीयपः = सहजभावेशस्तत्र सहजभावे स्थितः, अब्दे = वर्षेऽपि तादृक् = सहजभावस्थः, शुभेक्षितः = शुभग्रहदृष्टस्तदा सहोत्थतुष्ट्यै भवति ।। ९ ।।

ज्योति —— यदि तृतीयेश से सातवें भाव में वर्षेश अथवा लग्नस्वामी तीसरे घर के स्वामी से सातवें भाव में बैठा हो तो उसका भाइयों के साथ युद्ध होता है । यदि तृतीय स्थान का स्वामी सहज भाव में स्थित हो और उसको शुभग्रह देखते हों तो भाइयों को सब तरह से सन्तोष होता है ।। ९ ।।

अथ चतुर्थ (सुख) भावविचारः —

**तुर्ये रवीन्दू पितृमातृपीडा पापान्वितौ पापनिरीक्षितौ च ।
जन्मस्थसूर्यर्क्षगतेऽर्कपुत्रेऽवमानना वैरकली च पित्रा ।। १।।**

कुन्तला —— पापान्वितौ = पापयुतौ, पापनिरीक्षितौ = पाग्रहदृष्टौ रवीन्दू यदि तुर्ये = चतुर्थे, भवेतां, तदा क्रमेण पितृमातृपीडा वाच्या । पापयुतदृष्टे रवौ चतुर्थस्थे सति पितृपीडा, तादृशे चन्द्रे चतुर्थे सति मातृपीडेत्यर्थः । वाऽर्कपुत्रे = शनौ, जन्मस्थसूर्यर्क्षयुते = जन्मकुण्डल्यां यस्मिन्नाशौ सूर्यस्तद्राशिगते सति । अत्र वर्षगणनायाः सौरमानेन करणात् तथा 'तत्कालेऽर्को जन्मकालरविणा स्पद्यदा समः । तदैवाब्दप्रवेशः स्या'दिति नियमेन च जन्मवर्षकालयोरपि रवेरेकराशिस्थितत्त्वात् जन्मस्यसूर्यर्क्षयुते = इत्यस्यार्थः—शनौ रविसहिते सतीति ज्ञेयम् । तत्र अवमानना = अपमानं, पित्रा = जनकेन सह वैरकली च भवतः ।। १ ।।

ज्योति —— यदि वर्षप्रवेश के समय सूर्य पापग्रहों से युक्त वा दृष्ट होकर चौथे भाव में हो तो उसके पिता को पीड़ा होती है । यदि चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त वा दृष्ट होकर चौथे भाव में स्थित हो तो केवल माता की पीड़ा होती है । यदि सूर्य चन्द्र दोनों पापयुक्त वा पापदृष्ट होकर चतुर्थ स्थान में विद्यमान हों तो माता—पिता दोनों को दुःख होता है । यदि जन्म समय में सूर्य के साथ शनि भी विराजमान हो तो उसका अपमान होता है और वह मनुष्य पिता के साथ वैर और कलह करता है ।। १ ।।

**चन्द्रे जनन्यैवमुशन्ति बन्धौ सुखाधिपे प्रीतिसुखानि पित्रोः ।
तुर्याधिपे लग्नपतीत्थशाले वीर्यान्विते सौख्यमुशन्ति पित्रोः ।। २ ।।**

कुन्तला —— एवं चन्द्रे जन्मचन्द्राक्रान्तराशौ वर्षे शनौ सति जनन्या = मात्रा वैरकली वाच्यौ । अथ सुखाधिपे = चतुर्थभावाधिपे, बन्धौ = चतुर्थभावे सति, पित्रोः प्रीतिसुखानि भवन्ति ।

वा वीर्यान्विते = बलयुक्ते, तुर्याधिपे = चतुर्थभावेशे, लग्नपतीत्थशाले = लग्नेशेन सह कृतेत्थशालयोग सति पित्रोः सौख्यमानन्दमुशन्ति कथयन्ति ।। २ ।।

ज्योति — जिस राशि में चन्द्रमा हो और उसी राशि में शनैश्चर भी विद्यमान हो तो उसका माता के साथ वैर और कलह हो । यदि चौथे स्थान का मालिक चौथे घर में बैठा हो तो उस प्राणी के मात–पिता को सुख प्राप्त होता है । यदि चतुर्थ स्थान का स्वामी उत्तम बली होकर लग्नेश के साथ इत्थशाल योग करता हो तो वह माता–पिता को सुखदायक होता है ।। २ ।।

सौख्याधिपो जनुषि नष्टबलोऽब्दसूत्योः पित्रोरनिष्टकृदयो सहमे तयोस्तु ।
दग्धे तुरीयगृहगे च यदीन्थिहाया नाशस्तयोः सहमयोरपि दग्धयोः स्यात् ।। ३ ।।

कुन्तला — अत्र जनुषीति पदं निरर्थकम् । अब्दसूत्योः = वर्षजन्मकालयोः, सौख्या– धिपः = चतुर्थस्थानेशः, नष्टबलः = क्षीणवीर्यः, तदाः पित्रोः = मातापित्रोरनिष्टकृत् = अशुभकृत्, भवति । अथो तयोर्मातृपित्रोः सहमे अपि दग्धे = पापग्रहाक्रान्ते पापयुतदृष्टे तथा इन्थिहायाः = मुथहायाः सकाशात्, तुरीयगृहगे = चतुर्थस्थानगते, तयोर्मातापित्रोर्नाशः स्यात् । तयोः सहमपोः = मातृपितृसहमेशयोर्दग्धयोरस्तंगतयोः पापयुतदृष्टयोः स्तोस्तयोर्मातापित्रोर्नाशः स्यात् ।। ३ ।।

ज्योति — जिस मनुष्य के जन्मकाल का सुखेश नष्ट बली हो तो उसके माता–पिता को दुःख होता है । यदि मातृ–पितृसहम भी पापग्रहों से पीड़ित होकर चौथे स्थान में स्थित हो तो उसके माता–पिता का नाश होता है । यदि मातृ–पितृ ये दोनों सहम नष्ट अथवा अस्तादि दोषों से युक्त हों तो भी माता–पिता का नाश होता है ।। ३ ।।

जन्मन्यम्बुगृहं यच्च तत्पतिस्तत्पदौपदगौ ।
शन्यारौ क्लेशदौ पित्रोर्न चेत्सौम्यनिरोक्षितौ ।। ४ ।।

कुन्तला — जन्मनि = जन्मकुण्डल्यां, यदम्बुगृहं = यच्चतुर्थस्थानं, तथा तत्पतिथत्र स्थितस्तस्पतेः पदं, अर्थाज्जन्मकालिक चतुर्थभावराशिश्चतुर्थभावस्य पदं, तथा चतुर्थभावेशा क्रान्तराशिञ्चतुर्थेशग्रहस्य पदम् । शन्यारौ = शनिकुजौ, तत्पदोपगौ, चैद्यदि सौम्यनिरीक्षितौ = शुभग्रहदृष्टौ न स्तस्तदा पित्रोः क्लेशदौ भवतः ।। ४।।

ज्योति — यदि चौथे घर या चतुर्थेश के साथ शनि और मङ्गल हों और वे शुभ ग्रहों से युक्त वा दृष्ट न हों तो वे उसके माता–पिता को कष्ट देते हैं । यदि शनि और मङ्गल सुखेश के साथ हों और उन्हें शुभग्रह देखते हों तो माता–पिता को कष्ट होता है ।। ४ ।।

मातुः पितुश्च सहमे तुनपेत्थशाले तुर्येऽपि चेत्थमवगच्छ सुखानि पित्रोः ।
चेदष्टमाधिपतिना कृतमित्थशालं पित्रोर्विपद्भयमनिष्टकृतेसराफे ।। ५ ।।

कुन्तला — मातुः पितुश्च सहमे, मातृसहमपितृसहमे तनुपेत्थशाले = लग्नेशकृत मुथशिलयोगे तदा पित्रोः = मातापित्रोः सुखानि अवगच्छ = जानीहि तुर्ये = चतुर्थस्थाने स्थिते मातृपितृसहमे अपि पित्रोः सुखानि अवगच्छ । (वा तुर्ये लग्नेत्थशाले कृते सति पित्रोः सुखानि, जानीहि ।) अथ मातृसहमं वा पितृसहमम् अष्टमाधिपतिना = अष्टमेशेन, इत्थशालं कृतं तदा पित्रोर्विपत् स्यात् । अनिष्टकृतेसराफे सति पित्रोर्भयं वेद्यम् ॥ ५ ॥

ज्योति — यदि माता–पिता के सहम चौथे भाव के स्वामी के साथ इत्थशाल करें तो माता–पिता को सुख हो । मात–पिता के सहम का आठवें घर के स्वामी के साथ इत्थशाल योग हो तो उसके माता–पिता को बड़ा दुःख और भय प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

अथ पञ्चम(सुत) भावविचारः –

पुत्रायगो वर्षपतिर्गुरुश्चेत्सूर्यारसौम्योशनसोऽथवेत्थम् ।
सत्पुत्रसौख्यायखलार्दितास्ते दुःखप्रदाः पुत्रत एव चिन्त्याः ॥ १ ॥

कुन्तला — चेत् = यदि, वर्षपतिः = वर्षेशः, गुरुः = बृहस्पतिः, पुत्रायगः = पञ्चमैकादशस्थितस्तदा सत्पुत्रसौख्याय भवति । अथवा इत्थममुनां प्रकारेण सूर्यारसौम्योशनसः = रविकुजबुधशुक्राः, वर्षे वर्षेशा भूत्वा पञ्चमैकादशस्थानस्थितास्तदा पुत्रसौख्याय भवन्ति । अथ ते = रविकुजबुधशुक्राः खलार्दिताः = पापपीडिताः = पापक्रान्तयुतदृष्टास्तदा पुत्रत एव दुःखप्रदाश्चिन्त्या ज्ञातव्याः ॥ १ ॥

ज्योति — यदि बृहस्पति वर्षेश होकर पाँचवें व ग्यारहवें स्थान में हों अथवा सूर्य, मङ्गल, बुध और शुक्र इनमें से कोई भी वर्षेश होता हुआ पाँचवें तथा ग्यारहवं भाव में हो तो वह पुत्रों को सुखकारी होता है । यदि बृहस्पति, सूर्य; मङ्गल, बुध और शुक्र ये पाँचों ग्रह पापग्रहों से पीड़ित हों तो पुत्रों को दुःख देते हैं ॥ १ ॥

पुत्रे सुतस्य सहमे सबले सुताप्तिः सौम्येक्षितेऽप्यतिसुखं यदि तत्र वर्षेट् ।
सौम्येक्षितः शुभगृहे सकुजो बुधश्चेत्पुत्रायगः सुतसुखं विबलःसुतार्तिम् ॥ २ ॥

कुन्तला — पुत्रे = पञ्चमभावे सबले, वा सुतस्य = पुत्रस्य, सहमे सबले सति, वा सुतसहमे पञ्चमभावस्थे सति सबले च सति सुताप्तिः = पुत्रलाभो भवति । यदि तत्र = पञ्चमभावे, वर्षेट् = वर्षेशः, सौम्येक्षितः = शुभदृष्टः स्यात्तदाऽतिसुखं = पुत्रस्य परमं सुखं भवति । तथा सकुजो बुधः सबलः शुभगृहे = शुभग्रहराशौ वर्तमानः, वर्षलग्नात् पुत्रायगस्तदा सुतसुखं = पुत्रसुखं भवति । यदि भौमसहितो बुधः विबलो भूत्वा शुभराशौ, पञ्चमै कादशगतश्च स्यात्तदा सुतार्त्तिम् = पुत्रपीडां करोतीति ॥ २ ॥

ज्योति — यदि पाँचवें भाव में बलसहित पुत्रसहम हो तो उस मनुष्य को पुत्रों की प्राप्ति होती है । यदि पाँचवें घर में वर्षेश स्थित हो और उसे शुभग्रह देखते हों तो बालकों

को बहुत सुख मिले । यदि मङ्गल सहित शुभग्रहों की राशि में बैठे हों और शुभग्रह से दृष्ट पाँचवें या ग्यारहवें भाव में स्थित हों तो पुत्रों को सुख होता है । यदि मङ्गल सहित बुध बलहीन होता हुआ उक्त स्थानों में न स्थित हो तो पुत्र को रोग होता है ॥ २ ॥

जीवो जन्मनि यद्राशावब्देऽसौ सुतगो बली ।
प्रपुत्रसौख्याय भौमो ज्ञो वर्षेशोऽत्र सुताप्तिदः ॥ ३ ॥

कुन्तला — जीवो गुरुर्जन्मनि = जन्मकुण्डल्यां यद्राशौ तिष्ठति, असौ राशिः अब्दे = वर्षे सुतगः = पञ्चमभावगतः, तथा बली भवेत्, तदा पुत्रसौख्याय भवति । वा भौमः कुजो वा ज्ञो बुधः वर्षेशो भूत्वाऽत्र = पञ्चमभावगतस्तदा सुताप्तिदः = पुत्रप्राप्तिदो भवति ॥ ३ ॥

ज्योति — बृहस्पति जिस राशि में हो वह राशि यदि बलिष्ठ हो और गुरु पाँचवें घर में हो तो पुत्रों को सुख देता है । वर्ष में मङ्गल तथा बुध इनमें से कोई भी ग्रह वर्षेश होता हुआ पाँचवें भाव में हो तो पुत्रदायक होता है ॥ ३ ॥

यत्रेज्यो जनुषि गृहे विलग्नमेतत्पुत्राप्त्यै बुधसितयोरपीत्थमूह्यम् ।
यद्राशौजनुषिशनिः कुजश्चसोऽब्दे पुत्राप्तिं तनुसुतगःकरोति नूनम् ॥ ४ ॥

कुन्तला — जनुषि = जन्मनि कुण्डल्यां यत्र = यस्मिन्, गृहे = राशौ, ईज्यः = गुरुः, भवेत्, एतत्स्थानं वर्षे विलग्नं चेद्भवति, तदा पुत्राप्त्यै भवति । इत्थममुना प्रकारेण बुधसितयो—र्बुधशुक्रयोरपि वशेन ऊह्यम् । अर्थात् जन्मनि यत्र यत्र बुधशुक्रौ भवतस्तौ यदि वर्षे लग्ने भवतस्तदा पुत्रलाभाय भवतः । अत्र जनुषि = जन्मकाले शनिः कुजश्च यद्राशौ भवेतां सः राशिः अब्दे = वर्षे, तनुसुतगः = लग्नपञ्चमगतस्तदा नूनं = निश्चितं पुत्राप्तिं करोति ॥ ४ ॥

ज्योति — जन्म समय में बृहस्पति जिस स्थान में हो, वही स्थान यदि वर्षलग्न में हो तो पुत्र प्राप्त होता है । इसी तरह बुध—शुक्र के स्थान से भी पुत्र प्राप्त होता है । जन्मसमय में शनि तथा मङ्गल जिस राशि में बैठे हों वह राशि वर्षप्रवेश समय में वा पञ्चम भाव में हों तो निश्चय करके पुत्रों की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

पुत्रे पुण्यस्य सहमं पुत्राप्त्यै शुभदृष्टियुक् ।
लग्नपुत्रेश्वरौ पुत्रे पुत्रदौ बलिनौ यदि ॥ ५ ॥

कुन्तला — पुण्यस्य सहमं पुत्रे = पञ्चमभावे स्थितं, शुभदृष्टियुक् तदा पुत्रलाभः स्यात् । वा यदि बलिनौ लग्नपुत्रेश्वरौ = लग्नेशपञ्चमेशौ, पुत्रे = पञ्चमे, स्यातां तदा पुत्रदौ भवतः ॥ ५ ॥

ज्योति — यदि पुण्यसहम शुभग्रहों की दृष्टि से युक्त होकर पंचम भाव में हो तो पुत्र की प्राप्ति हो । यदि लग्नेश और पुत्र भावेश बलवान् होकर पंचमभाव में बैठे हों तो भी पुत्रदायक होते हैं ॥ ५ ॥

चन्द्रो जीवोऽथवा शुक्रः स्वोच्चगः सुतदः सुते ।
वक्री भौमः सुतस्थश्चेदुत्पन्नसुतनाशनः ॥ ६ ॥

कुन्तला — चन्द्रः, जीवः = गुरुः, अथवा शुक्रः सुते = पञ्चमभावे स्थितस्तथा स्वोच्चगस्तदा सुतदः = पुत्रदो भवति । अर्थाद्यदि वर्षलग्नं मकरस्ततः पञ्चमे (वृषे) चन्द्रः वा वर्षलग्नं = मीनस्ततः पञ्चमे = कर्के यदि गुरुः स्यात् । वा वर्षलग्नं वृश्चिकः ततः पञ्चमे मीने यदि शुक्रस्तदा प्रत्येकयोगः पुत्रदः स्यात् । चेत् = यदि, वक्री = विलोमगामी, भौमः = कुजः, सुतस्थः = पुत्रभावगतस्तदा उत्पन्नसुतनाशकः स्यात् ॥ ६ ॥

ज्योति — यदि चन्द्र, गुरु अथवा शुक्र अपने से उच्च राशि में प्राप्त होकर पञ्चम भाव में स्थित हों तो पुत्र देते हैं । यदि वक्री मङ्गल सतुभाव (पांचवें स्थान) में हों तो पुत्र का नाश होता है ॥ ६ ॥

सुताधिपो जन्मनि भार्गवोऽब्दे पुत्रे विलग्नाधिपतीत्थशाली ।
पुत्रप्रदो मन्दपदस्थपुत्रे पापाधिकारीक्षित आत्मजातिः ॥ ७ ॥

कुन्तला — जन्मनि भार्गवः = शुक्रः, सुताधिपः = पञ्चमेशः, भवन् अब्दे = वर्षे, पुत्रे = पञ्चमभावे स्थितः, विलग्नाधिपतीत्थशाली = वर्षलग्नेशेन मुथशिली भवेत् तदा पुत्रप्रदो भवेत् । वा मन्दपदस्थपुत्रे = शन्याक्रान्तजन्मकालिकाराशौ वर्षे पुत्रभावगते, पापाधिकारीक्षिते = पापग्रहवर्गाधिकारग्रहदृष्टे, तदा आत्मजार्त्तिः = पुत्रपीडा स्यात् ॥ ७ ॥

ज्योति — पञ्चम भाव का स्वामी शुक्र यदि पंचम भाव में बैठा हो और वर्षलग्नेश के साथ इत्थशाल योग करे तो पुत्र देता है । यदि शनि का स्थान पाँचवाँ हो और पञ्चाधिकारियों में स्थित कोई पापग्रह उसे देखता हो तो पुत्रों को पीड़ा हो ॥ ७ ॥

यद्राशिगो ग्रहः सूतौ स राशिस्तत्पदाभिधः ।
बली जन्मोत्थसौख्याय वर्षे तद्दुःखदोऽन्यथा ॥ ८ ॥

कुन्तला — सूतौ = जन्मनि, यो ग्रहो यद्राशिगः स राशिस्तत्पदाभिधः = तद्ग्रहस्य पदसंज्ञः । स पदसंज्ञो राशिः यदि वर्षाकाले बली = बलयुक्तस्तदा जन्मोत्थसौख्याय भवति । अन्यथा बलाभावे तद्दुःखदो भवतीति ॥ ८ ॥

ज्योति — जो ग्रह जिस राशि में रहता है, वह राशि उस ग्रह का पद कहलाती है । वह राशि वर्षकाल में उसी भाव को प्राप्त होकर यदि सबल हो तो वह उस भाव से उत्पन्न शुभ फलों को प्रदान करता है और यदि वह निर्बल हो तो दुःखदायक हो जाता है ॥ ८ ॥

अथ षष्ठ (रिपु) भावविचारः —

मन्देऽब्दपेऽनृजुगतौ पतिते रुगार्तिः स्यात्सन्निपातभवभीररिगेऽत्र शूलम् ।
गुल्माक्षिरोगविषमज्वरभीर्गुरौ तु पापार्दितेऽनिलरुजोऽपि कबूलशून्ये ॥ १ ॥

कुन्तला —— अनृजुगतौ = वक्रे, पतिते = पापपीडिते, अब्दपे = वर्षेशे, मन्दे = शनौ, अरिगे = षष्ठस्थानगते, तदा रुगार्त्तिः = रोगपीडा, सन्निपातभवभीः = कफवातपित्तदोषजनितभयम्, शूलं = उदरे शूलास्त्रवेधनजनितव्यथावद्भयया, तथा गुल्माक्षिरोगविषमज्वरभीः, = गुल्ममुदरे वायुग्रन्थिः, अक्षिरोगः = नयनरुजा, विषमज्वरभीः = जीर्णज्वरभयं भवति । एवं गुरौ = जीवे, वर्षेशे वक्रिणि, पापार्दिते षष्ठस्थानगते च सति तथा कबूलशून्ये = चन्द्रकृतकबूलयोगरहिते सति, अनिलरुजः = वायुरोगाः भवन्ति ।। १ ।।

ज्योति —— यदि वक्री शनि वर्षेश होकर पापग्रहों से युक्त होता हुआ छठे स्थान में बैठा हो तो जातक सन्निपात से उत्पन्न मरणसमान क्लेश, शूल, पीड़ा, उदररोग, नेत्ररोग, विषमज्वर ये रोग होते हैं । यदि वर्षेश बृहस्पति वक्री ग्रह व पापग्रहों से पीड़ित होता हुआ छठें भाव में बैठा हो और बृहस्पति चन्द्रमा के साथ कम्बूल योग न करता हो तो उसको बातविकार से उत्पन्न रोग होते हैं ।। १ ।।

स्यात्कामलाख्यरुगपीत्थमसृज्यसृग्भीः पित्तं च रिःफगरवौ दृशि शूलरोगः ।
पित्तं पुना रिपुगृहेऽत्र भृगौ नृभेऽरौ श्लेष्मा भपेक्षितयुतेऽपि कफोऽरिगेन्दौ ।। २ ।।

कुन्तला —— इत्थं असृजि = कुजे, वक्रिणि पतिते वर्षेशेऽरिगे तु सति कामलाख्यरुग् = पित्तविकाराधिक्येन पीतसकलदेहः भवति । रक्तविकृतिरोगश्च भवति । अथ पतिते वर्षेशे रिःफगरवौ = द्वादशस्थानस्थे रवौ सति दृशि = नेत्रे, शूलरोगः = व्यथा स्यात् । अथ तादृशे मृगौ = शुक्रे, रिपुगृहे = षष्टस्थाने सति, पुनः पित्तरोगः, यदा भृगौ नृभे = पुरुषराशौ, अरौ = षष्ठस्थाने, भपेक्षितयुते = राशीशदृष्टियुते सति श्लेष्मा = कफप्रकोपः स्यात् । यदि पापपीडिते वर्षेशे, इन्दौ = चन्द्रेऽरिगे = षष्ठस्थानस्थे सति तदा कफः = कफप्रकोपः स्यात् ।। २ ।।

ज्योति —— और उसे पाण्डु कमला रोग भी होता है । यदि मङ्गल वर्षेश होकर पापग्रहों से पीड़ित वक्री होता हुआ छठें घर में बैठा हो तो रुधिरविकार से उत्पन्न रोग होते हैं । यदि सूर्य वर्ष का स्वामी होकर पापग्रहों से पीड़ित होकर छठें भाव में हो तो पित्त रोग होता है । यदि उक्त रूप में बारहवें स्थान में सूर्य स्थित हो तो नेत्रों में पीड़ा हो । यदि शुक्र वर्षेश होकर पापग्रहों से पीड़ित होता हुआ छठें भाव में स्थित हों और उसको षष्ठेश देखता हो अथवा शुक्र छठें भाव में बैठा हो तो कफसम्बन्धी अनेक रोग होते हैं ।। २ ।।

एवं बुधे पापयुतेऽब्दपेऽरौ वातोत्थरोगो जनिलग्ननाथः ।
पापोऽब्दपेन क्षुतदृष्टिदृष्टो रोगप्रदो मृत्युकरः सपापः ।। ३ ।।

कुन्तला —— एवं पापयुते, अब्दपे = वर्षेशे, बुधे, अरौ = षष्ठस्थे सति वातोत्थरोगः = वायुजनितरोगः स्यात्, अथ जनिलग्ननाथः = जन्मलग्नेशः पापः = पापग्रहः, अब्दपेन = वर्षेशेन, क्षुतदृष्टिदृष्टः = १।४।७।१० एतदन्यतमदृष्ट्या वीक्षितः, तदा रोगप्रदः स्यात् । अथ तादृशो जन्मलग्नेशः सपापस्तदा मृत्युकरो ज्ञेयः ।। ३ ।।

ज्योति — इसी प्रकार यदि बुध वर्षेश बनकर छठें घर में बैठा हो और वक्री ग्रह तथा पापग्रहों से युक्त हो तो बात रोग होता है । यदि जन्मकालीन लग्नेश पापग्रह होकर वर्तमान वर्षेश से क्षुतदृष्टि से देखा जाता हो तो वह रोगदायक होता है । यदि जन्मलग्नेश पापग्रह होकर पापग्रहों से युक्त हो और उसको वर्षेश क्षुतदृष्टि से देखता हो तो वह मृत्युकारक होता है ॥ ३ ॥

अथ शनिकृतारिष्टकथनम् —

सूत्यार्किमे लग्नगते रूक्षशीतोष्णरुग्भयम् ।
शनीक्षिते याप्यता स्यात्सपापे मृत्युमादिशेत् ॥ ४ ॥

कुन्तला — सूत्यार्किमे = जन्मकालिकशनिग्रहाक्रान्तराशौ, लग्नगते = वर्षलग्ने सति रूक्षशीतोष्णरुग्भयं = रूक्षः शरीरकार्कश्यं, शीतोष्णं = शीतपित्तं, एतद्रोगद्वयं स्यात् । यदि सूत्यार्किमे शनीक्षिते = शनिदृष्टे, तदा याप्यता किञ्चिन्न्यूनता स्यात् । सूत्यार्किमे सपापे सति मृत्युः स्यादिति ॥ ४ ॥

ज्योति — जिस राशि में शनैश्चर बैठा हो, वह राशि यदि वर्षप्रवेश के समय लग्न में विद्यमान हो तो उसके शरीर में पित्त, खजुली, जूड़ी ज्वर आदि रोग होते हैं । जन्म समय में शनैश्चर जिस राशि में हो तो वर्षप्रवेश के समय वही राशि उसका पद हुई । यदि वर्षप्रवेश के समय शनि उस स्थान (पद) को देखे तो यक्ष्मा रोग करे । जो शनि पापग्रहों से युक्त होकर जन्मकालीन पापयुक्त अपने पद को देखे तो उस मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ॥ ४ ॥

एवं भौमे क्षुतदृशा रक्तपित्तरुजोऽग्निभीः ।
ततोऽन्ये बहुला रोगाः शुभदृष्ट्यौ रुगल्पता ॥ ५॥

कुन्तला — एवं भौमे = जन्मकालिककुजाक्रान्तराशौ, वर्षलग्नगते सति, क्षुतदृशा दृष्टे च सति रक्तपित्तरुजः = रक्तपित्तसंज्ञरोगः स्यात् । अग्निभीः = अग्निभयम् । ततः = तस्मात् अन्ये अपि बहुलाः = बहवः रोगाः स्युः । शुभदृष्ट्यौ = शुभग्रहदृष्टौ सत्यां रुगरूपता = रोगाल्पता भवति ॥ ५ ॥

ज्योति — मङ्गल जन्म के समय जिस राशि में बैठा हो, वह राशि यदि वर्षप्रवेश समय में वर्षलग्न हो और उसको मङ्गल शत्रु (अर्थात् १।४।७।१०) दृष्टि से देखता हो तो उस मनुष्य को रक्तविकार, पित्तदोष से उत्पन्न रोग, अग्निभय तथा अन्य बहुत से रोग होते हैं । यदि उस लग्नराशि को शुभग्रह देखते हों तो उसके शरीर में अल्प रोग होता है ॥ ५ ॥

लग्नाधिपाब्दपतिषष्ठपतीत्थशालो रोगप्रदः खचरधातुविकारतः स्यात् ।
कान्दपिंकामयभयं पतिते सितेऽर्कस्थानेऽथ षष्ठ इह रुक्सहमं सपापम् ॥ ६ ॥

कुन्तला ——लग्नाधिपो वर्षलग्नेशः, अब्दपतिर्वर्षेशः, षष्ठपतिः = षष्ठेशः, एतेषां मध्ये द्वयोर्यदि इत्थशालः = मुथशिलः, तदा खचरधातुविकारतः —तत्तद्धहधातुदोषतः, रोगप्रदः = रोगदाता स्यात् । एवं सिते = जन्मकालिकशुक्राक्रान्तराशौ, षष्ठे = वर्षलग्नात् षष्ठभावस्थे सति, अर्कस्थाने = सूर्याक्रान्ते च सति तथा रुक्सहमं = रोगसहमं सपापं = पापयुक्तं, तदा कान्दर्पिकामयभयं = कन्दर्पविकाररोगभयं वीर्य प्रकोपरोगः स्यात् ।। ६ ।।

ज्योति —— वर्षलग्नेश, वर्षेश और षष्ठेश का परस्पर इत्थशाल योग हो अथवा दो ही का इत्थशाल हो तो धातु विकार से रोग उत्पन्न हो । जन्म के समय शुक्र जिस राशि में हो, वह राशि वर्षप्रवेशकाल में छठें भाव में हो और उसमें सूर्य बैठा हो एवं छठें, आठवें तथा बारहवें शुक्र हो तो वह मनुष्य कामी होकर स्त्रियों से रमण करे । यदि रोगसहम पापग्रहों से युक्त वा दृष्ट हो तो भी वह मनुष्य काम सम्बन्धी रोग अर्थात्, धातुदोष, उपदेश, मूत्रघात, अश्मरी आदि से पीड़ित होकर व्याकुल हो ।। ६ ।।

सपापे गुरौरंध्रगे लग्न आरे सतन्द्राऽस्ति मूर्च्छाऽंगनाशः सचन्द्रे ।
खलाः सूतिकेन्द्रेऽब्दलग्ने रुगाप्त्यै कफोद्वयगिघ्रगैरीक्ष्यमाणे सिते स्यात् ।। ७ ।।

कुन्तला —— सपापे = पापग्रहयुक्ते, गुरौ = जीवे, रन्ध्रगे = अष्टमस्थे, आरे = कुजे, लग्ने सति तदा सतन्द्रा = आलस्ययुक्ता मूर्च्छाऽस्ति । अथ सचन्द्रे = चन्द्रसहिते गुरौ रन्ध्रगे, सचन्द्रे कुजे लग्नगते च सति, तदाऽंगनाशः = अवयवच्छेदः भवति । अथ खलाः = पापग्रहाः, सूतिकेन्द्रे = जन्मकालिकलग्नचतुर्थसप्तमदशमे स्थिताः, ते यदि वर्षलग्ने च वर्त्तमानास्तदा रुगाप्त्यै = रोगप्राप्त्ये, भवन्ति । अथ सिते शुक्रे द्व्यगिघ्रगैः = पुरुषराशिगतैः, पापैरीक्ष्यमाणे = दृष्टे च सति कफः स्यात् ।। ७ ।।

ज्योति —— यदि वर्षप्रवेश के समय पापयुक्त बृहस्पति वर्षलग्न से आठवें स्थान में हो और मङ्गल वर्षलग्न में हो तो उसको अपस्मार रोग से मूर्च्छा हो जाती है । चन्द्रयुक्त मङ्गल यदि लग्न में हों और पापग्रहयुक्त गुरु आठवें हो तो उसको अंगरोग हो जाता है । जन्मसमय में यदि पापग्रह केन्द्र में हो और वर्षप्रवेश के समय वे ही पापग्रह लग्न में हो तो भी रोग कारक होता है । यदि शुक्र को पुरुषराशि (विषम राशि) में विद्यमान पापग्रह देखते हों तो कफजनित रोग उत्पन्न होते हैं ।। ७ ।।

दिनेऽब्दप्रवेशो विलग्नेऽब्दसूत्योर्यदा दृक्कहद्दागृहाद्योऽधिकारः ।
रवेर्वा कुजस्यात्र पीडा ज्वरात्स्याद्दृशा सौम्यखेटोत्थयाऽन्ते सुखाप्तिः ।। ८ ।।

कुन्तला —— दिने = दिवसे, यदि अब्दप्रवेशः = वर्षप्रवेशः स्यात्तदाऽब्दसूत्योः = वर्षजन्मकालयोः विलग्ने रवेर्यदा दृक्कहद्दागृहाद्यः अधिकारः स्यात्, वा कुजस्य = भौमस्य दृक्कहद्दागृहाद्यः अधिकारः स्यात्तदा ज्वगत् पीडा स्यात् । तत्रैव सौम्यखेटोत्थया = शुभग्रहजनितया दृशा दृष्टे तादृशि वर्षलग्ने सति, अन्ते = वर्षान्ते, सुखाप्तिः = सुखलाभः स्यात् ।। ८ ।।

ज्योति — यदि दिन में वर्षप्रवेश हो और जन्मकाल तथा वर्षकाल के लग्न में सूर्य या मङ्गल का द्रेष्काण, हद्दा तथा स्वगृहादि अधिकार हो तो उस वर्ष में ज्वर पीड़ा होती है । यदि लग्न में स्थित मङ्गल और सूर्य को शुभग्रह देखते हों तो वर्ष के अंत में सुख की प्राप्ति हो ॥ ८ ॥

निशि सूतौ वर्धमाने चन्द्रे भौमेत्थशालतः ।
रुंगनश्येदेधते मन्देत्थशालाद्व्यत्ययोऽन्यथा ॥ ९॥

कुन्तला — निशि = रात्रौ, वर्षप्रवेशे सति सूतौ = जन्मनि, वर्धमाने = पूर्णेचन्द्रे भौमेत्थशालतः रुक् नश्येत् । तादृशे चन्द्रे मन्देत्यशालाच्छनिकृतमुथशिलयोगात् रुक् = रोगः, एधते = वर्धते । अन्यथा = उक्तवैपरीत्ये, दिवावर्षप्रवेशः क्षीणश्चन्द्रस्तदा रोगवृद्धिः स्यादिति ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि रात्रि में जन्म हो और शुक्लपक्ष का चंद्रमा वर्षकाल में मङ्गल के साथ इत्थशाल योग करता हो तो रोग नष्ट हो जाता है । यदि चन्द्रमा शनि के साथ इत्थशाल योग करता हो तो रोग बढ़ताहै । यदि कृष्णपक्ष में जन्म हो और चन्द्रमा मङ्गल के साथ इत्थशाल करता हो तो रोग की वृद्धि हो । यदि शनि के साथ इत्थशाल करे तो रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

रवौवीदृशि वित्केतुयुतेऽब्दं निखिलं गदाः ।
अधिकारी बली सूतावब्दे केतुज्ञयुक् तथा ॥ १० ॥

कुन्तला — वित्केतुयुते = बुधकेतुयुक्ते, रवौ = सूर्ये, ईदृशि सति किन्तु कुजेत्थशाले सति तदा सम्पूर्ण वर्ष यावत्, गदाः = रोगाः, भवन्ति । अथवा सूतौ = जन्मनि अधिकारी = लग्नेशाद्यधिकारी, बली = बलयुक्तः, कोऽपि ग्रहोऽब्दे = वर्षे केतुज्ञयुक् = केतुबुध युक्तस्तदाऽपि तथा = (निखिलं वर्ष गदाः) इति फलं भवति ॥ १० ॥

ज्योति — यदि केतु और बुध के साथ होकर सूर्य मङ्गल के साथ इत्थशाल योग करे तो पूर्ण वर्ष भर रोगकारक होता है । यदि जन्मकाल में काई ग्रह किसी भाव तथा किसी अधिकार में हो अथवा अपने उच्चादि वर्ग में होकर बलिष्ठ हो और वर्ष प्रवेश के समय वही ग्रह केतु बुध से युक्त हो तो वर्ष भर रोगादि होते रहते है ॥ १० ॥

चतुर्थेऽस्ते च मुथहा क्षुतदृष्ट्या शनीक्षिता ।
शूलपीडा पापखगैर्दृष्ट तत्परिणामजम् ॥ ११॥

कुन्तला — यदि मुथहा चतुर्थे, अस्ते = सप्तमे च स्थिता, क्षुतदृष्ट्या (१ । ४ । ७ । १०) एतयादृशा शनीक्षिता = शनिदृष्टा, तदा शूलपीडा भवति । यदि वा चतुर्थ–सप्तमास्था मुथहा पापखगैः = शनिकुजरविभिः, दृष्टा तदा तत्परिणामजं = परिणामशूलं स्यात् ॥ ११॥

ज्योति — यदि वर्षप्रवेश लग्न से चौथे और सातवें स्थान में मुन्थहा बैठी हो और शनि उसे क्रूर दृष्टि से देखता हो तो शूलरोग हो । उक्त मुन्थहा को यदि पापग्रह देखते हों तो एक बार शूल नष्ट होकर फिर हो जाय ॥ ११॥

जन्मस्थजीवसितराशिगते महीजे सूर्यांशुगे पिटकशीतलिकादिमान्द्यम् ।
शीतोष्णगण्डभवरूक्सबुधे च सेन्दौ कुष्ठं भगन्दररुजोऽपि सगण्डमालाः ।। १२ ।।

कुन्तला — महीजे = कुजे, जन्मस्थजीवसितराशिगते = जन्मकालिकगुरुशुक्रा–क्रान्तराशिगते, सूर्यांशुगे = अस्ते च सति, पिटकशीतलिकादि = पिटकः प्लीहा, शीतलिका = शीतलारोगः, एतदादिविचित्ररोगः स्यात् । शीतोष्णगण्डभवरुक् = शीतोष्णजनितो गलगण्डरोगः स्यात् । एवं सेन्दौ = सचन्द्रे बुधे जन्मस्थजीवसितराशिगते सति, कुष्ठं, स गण्डमालाः = गण्डमालाख्यरोगसहिताः, भगन्दररुजः = गुदव्रणरोगाः भवन्ति । गलपरिधौ परितो माला गुटिका इव व्रणपिटका यत्र सा गण्डमाला ।। १२ ।।

ज्योति — यदि जन्मकाल का बृहस्पति तथा शुक्र की राशि में मङ्गल सूर्य के नवांशों में हो तो शरीर में छोटी–छोटी फुन्सियाँ व शीतला आदि रोग और जूड़ी बुखार, गंड आदि रोग होते हैं । जन्म के समय जिस राशि में गुरु वा शुक्र हों उसी राशि में चन्द्रमा के सहित बुध हो तो उसके कुष्ठ, भगन्दर तथा गण्डमाला आदि रोग होते हैं ।। १२ ।।

जन्मलग्नेन्थिहानाथौ षष्ठौ पापान्वितेक्षितौ ।
निर्बलौ ज्वरपीडांगवैकल्याद्यतिकष्टदौ ।। १३ ।।

कुन्तला — जन्मलग्नेन्थिहानाथौ, षष्ठौ = षष्ठस्थानस्थितौ, पापान्वितेक्षिणौ = पापयुतदृष्टौ निर्बलौ च भवतस्तदा ज्वरपीड़ा, अंगवैकल्यादि अतिकष्टदौ भवतः ।। १३।।

ज्योति — यदि जन्मलग्नेश और मुन्थहेश ये दोनों वर्षप्रवेश लग्न से छठें स्थान में हों और हीनबल होकर पापग्रहों से युक्त व दृष्ट हों तो ज्वर, अंगपीड़ा आदि अनेक कष्ट होते हैं ।। १३ ।।

मुथहालग्नतन्नाथा पापान्तःस्थास्तु रोगदाः ।
षष्ठेशे षष्ठगे सौम्ये स्त्रियाः प्राप्तिरितीर्यते ।। १४ ।।

कुन्तला — मुथहालग्नतन्नाथाः = मुथहा–वर्षलग्न–मुथहेशवर्षलग्नेशाः पापान्तःस्थाः = पापग्रहद्वयमध्यगतास्तदा रोगदा भवन्ति । वा षष्टेशे = वर्षलग्नाद्रोगेशे सौम्ये = शुभग्रहे, षष्ठगे = षष्ठस्थानस्थे, सति स्त्रियाः = नार्याः सकाशात्, प्राप्तिः = रोगप्राप्तिः स्यादितीर्यते = ज्ञायते ।। १४।।

ज्योति – यदि मुन्थहा, वर्षलग्न व मुन्थहेश और वर्षलग्नेश ये चारों पापग्रहों के मध्य में हों तो महारोगदायक होते हैं । यदि उनके मध्य में कोई एक पापग्रह बैठा हो तो भी उसको रोग होता है । यदि षष्ठेश तथा शुभग्रह छठे भाव में विराजमान हों तो स्त्री की प्राप्ति होती है ।। १४ ।।

रोगकर्ता यत्र राशावंशे स्यादनयोर्बली ।
तत्स्थानं तस्य रोगस्य वाच्यं राशिस्वरूपतः ।। १५ ।।

जन्मषष्ठाधिपे भौमे वर्षे षष्ठगते रुजा ।
क्रूरेत्थशाले विपुलः शुभदृग्योगतस्तनुः ॥ १६ ॥

कुन्तला — रोगकर्त्ता = रोगयोगकरो ग्रहः, यत्र = यस्मिन् राशौ, यत्र अंशे = नवांशे च स्यादनयो राशिनवांशयोर्मध्ये यो बली बलवान् स्यात्तत्स्थानं तस्य रोगस्य राशि स्वरूपतो वाच्यम् ॥ १५॥

जन्मषष्ठाधिपे = जन्मलग्नाधिकरणषष्ठस्थानेश्वरे भौमे = कुजे, वर्षे = वर्षकुण्डल्यां षष्ठगते तदा रुजाः = रोगः भवति । तादृशे भौमे क्रूरेत्थशाले = पापग्रहेत्थशाले सति विपुलः = महान् रोगः स्यात् । शुभदृग्योगतः = शुभदृष्टिसंयोगात्, तनुः = स्वल्पो रोगः स्यात् ॥ १६॥

ज्योति — रोगकारक ग्रह जिस राशि में हो और जिस नवांश में हो और राशिनवांशों के बीच जो राशि में बली हो, उनके राशिस्वरूप के अनुसार उसका स्थान कहना चाहिये । जन्म के समय षष्ठेश मङ्गल हो और वही मङ्गल छठें भाव में बैठा हो तो रोग करता है । यदि मङ्गल छठें भाव में स्थित होकर पापग्रहों के साथ इत्थशाल योग करता हो तो कोई बड़ा रोग होता है । यदि मङ्गल को शुभग्रह देखते हों अथवा मङ्गल ही शुभग्रहों से युक्त हो तो अल्प रोग होता है ॥ १५–१६॥

अथ सप्तम (स्त्री) भावविचारः

बली सितोऽब्दाधिपतिः स्मरस्थः स्त्रीपक्षतः सौख्यकरी विचिन्त्यः ।
ईज्येक्षितोऽत्यन्तसुखं कुजेनाऽधिकारिणा प्रीतिकरो मिथः स्यात् ॥ १॥

कुन्तला — यदा बली = बलवान्, दशाधिकबली, अब्दाधिपः = वर्षेशः, सितः = शुक्रः, स्मरस्थः = सप्तमस्थानस्थः, तदा स्त्रीपक्षतः सौख्यकरो विचिन्त्यः । अथ तादृशः शुक्रः ईज्येक्षितः = गुरुदृष्टः, तदाऽत्यन्तसुखं भवति । अथवा तादृश एव शुक्रः, अधिकारिणा = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारवता, कुजेन = मङ्गलेन दृष्टस्तदा मिथो दम्पत्योः परस्परं प्रीतिकरः स्यात् ॥ १॥

ज्योति — यदि बली शुक्र वर्षेश होकर सातवें भाव में विद्यमान हो तो उसको स्त्री के पक्ष से सुख मिलता है । यदि शुक्र को गुरु देखे तो वह उस मनुष्य को बड़ा सुख दे । यदि पंचाधिकारियों में से किसी अधिकार में स्थित मङ्गल शुक्र को देखता हो तो उस मनुष्य की भार्या और उसमें परस्पर बहुत प्रीति होती है ॥ ५ ॥

बुधेक्षिते जारता स्याल्लध्वा मन्देन वृद्धया ।
गुरुदृष्ट्या नवा भार्या सन्ततिस्त्वरितन्ततः ॥ २ ॥

कुन्तला — वर्षेशे सप्तमस्थे च शुक्रे, बुधेक्षिते = बुधदृष्टे, तदा लध्व्या = अल्पवयस्कया बालिकयाऽजातरजस्कया स्त्रिया सह, जारता = व्यभिचारिता स्यात् । अथ तादृशे

शुक्रे मन्देन = शनिना, दृष्टे तदा वृद्धया = अधिकवयोवत्या स्त्रिया जारता स्यात् । शनेर्वृद्धग्रहत्वात् । अथ तादृशे शुक्रे गुरुदृष्टे सति नवा = नवीना, भार्या = विवाहिता स्वस्त्री स्यात्, ततस्तस्यास्त्वरितं = शीघ्रमेव सन्ततिरपत्यप्राप्तिर्भवति ।। २ ।।

ज्योति — यदि सप्तमेश (शुक्र) वर्षेश होकर सातवें भाव में हो और उसको बुध देखे तो उस प्राणी की थोड़ी अवस्थावाली स्त्री के साथ छुपी प्रीति होती है । यदि शुक्र को शनि देखता हो तो बुढ़ी स्त्री के साथ प्रेम होता है । यदि शुक्र को बृहस्पति देखते हों तो उसका नवविवाहिता अपनी स्त्री के साथ प्रेम होता है और उससे अति शीघ्र बालक होता है ।। २ ।।

जन्मलग्नाधिपेऽस्तस्थे दारसौख्यं बलान्विते ।
जन्मशुक्रर्क्षमस्तेऽब्दे स्त्रीलाभाय सितेऽब्दपे ।। ३ ।।

कुन्तला — बलान्विते = बलयुक्ते, जन्मलग्नाधिपेऽस्तस्थे = वर्षलग्नात् सप्तमस्थे सति, दारसौख्यं = स्त्रीसुखं स्यात् । जन्मशुक्रर्क्ष = जन्मनि शुक्राक्रान्तराशिर्यः स यदि अब्दे = वर्षे, अस्ते = सप्तमे सति, तथा सिते = शुक्रे, अब्दपे = वर्षेशे सति तदा स्त्रीलाभाय भवति ।। ३।।

ज्योति — जन्मकाल का स्वामी बली होकर यदि वर्षप्रवेश की लग्न से सातवें भाव में विद्यमान हो तो उसको स्त्री से सुख मिलता है । जन्म के समय शुक्र जिस राशि में हो, वह राशि यदि वर्षप्रवेश की लग्न से सातवें हो और शुक्र वर्षेश हो तो स्त्री का लाभ होता है ।। ३ ।।

लग्नास्तनाथयोरित्थशाले स्त्रीलाभमादिशेत् ।
सहमेशो भावपो वा विनष्टः कष्टदः स्त्रियाः ।। ४ ।।

कुन्तला — लग्नास्तनाथयोः = लग्नेशसप्तमेशयोः, इत्थशाले सति स्त्रीलाभम्, आदिशेत् = कथयेत् । सहमेशः = दारासहमेशः, भावपः = स्त्रीभावपतिः सप्तमेशः, यदि विनष्ट अस्तंगतः पापयुतदृष्टः पापेत्थशाली च भवेत्तदा स्त्रियाः कष्टदः = रोगकरः स्यादिति ।। ४ ।।

ज्योति — यदि वर्षलग्नस्वामी और सप्तमेश इनका परस्पर इत्थशाल योग हो तो विवाह द्वारा स्त्री का लाभ हो । यदि स्त्री सहम का स्वामी या सातवें भाव का स्वामी नष्टबली हो तो स्त्री को कष्ट मिलता है ।। ४ ।।

नष्टेन्दौ शुक्रपदगे मैथुनं स्वल्पमादिशेत् ।
जन्मशुक्रर्क्षगो भौमः स्त्रीसुखोत्सवकृद् बली ।। ५ ।।

कुन्तला — नष्टेन्दौ = नष्टचन्द्रे, शुक्रपदगे = जन्मकालिशुक्राक्रान्तराशिगते, तदा स्वल्पं मैथुनं = स्त्रीसंगसुखं, आदिशेत् । नष्टलक्षणं वामनाचार्येणोक्तम् ''कूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टश्च यो ग्रहः । विरश्मितां प्रपन्नश्च स विनष्टो बुधैः स्मृतः'' ।। बली भौमः कुजः, जन्मशुक्रर्क्षगः = जन्मकालिकश्युक्राक्रान्तराशिगतः, तदा स्त्रीसुखोत्सवकृद्भवति ।। ५ ।।

ज्योति — यदि शुक्रस्थित राशि में अर्थात् शुक्र के साथ हीनबली चन्द्रमा स्थित हो तो थोड़ा मैथुन–सुख मिलता है । जन्म समय का शुक्र जिस राशि पर हो, उस राशि पर यदि बली मङ्गल हो तो उसकी स्त्री को हर प्रकार का सुख मिलता है ।। ५ ।।

जन्मास्तपेऽब्दपसितेन युगोक्षिते स्यात्स्त्रीसंगमो बहुविलाससुखप्रधानः ।
केन्द्रत्रिकोणगगुरौ जनिशुक्रभस्थे स्त्रीसौख्यमुक्तमितिहद्दविवाहयोश्च ।। ६ ।।

कुन्तला — जन्मास्तपे = जन्मकालिकसप्तमेशे, अब्दपसितेन = वर्षेशशुक्रेण युगीक्षिते = युतदृष्टे सति, बहुविलाससुखप्रधानः स्त्रीसंगमः स्यात् । जनिशुक्रभस्थे = जन्मकालिक शुक्राधिष्ठितराशिगते, वर्षलग्नात्केन्द्रत्रिकोणगगुरौ सति स्त्रीसौख्यमुक्तं, इत्थं हद्दवि वाहयोः = जन्मलग्नगतहद्देशविवाहसहमेशयोरपि विचार्यम् ।। ६ ।।

ज्योति — यदि सप्तम घर का स्वामी वर्षेश शुक्र से युक्त अथवा दृष्ट हो तो उसे बहुत विलासों और सुख से युक्त स्त्री का समागम प्राप्त होता है । यदि जन्म समय में शुक्राक्रांत राशि में बृहस्पति हो और वह वर्ष में केन्द्र (१।४।७।१०) या त्रिकोण (५।९) में बैठा हो एवं वर्षकाल की हद्दा का स्वामी तथा विवाह सहम का स्वामी जन्मकालीन शुक्र स्थित राशि में विराजमान होकर वर्ष समय केन्द्र–त्रिकोण स्थान में स्थित हो तो सुख कहना चाहिए ।। ६ ।।

अधिकारिपदस्थेऽर्के स्त्रीभ्यो व्याकुलताऽनिशम् ।
इन्थिहाधिकृतस्थाने गुरुदृष्ट्या विवाहकृत् ।। ७ ।।

कुन्तला — अर्के = सूर्ये, अधिकारिपदस्थे = पञ्चाधिकार्यन्यतमस्थानस्थे सति स्त्रीभ्यः, अनिशं = सदा व्याकुलता भवेत् । वा इन्थिहा = मुथहा, अधिकृतस्थाने = पञ्चाधि–कार्यन्यतमस्थाने भवेत् तत्र गुरुदृष्ट्या विवाहकृत् ।। ७ ।।

ज्योति — यदि पंचाधिकारियों में से किसी अधिकारी के स्थान में सूर्य विद्यमान हो तो उसकी स्त्री को हमेशा दुःख प्राप्त होता रहे । यदि मुन्थहा किसी अधिकारी के स्थान में बैठी हो और उसको बृहस्पति देखे तो विवाहिता स्त्री प्राप्त होती है ।। ७ ।।

इन्थिहार्कारयुग्द्यूने क्रूरिते सहमे स्त्रियाः ।
स्त्रीपुत्रेभ्यो भवेत्कष्टं पापदृष्ट्या विशेषतः ।। ८ ।।

कुन्तला — अर्कारयुग् = रविकुजयुक्ता, इन्थिहा = मुथहा, वर्षलग्नात् द्यूने = सप्तमे स्थाने स्थिता अथवा स्त्रियाः सहमे = दारसहमे, क्रूरिते = पापयुक्ते, सति स्त्रीपुत्रेभ्यः कष्टं भवेत् । तत्रोक्तयोगे पापदृष्ट्या दृष्टे विशेषतः स्त्रीपुत्रेभ्यः कष्टं भवेत् ।। ८ ।।

ज्योति — यदि सातवें भाव में सूर्य और मङ्गल के साथ मुन्थहा विद्यमान हो तो उसको स्त्री तथा पुत्रों से कष्ट होता है । यदि पापग्रह मुथहा को देखते हों तो स्त्री व पुत्रों से विशेष कष्ट होता है ।। ८ ।।

सूतौ द्यूनाधिपः शुक्रोऽब्दे द्यूने बलवान्भवेत् ।
लग्नेशेनेत्थशालश्चेत्स्त्रीलाभं कुरुते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

कुन्तला — सूतौ = जन्मकाले, द्यूनाधिपः = सप्तमेशः, यदि शुक्र एव स्यादर्थान्मेषवृश्चिकयोरतरं वर्षलग्नं भवेत्तदैव सप्तमेशः शुक्रो भवति, सचाब्दे = वर्षे वर्षलग्नात् = द्यूने = सप्तमे, स्थितः, बलवान् = दधाधिकबली भवेत् तथा लग्नेशेन = वर्षलग्नेशेन, चेदित्थशालस्तदा स्त्रीलाभं ध्रुवं कुरुते ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि जन्म समय में सप्तम भाव का स्वामी शुक्र बलवान् होकर सातवें भाव में विद्यमान हो और लग्नेश के साथ इत्थशाली हो तो उसको स्त्री का लाभ निश्चय हो ॥ ९ ॥

भौमेऽब्दपे सितदृशा शुक्रेऽब्देशे कुजेक्षया ।
तद्दृष्टे दारसहमे स्त्रीलाभो भवति ध्रुवम् ॥ १० ॥

सूतौ वा दारसहमे तद्दृष्टे योषिदाप्यते ।
स्वामिदृष्टं स्त्रीसहमं शुक्रदृष्टं विवाहकृत् ॥ ११ ॥

कुन्तला — भौमे = कुजे, अब्दपे = वर्षेशे, सितदृशा = शुक्रदृष्ट्या, दृष्टे तदा स्त्रीलाभः । वाऽब्देशे = वर्षेशे शुक्रे, कुजेक्षया = मङ्गलदृष्ट्या दृष्टे, तदाऽपि स्त्रीलाभः । वा दारसहमे = स्त्रीसहमे तद्दृष्टे = कुजशुक्राभ्यां दृष्टे तदा ध्रुवं स्त्रीलाभो भवति ॥ १० ॥ सूतौ = जन्मनि, दारसहमे, तद्दृष्टे = शुक्रकुजाभ्यां दृष्टे सति, योषित् = स्त्री, आप्यते = प्राप्यते । वा स्त्रीसहमं = दारसहमं, स्वामिदृष्टं तथा शुक्रदृष्टं सद्विवाहकृत स्यात् ॥ ११ ॥

ज्योति — यदि मङ्गल वर्षेश हो और उसको शुक्र देखता हो तो भी स्त्रीलाभ होता है । यदि शुक्र वर्षेश हो और मङ्गल देखता हो तो भी स्त्रीलाभ योग होता है और यदि स्त्रीसहम को मङ्गल व शुक्र देखते हों तो स्त्री का लाभ अवश्य होता है ॥ १०—११ ॥

सूतौ द्यूनाधिपे वर्षे सहमेशे स्त्रियाः सुखम् ।
जन्मास्तपेन्थिहानाथावर्षेशाः खे द्युने तथा ॥ १२ ॥

कुन्तला — सूतौ = जन्मकाले, द्युनाधिपे = सप्तमेशे, वर्षे, सहमेशे = दारसहमेशे सति स्त्रयाः सुखम् भवति । वा जन्मास्तपः = जन्मलग्नात् सप्तमेशः, इन्थिहानाथो वर्षकालीनमुथहेशः, वर्षेशश्चेते, खे = दशमे, तथा द्युने = सप्तमे, स्थिताः, तदा स्त्रियः सुखं भवति ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि जन्मेष्टसमय में सप्तमेश वर्षप्रवेशकाल में स्त्रीसहम का स्वामी हो तथा सप्तमेश मुंथेश और वर्षेश ये तीनों दशमभाव में तथा सातवें भाव में हों तो उसको स्त्री से सुख की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥

मुथहातो द्यूनसंस्थः स्वगृहोच्चगतः शशी ।
विदेशगमनं कुर्यात्क्लेशः पापेक्षणब्धवेत् ॥ १३ ॥

कुन्तला — स्वगृहोच्चगतः = कर्कवृषान्यतरराशिस्थितः, शशी = चन्द्रः, मुथहातः = मुथहामवधिं कृत्वा ततो द्यूनसंस्थः = सप्तमस्थानस्थितो भवेत्तदा विदेशगमनं = परदेशयात्रा स्यात् । तत्र पापेक्षणात् क्लेशः कष्टं भवेत् ॥ १३ ॥

ज्योति — अपने घर व अपने उच्च में प्राप्त चन्द्रमा यदि मुन्थहा के साथ सप्तम भाव में हो तो उस मनुष्य को विदेश में भ्रमण करना पड़ता है । यदि चन्द्रमा को पापग्रह देखते हों तो उसे कष्ट भी हो ॥ १३ ॥

अथाष्टम (मृत्यु) भावविचारः

भौमेऽब्दपे क्रूरहतेऽयसा घातो बलोज्झिते ।
अग्निभीरग्निभे क्रूरनराद्द्विपदभे मृतिः ॥ १ ॥

वियत्यवनिपामात्यरिपुतस्करजं भयम् ।
तुर्ये मातुः पितृव्याद्वा मातुलात्पितृतो गुरोः ॥ २ ॥

कुन्तला — अब्दपे = वर्षेशे भौमे, क्रूरहते बलोज्झिते = हीनबले सति अयसा = लोहेन घातः अस्त्राघातजनितं व्रणं भवतीति । अथ तादृशे कुजे अग्निभे = अग्नितत्त्वात्मके राशौ = मेषधनुः सिंहस्थिते तदा अग्निभीः = वह्निभयं स्यात् । तादृशे कुजे द्विपदभे = नरराशौ, मिथुन—कन्या—तुला—धनुः पूर्वार्धस्थिते सति क्रूरनरात् = दुर्जनान्मृतिः स्यादिति ॥ १ ॥

निर्बले अब्दपे भौमे वियति = दशमस्थे सति, अवनिपामात्यरिपुतस्करजम् = भूप—मन्त्रि—शत्रु—चौरजनितं भयं भवति । अथ तादृशे भौमे तुर्ये = चतुर्थस्थानस्थे सति तदा मातुः = जनन्याः, पितृव्यात् = पितृभ्रातृतः, वा मातुलात् = जननीभ्रातृतः, पितृतः = जनकात्, वा गुरोः = उपदेष्टुः सकाशात्, भयं भवतीति ॥ २ ॥

ज्योति — मङ्गल वर्षेश होता हुआ यदि क्रूर ग्रहों से पीड़ित व निर्बल होकर किसी भाव में स्थित हो तो उसके अंग में लोहे का घाव लगता है । मङ्गल अग्नितत्त्व की राशि में हो तो अग्निभय हो और द्विपद राशि में स्थित हो तो उग्र स्वभाव वालों से मृत्यु होती है । दशम भाव में हो तो राजा, राजा के मंत्री, शत्रु और चोरों से भय होता है । पूर्वोक्त मङ्गल यदि चतुर्थ भाव में बैठा हो तो उसको माता पिता, चाचा, मामा और गुरु इनसे भय होता है ॥ १—२ ॥

लग्नेन्थिहापतिसमापतयो मृतीशाश्चेदित्थशालिन इमे निधनप्रदाः स्युः ।
चेत्पाकरिष्टसमये मृतिरेव तत्र सार्के कुजे नृपभयं दिवसेऽब्दवेशे ॥ ३ ॥

कुन्तला — लग्नेन्थिहापतिसमापतयः = वर्षलग्नेश–मुथहेश–वर्षेशाः यदि मृतीशा अष्टमेशाः भवन्ति, अथवा इत्थशालिनः = अष्टमेशेन ते यदि मुथशिलयोगकर्त्तारस्तदा, इमे = वर्षलग्नेश–मुथहेश–वर्षेशाः, निधनप्रदाः = मरणदायका भवन्ति । चेत् = यदि, पाकरिष्टसमये = जन्मकालिके अनिष्टग्रहदशान्तर्दशाकालेऽयं योगस्तदा मृतिरेव = मरणमेव भवति । अथ दिवसे = दिने, अब्दवेशे = वर्षप्रवेशे सति, कुजे = भौमे, सार्के = सूर्येयुते, तद नृपभयं = राजभयं भवति ॥ ३ ॥

ज्योति — यदि वर्षलग्नेश मुन्थहेश और वर्षेश ये तीनों आठवें भाव के स्वामी के साथ इत्थशाल योग करते हों तो वे मृत्यु कारक होते हैं । यदि दिन में वर्षप्रवेश हो और सूर्य–मङ्गल साथ हों तो राजभय होता है ॥ ३ ॥

सूर्ये मूसरिफे सितेन जनने वर्षेऽधिकारो तथा
केन्द्रे राजगदाद्भयं च रुगसृक्स्थानेऽधिकारीन्दुजे ।
सौम्ये क्रूरदृशा कुजस्य रुगसृग्दोषादिनांशुस्थिते
दग्धे बन्धमृती विदेशत ति प्राहुर्बुधे तादृशे ॥ ४ ॥

कुन्तला — जनने = जन्मकाले, सूर्ये = रवौ, सितेन = शुक्रेण, मूसरिफे सति तथा वर्षे अधिकारी पञ्चाधिकारिणामन्यतमाधिकारवान् सूर्यः केन्द्रे (१। ४। ७। १०) भवेत्, तदा राजगदात् राज्ञो गदाद्रोगाद्वा राजरोगात् = राजयक्ष्मादिरोगाद् भयं स्यात् । अथ जन्मकाले, अधिकारीन्दुजे = पञ्चाधिकारवति बुधे, असृक्स्थाने = मङ्गलक्षेत्रे मेषवृश्चिकान्यतरराशौ स्थिते, तदा रुग् = रोगः स्यात् । वा तादृशे सौम्ये = बुधे कुजस्य = भौमस्य, क्रूरदृशा (१। ४। ७। १०) दृष्टे तदाऽसृग्दोषात् । रक्तविकारात् रुग्रोगः स्यात् । पुनरपि तादृशे बुधे इनांशुस्थिते = सूर्यकराक्रान्ते, दग्धे = पापहते तदा विदेशतः = परदेशतः, बन्धमृती = बन्धनमरणे भवतः ॥ ४ ॥

ज्योति — यदि जन्मसमय में शुक्र के साथ मूसरिफ योग करता हुआ पंचाधिकारियों में से किसी एक के अधिकार में प्राप्त होकर केन्द्र में हो तो राजा से और रोग से भय होता है । जन्मकालीन मङ्गल की राशि पर बुध अधिकारी होकर विराजमान हो तो रोगकारक होता है । यदि बुध अधिकारी होकर मङ्गल को पाप दृष्टि से देखे तो रुधिरविकार होता है । यदि बुध सूर्य की किरणों में स्थित होकर अस्त या दग्ध हो तो विदेश में अथवा कारागार में मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

भौमस्थानेऽसिकार्रीदौ गुप्तं नृपभयं रुजः ।
मन्दोऽधिकारी खे लोहहतेः पीडाकरः स्मृतः ॥ ५ ॥

कुन्तला — जन्मनि, भौमस्य यत् स्थानं यत्र राशौ स्थितिस्तत्र राशौ वर्षे स्थित्वा पञ्चाधिकारमध्ये अधिकारयुक्ते इन्दौ = चन्द्रे सति, गुप्तं नृपभयं = राजभयं, तथा रुजो, रोगाः स्युः । अथ मन्दः = शनिः, अधिकारवान् भूत्वा यदि खे = दशमे स्थाने भवेत्, तदा लोहहतेः = लोहप्रहारात् पीड़ाकरः स्मृतः = कथितः ॥ ५ ॥

ज्योति — जिस राशि में मङ्गल हो उस राशि पर यदि अधिकारयुक्त चन्द्रमा बैठा हो तो गुप्त राजभय और रोग होता है । शनैश्चर यदि अधिकार में प्राप्त होकर दशम भाव में विराजमान हो तो लोह के प्रहार से पीड़ा होती है ऐसा समझे ॥ ५ ॥

भौमेऽष्टमे भयं वह्नेः प्रहारो वा नृपाद् भयम् ।
आरे खस्थे चतुष्पाद्भ्यः पातो दुःखं रुजोऽसृजा ॥ ६ ॥

कुन्तला —भौमे = कुजे, अष्टमे = वर्षलग्नादष्टमस्थे सति, वह्नेर्भयम् = अग्निभयं, वा प्रहारः = शस्त्रादिना आघातः, गोमहिषीघोटकेभ्यः, पातः = पतनं, दुःखं तथाऽसृजा = रक्तदोषेण रुजो रोगाः स्युः ॥ ६ ॥

ज्योति — यदि वर्षलग्न से आठवें भाव में मङ्गल हो तो अग्नि, हथियार और राजा से भय होता है । वर्षलग्न से दशम भाव में यदि मङ्गल हो तो वह किसी चौपाये घोड़ा आदि से गिरकर दुःख को प्राप्त हो और रक्त के विकार से रोगी होता है ॥ ६ ॥

वित्ताष्टगेज्यो धनहा यद्यब्देशोऽशुभेक्षितः ।
मन्दे द्यूने दुर्वचनापवादकलिभर्त्सनम् ॥ ७ ॥

कुन्तला — यदि वित्ताष्टगेज्यः = द्वितीयाष्टमस्थानस्थितगुरुः, अब्देशः = वर्षेशः, अशुभेक्षितः = पापदृष्टश्च भवति तदा धनहा = धनव्ययकरः स्यात् तथा मन्दे = शनौ, द्यूने = सप्तमे सति दुर्वचनापवादकलिभर्त्सनम् = दुर्ववचनं = अपशब्दादिकथनं, अपवादः = निन्दाख्यातिः = कलंकः, कलिः = कलहः भर्त्सनं = गञ्जनं चैतानि, प्राप्नोति ॥ ७ ॥

ज्योति — बृहस्पति वर्षेश होकर यदि दूसरे या आठवें भाव में विद्यमान हो और उसको पापग्रह देखते हों तो उसके धन का नाश होता है । यदि वर्षलग्न से सातवें भाव में शनि बैठा हो तो दुर्वचन, अपवाद, कलह और धिक्कार ये सब प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पतिते ज्ञे क्रूरदृशाऽऽरेत्थशाले मृतिं वदेत् ।
कुजहद्दास्थिते नाशः सौम्यादृष्ट्या शुभं भवेत् ॥ ८ ॥

कुन्तला — पतिते = पापाक्रान्ते, ज्ञे = बुधे, क्रूरदृशा (१ । ४ । ७ । १०) आरेत्थशाले = कुजेनेत्थशाले सतितदामृतिं = मरणं वदेत् । अथ पतिते ज्ञे कुजहद्दास्थिते तदा नाशः = धननाशः स्यात् । तत्र योगद्वयै सौम्यदृष्ट्या = शुभदृष्ट्या = शुभग्रहस्य मित्रदृष्ट्या शुभं भवेत् ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि बुध अशुभ होकर पापदृष्टि से देखता हुआ मङ्गल के साथ इत्यशाल करे तो उसकी मृत्यु हो । यदि मङ्गल की हद्दा में बैठा हो तो द्रव्यादिकों का नाश हो । यदि इन दोनों योगों में बुध की शुभग्रह देखते हों तो शुभ फल कहना चाहिए ॥ ८ ॥

लग्नाधिपे नष्टदग्धे योषिद्वादोऽशुभान्विते ।
जन्मन्यष्टमगो जीवो नाधिकारी कलिः पृथुः ॥ ९ ॥

कुन्तला — लग्नाधिपे = वर्षलग्नेशे, नष्टदग्धे = हीनबलेऽस्तंगते, अशुभान्विते = पापयुक्ते च सति तदा योषिद्वादः = स्त्रीविवादः, भवति । जन्मनि जीवो गुरुः, अष्टमगः = जन्मलग्नादष्टमस्थानवर्त्ती भवेत्तथाऽधिकारी न = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारवान्न, भवेत् तदा पृथुर्महान् कलिः कलहः स्यात् ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश नष्टबल होता हुआ अस्त तथा पापग्रहों से युक्त हो तो स्त्री कलह होता है । यदि अष्टमभाव में बृहस्पति हो और वर्ष का अधिकारी न हो तो बहुत कलह होता है ॥ ९ ॥

जयः शुक्रेक्षणादुक्तः प्रत्युत्तरवशेन तु ।
भौमेऽन्त्यगे धने सूर्ये वादात्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

कुन्तला — पूर्वयोगकर्तरि गुरौ शुक्रेक्षणात् शुक्रदृष्टिपातात्, प्रत्युत्तरवशेन = विवादेन जयः उक्तः । वा भौमे = कुजे, अन्त्ये = द्वादशे, सूर्ये धने = द्वितीये, तदा वादात् क्लेशं = कष्टं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

ज्योति — यदि बृहस्पति शुक्र से देखे जाते हों तो प्रत्युत्तर से उसकी जय हो । यदि मङ्गल वर्षलग्न से बारहवें भाव में विद्यमान हो और सूर्य दूसरे स्थान में बैठा हो तो बाद से क्लेश होता है ॥ १० ॥

रिपुगोत्रकलिर्भीतिः संख्ये कुजहतेऽब्दपे ।
दग्धो जन्मांगपो वर्षेऽष्टमो रोगकली दिशेत् ॥ ११ ॥

कुन्तला — अब्दपे = वर्षेशे, कुजहते = भौमपीड़िते सति, रिपुगोत्रकलिः = शत्रुभिर्गोत्रजैः = स्वकुलजैः, कलिः = कलहः, संख्ये = रणे, भीतिः = भयम्, भवति । वा जन्मांगपः = जन्मलग्नेशः, दग्धः = पापहतः, वर्षेऽष्टमः = अष्टमस्थानवर्त्ती भवेत्तदा, रोगकली = व्याधिकलहौ, दिशेत् = कथयेत् ॥ ११ ॥

ज्योति — यदि वर्षेश मङ्गल से पीड़ित हो तो उसके शत्रुओं और कुटुम्बियों से लड़ाई होती है और जिसके जन्मलग्न का स्वामी वर्षलग्न से आठवें भाव में हों तो उसको रोग और कलह होता है ॥ ११ ॥

सूत्यब्दयोरधिकृतो भौमस्थाने गुरुर्हतः ।
पापैर्वादः स्फुटोऽप्येवं तादृशीन्दौ शनेः पदे ॥ १२ ॥

कुन्तला — सूत्यब्दयोः = जन्मवर्षकालयोः, अधिकृतः = अधिकारी, गुरुर्जीवो, यदि भौमस्थाने जन्मकालिककुजाश्रितराशौ स्थितः, पापैः = पापग्रहैः, हतः = पीडितश्चेत्तदा, वादः = लोकैर्विवादः स्यात् । एवं = अमुना प्रकारेण, तादृशि = जन्मकालाधिकारवति, इन्दौ = चन्द्रे, शनेः पदे = जन्मकालिकशन्याक्रान्तराशिगते तदा स्फुटो विवादः स्यात् ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि जन्म काल और वर्षलग्न में बृहस्पति अधिकारी होकर मङ्गल की राशि में हो और पापग्रहों से पीड़ित हो तो लोगों के साथ स्फुट बाद होता है । यदि जन्मकाल और वर्षकाल में अधिकारी होकर चन्द्रमा जन्म के समय शनि की राशि पर स्थित हो और पापग्रहों से हत हो तो भी प्रकट कलह होता है ॥ १२ ॥

सूत्यब्दयोरधिकृते चन्द्रे बुधपदे हते ।
क्रूरैर्विदेशगमनं वादः स्याद्विमनस्कता ॥ १३ ॥

कुन्तला — सूत्यब्दयोः = जन्मवर्षकालयोः, अधिकृते = प्राप्तपञ्चाधिकारान्यतमाऽधिकारे, चन्द्रे, बुधपदे = जन्मबुधाक्रान्तराशौ स्थिते, क्रूरैः = पापैः = शनिरविकुजैः, हते = पीडिते, तदाविदेशगमनं = परदेशयात्रा, वादः = विवादः, विमनस्कता = वैमनस्यं भवति ॥ १३ ॥

ज्योति — यदि जन्म और वर्षकाल के अधिकार को प्राप्त चन्द्रमा बुध की राशि में स्थित हो और पापग्रहों से पीड़ित हो तो वह मनुष्य विदेश में जाय और अन्य जनों के साथ विवाद होता है ॥ १३ ॥

मेषे सिंहे धनुष्यारे वृषे रन्ध्रेऽसितो भयम् ।
मृतौ मृतीशलग्नेशौ मृत्युदौ पापदृग्युतौ ॥ १४ ॥

कुन्तला — आरे = कुजे, मेषे, वा सिंहे, धनुषि, वृषे वा राशौ स्थित्वा वर्षलग्नात् रन्ध्रे = अष्टमस्थाने सति, असितः = खड्गाब्द्रयं = प्रहारभयं स्यात् । पापदृग्युतौ मृतीशलग्नेशौ = अष्टमेशलग्नेशौ, मृतौ = मृत्युभावे = अष्टमे भवेत्तदा मृत्युदौ भवतः ॥ १४ ॥

ज्योति — मेष, सिंह और धन इन राशियों में से यदि किसी राशि में मङ्गल आठवें भाव में स्थित हो तो तलवार का भय होता है । यदि आठवें भाव का मालिक और लग्नेश आठवें हो और पापग्रहों से दृष्ट हो वा पापग्रहयुक्त हो तो मृत्यु देता है ॥ १४ ॥

यत्रर्क्षे जन्मनि कुजः सोऽब्दे लग्नोपगो यदा ।
बुधो वर्षपतिर्नष्टबलस्तत्र न शोभनम् ॥ १५ ॥

कुन्तला — जन्मनि जन्मसमये, कुजः = मङ्गलः (भौमः), यत्र = यस्मिन् ऋक्षे भवेत् तद्राशिर्यदि अब्दे लग्नोपगः = वर्षलग्नं स्यात् तत्र यदि बुधो वर्षपतिः = वर्षेशः, नष्टबलः = हीनबलः तदा तत्र वर्षे शोभनं फलं न भवति ॥ १५ ॥

ज्योति — मङ्गल जिस राशि में हो वही राशि यदि वर्षलग्न में भी हो और बुध वर्षेश व बलरहित होकर विद्यमान हो तो वह समस्त वर्ष अशुभ होता है ॥ १५ ॥

सार्के शनौ भौमयुते खाष्टस्थे वाहनाद्भयम् ।
सार्के भौमेऽष्टमस्थे तु पतनं वाहनाद्भवेत् ॥ १६ ॥

कुन्तला —सार्के = रविसहिते, भौमयुते = कुजयुते, शनौ, खाष्टस्थे = दशमाष्टमस्थानस्थे सति वाहनात्, भयं अर्थात पतनभयं स्यात् । अथ सार्के = सूर्यसहिते भौमेऽष्टमस्थे सति वाहनात् पतनं भवेत् ॥ १६ ॥

ज्योति — यदि सूर्य सहित शनि मङ्गल के साथ वर्षलग्न से आठवें भाव में बैठा हो तो वाहन से भय हो । यदि सूर्य सहित मङ्गल वर्षलग्न के आठवें भाव में हो तो सवारी से गिरने का भय होता है ॥ १६ ॥

सारेऽब्दपेऽष्टमे मृत्युश्चन्द्रेऽन्त्यारिमृतौ मृतिः ।
उदिते मृतिसद्मेशे निर्बले जीविते मृतिः ॥ १७ ॥

कुन्तला — सारे = भौमयुते, अब्दपे = वर्षेशे, अष्टमे सति मृत्युः स्यात् । तथा सकुजे चन्द्रे अन्त्यारिमृतौ = द्वादशष्टाष्टमे सति मृतिः स्यात् । वा मृतिसद्मेशे = मृत्युसहमेशे उदिते = कालांशवहिर्भूते, निर्बले = बलहीने सति जीविते मृतिः स्याज्जीवन्मरणं स्यादतीव कष्टमनुभवञ्जीवतीत्यर्थ ॥ १७॥

ज्योति — यदि मङ्गल के साथ वर्षेश आठवें भाव में हो तो मृत्यु होती है । यदि बारहवें आठवें या छठें किसी स्थान में चन्द्रमा हो तो भी मरण होता है । यदि मृत्युसहम का स्वामी उदय होकर बलहीन हो तो मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

पुण्यसद्मेश्वरः पुण्यसहमादष्टगो यदा ।
सूत्यष्टमेशः पुण्यस्थो मृतिदः पापदृग्युतः ॥ १८ ॥

कुन्तला — पुण्यसद्मेश्वरः पुण्यसहमाद्यदाऽष्टमगः पापदृग्युतस्तदा मृतिदो भवति वा सूत्यष्टमेशः = जन्मलग्नादष्टमेशः, पुण्यस्थः = पुण्यसहमे स्थितः पापदृग्युतः तदा मृतिदो भवति ॥ १८ ॥

ज्योति — यदि पुण्यसहम का स्वामी पुण्यसहम के अष्टम स्थान में हो और पापग्रहों से युक्त व दृष्ट हो तो मरण होता है । यदि जन्मकाल में आठवें स्थान का स्वामी वर्षप्रवेश के समय पुण्यसहम में स्थित हो या पापदृष्ट युक्त हो तो मृत्यु देने वाला होता है ॥ १८ ॥

सूत्यष्टमगतो राशिः पुण्यसद्मनि नाथयुक् ।
अब्दलग्नाष्टमर्क्षे वा चेदित्थं स्यान्मृतिस्तदा ॥ १९॥

कुन्तला —सूत्यष्टमगतो राशिः = जन्मलग्नादष्टमराशिर्वर्षे पुण्यसद्मनि = पुण्यसहमे स्थितः, नाथयुक् = पुण्यसहमेशयुतश्चेत्तदा मृत्युः स्यात् । वाऽब्दलग्नाष्टमर्क्ष = वर्षलग्नादष्टम स्थानं चेदित्थमर्थात् पुण्यसहमस्थीं पुण्यसहमेशयतं तदा मृतिः स्यात् ।। १९।।

ज्योति — यदि जन्मसमय में लग्न से आठवीं राशि पुण्यसहम में स्थित होकर अपने स्वामी से युक्त हो तो मृत्यु होती है ।। १९ ।।

पुण्यसद्माशुभाक्रान्तं मृतीशोऽन्त्यारिरन्ध्रगः ।
मुथहेशोऽब्दपो वापि मृत्युं तत्र विनिर्दिशेत् ।। २०।।

कुन्तला — पुण्यसद्म अशुभाक्रान्तं = पापयुतं, मृतीशोऽष्टमेशः, अन्त्यारिरन्ध्रगः = द्वादशषष्टाष्टमस्थानस्थितः, तदा मृत्युं विनिर्दिशेत् । अपि वा मुथहेशः वा वर्षेशः पापाक्रान्तः, द्वादशषष्ठाष्टमस्थानगतस्तदाऽपि मृत्युं विनिर्दिशेत् ।। २०।।

ज्योति — यदि पुण्यसहम पापग्रहों से युक्त हो और अष्टमेश बारहवें, छठें इन स्थानों में से किसी स्थान में स्थित हो तो मृत्यु हो । यदि मुन्था का स्वामी और वर्षेश पापग्रह युक्त होकर बारहवें, छठे और आठवें इन स्थानों में से किसी स्थान में हो तो मृत्यु कहे ।। २० ।।

सक्रूरे जन्मपे मृत्यौ मृतिश्चेदिन्थिहाऽऽर्कियुक् ।
भौमक्षुतेक्षणे तत्र मृत्युः स्यादात्मघाततः ।। २१।।

कुन्तला — सक्रूरे = सपापे, जनमपे = जन्मलग्नेशे, मृत्यौ = वर्षलग्नादष्टमस्थे तदा मृतिः स्यात् । वा चेत् = यदि, इन्थिहा = मुथहा, आर्कियुक् = शनियुक्, तदाऽपि मृतिः स्यात् । वा उक्तयोगद्वये भौमक्षुतेक्षणे = कुजेन क्षुतदृष्ट्या (१। ४। ७। १०) दृष्टे, तदा आत्मघाततः, मृत्युर्मरणं स्यात् ।। २१।।

ज्योति — यदि जन्मलग्न का स्वापी पापग्रहों के साथ आठवें स्थान मे हो तो मृत्यु होती है । यदि मुन्था किसी स्थान में शनैश्चर से युक्त हो और उसको मङ्गल शत्रु दृष्टि से देखता हो तो उस मनुष्य की आत्मघात से मृत्यु होती है ।। २१।।

मन्दोऽष्टमे मृतीशेत्थशालान्मृत्युकरः स्मृतः ।
शुभेत्थशालात्सर्वेऽपि योगा नाशुभदायकाः ।। २२।।

कुन्तला — मन्दः = शनिः, अष्टमे स्थितः, तत्र मृतीशेत्थशालात् = अष्टमेशग्रहकृतेत्थ–शालयोगात् मृत्युकरो योगः स्मृतः कथितः । अथ सर्वत्र शुभेत्थशालात्सर्वेऽपि योगाः = अशुभयोगाः, अशुभदायका न भवेयुः ।। २२ ।।

ज्योति — यदि शनैश्चर आठवें घर में स्थित होकर अष्टमेश के साथ इत्यशाल करे तो वह मृत्युकारक होता है । पूर्वोक्त सम्पूर्ण मृत्युयोगों में अरिष्टकारक ग्रहों के साथ इत्थशाल योग हो तो वे अरिष्टकारक ग्रह अशुभ फलदायक होते हैं ।। २२ ।।

सूतिरन्ध्रपतिर्मन्दोऽष्टमोऽब्दे लग्नपेन चेत् ।
इत्थशाली क्रूरदृशा तत्कालं मृत्युदायकः ॥ २३ ॥

कुन्तला — सूतिरन्ध्रपतिः = जन्माष्टमेशः, यदि शनिः स्यादर्थाद्मिथुनकर्कयोरन्यतरं जन्मलग्नं स्यात्तदाऽष्टमेशः शनिरेव, स यदि वर्षे लग्नेशे क्रूरदृशा (१। ४। ७। १०) दृष्ट्या इत्थशालयोगकर्त्ता भवेत् तदा तत्कालं = तत्क्षणमेव मृत्युदायकः स्यात् ॥ २३ ॥

ज्योति — यदि अष्टम स्थान का स्वामी होकर शनि वर्षकाल में आठवें स्थान में स्थित हो और वर्षेश के साथ शत्रु दृष्टि से इत्थशाल योग करता हो तो उस प्राणी की मृत्यु होती है ॥ २३ ॥

पुण्यपद्मनि विधुस्तनौ तथाऽस्ते खलो मृतिरथार्थरिष्फगौ ।
मृत्युदौ खलखगावथो जनुर्वर्षवेशतनुपौ मृतौ मृतिः ॥ २४॥

कुन्तला — विधुश्चन्द्रः पुण्यसद्मनि, तनौ = लग्ने च भवेदर्थात् पुण्यसहमचन्द्रौ लग्नगतौ भवतः, तथा खलः पापग्रहोऽस्ते सप्तमे भवेत्तदा मृत्युः स्यात् । अथ खलखगौ = पापग्रहौ, अर्थरिष्फगौ = द्वितीयद्वादशस्थानस्थितौ, तदापि मृत्युदौ = मृत्युकरौ भवतः । अथो यदि जनुर्वर्षवेशतनुपौ = जन्मलग्नेशवर्षलग्नेशो, मृतौ = अष्टमस्थानगतौ तदा मृतिः स्यात् ॥ २४॥

ज्योति — यदि पुण्य सहम में चन्द्र लग्न में और पापग्रह सप्तम में हो, या दो पापग्रह दूसरे, बारहवें में हो अथवा जन्मलग्नेश और वर्षलग्नेश अष्टमभाव में विराजमान हो तो मरण होता है ॥ २४ ॥

अथ नवम (भाग्य) भावविचारः

भौमेऽब्दपे त्रिनवगे क्रूरायुक्ते बलान्विते ।
गुणवहस्तदा मार्गश्चिरं कार्यं स्थिरं ततः ॥ १ ॥

त्रिधर्मस्थोऽब्दपः सूर्यः कम्बूली मार्गसौख्यदः ।
अन्यप्रेषणयानं स्यात्स चेन्नाधिकृतो भवेत् ॥ २ ॥

कुन्तला — यदा भौमे = कुजे, अब्दपे = वर्षेशे, त्रिनवगे = ३। ९ स्थानस्थे, क्रूरायुक्ते = पापयोगवञ्चिते, बलान्विते = वीर्ययुक्ते सति, तदा मार्गः = पन्थाः, गुणावहः = शुभप्रदः = जपलाभक्षेमकरः स्यात् । ततस्तस्मात् कार्य = जीविकादिकृत्यं, चिरं = अधिक समय पर्यन्तं स्थिरं = स्थायि भवति ॥ १॥

अब्दपः सूर्यः त्रिधर्मस्थः, ३। ९ स्थानस्थितः कम्बूली = कम्बूलयोगकर्त्ता च भवेत्तदा मार्गे = पथि, सौरूयं = लाभजयकुशलादिकं भवति । सः = वर्षेशेसूर्यश्चेदनधिकृतः = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारशून्यः स्यात्तदा अन्यप्रेषणयानं = परपुरुषप्रेरणया गमनं भवेत् ॥ २ ॥

ज्योति — यदि मङ्गल वर्षेश होता हुआ बलवान् हो और वर्षलग्न से तीसरे अथवा नवें भाव में हो तो उस मनुष्य को मार्ग चलने से लाभ हो और चिरस्थायी कार्य होता है । यदि वर्षेश सूर्य कम्बूल योग करता हुआ वर्षलग्न से तीसरे व नवें घर में हो तो यात्रा में सुखदायक होता है । यदि सूर्य किसी अधिकार में न हो तो किसी अन्य पुरुष द्वारा यात्रा होती है ॥ १—२॥

शुक्रेऽब्दपे त्रिनवगे मार्गे सौख्यं विलोमगे ।
अस्ते वा कुगतिः सौम्ये देवयात्रा तथाविधे ॥ ३ ॥

कुन्तला — अब्दपे = वर्षेशे, शुक्रे त्रिनवगे = ३। ९ स्थानस्थे, तदा मार्गे सौख्यं = जयलाभकुशलादिकं स्यात् । अथ तादृशे वर्षेशशुक्रे विलोमगै = वक्रिणि, सति, वा अस्ते = सूर्यकराक्रान्ते सति, तदा कुगतिः = क्लेशहानिपराजयप्रदं गमनं भवति । अथ तथाविधे = बलयुक्ते वर्षेशे त्रिनवगे, सौम्ये = बुधे सति देवयात्रा = देवतीर्थदर्शनमज्जनकरी यात्रा भवति ॥ ३ ॥

ज्योति — यदि शुक्र वर्षेश होता हुआ वर्षलग्न से तीसरे या नवें घर में हो तो उसको मार्ग में सुख हो । यदि उसके पहिले शुक्र वक्री हो अथवा सूर्यसान्निध्यवश अस्त हो जाय तो उसका गमन ठीक नहीं होता । यदि बुध वर्षेश और बलवान् होता हुआ वर्षलग्न से तीसरे या नवें भाव में स्थित हो तो देवदर्शन के उद्देश्य से यात्रा होती है ॥ ३ ॥

क्रूरार्दिते कुयानं स्याद्गुरावेवं विचिन्तयेत् ।
इत्थशाले लग्नधर्मपत्योर्यात्राऽस्त्यचिन्तिता ॥ ४ ॥

कुन्तला — यदि तादृशे वर्षपतौ बुधे क्रूरार्दिते = पापपीड़िते सति तदा कुयानं = हानिकृद्भ्रमनं स्यात् । एवं गुरौ वर्षेशे बलयुक्ते त्रिनवगे, पापयोगदृष्टिरहिते सति धर्मयात्रा, अन्यथा कुयात्रा भवति । यदि सर्वत्र योगे लग्नधर्मपत्योः = लग्नेशनवमेशयोरित्थशाले सति तदा अचिन्तिता = अविचारिता, आकस्मिकी यात्रा = परदेशगमनम्, अस्ति = भवति ॥ ४॥

ज्योति — यदि बृहस्पति वर्षेश होकर वर्षलग्न से तीसरे या नवें स्थान में स्थित हो तो भी यात्रा हो और गुरु वर्षेश होकर पापपीड़ित वा पापयुक्त हो तो कुयात्रा होती है । वर्षलग्नेश के साथ नवमभाव के स्वामी का इत्थशाल योग हो तो अचिन्तित यात्रा होती है ॥ ४॥

लग्नेशो धर्मपं यच्छन् स्वं महश्चिन्ताध्वदः ।
एवं लग्नाब्दपोर्योगे मुथहांगपयोरपि ॥ ५ ॥

कुन्तला — लग्नेशो धर्मपं = नवमेशं प्रति स्वं = निज, महस्तेजः, यच्छन् सन् अर्थात् दीप्तांशान्तर्गतो भूत्वा स्थितस्तदा चिन्ताध्वदः = चिन्तायुक्तं मार्गगमनं स्यात् । एवममुना प्रकारेण लग्नाब्दपोः = लग्नेशवर्षेशयोर्योगे, वा मुथहांगपयोः = मुथहेश वर्षलग्नेशयोः, योगे = मुथशिले सति चिन्तितं गमनं स्यात् ॥ ५ ॥

ज्योति — यदि वर्षलग्नेश धर्मेश के साथ इत्थशाल योग करे तो वह उस मनुष्य से चिन्तित गमन कराता है । वर्षलग्नस्वामी वर्षेश के साथ इत्थशाल योग करे तथा मुथहा स्वामी वर्षलग्न स्वामी के साथ मुथशिल योग करे तो भी चिन्तित गमन होता है ॥ ५ ॥

गुरुस्थाने कुजे धर्मे सद्यात्रा भृत्यवित्तदा ।
ज्ञस्थाने लग्नपो भौमो दृष्टः सद्यानसौख्यदः ॥ ६ ॥

स्वस्थानगो वा बलवान् लग्नदर्शी सुयानदः ।
जन्माधिकारी ज्ञो मन्दस्थाने क्रूरयुतो यदा ॥ ७ ॥

पन्था रिपोर्झकटकाद् गुरुरध्वेन्दुजीवयोः ।
धर्मे शनिर्नाधिकारी पन्थानमशुभं वदेत् ॥ ८ ॥

कुन्तला — कुजे = भौमे, गुरुस्थाने = जन्मकालिकजीवाक्रान्तराशिस्थिते, तथा धर्मे = वर्षलग्नात् नवमे सति भृत्यवित्तदा = सेवकधनलाभकारिका, सद्यात्रा = शुभयात्रा भवति । वा लग्नपः = लग्नस्वामी, भौमः = कुजः, ज्ञस्थाने = जन्मकालिकबुधाक्रान्तराशिस्थः, स्यात् तथा शुभैर्दृष्टः स्यात्तदा सद्यानसौख्यदः भवतीति ॥ ६ ॥

वा बलवान् कुजः, जन्मवर्षकालयोरपि स्वस्थानगः = निजराशिगतः, लग्नदर्शी = वर्षलग्नं पश्यति, वर्षलग्नान्नवमस्थाने च भवेत्तदा सुयानदः = शुभकरगमनफलदः स्यात् । तथा ज्ञः = बुधः, जन्माधिकारी = जन्मलग्नेशो भूत्वा, वर्षे मन्दस्थाने = जन्मकालिकशनिग्रहाक्रान्तराशौ तिष्ठति, क्रूरयुतः = पापग्रहसंबुतश्च यदा भवति तदा रिपोः = शत्रोः, झकटकात् = विरोध–विवादकलहात्, पन्था — मार्गगमनं भवेत् । तथा इन्दुजीवयोश्चन्द्रगुर्वोरेकतरो ग्रहः, जन्मकालिकशन्याक्रान्तराशौ नवमे च भवेत् तदा गुरुः = महान् दीर्घतरः, अध्वा = मार्गः स्यात् । तथा यदि नाधिकारी = पञ्चाधिकाररहितः, शनिर्यदि धर्मे = नवमेभवेत्तदा पन्थानम्, अशुभं = हानिकरं वदेत् = कथयेत् ॥ ७–८ ॥

ज्योति — जिस राशि में बृहस्पति हो और उससे मङ्गल नवम भाव में हो तो उसे यात्रा में सेवक और धन की प्राप्ति होती है । जन्मकाल में बुध जिस राशि में हो, उस राशि में वर्षसमय मङ्गल विद्यमान हो और उसको वर्षलग्न स्वामी देखता हो तो उस मनुष्य की समीचीन यात्रा हो और उसे उत्तम सवारी तथा सौख्य प्राप्त हो । यदि मङ्गल अपने घर अर्थात् मेष या वृश्चिक राशि में स्थित हो, वर्षकाल में अपनी राशि पर बली होकर लग्न को देख रहा हो और नवम घर में स्थित हो तो सुन्दर यात्रा होती है और अच्छी सवारी मिलती है । यदि बुध अधिकारी होकर शनि की राशि को प्राप्त होता हुआ नवम स्थान में बैठा हो और पापग्रहों से युक्त हो तो शत्रु के कारण यात्रा होती है । चन्द्रमा के घर में बृहस्पति आदि अधिकारी होकर जन्मकालीन शनि की राशि में होकर नवम स्थान में बैठा हो और पापग्रहों से युक्त हों तो शत्रु के साथ कलह

वश बहुत दूर की यात्रा होती है । यदि वर्षकाल में शनि पंचाधिकारियों से रहित होकर नवम भाव में विद्यमान हो तो यात्रा अशुभ अर्थात हानिकर कहनी चाहिये ।। ६–८।।

इत्थं गुरौ दूरयात्रा नृपसंगस्ततो गुणः ।
कुजेऽब्दपे नष्टबले स्वजनाद्दूरतो गतिः ।। ९।।

कुन्तला — इत्थं = अनेन प्रकारेण, अर्थात् अधिकारहीने नवमस्थानगते च गुरौ = जीवे सति, दूरयात्रा = अधिकान्तरितप्रदेशगमनं भवेत्, नृपसंगः = राजमिलनं, ततः = संमेलनात्, गुणः = धनलाभादिकश्च भवति । तथा अब्दपे = वर्षेशे, कुजे = भौमे, नष्टबले सति नवमस्थानस्थिते च सति स्वजनात् = निजपरिचितलोकात्, दूरतः = अधिकदूरे, गतिर्गमनं स्यात् ।। ९ ।।

ज्योति — इसी प्रकार यदि बृहस्पति अधिकारहीन होकर नवम स्थान में हो तो राजा के साथ दूर गमन होता है और उस यात्रा में किसी राजा के संग से द्रव्य मिलता है । यदि मङ्गल वर्षेश होकर पंचवर्गी बल से नष्टबली होकर वर्षलग्न से नवम स्थान में स्थित हो तो अपने कुटुम्बवर्ग से दूर होना पड़ता है ।। ९ ।।

द्यूनेन्थिहा धर्म इन्दौ सबलेऽध्वा विदेशगः ।
वर्षेशो बलवान्पापायुतः केन्द्रेऽधिकारवान् ।। १० ।।

अधिकारे गतिः संख्ये सेनापत्येऽपि वा वदेत् ।
एवं बुधे कुजे जीवयुतेऽर्कान्निर्गते पुनः ।। ११ ।।

परसैन्योपरि गतिर्जयः ख्यातिसुखावहः ।
जीवान्नवमगे भौमे शुभा यात्रा नृणां भवेत् ।। १२ ।।

कुन्तला — द्यूनेन्थिहा = सप्तममुथहा भवेत्तथा सबले = बलयुक्ते इन्दौ = चन्द्रे, धर्मे = नवमे तदा विदेशगः = परदेशगः, अध्वा = मार्गः स्यात् ।

अथ वर्षेशः = थः कोऽपि ग्रहो वर्षेशो भूत्वा बलवान्, पापायुतः = पापयोगरहितः, केन्द्रे १।४।७।१० स्थितः, तथाऽधिकारवान् = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारयुक्तश्च भवेत् तदा अधिकारे गतिर्गमनं, वा संख्ये = संग्रामे, गतिः = गमनं स्यात् अपि वा सेनापत्ये = सेनानायकेऽपि गतिः स्यात् । एवं बुधे कुजे च बलयुक्ते, जीवयुते = गुरुसमन्विते अर्कात् = सूर्यात्, निर्गते = कालांशबहिर्गते सति अर्थादस्तंगते न सति, पुनः परसैन्योपरि गतिः = परसैन्यजयार्थ गतिर्गमनं स्यात् । ख्यातिसुखावहः जयः = शत्रुपराजयः स्यात् । अथ जीवात् = गुरुग्रहात्, भौमे = कुजे, नवमगे = नवम स्थानगते सति, नृणां = नाराणां यात्रा, शुभा = लाभकारिणी भवति ।। १०–१२।।

ज्योति — यदि सप्तम भाव में मुन्थहा और नवम भाव में बलवान् चन्द्रमा हो तो विदेश की यात्रा लाभदायक होती है । यदि वर्षेश बलवान् तथा अधिकारी होकर केन्द्र १।४।७।१० स्थान में स्थित हो तो उसका रणभूमि में सेनापति होकर गमन होता

है । बुध और मङ्गल बलिष्ठ व उदित बृहस्पति से युक्त होकर केन्द्र में हों तो सेना के ऊपर धावा करना होता है । जिससे वह मनुष्य जय, ख्याति और सुख प्राप्त करता है । वर्षप्रवेशकाल में यदि बृहस्पति के साथ मङ्गल नवम स्थान में विद्यमान हो तो मनुष्यों की शुभ यात्रा होती है ॥ १०–१२॥

अथ दशम (राज–व्यापार) भावविचारः

सबलेऽब्दपतौ खस्थे राज्यार्थसुखकीर्तयः ।
स्थानान्तराप्तिरन्यस्मिन्केन्द्रे गृहसुखाप्तयः ॥ १ ॥

इत्थ बला रविर्भूस्थः पूर्वार्जितपदाप्तिकृत् ।
एकादशेऽस्मिन्सख्यं स्यान्नृपामात्यगणोत्तमैः ॥ २ ॥

कुन्तला — सबले = दशाधिकबलयुक्ते, अब्दपतौ = वर्षेशे, खस्थे = दशमस्थानस्थे सति राज्यार्थसुखकीर्त्तयः = आधिपत्यानन्दयशोलाभाः स्युः । वा सबले वर्षेशे अन्यस्मिन् केन्द्रे = दशमस्थानेतरकेन्द्रान्यतमस्थाने (१। ४। ७) भवेत्, तदा स्थानान्तराप्तिः = अन्यस्थानलाभः, गृहसुखाप्तयः = गार्हस्थ्यसुखप्राप्तयः स्युः ॥ इत्थममुना प्रकारेण बली वर्षेशो रविर्भूस्थः = चतुर्थस्थानगतः स्यात्तदा पूर्वार्जितपदाप्तिकृत् = प्रागर्जितस्थानलाभकरः भवति । वा बलिनि वर्षेशेऽस्मिन् = सूर्ये, एकादशे विद्यमाने सति नृपामात्यगणोत्तमैः = भूपैः मन्त्रिजनप्रधानैश्च, संख्यं = मैत्री स्यात् ॥ १–२ ॥

ज्योति — यदि बलसहित वर्षेश दशम भाव में विद्यमान हो तो राज्य, धन, सुख और कीर्ति ये सब प्राप्त होते हैं । अन्य ग्रह केन्द्र (१। ४। ७। १०) में बैठे हों तो घर की प्राप्ति और गृहसुख मिलता है । यदि वर्ष का मालिक बलवान् होकर वर्षलग्न से चौथे घर में बैठा हो तो राजा और उत्तम मंत्रि गणों से मित्रता होती है ॥ १–२ ॥

रविस्थानेन्थिहा लग्ने खे वा राज्याप्तिसौख्यदा ।
नीचेऽर्कः पापसयुक्तो भूपाद्बन्धवधं दिशेत् ॥ ३ ॥

कुन्तला — रविस्थानेन्थिहा = रब्याक्रान्तराशौ स्थिता मुथहा, जन्मवर्षयोरप्येकराशावे–वार्कस्य स्थितत्त्वात्प्राचीनटीकायां 'जन्मकालिकसूर्याधिष्ठितराशौ' इति व्यर्थमेवेति विज्ञेयम् । वा लग्ने = वर्षलग्ने, वा खे = दशमे भवेत्तदा राज्याप्तिसौख्यदा = राज्यलाभसुखदायिनी स्यात् । अथवा अर्कः = सूर्यः पापसंयुक्तः नीचे = तुलाराशौ स्थितस्तदा भूपाद्बन्धवधं कारागारनिवासं वा प्राणनाशं दिशेत् = कथयेत् ॥ ३ ॥

ज्योति — यदि जन्मसमय में सूर्यस्थित राशि लग्न में हो और मुथहा दशम भाव में बैठी हो तो उस मनुष्य को राज्य और सुख देती है । यदि सूर्य नीच राशि में प्राप्त होकर पापग्रहों से युक्त और वर्षलग्न से दशम स्थान में हो तो राजा की आज्ञा से उस मनुष्य का बन्धन और वध होता है ॥ ३ ॥

सिंहे रविर्बलो खस्थः स्थानलाभो नृपाश्रयः ।
स्थानान्तराधिकाराप्तिरिन्दुरारपदे बली ।। ४ ।।

कुन्तला — रविः = सूर्यः, सिंहे = सिंहराशौ वर्त्तमानः, बली भवन् खस्थः = वर्षलग्नाद्दशमस्थानगतः । अर्थाद्भद्रपदमासे मध्याह्ने वृश्चिकलग्ने सति सिंहस्थः सूर्यो दशमस्थो भवति । तदा स्थानलाभः, नृपाश्रयः = राजाश्रयश्च भवति । अथवा बली इन्दुश्चन्द्रः आरपदे = जन्मकालिककुजाश्रितराशौ भवेत् तदा स्थानान्तराधिकाराप्तिः = अन्यस्थानप्रभुत्वप्राप्तिः स्यात् ।। ४।।

ज्योति — यदि सिंह राशि और दशम स्थान में बलवान् सूर्य बैठा हो तो उस मनुष्य को स्थानलाभ हो और राजा का आश्रय मिले । यदि जन्मसमय में बलवान् चन्द्रमा विराजमान हो तो अन्य स्थान में अधिकार प्राप्त होता है ।। ४ ।।

खेशलग्नेशवर्षेशेत्थशालो राज्यदायकः ।
वर्षेशे राज्यसहमेऽर्केत्थशाले महानृपः ।। ५ ।।

कुन्तला — खेशः = दशमेशः, लग्नेशः = वर्षलग्नेशः, वर्षेशश्चैतेषां यदीत्थशालस्तदा राज्यदायकः भवति । वा वर्षेशे राज्यसहमे स्थितेऽर्केत्थशाले = सूर्येण इत्थशालयोगे सति महानृपः = विशेषधनवान् राजा भवेत् ।। ५ ।।

ज्योति — यदि दशम भाव का स्वामी, वर्षलग्नस्वामी और वर्षेश इन तीनों का परस्पर इत्थशाल योग हो तो राज्य मिले । यदि वर्षेश राज्यसहम में हो और सूर्य के साथ इत्थशाल योग करता हो तो वह बड़ा भारी राजा हो ।। ५ ।।

शनिस्थाने कुजः पश्यन्मुथहां पापकर्मतः ।
नृपभीतिं वित्तनाशं दद्याद्दशमगो यदि ।। ६ ।।

कुन्तला — कुजः = मङ्गलः, शनिस्थाने = जन्मकालिकशनिराशिस्थः, वर्षलग्नाद् दशमस्थानगतः, मुथहां पश्यन् सन् पापकर्मतः = दुराचारतः, नृपभीतिं = राजभयं, वित्तनाशं = धननाशं दद्यात् ।। ६।।

ज्योति — यदि जन्म समय में शनैश्चर की राशि पर मङ्गल वर्षलग्न से दशम घर में हो और वह मुथहा को देखता हो तो उस मनुष्य को पापकर्म से राजभय हो और धन की हानि होती है ।। ६ ।।

ईदृशे त्रिनवस्थेऽस्मिन्दग्धनष्टऽषसंचयः ।
मन्दोऽब्दपोऽधिकारी त्रिधर्मगो धर्मवृद्धिदः ।। ७ ।।

कुन्तला — ईदृशे = जन्मशनिराशिगते भौमे त्रिनवस्थे = ३।९ स्थानगते, दग्धनष्टे = अस्तगते पापयुतदृष्टे, हीनबलेश्व सति, अपसञ्चयः = पापवृद्धिः स्यात् । वा मन्दः = शनिः, अधिकारी = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारवान् भूत्वा, अब्दपः = वर्षेशः त्रिधर्मगः = ३। ९ स्थानस्थितस्तदा धर्मवृद्धिदः = पुण्यसञ्चयकरः, भवति ।। ७ ।।

ज्योति — मङ्गल शनि की राशि में बैठा हो, वर्षप्रवेश उसी राशि पर विराजमान हो और अस्तंगत व बलरहित होता हुआ शनि यदि वर्षलग्न से तीसरे व नवें भाव में हो तो उसको पापवृद्धि से क्लेश होता है । यदि शनि वर्षेश अथवा अधिकारी होकर वर्षलग्न से तीसरे व नवें भाव में हो तो धर्म की वृद्धि हो और सुख प्राप्त हो ॥ ७ ॥

तस्मिन्दग्धे विनष्टे च पापकृद्धर्मनिन्दकः ।
ईदृशो दृग्फलं सूर्ये गुरावित्थं नयार्थभाक् ॥ ८ ॥

कुन्तला — तस्मिन् वर्षेशे शनौ दग्धे = अस्तंगते, विनष्टे = नष्टबले सति पापकृत् = निन्दितकर्मकरः, धर्मनिन्दकः = नास्तिकः, भवति । ईदृशि नष्टबले पापयुतदृष्टे सूर्ये वर्षेशे सति ईदृक् फलं = पूर्वोक्तफलं = (पापकृद्धर्मनिन्दकः) इति भवति । इत्थममुना प्रकारेण गुरौ सति नयार्थभाक् विनयधनयुक्तः स्यात् ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि वर्षेश होकर अधिकारों व दग्ध (अस्तगत) वा बलवान् वा बलरहित होकर वर्षलग्न से तीसरे व नवें भाव में विराजमान हो तो वह मनुष्य पापी व धर्मनिन्दक होता है । यदि सूर्य वर्षेश होकर अधिकार व अस्तंगत व हीनबल होता हुआ वर्षलग्न से तीसरे, नवें घर में हो तो भी उस प्राणी को पूर्वोक्त फल देता है । यदि बृहस्पति वर्षेश अधिकारी दग्ध या बलरहित होता हुआ वर्षलग्न से तीसरे या नवें में स्थित हो तो वह पुरुष नीति मार्ग से धन पाता है ॥ ८ ॥

तत्रस्था मुथहा पुण्यागमं पापं खलाश्रयात् ।
सूतौ खेशे रवौ खस्थे वर्षे मुथशिलं यदि ॥ ९ ॥

लग्नाधिपेन राज्याप्तिरुक्ता वीर्यानुमानतः ।
धर्मकार्माधिपौ दग्धौ धर्मराज्यक्षयावहौ ॥ १० ॥

कुन्तला — मुथहा यदि तत्रस्था = तृतीयनवस्थानगता स्यात्तदा शुभाश्रयात् पुण्यागमं खलाश्रयात् = पापाश्रयात् पापं करोति । तथा सूतौ जन्मकाले, खेशे = दशमेशे, रवौ सूर्ये, वर्षकाले खस्थे = दशमस्थे सति, तथा लग्नाधिपेन यदि तस्य मुथशिलं स्यात्तदा वीर्यानुसारतः = लग्नेशदशमेशयोर्बलानुसारतः, रज्याप्तिः = राज्यलाभो भवति । अर्थात् जन्मकाले वृश्चिकलग्नं स्यात् तदा दशमसिंहराशेरधिपः सूर्यः स्यात्, वर्षे दशमस्थाने स्यात्तत्र लग्नकार्येशयोरित्थशाले सति राज्यलाभः स्यात् । अथ धर्मकर्माधिपौ = नवमेशदशमेशौ, दग्धौ = अस्तंगतौ स्यातां तदा धर्मराज्यक्षयावहौ = धर्मक्षयराज्यनाशकरौ भवतः ॥ ९–१० ॥

ज्योति — यदि तीसरे या नवें घर में मुन्थहा हो तो उसको पुण्य का लाभ हो । यदि मुन्थहा को पापग्रह देखते हों वा पापग्रहों से संयुक्त हो तो पाप फल होता है । जन्मलग्न से दशमभाव का स्वामी सूर्य आदि दशम घर में बैठा हो और वर्षलग्न स्वामी के साथ यदि इत्यशाल योग हो तो उसको बलानुसार राज्य की प्राप्ति हो । धर्म भाव का स्वामी धर्म का क्षय और दशम भाव का स्वामी राज्य का नाश करता है ॥ ९–१० ॥

अथैकादश (आय) भाव विचारः

अब्दपे ज्ञेऽर्थगे लाभो वाणिज्याच्छुभदृग्युते ।
सेन्थिहेऽस्मिन् लग्नगते लाभः पठनलेखनात् ।।

कुन्तला —— अब्दपे = वर्षेशे, ज्ञे = बुधे, अर्थगे = धनगे,(वर्षलग्नाद्द्वितीयस्थानगते) शुभदृग्युते = शुभग्रहेण दृष्टे युते, तदा वाणिज्यात् = व्यापारात्, लाभः स्थात् । वा सेन्थिहे = मुथहायुक्ते वर्षेशे बुधे ! लग्नगते शुभग्रहदृष्टियोगे च सति पठनलेखनात् धनलाभः स्यात् ।। १ ।।

ज्योति —— बुध वर्ष का स्वामी होकर वर्षलगन से दूसरे स्थान में हो और उसको शुभ ग्रह देखते हों अथवा वह शुभ ग्रहों से युक्त हो तो जातक को व्यापार कर्म से लाभ होता है । यदि वर्षस्वामी होकर बुध शुभ ग्रहों से युक्त व दृष्ट होकर मुन्थहा सहित वर्षलग्न में बैठा हो तो लिखने–पढ़ने से धनलाभ होता है ।। १ ।।

अस्मिन्षष्ठाष्टान्त्यगते सक्रूरे नीचकर्मकृत् ।
क्रूरेक्षणेन वा लाभोऽस्तंगते लिखनादितः ।। २ ।।

कुन्तला ——अस्मिन् = वर्षेशे बुधे वर्षलग्नात् षष्ठाष्टान्त्य (६। ८। १२) गते, सक्रूरे = रविकुजशनिक्षीणचन्द्रयुते तदा नीचकर्मकृत् = स्वनीचजातिकार्यकरः स्यात् । अथ तादृशे वर्षेशबुधे क्रूरेक्षणे = पापदृष्टे सति लाभः न भवति । वा तादृशे बुधे अस्तंगते सति लिखनादितः = लेखकर्मतः, लाभः न भवेदिति ।। २ ।।

ज्योति —— बुध यदि वर्षलग्न से छठें, आठवें, बारहवें इन स्थानों में से किसी स्थान में हो और पापग्रहों से युक्त हो तो वह पुरुष नीच कर्म करने वाला होता है । यदि बुध वर्षेश होकर छठें, आठवें या बारहवें भाव में हो और पापग्रहों से देखा जाता हो वा अस्तंगत हो तो लिखने–पढ़ने से लाभ नही होता है ।। २ ।।

जीवेऽब्दपे क्रूरहते लग्ने हानिर्भयं नृपात् ।
अस्मिन्नधिकृते द्यूने व्यवहाराद्धनाप्तयः ।। ३ ।।

कुन्तला —— जीवे = गुरौ, अब्दपे = वर्षेशे, क्रूरहते = पापपीडिते, लग्ने = वर्षलग्नस्थाने सति तदा हानिः = धनहानिः । नृपात् = राजतः भयम् । अस्मिन् = जीवे, अधिकृते = पञ्चाधिकारान्यतमाधिकारशालिनि, द्युने = वर्षलग्नात्सप्तमस्थे तदा व्यवहारात् = क्रयविक्रयाल्लाभः स्यात् ।। ३ ।।

ज्योति —— यदि बृहस्पति वर्षेश हो और पापग्रह से पीड़ित होकर वर्षलग्न में हो तो धन की हानि और राजा से भय होता है । वर्षेश बृहस्पति यदि उच्चाधिकार आदि को प्राप्त होकर वर्षलग्न से सातवें घर में हो तो वाणिज्य से धन का उत्तम लाभ हो ।। ३ ।।

लग्नायेशेत्थशाले स्याल्लाभः स्वजनगौरवम् ।
सर्वेऽपि लाभ वित्ताप्त्यै सबला निर्बला न तु ॥ ४ ॥

कुन्तला — लग्नायेशेत्थशाले = वर्षलग्नेशलाभेशयोरित्थशाले सति लाभः = धनलाभः स्यात् स्वजनगौरवं स्यात् । सर्वे शुभाः पापा वा सबला ग्रहा लाभे स्थितास्तदा वित्ताप्त्यै भवन्ति । निर्बला ये केचन ग्रहा लाभे स्थितास्तदा वित्ताप्त्यै न तु भवन्ति ॥ ४ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश और लाभेश इन दोनों का परस्पर इत्थशाल योग हो तो उस मनुष्य को लाभ हो और अपने जनों में मान मिले । यदि सब ग्रह बली होकर लाभस्थान में हों तो द्रव्य की प्राप्ति हो, यदि सब ग्रह निर्बल होकर लाभभाव में विद्यमान हों तो धन की प्राप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥

सवीर्यो ज्ञः समुथहो लग्नेऽर्थसहमे शुभाः ।
तदा निखातद्रव्यस्य लाभः पापदृशा न तु ॥ ५ ॥

कुन्तला — ज्ञः = बुधः, सवीर्यः = सबलः, समुथहः = मुथहासहितः लग्ने = वर्षलग्ने भवेत्, शुभाः = शुभग्रहाः, अर्थसहमे = धनसहमे स्युस्तदा निखातद्रव्यस्य = गर्त्तानिक्षिप्तद्रव्यस्य लाभः स्यात् । पापदृशा पूर्वोक्तयोग करे ग्रहे पापदृष्ट्या दृष्टे न तु लाभः स्यादिति ॥ ५॥

ज्योति — यदि बलवान् मुन्थहा सहित बुध वर्षलग्न में और शुभ ग्रह धन सहम में हो तो उस मनुष्य को गड़े हुए द्रव्य का लाभ होता है । उक्त योग पर यदि पापग्रहों की दृष्टि हो तो गढ़े में गड़े हुए द्रव्य का लाभ कदापि नही होता है ॥ ५ ॥

अथ द्वादश (व्यय) भाव विचारः

लग्नाब्दपौ हतबलौ व्ययषष्ठमृतिस्थौ यद्राशिगौ तदनुसरि फलं विचिन्त्यम् ।
षष्ठेऽब्दपे भृगुसुतेऽथ विनष्टवीर्ये दृष्टे खलैः क्षुतदृशा द्विपदर्क्षसंस्थे ॥ १ ॥

भृत्यक्षतिस्तुरगहा चतुरंघ्रिभस्थेऽन्यस्मिन्नपीदमुदितं फलमब्दनाथे ।
खस्थे कुजे शशियुते तुरगादिनाशः स्याद्व्याकुलत्वमशुभोपहते व्यये वा ॥ २ ॥

कुन्तला — लग्नाब्दपौ = वर्षलग्नेशवर्षेशौ, हतबलौ = नष्टबलौ, व्ययषण्मृतिस्थौ = द्वादशषष्टाष्टमगतौ यद्राशिगौ = यादृशराशिगतौ तदनुसारि फलं विचिन्त्यम् । यथा लग्नेशवर्षेशौ षष्ठगतौ चतुष्पदराशिगतौ तदा चतुष्पदस्य नाशः । यदि जलचरराशिगतौ तदा जलचरजीवनाशः । यदि नरराशिगतौ तदाऽऽश्रितसेवकजनादेर्नाशः । एवं फलमूह्यम् । अथ विनष्टवीर्येऽब्दपे = वर्षेशे भृगुसुते = शुक्रे, षष्ठे = वर्षलग्नात्षष्ठस्थानस्थे, खलैः = पापैः, क्षुतदृशा = १ । ४ । ७ । १० दृष्टे, तत्र द्विपदर्क्षसंस्थे = अर्थात् लग्नात् षष्ठो राशिर्नरराशिः स्यात्तत्र हीनबलो वर्षेशः शुक्रः पापदृष्टश्च यदि वर्त्तते, तदा भृत्यक्षतिः = सेवकजननाशः । अथ तादृशे वर्षेशे चतुरघ्रिभस्थे = चतुष्पदराशिगते

षष्ठगते च सति तुरगहा = घोटकनाशः स्यात् । अन्यस्मिन्नपि स्थाने अब्दनाथे सति इदमीदृशं फलमुदितम् । शनियुते = वर्षेशे, कुजे = नंगले खस्थे सति तुरगादिनाशः = अश्वादीनां विनाशः स्यात् । अथ सशनौ कुजे वर्षेशे अशुभोपहते = पापहते, व्यये = द्वादशे सति व्याकुलत्वं = घोटकादीनां विशेषखिन्नत्वं स्यात् ।। १—२।।

ज्योति — यदि वर्षलग्नेश और वर्षेश ये दोनों बलहीन हों और बारहवें, छठें तथा आठवें इन स्थानों में से किसी स्थान में विद्यमान होकर जिस राशि पर स्थित हों उस राशि में जैसा फल कहा गया हो वैसा ही फल मिले । वर्षेश चतुष्पद राशि में स्थित होकर दुष्ट स्थान में हों तो चौपायों का नाश होता है । वर्षेश शुक्र छठें भाव में हो और बल रहित व पापग्रहों की क्षुत १।४।७।१० दृष्टि से युक्त द्विपदराशि में स्थित हो तो सेवकों का नाश होता है । यदि शुक्र चतुष्पद राशि में बैठा हो तो घोड़ा आदि चौपायों की हानि करे एवं अन्य ग्रह वर्षेश होकर छठें, आठवें, बारहवें स्थान में स्थित होते हुए द्विपदादि राशियों में हो तो भी पूर्वोक्त फल कहना चाहिए । वर्षस्वामी मङ्गल चन्द्रमा से युक्त होता हुआ यदि वर्षलग्न से दशम भाव में हो तो उसके घोड़ा आदिकों का नाश होता है और मन में व्यग्रता बनी रहती है ।। १—२ ।।

षष्ठे रवौ खलहते चतुरंघ्रिभस्थे भृत्यैः समं कलिरथाष्टमरिःफगेऽपि ।
चन्द्रेऽब्दपे बलयुते रिपुरिःफसंस्थे भूवासनद्रुमजलाशयनिर्मितिश्च ।। ३ ।।

कुन्तला — षष्ठे = षष्ठस्थानस्थिते, खलहते = पापपीडिते, चतुरंघ्रिभस्थे = चतुष्पदराशिगते रवौ वर्षेशे सति तथाऽष्टमरिःफगे सति, भृत्यैः = सेवकैः सम = सह, कलिः = कलहः स्यात् । वा बलयुते = सबले, अब्दपे = वर्षेशे चन्द्रे रिपुरिःफसंस्थे सति भूवासन—द्रुमजलाशयनिर्मितं = भूवासनं = नवीनभूदेशे निवसनं, द्रुमाणां रोपणं जलाशयस्य च निर्मितिः = निर्माणकरणं च भवति ।। ३ ।।

ज्योति — यदि वर्षेश पापग्रहों से युक्त होकर चतुष्पद राशि में, छठें, आठवें अथवा बारहवें घर में बैठा हो तो सेवकों के साथ कलह होता है । वर्ष का स्वामी बलसहित चन्द्र हो और छठें तथा बारहवें स्थान में स्थित हो तो वह उजड़ी भूमि में बसता हुआ बाग कुवां, तालाब आदि का निर्माण करता है ।। ३ ।।

स्वर्क्षोच्चगे कर्मणि सूर्यपुत्रे नैरुज्यमर्थाधिगमश्च जीवे ।
सूर्ये नृताद्बाहुबलात्कुजेऽर्थो बुधे भिषग्ज्यौतिषकाव्यशिल्पै ।। ४ ।।

कुन्तला — सूर्यपुत्रे = शनौ, स्वर्क्षोच्चगे = स्वराशौ (मकरे कुम्भे वा) स्वोच्चे (तुलाराशि) गते, तथा कर्मणि = वर्षलग्नाद्दशमस्थे सति, नैरुज्यम् —आरोग्यं, अर्थाधिगमः = धनलाभश्च भवति । एवं जीवे = गुरौ फलं विज्ञेयम् । अथ वर्षेशे सूर्ये सिंहे दशमस्थे सति तदा नृपाद्राज्ञः सकाशात् धनागमः स्यात्, एवं वर्षेशे कुजे मेषवृश्चिकान्यतमराशिगते दशमस्थे सति

बाहुबलादर्थागमः स्यात् । एवं बुधे वर्षेशे कन्या मिथुनयोरेकतरस्थे दशमस्थे च सति भिषग्ज्यौतिषकाव्यशिल्पैः = वैद्यक–ज्यौतिषकवित्वशिल्पकलादिभिः, धनागमः स्यात् ।। ४ ।।

ज्योति — यदि शनैश्चर वर्षेश होता हुआ अपनी राशि व अपने उच्चराशि में स्थित हो और वर्षलग्न से दशमभाव में हो तो शरीर की आरोग्यता और धन की प्राप्ति होती है । यदि बृहस्पति वर्षेश होकर अपनी राशि व अपने उच्च राशि में होकर दशमभाव में हो तो आरोग्य व धन मिलता है । यदि सूर्य वर्षेश होता हुआ अपनी राशि व अपने उच्च राशि में होकर दशम भाव में विद्यमान हो तो राजा से धन प्राप्त होता है । यदि मङ्गल वर्षेश होकर अपनी राशि व उच्च में विद्यमान होकर दशम भाव में हो तो उसको अपने भुजबल से धन प्राप्त होता है तथा बुध वर्षेश होकर अपनी राशि व उच्च राशि में प्राप्त होकर दशम भाव में विराजमान हो तो वैद्यक, ज्योतिष, कविता और कारीगरी आदि के द्वारा धनलाभ होता है ।। ४ ।।

मन्देऽब्दपे गतबले नैराश्यं दौस्थ्यमादिशेत् ।
सूर्येऽब्दपे शशिस्थाने मन्देऽब्दजनुषोर्हते ।। ५ ।।

सर्वकर्मसु वैफल्यं वक्रेऽस्ते च तथा पुनः ।
कर्मकर्मेशसहमनाथाः शनियुतेक्षिताः ।। ६ ।।

कुन्तला — मन्दे = शनौ, गतबले = निर्बले, दशमस्थे सति नैराश्यं = आशाहीनत्वं, दौस्थ्यं = स्थितिशून्यत्वं, चादिशेत् = कथयेत् । एवं सूर्ये गतबले वर्षेशे च सति, शशिस्थाने = जन्मकालिकचन्द्राश्रितराशिस्थे, मन्दे = शनौ, अब्दजनुषोः = वर्षजन्मकालयोर्मध्येऽपि, हते = पापपीडिते सति, सर्वकर्मसु = कार्यमात्रेषु, वैकल्यं = बुद्धिदौर्बल्यं कथयेत् । तथा तादृशे शनौ वक्रेऽस्ते च सति तथैव फलं वाच्यम् । अथवा कर्मकर्मेशसहमनाथाः = दशमभाव–दशमेश–कर्मसहमेश्वराः यत्र कुत्रचित् स्थिताः शनियुतेक्षितास्तदा सर्वं कर्मसु वैकल्यं = अपटुत्वं, वाच्यमिति ।। ५–६ ।।

ज्योति — यदि शनैश्चर वर्षेश हो किन्तु बलहीन होकर वर्षलग्न से दसवें भाव में विराजमान हो तो वह मनुष्य आशाहीन होकर चंचल चित्त हो । यदि वर्ष स्वामी सूर्य हो और शनैश्चर जन्म और वर्ष समय में चन्द्रमा जिस राशि पर स्थित हो उस राशि में बल रहित होकर बैठा हो तो वह मनुष्य सब कामों में विफल और सामर्थ्यरहित हो जाय । यदि शनि वक्री वा अस्तंगत हो तो भी उक्त फल कहे । यदि दशम भाव, दशमभावेश और कर्मसहमेश ये तीनों शनैश्चर से युक्त वा दृष्ट हों तो सब कार्यों में असफलता मिलती रहे ।। ५–६ ।।

षडष्टव्ययगेऽब्देशे कर्मेशे च बलोज्झिते ।
सूतावब्दे च न शुभं तत्राऽब्दे मृतिपे तथा ।। ७ ।।

कुन्तला — अब्देशे = वर्षेशे, षडष्टव्ययगे = ६।८।१२ एतत्स्थानस्थे, कर्मेशे = दशमेशे च बलोज्झिते = बलहीने तथा सूतौ = जन्मनि, अब्दे = वर्षकाले च एवं योगे सति

शुभं = उत्तम फलं न भवति । तत्र अब्दे = वर्षप्रवेशसमये, मृतिपे = अष्टमेशे निर्बले षडष्टव्ययगे च सति तथा फलं (अशुभं) भवति ।। ७ ।।

ज्योति — वर्षेश निर्बल होकर वर्षलग्न से छठें, आठवें वा बारहवें भाव में स्थित हो तथा दशमेश जन्मकाल व वर्षकाल में निर्बल होकर छठें, आठवें व बारहवें भावों में विद्यमान हो तो कल्याण नहीं हो । यदि अष्टम भाव का स्वामी छठें, आठवें या बारहवें स्थान में हो तो भी मङ्गलकारक न हो ।। ७ ।।

यत्र भावे शुभफलो दुष्टो वा जन्मनि ग्रहः ।
वर्षे तद्भावगस्तादृक् तत्फलं यच्छति ध्रुवम् ।। ८ ।।

कुन्तला — जन्मनि = जन्मकाले शुभफलः = शुभफलदाता, वा दुष्टः = अनिष्टफलदाता ग्रहः यत्र = यस्मिन् भावे भवेत्, वर्षे = वर्षेकाले यदि स ग्रहस्तद्भावगस्तदा ध्रुवमवश्यं तदिष्टमनिष्टं वा यच्छति = ददाति ।। ८ ।।

ज्योति — जिस भाव में शुभ व अशुभ फल देने वाला कोई भी ग्रह हो यदि वही ग्रह वर्षकाल में उसी के समान होकर उसी भाव में बैठा हो तो उस भाव के शुभ व अशुभ फल अवश्य देता है ।। ८ ।।

ये जन्मनि स्युः सबला विवीर्या वर्षे शुभं प्राक्चरमे त्वनिष्टम् ।
दद्युर्विलोमं विपरीततायां तुल्य फलं स्यादुभयत्र साम्ये ।। ९ ।।

कुन्तला — ये ग्रहाः जन्मनि सबलाः स्युर्वर्षे = वर्षकाले त एव यदि विवीर्याः = बलहीनाः भवेयुस्तदा प्राक् = पूर्व, शुभं = शुभफलम्, चरमे = अन्ते, अनिष्टं = अशुभं फलं दद्युः । अथ विपरीततायां = उक्तविलोमत्वे, अर्थात् जन्मनि विबलाः वर्षे सबलास्तदाप्राक् अशुभम्, परतः शुभं वाच्यम् । उभयत्र = जन्मनि, वर्षकाले च साम्ये = समत्वे सति, अर्थात् जन्मनि वर्षे च सबला ग्रहा उभयत्र शुभमेव । तथा जन्मनि वर्षे च दुर्बला ये ते उभयत्र अनिष्टफलमेव दद्युरिति ।। ९ ।।

ज्योति — जो ग्रह बलवान् होकर वर्षप्रवेश के समय बलहीन हों तो वे पूर्वार्ध में शुभ और उत्तरार्ध में अशुभ फल देते हैं । इससे विपरीत अर्थात् जन्मकाल में निर्बल हो और वर्षकाल में बलसहित हो तो वर्ष के पूर्वार्ध में अनिष्ट और उत्तरार्ध में शुभ फल देते हैं । यदि समान बल हो तो सम्पूर्ण वर्ष समान फल देते हैं ।। ९ ।।

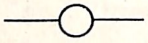
श्रीगर्गान्वयभूषणं गणितविच्चिन्तामणिस्तत्सुतो
ऽनन्तोऽनन्तमतिर्व्यधात्खलमतध्वस्त्यै जनुःपद्धतिम् ।
तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया
सत्तुष्टयै व्यदधाद्विवेचनमिदं भावेषु सत्ताजिकात् ।। १० ।।

कुन्तला —— श्रीगर्गान्वयभूषणं = श्रीयुक्तगर्गमुनिकुलालंकारः, गणितवित् = ज्यौतिष—सिद्धान्तविज्ञः, चिन्तामणिरेतन्नामकः, अभूत्, तत्सुतः = तत्पुत्रः अनन्तमतिः असीमबुद्धिः अनन्तः अभूत, यः खलमतध्वस्त्यै = अज्ञरचितमतनाशाय, जनुःपद्धति = जन्मफलबोधकग्रन्थं, व्यधात् = अकरोत् तस्य अनन्तस्य सूनुः = तनयः, नीलकण्ठविबुधः = नीलकण्ठनामा विद्वान्, विद्वच्छिवानुज्ञया = पण्डितगुरुशिवदैवज्ञाज्ञया, सत्तुष्ट्यै = सज्जनसन्तोषाय, भावेषु = द्वादशभावेषु सत्ताजिकात् = ताजिकोत्तमग्रन्थात्, इदं = उक्तं, विवेचनं = विचारणम् व्यदधात् = कारणमास, इति ।। १०।।

ज्योति —— श्रीयुत् गर्ग मुनि के वंश में अलङ्कार स्वरूप, गणित को जानने वाले चिन्तामणि दैवज्ञ हुए, उनके पुत्र परम बुद्धिमान् अनन्तदैवज्ञ हुए । जिन्होने दुष्ट मत के नाश के लिये जन्म पद्धति का निर्माण किया । उनके पुत्र नीलकण्ठ अपने गुरु पं० शिवदैवज्ञ की आज्ञा के अनुरुप सज्जन विद्वानों की सन्तुष्टि हेतु इस ताजिक ग्रन्थ में बारहभावों के इन विचारों को व्यक्त किया है ।। १० ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां द्वादशव्ययभावविचारस्य संस्कृत 'कुन्तला' — ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां द्वादशव्ययभावविचारः ।।



अथ दशाफलाध्यायः

तत्र दशाक्रमविचारः

स्पष्टान्सलग्नान्खचरान्विधाय राशीन्विनाऽत्यल्पलवं तु पूर्वम् ।
निवेश्य तस्मादधिकाधिकांशक्रमादयं स्यात्तु दशाक्रमोऽब्दे ॥ १॥

ऊनं विशोध्याधिकतः क्रमेण शोध्यं विशुद्धांशकशेषकैक्यम् ।
सर्वाधिकांशोन्मितमेव तत्म्यादनेन वर्षस्य मितिस्तु भाज्या ॥ २॥

शुद्धांशकांस्तान्गुणयेदनेन लब्धध्रुवांकेन भवेद्दशायाः ।
मानं दिनाद्यं खलु तद्ग्रहस्य फलान्यथासां निगदेत्तु शास्त्रात् ॥ ३॥

शुद्धांशसाम्ये बलिनो दशाद्या बलस्य साम्येऽल्पगतेस्तु पूर्वा ।
साम्ये विलग्नस्य खगेन चिन्त्या बलादिका लग्नपतेविचिन्त्या ॥ ४॥

कुन्तला — एते श्लोकाः संज्ञातन्त्रान्ते व्याख्याता सन्ति ॥ १—४ ॥

ज्योति — संज्ञातन्त्र के पात्यायिनी दशा निरुपण प्रकरण में इसकी ज्योति टीका दी गई है ॥ १—४ ॥

लग्नदशाफलम्—

हेममुक्ताफलद्रव्यलाभमारोग्यमुत्तमम् ।
कुरुते स्वामिसम्मानं दशा लग्नस्य शोभना ॥ ५ ॥

लाभं दृष्टेन वित्तस्य मानहीनस्य सेवनम् ।
मनसो विकृतिं कुर्याद्दशा लग्नस्य मध्यमा ॥ ६ ॥

विदेशगमनं क्लेशो बुद्धिनाशं कदव्ययम् ।
मानहानि करोत्येव कष्टा लग्नदशा फलम् ॥ ७ ॥

क्रूरलग्नदशा मध्या सौख्यं स्वल्पं धनव्ययम् ।
अंगपीडां त्वपुष्टिं च कुरुते मृत्युविग्रहम् ॥ ८ ॥

कुन्तला — लग्नस्य शोभना दशा हेममुक्ताफलद्रव्यलाभं, उत्तममारोग्यं, स्वामिसन्मानं कुरुते ॥ ५॥ लग्नस्य मध्यमा दशा वित्तस्य = धनस्य दृष्टेन लाभं, मानहीनस्य जनस्य सेवनं, मनसः = चित्तस्य, विकृतिं = विकारं, मतिभ्रमादिकं कुर्यात् ॥ ६ ॥ कष्टा = अधमा लग्नदशा, विदेशगमनं, क्लेशः बुद्धिनाशं, कदव्ययं = अपव्ययं, मानहानिएव = निश्चयेन करोति ॥ ७ ॥

क्रूरलग्नदशा = क्रूराक्रान्तस्य क्रूरराशेर्लग्नस्य दशा, मध्या = मध्यबला चेत्तदा स्वल्पं सौख्यं, धनव्ययं = धनक्षयं, अंगपीड़ां = देहव्यथां, अपुष्टिं = दौर्बल्यं, मृत्युविग्रहं = मरणं, विरोध च कुर्यात् ।। ८।।

ज्योति — लग्न की उत्तम दशा में सुवर्ण, मोती, धन, आरोग्य और स्वामी का समीचीन सम्मान प्राप्त होता है ।। ५।। यदि लग्न की दशा मध्यम बल वाली हो तो भाग्य से धन का लाभ हो और मान से हीन मनुष्य की सेवा व मन में विकार उत्पन्न करती है ।। ६ ।। यदि लग्न की अधम दशा हो तो विदेशगमन, क्लेश, बुद्धिनाश, निष्प्रयोजन धननाश और मानहानि होती है ।। ७।। यदि क्रूर लग्न की मध्य दशा हो तो थोड़ा सुख, धन का खर्च, शरीर में पीड़ा और दुर्बलता, मृत्यु तथा लड़ाई उत्पन्न करने वाली होती है ।। ८ ।।

अथ सूर्यदशाफलं, तत्र तावत् पूर्णबलस्य दशाफलम् —

दशा रवेः पूर्णबलस्य लाभं गजाश्ववहेमाम्बररत्नपूर्णम् ।
मानोदयं भूमिपतेर्ददाति यशश्च देवद्विजपूजनादेः ।। ९ ।।

कुन्तला — पूर्णबलस्य रवेर्दशा गजाश्ववहेमाम्बररत्नपूर्ण लाभं, भूमिपतेः सकाशात् मानोदयं, देवद्विजपूजनादेर्यशश्च ददाति ।। ९ ।।

ज्योति — पूर्णबली सूर्य की दशा हो तो हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, वस्त्र, रत्न, राजा से सम्मान, प्रतिष्ठा, देवता व ब्राह्मणों के पूजन आदि यश प्रदान करती है ।। ९ ।।

दशा रवेर्मध्यबलस्य पूर्वमिदं फलं मध्यमभेव दत्ते ।
ग्रामाधिकारव्यवसायधैर्यैः कुलानुमानाच्च सुखादिलाभः ।। १०।।

कुन्तला — मध्यबलस्य रवेर्दशा पूर्वं पूर्वोक्तं फलम् (गजाश्ववहेमाम्बररत्नलाभं भूमिपतेर्मानोदयं देवद्विजपूजनादेर्यशश्च) इदं मध्यमं साधारणम् एव दत्ते । तथा ग्रामाधिकारव्यवसाय—धैर्यैः = ग्रामकार्याधिकारः, व्यवसायः = उद्योगो व्यापारश्च, धैर्यैः = चित्तस्थैर्यैः, कुलानुमानात् = कुलानुसारात् सुखादिलाभः भवति ।। १०।।

ज्योति — मध्यम बलयुक्त सूर्य की दशा हो तो पूर्वोक्त मध्यम फल ही होता है । ग्राम के अधिकार और उद्योग एवं धैर्य से तथा कुल के अनुमान से सुख आदि की प्राप्ति होती है ।। १०।।

अथ स्वल्पबलसूर्यस्य दशाफलम् —

दशा रवेरल्पबलस्य पुंसां ददाति दुःखं स्वजनैर्विवादात् ।
मतिभ्रमं पित्तरुजं स्वतेजोविनाशनं घर्षणमप्यरिभ्यः ।। ११ ।।

कुन्तला — स्वल्पबलस्य रवेर्दशा पुंसां स्वजनैः विवादात् दुःखं ददाति । मतिभ्रमं = बुद्धि विभ्रान्ति, पित्तरुजं = पित्तप्रकोपरोगं स्वतेजोविनाशनं, अरिभ्यो घर्षणं = शत्रुपराभवं च ददाति ।। ११।।

ज्योति — यदि अल्पबली सूर्य की दशा हो तो मनुष्यों को अपने जनों के साथ लड़ाई होने से दुःख, मतिभ्रम, पित्त से रोग, अपने तेज का विनाश और शत्रु से दबाव यह अशुभ फल देती है ॥ ११ ॥

दशा रवेर्नष्टबलस्य पुंसां नृपाद्रिपोर्वा भयमर्थनाशम् ।
स्त्रीपुत्रमित्रादिजनैर्विवादं करोति बुद्धिभ्रममामयं च ॥ १२ ॥

कुन्तला — नष्टबलस्य रवेर्दशा पुंसां, नृपात् = भूपात्, वा रिपोः = शत्रोः, भयं, अर्थनाशं = धनक्षयं, स्त्रीपुत्रमित्रादिजनैः विवादं, बुद्धिभ्रमं, आमयं = रोगं च करोति ॥ १२ ॥

ज्योति — अल्प बल वाली सूर्य की दशा मनुष्यों को राजा और शत्रु से भय, धन नाश, स्त्री, पुत्र मित्र आदि जनों से विवाद, बुद्धिभ्रम और रोग करती है ॥ १२ ॥

लग्नाद्रविः षट्त्रिदशायसस्थो निन्द्योऽपि दत्ते शुभमर्धमेव ।
मध्यत्वमूनः शुभतां च मध्यो यातीत्थमत्यन्तशुभः शुभः स्यात् ॥ १३ ॥

कुन्तला — लग्नात् = वर्षलग्नात्, रविः षट्त्रिदशायसंस्थः = उपचयस्थितः, तदा निन्द्यः = नष्टबलोऽपि अर्धं शुभमेव फलं ददाति । षट्त्रिदशायसंस्थः ऊनबलो रविः फलस्य मध्यत्वं, एवं तथास्थितः मध्यबली सूर्यः शुभतां याति, इत्थमनेन प्रकारेण शुभोरविरुपचयसंस्थस्तदा अत्यन्तशुभः स्यात् ॥ १३ ॥

ज्योति — यदि सूर्य छठें तीसरे, दसवें तथा ग्यारहवें इन स्थानों में बैठा हो तो अनिष्ट दशा का फल भी आधा शुभ होता है, मध्यम बल हो तो शुभ फल, हीनबली हो तो मध्यम फल और पूर्ण बली हो तो बहुत ही शुभ फल होता है ॥ १३ ॥

इन्दोर्दशा पूर्णबलस्य दत्ते शुल्काम्बरस्त्रंगमणिमौक्तिकाद्यम् ।
स्त्रीसंगमं राज्यसुखं च भूमिलाभं यशः कान्तिबलाभिवृद्धिम् ॥ १४ ॥

कुन्तला — पूर्णबलस्य, इन्दोः = चन्द्रस्य दशा शुक्लाम्बरस्त्रंगमणिमौक्तिकाद्यं, स्त्रीसंगमं राज्यसुखं, भूमिलाभं, यशः, कान्तिबलाभिवृद्धिं च दत्ते ॥ १४ ॥

ज्योति — चन्द्रमा की पूर्ण बलवाली दशा मनुष्यों को सफेद वस्त्र, माला, मोती, स्त्रीसंगम, राज्य, सुख भूमिलाभ, यश, कांति और बल की वृद्धि देती है ॥ १४ ॥

इन्दोर्दशा मध्यबलस्य सर्वमिदं फलं मध्यममेव दत्ते ।
वाणिज्यमित्राम्बरगेहसौख्यं धर्मे मतिं कर्षणतोऽन्नलाभम् ॥ १५ ॥

कुन्तला — मध्यबलस्य इन्दोश्चन्द्रस्य दशा इदं पूर्वोक्तं (शुक्लाम्बरस्त्रंगमणिमौक्तिकाद्यं स्त्रीसंगम, राज्यसुखं, यशः, कान्तिबलाभिवृद्धिं) फलं मध्यममेव = साधारणमेव दत्ते = ददाति । वाणिज्यमित्राम्बरगेहसौख्यं, धर्मे मतिं, कर्षणतः अन्नलाभां च दत्ते ॥ १५ ॥

ज्योति — चन्द्रमा की मध्य बल वाली दशा पूर्वोक्त सब मध्यम फल, वाणिज्य, मित्र, वस्त्र, गृह, सुख, धर्म वृद्धि और खेती से अन्न का लाभ ये फल देती है ॥ १५ ॥

इन्दोर्दशा स्वल्पबलस्य दत्ते कफामयं कान्तिविनाशमाहुः ।
मित्रादिवैरं जननं कुमार्या धर्मार्थनाशं सुखमल्पमत्र ॥ १६ ॥

कुन्तला —स्वल्पबलस्य इन्दोर्दशा कफामयं = कफरोगं, कान्तिविनाशं, मित्रादिभिर्वैरं कुमार्याः = कन्याया जननमुत्पत्तिः, धर्मार्थनाशं, अल्पं सुखं दत्ते ॥ १६ ॥

ज्योति — चन्द्रमा की अल्प बल वाली दशा कफरोग, कान्तिविनाश, मित्रादि से वैर, कन्या, धर्म व धन का नाश और थोड़ा सुख यह फल देती है ॥ १६ ॥

इन्दोर्दशा नष्टबलस्य लोकापवादभीतिं धनधर्मनाशम् ।
शीतामयं स्त्रीसुतमित्रवैर दौःस्थ्यं च दत्ते विरसान्नभुक्तिम् ॥ १७ ॥

कुन्तला — नष्टबलस्य इन्दोर्दशा लोकापवादभीतिं, धनधर्मनाशं, शीतामयं = शैत्यजनितरोगं स्त्रीसुतमित्रवैरं, दौस्थयं = दुःस्थिति, विरसान्नभुक्तिम् = नीरसान्नभोजनं च फलं दत्ते ॥ १७ ॥

ज्योति — चन्द्रमा की नष्टबल वाली दशा लोकापवाद से भय, धन व धर्म का नाश, शीत रोग, स्त्री पुत्र तथा मित्र से बैर, चित्त की चंचलता और बिना स्वाद वाले अन्नों का भोजन देती है ॥ १७ ॥

षष्ठाष्टमान्त्येतरराशिसंस्थो निन्द्योऽपि दत्तेऽर्थसुखं दशायाम् ।
मध्यत्वमूनः शुभतां च मध्यो यातीत्थमिन्दुः सुशुभः शुभः स्यात् ॥ १८ ॥

कुन्तला — निन्द्यः = दुर्बलः अपि चन्द्रः षष्ठाष्टमान्त्येतरराशिसंस्थः = त्रिकमिभन्नराशि—गतस्तदा दशायां अर्थसुखं दत्ते । ऊनः = क्षीणबलश्चन्द्रः मध्यत्वं, मध्यः, शुभतां = शुभत्वं याति । तथा शुभश्चन्द्रः सुशुभः = पूर्णशुभः स्यात् ॥ १८ ॥

ज्योति — ६।८।१२ । इनसे इतर राशि में बैठा अनिष्ट भी चन्द्रमा अपनी दशा में आधा सुख देता है । हीनबली चन्द्रमा मध्यम फल और मध्यमबली चन्द्रमा शुभ फल देता है और यदि चन्द्रमा पूर्ण बली हों तो अत्यन्त शुभ फल देता है ॥ १८ ॥

दशापतिः पूर्णबलो महीजः सेनापतित्त्वं तनुते नराणाम् ।
जयं रणे विद्रुमहेमरत्नवस्त्रादिलाभं प्रियसाहसत्वम् ॥ १९ ॥

कुन्तला — पूर्णबलः महीजः = कुजः, दशापतिश्चेत्तदा, नराणां, सेनापतित्त्वं = सेनाधीशत्वं, तनुते, रणे = युद्धे, जयं = शत्रुपराजयं, विद्रुमहेमरत्नवस्त्रादिलाभं = प्रवाल सुवर्णरत्नवस्त्रादेः प्राप्ति, प्रियसाहसत्वं = इष्टोद्योगत्वं तनुते ॥ १९ ॥

ज्योति — यदि दशा का स्वामी मङ्गल पूर्ण बल हो तो जातक को सेनापतित्त्व, संग्राम में जय, मूँगा, सोना, लाल कपड़े आदि का लाभ और प्रिय साहसत्त्व देता है ॥ १५॥

अथ मध्यबलकुजदशाफलम् —

दशापतिर्मध्यबलो महीजः कुलानुमानेन धनं ददाति ।
राजाधिकारोऽप्यथ तत्परत्वं तेजस्विताकान्तिबलाभिवृद्धिम् ॥ २० ॥

कुन्तला — मध्यबलः महीजः = कुजः, दशापतिस्तदा कुलानुमानेन धनं ददाति । राजाधिकारः अपि भवति । अथ तत्परत्वं, तेजस्विता, कान्तिबलाभिवृद्धिं च ददाति ॥ २०॥

ज्योति — यदि दशास्वामी मङ्गल मध्यम बल हो तो वह कुल के अनुमान से धन, राजा से अधिकारलाभ और उस अधिकार में प्रधानता, तेज, कान्ति व बलवृद्धि ये सब देता है ॥ २० ॥

अथ हीनबलकुजस्य दशाफलकथनम् —

दशापतिः स्वल्पबलो महीजो ददाति पित्तोष्णरुजं शरीरे ।
रिपोर्भयं बन्धनमास्यतोऽसृक्स्त्रवं च वैरं स्वजनैश्च शश्वत् ॥ २१ ॥

कुन्तला — स्वल्पबलः महीजः = कुजः, दशापतिः, तदा शरीरे पित्तोष्णरुजं ददाति । रिपोः = शत्रुतः भयम् बन्धनं, आस्यतः = मुखात् असृक्स्त्रवं = शोणितपतनं, स्वजनैश्च शश्वत् = सदा, वैरं = विरोधं ददाति ॥ २१॥

ज्योति — यदि अल्पबली मङ्गल की दशा हो तो शरीर में पित्त, ताप से रोग, शत्रु से भय, बन्धन, मुख से रुधिर गिरना और निरन्तर अपने भाई–बन्धुओं से भय इन फलों को देता है ॥ २१॥

अथ नष्टबलकुजस्य दशाफलकथनम् —

दशापतिर्नष्टबलो महीजो विवादमुग्रं जनयेद्रणं वा ।
चौराद्भयं रक्तरुजं ज्वरं च विपत्तिमन्यस्वहृतिं च खर्जूम् ॥ २२ ॥

कुन्तला — नष्टबलः महीजः यदि दशापतिस्तदा उग्रं = कठिनं, विवाद = वाक्पारुष्यप्रयोगं वा रणं = संग्रामं जनयेत् । चौरात् = तस्करात्, भयं, रक्तरुजं = शोणितविकाररोगं व्रणादिकं ज्वरं च, विपत्ति = आपत्ति, अन्यस्वहृति = परधनहरणं, खर्जू = कण्डूं च करोति ॥ २२॥

ज्योति — यदि मङ्गल हीनबली होकर दशा का स्वामी हो तो उग्र विवाद अथवा संग्राम, चोरों का भय, रक्तविकार, ज्वर, विपत्ति, विजातीय जन से धनहरण और खाज— दाद रोग देता है ॥ २२ ॥

अथ विशेषफलकथनम् —

त्रिषडायगतो भौमो नष्टवीर्यः शुभार्धदः ।
मध्यो हीनः शुभो मध्यः शुभोऽत्यन्तं शुभावहः ।। २३ ।।

कुन्तला — नष्टवीर्यः अपि भौमः त्रिषड़ायगतः = ३। ६। ११ एषु स्थितस्तदा शुभार्धदः = अर्धशुभफलप्रदः । यदि तादृशः कुजः हीनस्तदा मध्यः । मध्यफलः स्यात् । यदि मध्यस्तदा शुभः, यदा शुभस्तदा अत्यन्तं शुभावहः भवति ।। २३ ।।

ज्योति — तीसरे, छठें और ग्यारहवें इन स्थानों में से किसी स्थान में यदि बलरहित मङ्गल बैठा हो तो शुभ फल देता है । हीनबली मङ्गल यदि उक्त स्थानों में से किसी स्थान में हो तो मध्यम फल देता है । मध्यम बली हो तो शुभ फल और पूर्ण बली मङ्गल स्थित हो तो अत्यन्त शुभ फल प्रदान करता है ।। २३ ।।

अथ बुधदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य बुधस्य दशाफलम् —

दशापतिः पूर्णबलो बुधश्चेद्यशोऽभिवृद्धिं गणितात्सुशिल्पात् ।
तनोति सेवां सफलां नृपादेर्दौत्यं च वैदूष्यगणोदयं च ।। २४ ।।

कुन्तला — चेत् = यदि, पूर्णबलः बुधः दशापतिस्तदा गणितात् सुशिल्पात् यशोऽभिवृद्धि, नृपादेः = भूपादिधनिनः, सफलां सेवां तनोति, च = पुनर्नृपादेर्दौत्यमाज्ञाकरत्व, वैपूष्यगणोदयं च तनोति ।। २४ ।।

ज्योति — यदि बुध दशा का स्वामी और पूर्णबली हो तो गणित व सुन्दर कारीगरी के यश की वृद्धि तथा राजादिकों की सफल सेवा और राजादिकों का दूत बनना और निन्दारहित गुणों का उदय करता है ।। २४ ।।

अथ मध्यबलस्य बुधस्य दशाफलकथनम् —

दशापतिर्मध्यबलो बुधश्चेद् गुरोः सुहृद्भ्यो लिपिकाव्यशिल्पैः ।
धनाप्तिदायी सुतमित्रबन्धुसमागमान्मध्यममेव सौख्यम् ।। २५ ।।

कुन्तला — चेत् = यदि, मध्यबलः बुधः दशापतिस्तदा गुरोः = मान्यमहज्जनात् तथा सुहृद्भ्यः = मित्रेभ्यः, लिपिकाव्यशिल्पैः धनाप्तिदायी = धनलाभदाता, सुतमित्रबन्धुसमागमात् मध्यमं = साधारणमेव सुखं हर्षं ददाति ।। २५।।

ज्योति — यदि मध्यबली बुध दशा का स्वामी हो तो गुरुजनों, मित्रजनों, लेख, काव्य और कारीगरियों से धन की प्राप्ति कराता और लड़कों, मित्रों व बन्धुओं के समागम से माध्यम सौख्य देता है ।। २५ ।।

अथ स्वल्पबलस्य बुधस्य दशाफलम् —

दशापतौ स्वल्पबले बुधे स्यान्मानस्य नाशः स्वजनापवादः ।
अकार्यकोपस्खलनाद्यनिष्टं धनव्ययं रोगभयं च विन्द्यात् ॥ २६ ॥

कुन्तला — स्वल्पबले बुधे दशापतौ सति, मानस्य = गौरवस्य, नाशः, स्वजनापवादः = निजपरिजनकलंकः, अकार्यकोपः = अकार्ये विना प्रयोजनं कोपः क्रोधः, स्खलनादि = पतनादि, अनिष्टं अशुभम्, धनव्ययं, रोगभयं च विन्द्यात् = जानीयात् ॥ २६॥

ज्योति — बुध अल्पबली होकर यदि दशा का स्वामी हो तो मान का नाश अपने जनों से कलह, अकारण कोप आदि से अनिष्ट, धन का खर्च और रोगभय देता है ॥ २६॥

अथ हीनबलस्य बुधस्य दशाफलकथनम् —

दशापतौ हीनबले बुधे स्यात् स्वबुद्धिदोषो वधबन्धभीतिः ।
दूरे गतिर्वातकफामयार्त्तिर्निखातवित्तस्य च नापि लाभः ॥ २७ ॥

कुन्तला — हीनबले बुधे दशापतौ सति स्वबुद्धिदोषः स्यात् । वधबन्धभीतिः, दूरे = देशान्तरे, गतिः, वातकफामयार्त्तिः = वातरोगकफरोगपीड़ा च स्यात्, निखातवित्तस्य = गर्त्तरक्षितवित्तस्य लाभः नैव भवति ॥ २७ ॥

ज्योति — दशा का स्वामी बुध यदि हीनबली हो तो अपनी वृद्धि के दोष से वध; बन्धनभय, दूरगमन, बात व कफ रोग से पीड़ा तथा अपना गाड़ा हुआ धन न मिलना, इन दुःखों को प्रदान करता है ॥ २७ ॥

षडष्टान्त्येतरर्क्षस्थो नष्टो ज्ञोऽर्धशुभप्रदः ।
मध्यो हीनः शुभो मध्यः शुभोऽत्यन्तं शुभावहः ॥ २८ ॥

कुन्तला — नष्टः = नष्टबलः अपि, ज्ञः = बुधः, षडष्टान्त्येतरर्क्षस्थः = षष्ठाष्टमद्वादशभिन्नस्थानस्थितः, तदा अर्धशुभप्रदः स्यात् । हीनः = हीनबलस्तादृशः सन्, मध्यः = मध्यमफलदः, मध्यः शुभः, शुभः अत्यन्तं शुभावहः स्यात् ॥ २८ ॥

ज्योति — वर्षलग्न से छठें, आठवें और बारहवें इन स्थानों मे से यदि किसी स्थान में नष्टबली बुध स्थित हो तो अपनी दशा में आधा, अल्पबली हो तो शुभ और पूर्णबली हो तो अत्यन्त शुभ फल प्रदान करता है ॥ २८ ॥

अथ गुरुदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य गुरोर्दशाफलम् —

गुरोर्दशा पूर्णबलस्य दत्ते मानोदयं राजसुहृद्गुरुभ्यः ।
कीर्त्यर्थलाभोपचयं सुखानि राज्यं सुताप्तिं रिपुरोगनाशम् ॥ २९ ॥

कुन्तला — पूर्णबलस्य गुरोः दशा राजसुहृतगुरुभ्यः मानोदयं कीर्त्यर्थलाभोपचयं, सुखानि, राज्यं, सुताप्तिं, रिपुरोगनाशं च दत्ते = ददाति ।। २९ ।।

ज्योति — बृहस्पति की दशा पूर्णबली हो तो राजा, मित्र तथा गुरुजनों से सम्मान, कीर्ति, धन, सुख का लाभ, बल का अतिरेक और सिद्धि अर्थात् बिना प्रयास वांछित कार्यों की सिद्धि प्रदान करती है ।। २९ ।।

अथ मध्यबलस्य गुरोर्दशाफलम् —

गुरोर्दशा मध्यबलस्य धर्मे मतिं सखित्वं नृपमन्त्रिवर्गैः ।
तनोति मानार्थसुखाभिलाषं सिद्धिं सदुत्साहबलातिरेकाम् ।। ३०।।

कुन्तला — मध्यबलस्य गुरोर्दशा, धर्मे मतिं, नृपमन्त्रिवर्गैः सखित्वं, मानार्थसुखाभिलाषां सदुत्साहबलातिरेकां सिद्धिं च तनोति ।। ३०।।

ज्योति — मध्यबली बृहस्पति की दशा हो तो धर्म में मति, मन्त्रिजनों से मित्रता, मान, धन, सुख का लाभ, बल का अतिरेक और सिद्धि अर्थात् बिना प्रयास वांछित कार्यों की सिद्धि प्रदान करती है ।। ३० ।।

अथ स्वल्पबलस्य गुरोर्दशाफलम् —

दशा गुरोरल्पबलस्य दत्ते रोगं दरिद्रत्वमथारिभीतिम् ।
कर्णामयं धर्मधनप्रणाशं वैराग्यमर्थं च गुणं न किंचित् ।। ३१।।

कुन्तला — अल्पबलस्य गुरोः दशा रोगं, दरिद्रत्वं, अथ शत्रुभीति, कर्णामयं = कर्णरोगं, धर्मधनप्रणाशं, वैराग्यं = चित्तौदास्यं न किंचित् अर्थ न किंचिद्गुणं च दत्ते ।। ३१।।

ज्योति — यदि अल्पबलवाले बृहस्पति की दशा हो तो रोग, दरिद्रता, शत्रु से भय, कान का रोग, धर्म और धन का नाश तथा वैराग्य देती है और अर्थ तथा कुछ गुणों को नहीं भी देती ।। ३१।।

अथ हीनबलस्य गुरोर्दशाफलम् —

गुरोर्दशा नष्टबलस्य पुंसां ददाति दुःखानि रुजं कफार्तिम् ।
कलत्रपुत्रस्वजनारिभीतिं धर्मार्थनाशं तनुपीडनं च ।। ३२ ।।

कुन्तला — नष्टबलस्य गुरोर्दशा पुंसां दुःखानि ददाति, रुजं कफार्त्तिं च ददाति, कलत्रपुत्रस्वजनारिभीतिं = स्त्रीसुतपरिजनवैरिभयं, धर्मार्थनाशं, तनुपीडनं च ददाति ।। ३२।।

ज्योति — यदि नष्टबली बृहस्पति की दशा हो तो वह दुःख तथा कफरोग देती है । स्त्री, पुत्र, अपने जनों और शत्रुजनों से भय, धर्म व धन का नाश तथा शरीर में पीड़ा इन अशुभ फलों को देती है ।। ३२ ।।

अथ विशेषकथनम् —

षडष्टरिःफेतरगो गुरुर्निन्द्योऽर्धसत्फलः ।
मध्यो हीनः शुभोः मध्यः शुभोऽत्यन्तं शुभावहः ।। ३३ ।।

कुन्तला — षडष्टरिःफेतरगः = षष्ठाष्टमद्वादशभिन्नस्थानस्थितः, गुरुर्निन्द्यः = नष्टवलोऽपि अर्धसत्फलः = अर्धशुभफलदाता भवति । हीनः = हीनबलो बृहस्पतिस्तादृश स्थानगतः सन् मध्यः = मध्यमशुभफलदः । मध्यः शुभः, शुभः अत्यन्तं शुभावहः स्यात् ।। ३३।।

ज्योति — छठें, आठवें और बाहरवें स्थान से इतर स्थान में यदि नष्टबली बृहपति हो तो अपनी दशा में आधा शुभफल और जो हीनबली बृहस्पति उक्त स्थानों में हो तो मध्यफल तथा मध्यम बली बृहस्पति हो तो शुभफल और पूर्णबली बृहस्पति यदि उक्त स्थानों में हो तो अत्यन्त शुभ फल देता है ।। ३३ ।।

अथ शुक्रदशाफलम्, तत्रादौ पूर्णबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् —

दशा भृगोः पूर्णबलस्य सौख्यं स्रग्गन्धहेमाम्बरकामिनीभ्यः ।
हयादिलाभः सुतकीर्तितोषान्नैरुज्यगान्धर्वरतिः पदाप्तिः ।। ३४ ।।

कुन्तला — पूर्णबलस्य भृगोर्दशा सुगन्धिहेमाम्बरकामिनीभ्यः सौख्यं, हयादिलाभं = घोटकादिवाहनप्राप्तिम्, सुतकीत्तितोषान् = पुत्रयशःसन्तोषान्, नैरुज्यगान्धर्वरतिम् = आरोग्यं, गान्धर्वे = गानवाद्ये अभिरुचिम्, पदाप्तिम्, = नवीनस्थानजीविकालाभं च करोति ।। ३४।।

ज्योति — यदि पूर्णबली शुक्र की दशा हो तो सौख्य, माला, सुगन्धित, सुवर्ण, वस्त्र, स्त्री से सुख, घोड़े आदि का लाभ, पुत्रप्राप्ति, कीर्ति, प्रसन्नता, आरोग्यता, गान में प्रीति और पद की प्राप्ति होती है ।। ३४ ।।

अथ मध्यबलस्य भृगोर्दशाफलम् —

दशा भृगोर्मध्यबलस्य दत्ते वाणिज्यतोऽर्थागमनं कृषेश्च ।
मिष्टान्नपानाम्बरभोगलाभं मित्रांश्च योषित्सुतसौख्यलाभम् ।। ३५।।

कुन्तला — मध्यबलस्य भृगोर्दशा वक्ष्यमाणं फलं दत्ते । किं तत्फलं तदाह — वाणिज्यतः = व्यापारतः, अर्थागमनं = धनागमनं, कृषेश्च धनागमं, मिष्टान्नपानाम्बरभोगलाभं = मधुरान्नाशनवस्त्रभोगसौख्यलाभं, दत्ते, मित्राँश्च = मित्राणि, सम्मेलयति, योषित्सुतसौख्यलाभं दत्ते ।। ३५।।

ज्योति — मध्यबली शुक्र की दशा में व्यापार से धन तथा खेती से धन का लाभ और मीठे अन्न का भोजन, वस्त्र व भोगों का लाभ तथा मित्र और स्त्री–पुत्रों से सौख्य का लाभ होता है ।। ३५ ।।

अथाल्पबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् —

दशा भृगोरल्पबलस्य दत्ते मतिभ्रमं ज्ञानयशोऽर्थनाशम् ।
कदन्नभोज्यं व्यसनामयाति स्त्रीपक्षवैरं कलिरष्यरिभ्यः ॥ ३६ ॥

कुन्तला — अल्पबलस्य भृगोर्दशा मतिभ्रमं, ज्ञानयशोऽर्थनाशं, कदन्नभोज्य, व्यसना–मयार्त्ति, स्त्रीपक्षवैरं, अरिभ्यः अपि कलिं दत्ते ॥ ३६॥

ज्योति — यदि शुक्र की अल्पबली दशा हो तो मतिभ्रम, ज्ञान, यश, धन का नाश, कुत्सित अन्न का भोजन, दुःख, रोग से पीड़ा और ससुरालवालों से वैर तथा शत्रुओं से कलह, ये अशुभ फल देती है ॥ ३६ ॥

अथ हीनबलस्य शुक्रस्य दशाफलम् —

दशा भृगोर्नष्टबलस्य दत्ते विदेशयानं स्वजनैर्विरोधम् ।
पुत्रार्थभार्याविपदो रुजश्च मतिभ्रमोऽपि व्यसनं महच्च ॥ ३७ ॥

कुन्तला —नष्टबलस्य भृगोर्दशा विदेशयानं = परदेशगमनं, स्वजनैर्विरोधं = विग्रहं, पुत्रार्थभार्याविपदः = पुत्रधनस्त्रीणां दुःखानि, रुजः = रोगान्, तथा मतिभ्रमं = बुद्धिमोहं महद् व्यसनं च दत्ते ॥ ३७ ॥

ज्योति — यदि नष्टबली शुक्र की दशा हो तो विदेशगमन, स्वजनों से विरोध, पुत्र, धन और भार्या इन से विपत्ति, रोग, मतिभ्रम तथा महान् दुःख देती है ॥ ३७ ॥

अथ विशेषकथनम् —

षडष्टरिःफेतरगो भृगुर्निन्द्योऽर्धसत्फलः ।
मध्यो हीनः शुभो मध्यः शुभोऽत्यन्तं शुभावहः ॥ ३८ ॥

कुन्तला — षष्ठाष्टमद्वादशभिन्नस्थानस्थः भृगुः = शुक्रः, निन्द्योऽपि अर्धशुभफलदः भवति, तथा तादृशस्थानगतः शुक्रः हीनः अपि मध्यः । मध्यः अपि शुभः, शुभः अपि अत्यन्तं शुभावहः भवति ॥ ३८॥

ज्योति — छठें, आठवें और बारहवें स्थान से अन्य स्थानों में स्थित शुक्र नष्टबली होने पर आधा फल करता है । यदि अल्पबली शुक्र उक्त स्थानों में से अन्य स्थानों में स्थित हो तो मध्य फल तथा मध्यबली हो तो शुभफल तथा पूर्णबली हो तो अत्यन्त शुभफल देता है ॥ ३८ ॥

अथ शनिदशाफलानि लिख्यन्ते, तत्रादौ पूर्णबलस्य शनेर्दशाफलम् —

दशा शनेः पूर्णबलस्य दत्ते नवीनवेश्माम्बरभूमिसौख्यम् ।
आरामतोयाश्रयनिर्मितिश्च म्लेच्छातिसंगान्नृपतेर्धनाप्तिः ॥ ३९ ॥

कुन्तला —पूर्णबलस्य शनेर्दशा नवीनवेश्माम्बरभूमिसौख्यं दत्ते, आरामतोयाश्रयनिर्मितिः = पुष्पवादिकाजलाशयनिर्माणं कारयति । म्लेच्छातिसंगान्नृपतेर्धनाप्तिं दत्ते ।। ३९ ।।

ज्योति — यदि पूर्णबली शनि की दशा हो तो नवीन घर, वस्त्र, भूमि और सैख्य प्राप्त कर बाग, कुआँ और तालाब को बनवाता हुआ वह मनुष्य म्लेच्छों के अत्यन्त संसर्ग से राजद्वार पर पहुँच कर राजा से धन प्राप्त करता है ।। ३९ ।।

अथ मध्यबलशनेर्दशाफलम् —

दशा शनेर्मध्यबलस्य दत्ते खरोष्ट्रपाखण्डजतो धनाप्तिम् ।
वृद्धांगनासंगमदुर्गरक्षाऽधिकारचिन्ताविरसान्नभोगः ।। ४० ।।

कुन्तला — मध्यबलस्य शनेर्दशा खरोष्ट्रपाखण्डजतः = गर्दभोष्ट्रनास्तिकलोकेभ्यः, धनाप्तिं = धनलाभं दत्ते । वृद्धांगनासंगमदुर्गरक्षाऽधिकारचिन्ताविरसान्नभोगः = वृद्धांगना संगमः, दुर्गरक्षाऽधिकारचिन्ता, कदन्नस्वादुहीनान्नभोजनं च भवति ।। ४० ।।

ज्योति — यदि मध्यबली शनैश्चर की दशा हो तो गधा, ऊँट, उड़द, अण्डज, पक्षियों के व्यवसाय से धन की प्राप्ति, बूढ़ी स्त्री के साथ भोग और किला की रक्षा के अधिकार की चिन्ता और रस राहत अन्नों का भोजन ये फल देती है ।। ४० ।।

अथ हीनबलशनिदशाफलम् —

दशा शनेः स्वल्पबलस्य पुंसां तनोति दुःखं रिपुतस्करेभ्यः ।
दारिद्र्यमात्मीयजनापवादं रोगं च शीतानिलकोपमुग्रम् ।। ४१ ।।

कुन्तला — स्वल्पबलस्य शनेः दशा पुंसां रिपुतस्करेभ्यः दुःखं तनोति । दारिद्र्यं, आत्मीयजनापवादं, रोगं, उग्रं शीतानिलकोपं च तनोति ।। ४१ ।।

ज्योति — शनि की अल्पबली दशा मनुष्यों को शत्रु व चोरों से दुःख देती है और अपने जनों से अपवाद, दरिद्रता, रोग और शीघ्र—बात का उग्र कोप कराती है ।। ३७ ।।

अथ नष्टबलस्य शनेर्दशाफलम् —

दशा शनेर्नष्टबलस्यं पुंसामनेकधातुव्यसनानि दत्ते ।
स्त्रीपुत्रमित्रस्वजनैर्विरोधं रोगाभिवृद्धिं मरणेन तुल्यम् ।। ४२ ।।

कुन्तला — नष्टबलस्य शनेर्दशा पुंसां, अनेकधा = बहुधा, व्यसनानि दुःखानि दत्ते । वा अनेकधातुव्यसनानि = त्रिदोष (वातपित्तकफप्रकोप) जनितदुःखानि दत्ते । स्त्रीपुत्रमित्रस्वजनैः विरोधं = विग्रहं, रोगाभिवृद्धिं, मरणेन तुल्यं कष्ट च दत्ते ।। ४२ ।।

ज्योति — यदि शनि की दशा नष्टबली हो तो धातुसम्बन्धी अनेक दुःख देती है और स्त्री, पुत्र मित्र तथा अपने जनों से विरोध कराती तथा मरण समान रोग बढ़ाती है ॥ ४२ ॥

अथ विशेषफलकथनम् —

त्रिषष्ठलाभोपगतो मन्दो निन्द्योऽर्धसत्फलः ।
मध्यो हीनः शुभो मध्यः शुभोऽत्यन्तं शुभावहः ॥ ४३ ॥

कुन्तला — त्रिषष्ठलाभोपगतः = ३। ६। ११ एतदन्यतमस्थानस्थितः, मन्दः = शनिः, निन्द्यः अपि अर्धसत्फलः = अर्धशुभफलदः । हीनोऽपि मध्यः = मध्यफलदः । मध्यः अपि शुभः । शुभः अपि अत्यन्तशुभफलदः भवतीति ॥ ४३ ॥

ज्योति — तीसरें, छठें, ग्यारहवें इन स्थानों में से किसी भिन्न स्थान में यदि शनि स्थित हो तो नष्टबली शनि की दशा भी आधा शुभ फल देती है और हीनबली हो तो मध्यफल, मध्यबली हो तो शुभफल और पूर्णबली हो तो अत्यन्त शुभ फल देती है ॥ ४३॥

अथ लग्नदशाफलकथनम् —

दशा तनोः स्वामिबलेन तुल्यं फलं ददातीत्यपरो विशेषः ।
चरे शुभा मध्यफलाऽधमा च द्विमूतिमेऽस्माद्विपरीतमूह्यम् ॥ ४४ ॥

कुन्तला — तनोः = लग्नस्य, दशा स्वामिबलेन तुल्यं फलं ददाति, यदि लग्नेशः पूर्णबली तदा शुभं फलं पूर्णम् । यदि लग्नेशो मध्यबली तदा शुभं फलं मध्यमं, यदि हीनबली तदा शुभं फलं स्वल्पमेवं स्वामिबलानुसारं लग्नदशाफलं वेद्यम् । तत्र अपरोऽपि = अन्योऽपि विशेषोऽस्ति । चरे = चरगशौ, मेषकर्कतुलामकरेषु प्रथम–द्वितीय–तृतीय–द्रेष्काणभेदेन शुभा, मध्यफला, अधमा च लग्नदशा भवति । यथा चरराशौ प्रथमद्रेष्काणान्तर्गते लग्ने लग्नदशा शुभा भवति । चरराशौ द्वितीयद्रेष्काणान्तर्गते लग्ने तद्दशा मध्यफला स्यात्तथा तत्रैव तृतीयद्रेष्काणलग्ने लग्नदशा अधमा = अशुभफला भवति । एवं द्विमूर्तिभे = द्विस्वभावराशौ प्रथम–द्वितीय–द्रेष्काणभेदवशेन लग्नदशाफलं, अस्माच्चरलग्नदशाफलात् विपरीतं = विलोमम् ऊह्यम् । यथा द्वितनौ प्रथमद्रेष्काणेऽधमा, द्वितीये मध्यमा, तृतीये शुभा भवतीति ॥ ४४ ॥

ज्योति — लग्नदशा अपने स्वामी के फल के समान फल देती है । यदि चर लग्न का पहला द्रेष्काण हो तो लग्न की दशा शुभ फल देती है । दूसरा द्रेष्काण चर लग्न का हो तो मध्यम फल, तीसरा द्रेष्काण हो तो अधम फल तथा द्विस्वभाव लग्न का प्रथम द्रेष्काण हो तो अधम फल, दूसरा द्रेष्काण हो तो तो मध्यम फल और तीसरा द्रेष्काण हो तो शुभफल होता है ॥ ४४ ॥

अनिष्टमिष्टं च समं स्थिरर्क्षे क्रमाद्द्वकाणैः फलमुक्तमाद्यैः ।
सत्स्वामियोगेक्षणतः शुभं स्यात्पापेक्षणत्कष्टफलं च वाच्यम् ॥ ४५ ॥

कुन्तला — स्थिरर्क्षे = स्थिरराशौ, द्रेष्काणभेदेन अनिष्टं, इष्टं = शुभं, समं च फलं भवति, एवं क्रमाद्दृकाणैः = प्रथम—द्वितीय—तृतीयैः फलं = शुभाशुभं, आद्यैः पूर्वाचार्यैरुक्तम्, तत्र सत्स्वामियोगेक्षणतः= शुभस्वामिसंयोगदृष्टितः शुभं लग्नदशाफलं भवति, पापेक्षणात् = पापग्रहदृष्टियोगात् कष्टफलं वाच्यम् ।। ४५ ।।

ज्योति — स्थिर लग्न का प्रथम द्रेष्काण अपनी दशा में अनिष्ट फल, दूसरा द्रेष्काण हो तो शुभफल और तीसरा द्रेष्काण हो तो समान फल देता है । यह पूर्वाचार्यो ने द्रेष्काणवश लग्नदशा का फल कहा है । यदि लग्न शुभग्रहों व अपने स्वामी से युक्त वा दुष्ट हो तो अशुभ फल भी शुभ और शुभफल हो तो शुभतर हो जाता है । लग्नस्वामी यदि पापग्रहों से दृष्ट युक्त हो तो कष्टकारक फल होता है ।। ४५ ।।

अथान्तर्दशासाधनं तच्छुभाशुभफलं चाह —

दशामानं समामानं प्रकल्पयोक्तेन वर्त्मना ।
अन्तर्दशाः सावनीयाः प्राक्पात्यांशवशेन तु ।। ४६ ।।

आदावन्तर्दशा पाकपतेस्तत्क्रमतोऽपराः ।
शुभेक्षणान्वयान्मैत्र्यात्तफलं परिचितयेत् ।। ४७ ।।

चन्द्रारजीवाः सौम्येज्यशुक्रा रविविधू तथा ।
मन्देज्यशुक्राः सूर्येन्दुभौमाः सौम्येज्यसूर्यजाः ।। ४८ ।।

जीवज्ञशुक्राः सूर्यादेः शुभा अन्तर्दशा इमाः ।
अन्येषामशुभा ज्ञेया इति वामनभाषितम् ।। ४९ ।।

कुन्तला — दशामानं = पात्यायिनीदशामानं यस्य ग्रहस्य यदागतं तत् समामानं = दशावर्षमानं प्रकल्प्य, उक्तेन = कथितेन, वर्त्मना = मार्गेण, अन्तर्दशासाधनरीत्या प्राक्पात्यांशवशेन अन्तर्दशाः = दिनादिकाः साधनीयाः । यथा सकलपात्यायनीदशादिनादि योगेन यदि पृथक् पृथक् तत्तद्ग्रहस्य दिनाददशा लभ्यते तदा इष्टग्रहदशायां केत्यनुपातेनान्तर्दशा सिद्ध्यति । तत्र आदौ पूर्वं पाकपतेर्महादशाधीशस्य अन्तर्दशा भवति । ततो यत्क्रमेण दशाधीशाः सन्ति तत्क्रमेणैव अपराः अन्तर्दशाः बोध्याः । तत्र शुभेक्षणान्वयात् = शुभग्रहदृष्टिसंयोगात्, मैत्र्यात् = मित्रग्रहयोगदृष्टितः तत्फलं = तदन्तर्दशाफलं, परिचिन्तयेत् = विचार्य लिखेत् । तत्र सूर्यादेः सूर्यमारभ्य ततः सूर्यादीनां दशासु क्रमेण चन्द्रारजीवाः, सौम्येज्यशुक्राः, तथा रविविधू, मन्देज्यशुक्राः, सूर्येन्दुभौमाः, सौम्येज्यसूर्यजाः, जीवज्ञशुक्राः इमा अन्तर्दशाः, शुभाः = शुभफला उक्ताः । अर्थात् सूर्यदशायां चन्द्रकुजगुरुणामन्तर्दशाः शुभाः । चन्द्रदशायां बुधगुरुशुक्राणामन्तर्दशाः शुभाः । कुजदशायां रविचन्द्रयोरन्तर्दशे शुभे । एवं सर्वत्र बोध्यम् । अन्येषामुक्तभिन्नानां दशाः अशुभा ज्ञेयाः । इति वामनभाषितम् = वामननामाचार्यस्य कथनमस्तीति ।। ४६—४९ ।।

ज्योति — अब अन्तर्दशा तथा भावों में स्थित ग्रहों को फलाध्याय लिखते हुए कहते हैं कि अन्तर्दशा साधन करने का प्रकार संज्ञातन्त्र में कह चुके हैं । इससे यहाँ लिखना आवश्यक नहीं है । अन्तर्दशा का भी फल चार प्रकार का बल देखकर कहना चाहिए । अन्तर्दशापति यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि या शुभयुक्त हो वा शुभ ग्रह से मैत्री हो तो उसी के अनुसार देखकर फल का विचार करे ।

सूर्य की दशा में चन्द्र, मङ्गल और बृहस्पति की अन्तर्दशा शुभप्रद होती है । इसी प्रकार चन्द्र की दशा में बुध, बृहस्पति और शुक्र की; मङ्गल में रवि चन्द्र की; बुध में बृहस्पति, शुक्र की; बृहस्पति में सूर्य, चन्द्र और मङ्गल की; शुक्र में बुध, बृहस्पति और शनि की तथा शनि की दशा में बृहस्पति, बुध और शुक्र की अन्तर्दशा शुभ फल देने वाली होती है । शेष अन्तर्दशा अशुभ समझनी चाहिए, ऐसा वामनाचार्य का मत है ॥ ४६– ४९॥

अथ लग्नस्थग्रहाणां फलानि —

सूर्यारमन्दास्तनुगा ज्वरार्ति धनक्षयं पापयुगिन्दुरित्थम् ।
शुभान्वितः पुष्टतनुश्च सौख्यं जीवज्ञशुक्रा धनधान्यलाभम् ॥ ५० ॥

कुन्तला — सूर्यारमन्दाः = रविकुजशनयः, तनुगाः = लग्नस्थाः, एषु प्रत्येको ग्रहो वा द्वौ ग्रहौ, वा सकला ग्रहा इति बोध्यम् । तदा ज्वरार्त्ति = ज्वरपीड़ां, धनक्षयं च कुर्वन्ति । इत्थं लग्नस्थः पापयुक् इन्दुश्चन्द्रः ज्वरार्त्ति धनक्षयं च करोति । तत्रायं तर्कः करणीयः – यदि लग्नगः सूर्यस्तदा पित्तज्वरः । चन्द्रः सपापो लग्नस्थस्तदा कफज्वरः । भौमो लग्नस्थस्तदा शीतलाज्वररोगः । यदि त्रयो लग्नस्थास्तदा त्रिदोषज्वर इति । अथ शुभान्वितः = शुभयुतः, पुष्टतनुः = पूर्णबिम्बः, चकाराच्छुभदृष्टश्च भूत्वा लग्नस्थस्तदा सौख्यं ददाति, जीवज्ञशुक्रा लग्नस्थास्तदा धनधान्यलाभं कुर्वन्ति ॥ ५०॥

ज्योति — सूर्य मङ्गल, शनि इनमें से कोई भी ग्रह यदि लग्न में स्थित हो तो ज्वर, पीड़ा और धनहानि होती है । यदि पापग्रह सहित चन्द्रमा लग्न में बैठा हो तो ज्वर से पीड़ा और धनक्षय होता है । ग्रहों से युक्त पुष्टशरीर चन्द्रमा यदि लग्न में स्थित हो तो वह सौख्य देता है । बुध तथा शुक्र लग्न में हो तो धन–धान्य का लाभ होता है ॥ ५०॥

अथ धनभावस्थितसकलग्रहफलम् —

चन्द्रज्ञजीवास्फुजितो धनस्था धनागमं राज्यसुखं च दद्युः ।
पापा धनस्था धनहानिदाः स्युर्नृपाद्भयं कार्यविघातमार्किः ॥ ५१॥

कुन्तला — चन्द्रज्ञजीवास्फुजितः = चन्द्रबुधगुरुशुक्राः, धनस्थाः = द्वितीयभावस्थाः, धनागमं, राज्यसुखं च दद्युः । पापाः = रविकुजशनयः राहुकेतू च धनस्थाः सन्तः, धनहानिदाः स्युः । धनस्थः आर्किः = शनिः, नृपाद्भयं = राजतो भयं, कार्यविघातं च करोति ॥ ५१॥

ज्योति — चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र ये यदि धनस्थान में बैठे हों तो धन, राज्य का सुख को देते हैं । यदि पापग्रह धन स्थान में बैठा हो तो धनहानि और शनैश्चर धनस्थान में हो तो राजा का भय और कार्य को नष्ट करता है ॥ ५१॥

अथ तृतीयभावस्थितसकलग्रहफलम् —

दुश्चिक्यगाः खलखगा धनधर्मराज्य लाभप्रदा बलयुताः क्षितिलाभदाः स्युः ।
सौम्याः सुखार्थसुतमानयशोविलास लाभाय हर्षमतुलं किल तत्र चन्द्रः ॥ ५२ ॥

कुन्तला — खलखगाः = पापग्रहाः, रविकुजशनयः, दुश्चिक्यगाः = तृतीयभावगतास्तदा धनधर्मराज्यलाभप्रदा भवन्ति । यदि ते बलयुतास्तदा क्षितिलाभदाः = भूमिक्षेत्रप्राप्तिकरा भवन्तीति । यदि सौम्याः = शुभाः बुधगुरुशुक्राः तृतीयस्थानगतास्तदा सुखार्थसुतमानयशोविलासलाभाय भवन्ति । यदि चन्द्रः तत्र = तृतीये स्थितस्तदा अतुलं = पूर्ण, हर्ष = विनोदं ददाति ॥ ५२ ॥

ज्योति — तृतीय भाव में यदि पापग्रह बैठें तों तो धन, धर्म तथा राज्य और बली पापग्रह भ्रातृभाव में हों तो पृथ्वीलाभ और यदि सहज स्थान में शुभग्रह हों तो सुख, धन, पुत्र, मान, यश और विलास देते हैं । यदि तृतीयभाव में चन्द्रमा बैठा हो तो अत्यन्त आनन्द देता है ॥ ५२ ॥

अथ चतुर्थभावस्थसकलग्रहफलम् —

चन्द्रः सुखे खलयुतो व्यसनं रुजं च पुष्टः शुभेन सहितः सुखमातनोति ।
सौम्याः सुखं विविधमत्र खलाः सुखार्थनाशं रुजं व्यसनमप्यतुलं भयं च ॥ ५३॥

कुन्तला — खलयुतः = पापयुतदृष्टश्चन्द्रः सुखे = चतुर्थभावे स्थितस्तदा व्यसनं, रुजं = रोगं च दत्ते । यदि पुष्टः, शुभेन युतदृष्टश्चन्द्रश्चतुर्थे स्थितस्तदा सुखम् श्रातनोति = सर्वतोभावेन ददाति । सौम्याः शुभाः चतुर्थस्थानस्थिताः, तदा विविधं सुखं दद्युः । खलाः = रविकुजशनयः अत्र = चतुर्थे स्थितास्तदा सुखार्थनाशं, रुजं = रोगं, अतुलम् = असीमं, व्यसनं = क्लेशं, अतुलं भयं च दद्युः ॥ ५३ ॥

ज्योति — यदि चौथे भाव में पापग्रह युक्त चन्द्रमा स्थिता हो तो कष्ट और रोग देता है । यदि शुभग्रहों से युक्त पूर्ण चन्द्रमा यदि सुख भाव में स्थित हो तो सुख देता है । शुभग्रह चौथे घर में हों तो विविध सुख देते हैं । चौथे घर में यदि पाप ग्रह विराजमान हों तो सुख और धन का नाश, रोग, कष्ट और अतुल भयदायक होते हैं ॥ ५३ ॥

अथ पञ्चमभावस्थसकलग्रंहफलम् —

पुत्रवित्तसुखसञ्चयं शुभाः पुत्रगा भृगुसुतोऽतिहर्षदः ।
पुत्रवित्तधनबुद्धिहारकास्तस्करामयकलिप्रदाः खलाः ॥ ५४ ॥

कुन्तला — शुभाः = बुधगुरुशुक्राः पूर्णबलश्चन्द्रश्चैते पुत्रगाः = पञ्चमभावगतास्तदा पुत्रवित्तसुखसंचयं = पुत्रसुखं, वित्तसञ्चयं = धनसंग्रहं च दिशन्ति । भृगुसुतः पञ्चमगतस्तदाऽतिहर्षदः भवति । यदि खलाः = पापाः रविकुजशनयः क्षीणचन्द्रश्चैते पञ्चमभावगतास्तदा पुत्रवित्तधन–बुद्धिहारकाः = पुत्रहारकाः, धनहारकाः धनधान्यहारकाः, बुद्धिहारकाश्च भवन्ति । तस्करामयकलिप्रदाः = चौरोपद्रवरोगागमकलहकराश्च भवन्ति ।। ५४ ।।

ज्योति — यदि शुभग्रह पञ्चम भाव में हो तो पुत्र, धन और सुख देते हैं । पञ्चम भाव में स्थित शुक्र अतिशय आनन्द देता है । पापग्रह यदि पञ्चम स्थान में हों तो पुत्र, धन, सुख तथा बुद्धि हरने वाले होते हैं और चौरभय, रोग और कलह कराते हैं ।। ५४ ।।

अथ षष्ठभावस्थसकलग्रहफलम् —

षष्ठे पापा वित्तलाभं सुखाप्ति भौमोऽत्यन्तं हर्षदः शत्रुनाशम् ।
सौम्या भीतिं वित्तनाशं कलिं च चन्द्रो रोगं पापयुक्तं करोति ।। ५५।।

कुन्तला — षष्ठे = षष्ठभावे स्थिताः पापाः (र० मं० श० क्षी० चं०) वित्तलाभं = धनप्राप्तिं सुखाप्तिं = सुखलाभं कुर्वन्ति । षष्ठस्थः भौमः अत्यन्तं हर्षदः, शत्रुनाशं च करोति । षष्ठस्थिताः सौम्याः = शुभग्रहाः भीति = भयं, वित्तनाशं = धनक्षतिं, कलिं = कलहं च कुर्वन्ति । पापयुक्तः क्षीणश्चन्द्रः रोगं = कफज्वरादि करोति ।। ५५।।

ज्योति — छठें घर में यदि पापग्रह हों तो द्रव्यलाभ और सुख की प्राप्ति कराते हैं । मङ्गल अत्यन्त हर्ष देता और शत्रुओं का नाश करता है । षष्ठ भाव में स्थित शुभग्रह धननाश और कलह कराते हैं तथा पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तो वह रोग करता है ।। ५५।।

अथ सप्तमभावस्थसकलग्रहफलम् —

सपापः शशी सप्तमो व्याधिभीतिं खलाः स्त्रीविनाशं कलिं भृत्यभीतिम् ।
शुभाः कुर्वते वित्तलाभं सुखाप्तिं यशो राजमानोदयं बन्धुसौख्यम् ।। ५६ ।।

कुन्तला — सपापः = पापयुतदृष्टः शशी = चन्द्रः सप्तमस्थस्तदा व्याधिभीतिं = रोगभयं करोति । खलाः = पापाः सप्तमे स्थितस्तदास्त्रीविनाशं, कलिं, भृत्यभीतिं = सेवकभयं च कुर्वन्ति । सप्तमगताः शुभाः वित्तलाभं, सुखाप्तिं यशः राजमानोदयं, बन्धुसौख्यं कुर्वन्ति ।। ५६ ।।

ज्योति — पापग्रह के सहित यदि चन्द्रमा सप्तम भाव में बैठा हो तो व्याधि तथा भय, सातवें घर में पापग्रह हों तो स्त्री का नाश और सेवक से भय करते हैं । यदि शुभग्रह सातवें स्थान में विद्यमान हों तो धनलाभ, सुख की प्राप्ति, यश, राजा से मान का उदय और बन्धुजनों से सौख्य प्राप्त कराते हैं ।। ५६ ।।

अथाष्टमभावस्थसकलग्रहफलम् —

चन्द्रोऽष्टमे निधनदः खलखेटयुक्तः पपाश्च तत्र मृतितुल्यफलं च विद्यात् ।
सौम्याःस्ववातुवशतो रुजमर्थहानिं मानक्षयं मुथशिले शुभजे शुभञ्च ।। ५७।।

कुन्तला — खलखेटयुक्तः = पापयुतः चन्द्रः अष्टमे स्थिस्ततदा निधनदः = मरणकरः, पापाः अष्टमगतास्तदा मृतितुल्यफलं विद्यात् = जानीयात् । अष्टमस्थाः सौम्याः = शुभग्रहाः स्वधातुवशतः रुज = रोगं, अर्थहानि = धनक्षयं मानहानि च कुर्वन्ति । तत्र शुभजे मुथशिले सति शुभं = शुभफलं भवति ।। ५७ ।।

ज्योति — वर्षेश के समय यदि पापग्रह युक्त चन्द्रमा आठवें स्थान में बैठा हो तो मरण करता है । यदि केवल पापग्रह बैठें हों तो मरण तुल्य फल देते हैं । शुभग्रह यदि आठवें स्थान में विराजमान हों तो अपने धातु वश रोग, धनहानि और मानक्षय देते हैं । अष्टमभावस्थ शुभग्रहों के साथ इत्थशाल योग हो तो अनिष्ट फल भी शुभ हो जाया करता है ।। ५७ ।।

अथ नवमभावगतसकलग्रहफलम् —

तपसि सोदरभीः पशुपीडनं खलखगेऽतिमुदा रविरत्र चेत् ।
शुभखगा धनधमविवृद्धिदाः खलखगेऽपि शुभेत्यपरे जगुः ।। ५८।।

कुन्तला — खलखगे = पापग्रहे, तपसि = नवमस्थानगते सति सोदरभीः = सहोदरभयं पशुपीडनं = पालिताश्ववगोमहिष्यादिनाशं भवति । यदि अत्र = नवमे, रविस्तदाऽतिमुदः = अधिकहर्षाणि, भवन्ति । शुभग्रहाः नवमे स्थिताः धनधर्मविवृद्धिदाः भवन्ति । अपरे आचार्याः खलखगे नवमस्थे सति दशा शुभा इति जगुः ।। ५८।।

ज्योति — यदि नवम स्थान में पापग्रह हों तो जातक को भाइयों से भय तथा पशुओं को पीड़ा हो, यदि नवमभाव में सूर्य हो तो अतिशय आनन्द होता है । नवम स्थान में शुभग्रह हों तो वे धन और धर्म की वृद्धि करते हैं । कोई–कोई आचार्य कहते हैं कि पापग्रह भी नवम भाव में शुभफल दायक हो जाते हैं ।। ५८ ।।

अथ दशमस्थानस्थितसकलग्रहफलम् —

गगनगो रविजः पशुवित्तहा रविकुजौ व्यवसायपराक्रमौ ।
धनसुखानि परे च धनात्मजावनिपसंगसुखानि वितन्वते ।। ५९।।

कुन्तला — गगनगः = दशमस्थानस्थितः, रविजः = शनिः, पशुवित्तहा = पशुधन–क्षतिकरो भवति । गगनपौ रविकुजौ, व्यवसायपराक्रमौ कुरुतः । परे = शुभाः, धनसुखानि, धनात्मजावनिपसंगसुखानि = धनपुत्रराजसंगसुखानि च वितन्वते = दिशन्ति ।। ५९ ।।

ज्योति — दशम भाव में स्थित शनि पशु और धन का नाश करता है । यदि सूर्य मङ्गल दोनों दशम घर में स्थित हों तो व्यापार और पराक्रम द्वारा धन और सुख देते हैं । यदि इनसे अन्य ग्रह राज्य भाव में हों तो वे धन व पुत्र और राजा के संग से सुख देते हैं ॥ ५९॥

अथ लाभभावस्थसकलग्रहफलम् —

लाभे धनोपचयसौख्ययशोऽभिवृद्धिं सन्मित्रसंगबलपुष्टिकराश्च सर्वे ।
क्रूरा बलेन रहिताः सुतवित्तबुद्धिनाशं शुभास्तु तनुतां स्वफलस्य कुर्युः ॥ ६० ॥

कुन्तला — सर्वे = पापाः शुभाश्च सबला भूत्वा लाभे = एकादशस्थाने स्थितास्तदा धनोपचयसौख्ययशोऽभिवृद्धिं, सन्मित्रसंगबलपुष्टिकराश्च भवन्ति । बलेन रहिताः क्रूराः = पापाः सुतवित्तबुद्धिनाशं कुर्वन्ति । वलेन रहिताः शुभाः स्वफलस्य शुभस्य तनुतां = अल्पतां कुर्युः ॥ ६०॥

ज्योति — यदि सब शुभ वा क्रूरग्रह बली होकर ग्यारहवें भाव में हों तो धन समूह, सौख्य तथा यश की बढ़ती, अच्छे मित्रों का साथ, बल और पुष्टि देते हैं । क्रूर ग्रह बलरहित होकर यदि ग्यारवें स्थान में हों तो वे पुत्र, धन और बुद्धि इनका नाश करते हैं । जो बल से रहित शुभग्रह आयभाव में हो तो अल्प फल देते हैं ॥ ६० ॥

अथ व्ययभावस्थसकलग्रहफलम् —

पापा व्यये नेत्ररुजं विवादं हानिं धनानां नृपतस्करादेः ।
सौम्या व्ययं सद्व्यवहारमार्गे कुर्युः शनिर्हर्षविवृद्धिमत्र ॥ ६१॥

कुन्तला — पापाः = पापग्रहाः यदि व्यये = द्वादशभावे स्थितास्तदा नेत्ररुज = नयनरोगं, विवादं = शुष्ककलहं, धनानां नृपतस्करादेः सकाशाद्धानि कुर्वन्ति । व्ययभावगताः शुभाश्च सद्व्यवहारमार्गे व्ययं कुर्युः, व्ययगः शनिस्तु हर्षविवृद्धिं करोतीति शनिफलमन्यग्रन्थाद्विरुद्धं वर्त्तते ॥ ६१॥

ज्योति — यदि पापग्रह बारहवें स्थान में हों तो नेत्ररोग, विवाद, राजा और चोर आदि कों से धन हानि कराते हैं । यदि शुभग्रह बारहवें भाव में हों तो अच्छे मार्ग में खर्च कराते हैं । यदि शनैश्चर व्ययभाव में हो तो हर्ष तथा वृद्धि देता है ॥ ६१ ॥

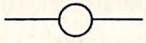
श्रीगर्गान्वयभूषणं गणितविच्चिन्तामणिस्तत्सुतो
ऽनन्तोऽनन्तमतिर्व्यधात्खलमतिध्वस्त्यै जनुःपद्धतिम् ।
तत्सूनुः खलु नीलकण्ठविबुधो विद्वच्छिवानुज्ञया
भावस्थग्रहपाकदौःस्थ्यसुखतायुक्तं फलं सोऽभ्यधात् ॥ ६२ ॥

कुन्तला — चरणत्रयं व्याख्यातमेव केवलं चतुर्थचरणो व्याख्यायते । स नीलकण्ठदैवज्ञः भावस्थग्रहपाकदौःस्थ्यसुखतायुक्तं = द्वादशभावगतग्रहजनितक्लेशशुभत्वसहितं फलं अभ्यधात् उक्तवानिति ॥ ६२ ॥

ज्योति — श्रीगर्गाचार्य के वंश में भूषण स्वरूप और ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता चिन्तामणि नाम के पंडित हुए । उनके पुत्र अनन्त मति वाले अनन्त हुए । उन्होंने दुष्टों का मत ध्वंस करने के लिए जन्मपद्धति बनायी उनके पुत्र नीलकण्ठनामक विद्वान् ने शिव जी की आज्ञा से भावस्थ ग्रहों की दशा के अशुभ व शुभ फल बताए हैं ।। ६२ ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां दशाफलाध्यायस्य संस्कृत 'कुन्तला' — ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां दशाफलाध्यायः ।।



अथ मासदिनफलाध्यायः

तत्रादौ मासप्रवेशवेलासाधनकथनम् —

मासार्कस्य तदासन्नपंक्तिस्थेन सहान्तरम् ।
कलीकृत्यार्कगत्याऽऽप्तदिनाद्येन युतोनितम् ॥ १ ॥

तत्पंक्तिस्थं वारपूर्वं मासार्केऽधिकहीनके ।
तद्वाराद्ये मासवेशो द्युवेशोऽप्येवमेव हि ॥ २ ॥

कुन्तला — मासार्कस्य = एकद्वित्रिराशियुक्तस्य सूर्यस्य, तदासन्नपंक्तिस्थेन सूर्येण सहअन्तरं कार्यम् । तत्र प्रथममासप्रवेशे वर्षप्रवेशकालसिद्धा एव सर्वे विषया बोध्याः । द्वितीयमासे तु वर्षकालिकसूर्यराश्यादावेकराशिं संयोज्य मासार्कः । तृतीयमासे राशिद्वयाधिको वर्षकालिकसूर्यो मासार्कः । अथवा एकराशियुक्तो द्वितीयमासप्रवेशकालिकसूर्यो मासार्को भवति । अतएव संज्ञातन्त्रे — 'एकैकराशिवृद्ध्या चेत्तुल्योऽशाद्यैर्यदा रविः । तदा मासप्रवेशः'' इत्युक्तम् । तस्य मासार्कस्य, तदासन्नपंक्तिस्थेन = तत्समीपतर—मिश्रमानकालिकसूर्येण यदन्तरं, तत्कलीकृत्य = कलात्मकं कृत्वा, अर्कगत्याऽऽप्तदिनाद्येन अधिकहीनके मासार्के सति वारपूर्वं तत्पंक्तिस्थं युतोनितंकार्यम् । यदि मासार्कादधिकः पंक्तिस्थः सूर्यस्तदा ऋणं तथा मासार्कादूनः पंक्तिस्थसूर्यस्तदा धनमिति बोध्यम् । तत्र मासकालपंक्तिकालयोरन्तरज्ञानार्थमनुपातः यदि रविगत्या एकं दिनं तदा मासार्कपंक्तिस्थार्कान्तरकलाभिः किमिति दिनादिकं फलं जातं तद्धनचालने पंक्तिकाले दिनादिके धनमृणचालने ऋणं कार्यम् तदा मासप्रवेशकालः स्यात् । एवमेव द्युप्रवेशकालः साध्यः । यथा मासार्के एकांशयोजनेन द्वितीयदिनप्रवेशार्कः, अंशद्वययोजनेन तृतीयदिनप्रवेशार्क एवं, यद्दिने दिन प्रवेशकालः साध्यते, तद्दिवसीयदिनप्रवेशार्कस्य तथा तदुंदवसीयसूर्यांशानां च यदन्तरं तत्कलात्मकं विधाय रविगतिकलया एकं दिनं षष्टिघटिकात्मकं लभ्यते तदा तदन्तरकलाभिः किमिति यल्लब्धं समयमानं तेन मिश्रमानकालस्याधिकत्वे शोध्यं, न्यूनत्वे योज्यं तदा दिनप्रवेशकालः सिद्ध्यति ॥ १—२॥

अथ मासप्रवेशे मासेशसाधनकथनम् —

मासप्रवेशकाले ज्ञो ग्रहान्भावांश्च साधयेत् ।
तत्र मासतनोर्नार्थो मुथहा जन्मपस्तथा ॥ ३ ॥

त्रिराशिपो दिननिशो रवीन्दुभपतिस्थता ।
अब्दप्रवेशलग्नेश एषां वीर्याधिकस्तनुम् ॥ ४ ॥

पश्यन्मासपतिर्ज्ञेयस्ततो वाच्यं शुभाशुभम् ।
अपरे मासलग्नेश मासाधिपतिमूचिरे ॥ ५ ॥

तो दूसरे दिनप्रवेश का सूर्य हुआ, इसका और उसी दिन के मिश्रमान कालिक सूर्य का अन्तर करना, उसकी कला बनाना, उसमें रविगतिकला से भाग देकर पहले घटी बाद में शेष को साठ से गुणाकर फिर गतिकला से भाग देने पर पल आवेंगे यह घटी पल मिश्रमान काल में जोड़ना घटाना, अर्थात् दिनार्क से मिश्रमानकालार्क अधिक है तो घटाना यदि न्यून है, तो जोड़ना तब दिनप्रवेशकाल हो जाएगा ॥ १ – २ ॥

अथ मासप्रवेशे मासेशसाधनकथनम् —

मासप्रवेशकाले ज्ञो ग्रहान्भावांश्च साधयेत् ।
तत्र मासतनोर्नार्थो मुथहा जन्मपस्तथा ॥ ३ ॥

त्रिराशिपो दिननिशो रवीन्दुभपतिस्थता ।
अब्दप्रवेशलग्नेश एषां वीर्याधिकस्तनुम् ॥ ४ ॥

पश्यन्मासपतिर्ज्ञेयस्ततो वाच्यं शुभाशुभम् ।
अपरे मासलग्नेश मासाधिपतिमूचिरे ॥ ५ ॥

दिनेशं दिनलग्नेशं तथा प्रोचुर्विचक्षणाः ।
मासघस्त्रेशयोर्वाच्यं फलं वर्षेशवद्बुधैः ॥ ६ ॥

कुन्तला — मासप्रवेशकाले, ज्ञः = दैवज्ञः, ग्रहान् भावाँश्च साधयेत् । तत्र मासतनोः = मास प्रवेशकालीनलग्नस्य नाथः = स्वामी तथा मासप्रवेशकालीनमुथहेशो ग्रहः, जन्मलग्नपतिः,तथा त्रिराशीशः = मासप्रवेशकालिकलग्नत्रिराशीशः, दिननिशोर्मासप्रवेशे क्रमेण रवीन्दुभपतिः = रविचन्द्र– राश्यधिपो ग्रहः । दिने सूर्यराशीशः । रात्रौ चन्द्रराशीशः । तथा अब्दप्रवेशलग्नेशः = वर्षलग्नपतिश्च एषां षडग्रहाणां मध्ये वीर्याधिकः = बलाधिकः, तनुं = मासप्रवेशलग्नं पश्यन् सन् मासपतिर्ज्ञेयः । ततो बलवशेन वर्षं शुभाशुभं वाच्यम् । अपरे = अन्ये विचक्षणाः पण्डिताः, मासलग्नेशं मासाधिपतिं = मासेश्वरम् ऊचिरे = उक्तवन्तः । तथा दिनप्रवेश–लग्नेशमेव दिनेशं कथयामासु । तत्र बुधैः मासघस्त्रेशयोः फलं वर्षेशवद्वाच्यम् ॥ ३ – ६॥

ज्योति — मास प्रवेश काल में पूर्वोक्त प्रकार से तन्वादि बारह भावों का साधन करे फिर मासपति के निर्णय के लिए अधिकारियों का इस क्रम से विचार करे (१) मासलग्नपति (२) मुन्थहापति (प्रतिमास में २॥ अंश मुन्थहा बढ़ती है इस क्रम से मुन्थहाराशि का स्वामी) (३) जन्मलग्न का स्वामी (४) त्रिराशिपति (५) दिन में सूर्यराशिपति और रात्रि में चन्द्रराशिपति (६) वर्ष प्रवेशलग्न का स्वामी, इन छः अधिकारियों में से जो बलवान् होकर लग्न को देखे, उसे मासस्वामी जाने । इसी मासस्वामी से शुभ अशुभ फल कहे । अन्य आचार्यों के मत से दिनेशप्रवेश लग्न को ही दिनेश कहते हैं । मासेश और दिनेश का निश्चय करके वर्षेश के समान उनका फल कहे ॥ ३ – ६॥

अथ मासफलकथनम् —

लग्नांशाधिपतिविलग्नपनवांशेशेन मैत्रीदृशा
दृष्टो वा सहितः शशी च यदि तौ मैत्रीदृशाऽऽलोकते ।
तस्मिन्मासि तनौ सुखं बहुविधं नैरुज्यमित्थं फलं
तावद्यावदिमें स्युरित्थमथ तान्सञ्चार्य वाच्यं फलम् ॥ ७॥

कुन्तला — लग्नांशाधिपतिः = मासप्रवेशलग्ननवांशेशः, विलग्नपनवांशेशेन = मासप्रवेश लग्नेशनवांशाधिपेन अर्थान्मासप्रवेशकाले लग्ननवांशपतिर्लग्नपतिनवांशाधिपेन, मैत्रीदृशा = (३। ५। ९। ११) दृष्ट्या दृष्टः = विलोकितः, वा सहितः = युतः स्यात्तत्र शशी = चन्द्रः, यदि तौ = लग्ननवांशेशलग्नपतिनवांशनायौ मैत्रीदृशा (३। ५। ९। ११) आलोकते = वीक्षते, तदा, तस्मिन् मासि, तनौ = शरीरे, बहुविधं सुखं, नैरुज्यम् = आरोग्यं च भवति । इत्थममुना प्रकारेण फलं = मासफलं, तावदेव वाच्यं, यावत् इमे ग्रहा इत्थम् = ईदृशाः स्युः । अर्थात् तेषां ग्रहाणां प्रतिदिन चलन वशेन नवांशभेदात् तत्पतिग्रहभेदाद् दृष्टिभेदात्फलपरिवर्त्तनं जायते । अतः तान् ग्रहान् सञ्चार्य = सञ्चाल्य फलं वाच्यम् ॥ ७ ॥

ज्योति — मासलग्न का नवांशेश यदि मास लग्नेश तथा नवांशस्वामी के साथ मित्रता करता हुआ दिखता हो अथवा युक्त हो और उन दोनों स्वामियों को चन्द्रमा मित्रदृष्टि से देखे तो उस मास में नाना प्रकार का सुख मिलता है और शरीर में निरोगता रहती है । इस प्रकार मासफल तभी तक होता है, जब तक यह योग रहे । उसके बाद राशिसंचार क्रम से शुभा–शुभ फल होता है ॥ ७ ॥

अथानिष्टफलकथनम् —

तौ तेच्छत्रुदृशा मिथश्च शशिना दृष्टौ मनोदुःखदौ
रोगाधिक्यकरौ च कश्चिदनयोर्नीचोऽस्तगो वा यदि ।
कष्टात्सौख्यमिह द्वयं यदि पुनर्नीचास्तगं स्यान्मृतिः
सूत्यब्दोद्भवरिष्टतो मृतिसमं स्यादन्यथेत्यूचिरे ॥ ८ ॥

कुन्तला — तौ लग्नवांशेश – लग्नपतिनावांशेशौ मिथः = परस्परं, शशिनां = चन्द्रेण च दृष्टौ = वीक्षितौ, तदा मनोदुःखदौ, रोगाधिक्यकरौ च भवतः । अथ यदि वा अनयोर्लग्नलवेश – लग्नपतिलवेशयोर्ग्रहयोर्मध्ये एको नीचगतोऽन्योऽस्तगो भवेत्तदा कष्टात् = प्रयासात् सौख्यं स्यात् । इह वा यदि द्वयं = तदुक्तग्रहद्वयमपि पुनर्नीचास्तगं = नीचगतं, वाऽस्तगतमेव स्यात् तदा मृतिः स्यात् । अथान्यथा सूत्यब्दोद्भवरिष्टतः = जन्मवर्षकाल–घटितानिष्टयोगतः, मृतिसमं = मरणतुल्यं कष्ट स्यात् । इति फलम् आचार्या ऊचिरे = कथितवन्तः ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश और लग्नेशांशेश दोनों परस्पर शत्रुदृष्टि से देखते हों और चन्द्रमा भी उन दोनों को शत्रुदृष्टि से देखता हो तो मनोदुःख देते हुए रोग बढ़ाते हैं । यदि पूर्वोक्त दो स्वामियों के बीच में कोई एक नीच राशि को प्राप्त हो अथवा अस्त हो तो पहले वह कष्ट और पीछे से सौख्य देता है । वे दोनों नीच राशि में स्थित हों या अस्तङ्गत हो अथवा एक नीच राशि में और अन्य अस्तङ्गत हो तो मृत्यु होती है । ऐसा फल तब जानना चाहिए जब कि जन्मकाल और वर्षकाल में अरिष्टयोग हो अन्यथा मृत्यु समान कष्ट कहना चाहिए ॥ ८ ॥

अथ मासलग्नस्य शुभाशुभफलकथनम् —

भावांशाधिपतिः स्वभावपनवांशेशेन मैत्रीदृशा
दृष्टो वा सहितः शशी च यदि तौ मैत्रीदृशाऽऽलोकते ।
तद्भावोत्थसुखं विलोक्यमथतद्वच्यत्यासतः कीर्तितं
नीचास्तादि फलं च लग्नवदिदं विद्वद्भिरूह्यं धिया ॥ ९ ॥

कुन्तला — भावांशाधिपतिः = कस्यापि भावस्य नवांशपतिः, स्वभावपनवांशेशेन = निजभावेशलवेशेन मैत्रीदृशा दृष्टः, वा सहितः, वा शशी चन्द्रश्च तौ भावनवांशेश–भावेशनवांशेशौ ग्रहौ मैत्रीदृशाऽऽलोकते तदा. तद्भावोत्थसुखं वाच्यम् । तद्यत्यासतः = तदुक्तविलोमात् शत्रुदृष्ट्या विलोमं फलं कीर्त्तितं = कथितम् । नीचास्तादिफलं च लग्नवत् = यथा इतः पूर्वश्लोके (द्वयं यदि पुनर्नीचास्तगम्) उक्तं तथैव विद्वद्भिः = पण्डितैः, धिया = स्वबुद्ध्या ऊह्यं = ज्ञातव्यम् ॥ ९ ॥

ज्योति — मासलग्न में जिस भाव के नवांश का स्वामी अपने स्वामी के नवांशस्वामी द्वारा मित्रदृष्टि से देखा जाता हो अथवा युक्त हो और वही चन्द्रमा भी यदि भावनवांश स्वामी और भावेशनवांशस्वामी को मित्रदृष्टि से देखे तो उस भाव से उत्पन्न सुख उसी महीने में होता है । इससे विपरीत हो तो विपरीत फल कहना चाहिए । इस समय नीच, अस्त आदिकों का फल लग्न के समान ही बुद्धिमानों को कहना चाहिये । जैसे भावनवांशेश, भावेश का नवांशेश इन दोनों में से एक भी यदि नीच राशि में हो, एक शुभ हो अथवा एक अस्तङ्गत हो और एक शुभ हो तो उस भावसम्बन्धी कष्ट को करने के बाद पीछे सुख करता है । दोनों नीचास्तादि में हों तो उस भाव से उत्पन्न कष्ट देते हैं ॥ ९ ॥

अथ प्रकारांतरेण भावस्य सौख्यकथनम् —

लग्नेशमासेशमेश्वरांशनाथा यदंशाधिपमित्रदृष्ट्या ।
दृष्टा युता वा शशिना च तत्तद्भावोत्थसौख्याय न चेदनिष्टम् ॥ १० ॥

कुन्तला — लग्नेशः = वर्षलग्नेशः मासेशः = मासस्वामी, समेश्वरः = वर्षेशः, अंशस्वामी = मासप्रवेशलग्नेशः, एते ग्रहा यदंशाधिपमित्रदृष्ट्या = यद्भावनवांशेशस्य मित्रदृष्ट्या दृष्टाः, वा युताः वा शशिना युतदृष्टास्तदा तद्भावोत्थसौख्याय भवन्ति । इत्थं न चेत्तदाऽनिष्टं वाच्यम् ॥ १०॥

ज्योति — वर्षलग्नेश, मासलग्नेश, वर्षेश और मासलग्ननवांशेश ये चारों जिस किसी भाव अथवा भावेश तथा नवांशेश के द्वारा मित्रदृष्टि से देखे जाते हों अथवा युक्त हों तो उस भाव का सौख्य होता है । यदि अनिष्ट न हो तभी ऐसा फल कहना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ १०॥

अथ लग्ननवांशोत्पन्नभावस्य शुभाशुभफलकथनम् —

निर्बला व्ययषष्ठांशपा सत्फलदायकाः ।
अन्ये सवीर्याः शुभदा व्यत्यये व्यत्ययः स्मृतः ॥ ११॥

कुन्तला — व्ययषष्ठांशपाः = व्ययषष्ठाष्टमभावनवांशस्वामिनः, निर्बलाः = बलहीनास्तदा सत्फलदायकाः भवन्ति । एते तु अनिष्टफलदा एव, तेन यदि ते सबलास्तदाऽनिष्ट फलपोषकः, दुर्बलास्तदाऽल्पानिष्टफलदा अत एव शुभफलदायकाः । अन्ये = तनुधनसहजसुख—सुतजायाधर्मकर्मायभावेशाः सवीर्याः = बलयुक्तास्तदा शुभदा भवन्ति । व्यत्ययेऽर्थात् १२। ६। ८ एतद्भावेशाः सबलास्तदाऽशुभदाः, १। २। ३। ४। ५। ७। ९। १०। ११ एतद्भावेशास्तल्ल—वेशाः दुर्बलास्तदाऽनिष्टफलदाः । एतेनानिष्टभावा दुर्बलाः शुभदाः शुभभावाः सबलास्तदा शुभदा इति सिद्धम् ॥ ११॥

ज्योति — बारहवें, छठें तथा आठवें इन भावों के नवांशस्वामी यदि निर्बल हों तो शुभफल के देने वाले होते हैं । इनसे शेष भावों के नवांशस्वामी यदि बलिष्ठ हो तो शुभफल देने वाले होते हैं, अन्यथा उल्टा फल समझना चाहिए ॥ ११॥

लग्नेशमासेशसमेशमुन्थाधीशाः षडष्टोपगताः सपापाः ।
दृष्टाः खलैः शत्रुदृशाऽत्र मासे व्याध्यादिविद्विड्भयदुःखदाः स्युः ॥ १२ ॥

कुन्तला — लग्नेश—मासेश—समेश—मुन्थाधीशः, षडष्टोपगताः = षष्ठाष्टम—स्थानगताः, अत्र छन्दोभङ्गानुरोधेन व्ययोपादानं न कृतं, तेन ६। ८। १२ समानफलदातृत्वा—त्समत्वाद्द्वयोर्ग्रहयोः = तृतीयस्यापि ग्रहणं, तथा ते सपापाः = पापग्रहसंयुताः, खलैः = पापैः शत्रुदृशा (१। ४। ७। १०) दृष्टास्तदा अत्र मासे ते ग्रहाः व्याध्यादि—विद्विड्भयदुःखदाः = व्याधिरोगभय—शत्रुभय—दुःखदा भवन्ति ॥ १२ ॥

ज्योति — वर्षलग्नेश, मासेश, वर्षेश और मुन्थहेश ये चारों पापग्रहों से युक्त होकर यदि छठें या आठवें स्थान में हों और चारों को पापग्रह शत्रुदृष्ट से देख रहे हों तो उस मास में विविध व्याधि तथा शत्रुभय होता है ॥ १२ ॥

केन्द्रत्रिकोणायगतास्तु लग्नमासाब्दपा वीर्ययुता नराणाम् ।
नैरुज्यशत्रुक्षयराज्यलाभमानोदयात्यद्भुतकीर्तिदाः स्युः ॥ १३ ॥

कुन्तला — वीर्ययुताः = बलयुक्ताः, लग्नमासाब्दपाः = लग्नेश–मासेश–वर्षेशाः, केन्द्रत्रिकोणायगताः = १। ४। ७। १०। ९। ५। ११ एतत्स्थानगतास्तदा नराणां = मनुष्याणां नैरुज्यं शत्रुक्षय–राज्यलाभ–मानोदयात्यद्भुतकीर्तिदाः स्युः ॥ १३ ॥

ज्योति — वर्षलग्नेश, मासेश और वर्षेश यदि तीनों बलवान् होकर केन्द्र (१। ४। ७। १०) तथा त्रिकोण (९। ५) और एकादश स्थान, इनमें से किसी स्थान में स्थित हों तो वे मनुष्यों को आरोग्यता, शत्रुक्षय, राज्यलाभ, मान का उदय और अतिशय अद्भुत कीर्ति प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

इन्थिहालग्नपो राशिर्यो बली तत्र हद्दपाः ।
दशेशाः स्वांशतुल्याहैरित्युक्तं कैश्चिदागमात् ॥ १४ ॥

कुन्तला — इन्थिहालग्नपोः = मुथहेश–मासलग्नेशयोः, ग्रहयोः यो राशिर्बली तत्र राशौ हद्दपाः = हद्देशा ये ग्रहास्ते ग्रहाः स्वांशतुल्यांशैः दशेशा भवन्तीति आगमात् कैश्चिदुक्तम् ॥ १४ ॥

ज्योति — मासमुन्थहा और मासलग्न की राशियों में जो बली राशि हो, उस राशि में हद्दा के स्वामी कहे गये हैं, वे अपने अंशतुल्य दिनों के हिसाब से दशा के स्वामी होते हैं, यह कितने ही विद्वानों का कथन है ॥ १४ ॥

रवीन्द्वोरसमावेशान्नैतद्युक्तं परे जगुः ।
दशान्तरदशाच्छेदे फलमाब्दं तु युज्यते ॥ १५ ॥

कुन्तला — पूर्वोक्तयोगे रवीन्द्वोः = सूर्यचन्द्रयोः असमावेशादितद्युक्तंनेति परे आचार्या जगुः । दशान्तरदशाच्छेदे = पात्यायिनीदशायां योऽन्तरदशाच्छेदः = अन्तर्दशाखण्डम्, तस्मिन्, आब्दं = वर्षोक्तं फलं वक्तुं युज्यते ॥ १५॥

ज्योति — किन्तु पूर्वमत सूर्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध में लागू नहीं होता । अतएव आचार्य मासदशा तथा अन्तर्दशक का फल वर्णन करते हुए कहते हैं कि वर्षदशा तथा अन्तर्दशा के विभाग की रीति से किये हुए विभाग में वर्ष का कहा हुआ फल ही उपयुक्त होता है ॥ १५ ॥

अथ दिनेशफलकथनम् —

दिनप्रवेशकालेऽपि खेटान्भावांश्च साधयेत् ।
चन्द्रलग्नांशकाभ्यां तु फलं तत्र वदेद्बुधः ॥ १६ ॥

कुन्तला — दिनप्रवेशकाले अपि खेटान् = सूर्यादिकान् ग्रहान्, भावान् लग्नादिकाँश्च साधयेत् तत्र = दिनप्रवेशे, चन्द्रलग्नांशकाभ्यां = चन्द्रलग्नयोर्नवांशाभ्यां तु फलं बुधः वदेत् ॥ १६॥

ज्योति — दिनप्रवेश के समय में भी ग्रह और भावों को साधकर उस दिनप्रवेश में चन्द्रमा तथा लग्न के नवांशों से शुभाशुभ फल पण्डितों को कहना चाहिए ॥ १६ ॥

अथ दिनस्वामिनिर्णयकथनम् —

चतुष्कमिंथिहेशादि दिनमासाब्दलग्नपाः ।
एषां बली तनुं पश्यन्दिनेशः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥

कुन्तला — इन्थिहेशादिचतुष्कं = मुथहेशादिग्रहचतुष्कं = मुथहेश—जन्मलग्नेश—त्रिराशीश दिनरात्रिचन्द्रराशीशेति ग्रहचतुष्टयं, दिनमासाब्दलग्नपाः = दिनलग्नेश—मासलग्नेश—वर्षलग्नेशा एवं सप्ताधिकारिणः । एषां मध्ये बली = सर्वाधिकबलवान् ग्रहः यदि तनुं = दिनप्रवेशतनुं पश्यन्, सन्, दिनेशः परिकीर्त्तितः । वर्षे पञ्चाधिकारिणः । मासे षडधिकारिणः । दिने सप्ताधिकारिणः । एकसहिता बोध्याः ॥ १७॥

ज्योति — मुन्थहेश, जन्मलग्नेश, त्रैराशिकेश और दिनरात्रीश ये चार और दिनलग्नेश, मासलग्नेश तथा वर्षलग्नेश, इनमें जो बलवान् होकर दिनलग्न को देखता हो उसी को दिन का स्वामी कहना चाहिए ॥ १७ ॥

अथ फलकथनम् —

त्रिकोणकेन्द्रायगताः शुभाश्चेच्चन्द्रात्तनोर्वा बलिनः खलास्तु ।
षट्त्र्यायगास्तत्र दिने सुखानि विलासमानार्थयशोयुतानि ॥ १८ ॥

कुन्तला — दिने = दिनप्रवेशे चन्द्रात् = चन्द्राश्रितराशितः, वा तनोः = लग्नाश्रितराशितः, शुभाः = शुभग्रहाः त्रिकोणकेन्द्रायगताः = ५। ९। १। ४। ७। १०। ११ एतेषु स्थितास्तथा च बलिनस्तदा विलासमानार्थयशोयुतानि सुखानि, एवं तत्र खलाः = पापाः, षट्त्र्यायगाः = ६। ३। ११ एतेषु गतास्तदापि पूर्वोक्तमेव शुभफलानि दद्युः ॥ १८॥

ज्योति — यदि शुभग्रह बलवान् होकर चन्द्रमा तथा लग्नेश, त्रिकोण या केन्द्र तथा ग्यारहवें स्थान में स्थित हों और पापग्रह तीसरे, छठें तथा ग्यारहवें इन स्थानों में से किसी स्थान में बैठे हों तो दिन में विलास, मान, धन और यश इनसे युक्त सुख प्रदान करते हैं ॥ १८ ॥

षडष्टरिःफोपगता दिनाब्दमासेन्थिहेशाः खलखेटयुक्ताः ।
गदप्रदा मानयशोहराश्च केन्द्रत्रिकोणायगताः सुखाप्त्यै ॥ १९॥

कुन्तला — चेत् = यदि दिनाब्दमासेन्थिहेशाः षडष्टरिःफोपगताः = ६। ८। १२ एषु स्थिताः, खलखेटयुक्ताः = पापग्रहयुक्ताः, तदा गदप्रदाः = रोगकराः, मानयशोहराः = अपमानदुर्यशकरा भवन्ति । यदि केन्द्रत्रिकोणायगतास्तदा सुखाप्त्यै भवन्ति ।। १९।।

ज्योति — यदि दिनेश, वर्षेश, मासेश तथा मुन्थहेश ये चारों पापग्रहों से युक्त होकर छठें, आठवें और बारहवें इनमें से किसी स्थान में बैठे हों तो वे रोग देते हुए मान तथा यश को हरते हैं । यदि दिनेश आदि चारों केन्द्र या त्रिकोण तथा ग्यारहवें, इनमें से किसी स्थान में स्थित हों तो सुख मिलता है ।। १९ ।।

लग्नांशकः सौम्यखगैः समेतो दृष्टोऽपि वा मित्रदृशेन्दुनाऽपि ।
नैरुज्यराज्यादिशरीरपुष्टिर्मासोक्तिवद्दुःखमतोऽन्यथात्वे ।। २०।।

कुन्तला — लग्नांशकः = दिनलग्ननवांशेशः, सौम्यखगैः = शुभग्रहैः, समेतः = युतः, वा मित्रदृशा दृष्टः, वा इन्दुना मित्रदृशा दृष्टः, तदा नैरुज्यराज्यादिशरीरपुष्टिः भवति । अत उक्तादन्यथात्वे = भिन्नत्वेऽर्थात् पापैः युतो दृष्टः तदा मासोक्तिवत् = यथा मास प्रवेशे सुखदुःखविचारः कृतस्तद्वद्दुःखं बोध्यम् ।। २० ।।

ज्योति — यदि दिन, लग्न या नवांशराशि शुभ ग्रहों से युक्त तथा मित्र दृष्टि से दृष्ट हो तो वह आरोग्य, राज्य और शरीर पुष्टि देता है । यदि उससे विपरीत हो तो मासोक्त रीति से शुभाशुभ फल जाने ।। २० ।।

यदंशपः सौम्ययुतेक्षितो वा स्निग्धेक्षणाद्भावजसौख्यकृत्स्नः ।
दुःखप्रदः प्रोक्तवदन्यथात्वे सर्वेषु भावेष्वियमेव रीतिः ।। २१।।

कुन्तला — यदंशपः = यद्भावनवांशराशिपतिः स्निग्धेक्षणात् = मित्रदृष्ट्या सौम्ययुतेक्षितः = शुभग्रहयुतदृष्टः, तदा सः तद्भावजसौख्यकृत् स्यात् । अन्यथात्वे = उक्तभिन्नत्वे, प्रोक्तवद्दुःखप्रदः स्यात् । सर्वेषु भावेषु इयमेव रीतिः बोध्येति ।। २१।।

ज्योति — धन आदि जिस भाव का नवांशेश शुभग्रहों से युक्त अथवा मित्रदृष्टि से देखा जाता हो तो उस भाव का शुभ फल देता है, पापग्रहों से दृष्ट या युक्त हो तो दुःख देता है ।। २१ ।।

षष्ठांशकः सौम्ययुतो रोगदः पापयुक् पुनः ।
व्ययांशे शुभयुग्दृष्टे सद्व्ययः पापतस्त्वसत् ।। २२ ।।

कुन्तला — षष्ठांशकः = रिपुभावनवांशराशिः, सौम्ययुतः = शुभग्रहयुतः, पुनः पापयुक्तस्तदा रोगदो भवति । वा व्ययांशे = व्ययभावनवांशे, शुभयुतदृष्टे, तदा सद्व्ययः = सन्मार्गे व्ययः । पापतः = पापयुतदृष्टितः, असत् = असद्व्ययः भवति ।। २२ ।।

ज्योति — यदि छठें भाव का नवांश शुभग्रहों से युक्त वा दृष्ट हो तो रोगदायक, पापग्रहों से युक्त हो तो शुभफलकारक होता है । यदि बारहवें भाव का नवांश शुभग्रहों से युक्त वा दृष्ट हो तो अच्छे काम में धन का खर्च होता है । यदि पापग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो तो निकृष्ट काम में खर्च कराता है ॥ २२ ॥

जायांशः सौम्ययुग्दृष्टः स्वस्त्रीसौख्यविलासकृत् ।
पापैर्गृहकलिर्दुःखं पापांतःस्थे मृतिं वदेत् ॥ २३ ॥

शुभमध्यस्थिते स्त्र्यंशे बहुलं कामिनीसुखम् ।
स्वस्यां रातिर्गुरावन्यखगेऽन्यासु रतिं वदेत् ॥ २४ ॥

कुन्तला — जायांशः = सप्तमभावनवांशराशिः, सौम्ययुग्दृष्टः, तदा स्वस्त्रीसौख्यविलासकृत् स्यात् । वा जायांशः पापैः, युतदृष्टः, तदा गृहकलिः = गृहिणीकलहादि, दुःखं = मनोदुःखं च स्यात् । जायांशे पापान्तःस्थे सति मृतिं वदेत् । स्त्र्यंशे = जायांशे = सप्तमभावनवांशराशौ, शुभमध्यस्थिते = शुभग्रहयोर्मध्यस्थिते, सति कामिनीसुखं = स्त्रीसुखं, बहुलं = अधिकं भवति । तत्रगुरौ = जीवे, स्त्र्यंशे सति स्वस्यां = स्वकीयस्त्रियां, रतिः = आसक्तिः, अन्यखगे = गुरुभिन्नग्रहे जायांशे सति, अन्यासु = परस्त्रीषु रतिं = प्रेम वदेत् = कथयेत् ॥ २३ – २४ ॥

ज्योति — यदि सप्तम भाव का नवांश शुभग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो तो वह पुरुष अपनी स्त्री से सौख्य और विलास पाता है । यदि पापग्रहों से युक्त वा दृष्ट हो तो घर में लड़ाई और दुःख होता है । यदि पापग्रहों के मध्य में स्थित हो तो स्त्री की मृत्यु हो जाती है । यदि सप्तम भाव का नवांश शुभग्रहों के मध्य में हो तो स्त्रीसुख अधिक मिलता है । यदि बृहस्पति तृतीयांश में हो तो अपनी स्त्री में रति (रमण) करता है और यदि अन्य ग्रह स्थित हों तो वह पुरुष अन्य स्त्री से रमण करता है ॥ २३ – २४ ॥

अथाष्टमभावफलकथनम् —

मृत्यंशे मृत्युगैः सौम्यैर्युग्दृष्टे मरण रणे ।
मिश्रैर्मिश्रं खलैः सौख्यं वर्षलग्नानुसारतः ॥ २५॥

कुन्तला — मृत्यंशे = अष्टगभावनवांशराशौ, मृत्युगैः = अष्टमभावगतैः शुभग्रहैयुग्दृष्टे, तदारणे = संग्रामे मरणं भवति । । मिश्रैः = पापशुभैर्युतदृष्टेऽष्टमभावनवांशराशौ सति मिश्रं = पापं शुभं च फलं वाच्यम् । खलैः = पापैर्युतदृष्टे सौख्यं स्यात् । शेषं वर्ष लग्नानुसारतो ज्ञेयम् ॥ २५॥

ज्योति — यदि अष्टम भाव का नवांश लग्न से आठवें घर में स्थित होकर शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो रणभूमि में मरण होता है । यदि शुभग्रहों से मिश्रित,

पापग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो तो मध्यम फल को कहें । यदि केवल पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो वर्षलग्न के अनुसार सुख मिलता है ॥ २५ ॥

अथ कर्त्तरीयोगकथनम् —

द्विर्द्वादशे खला हानिं व्यये सौम्याः शुभव्ययम् ।
कर्तरी पापजा रोगं करोति शुभजा शुभम् ॥ २६ ॥

कुन्तला — खलाः = पापग्रहाः, द्विर्द्वादशे = द्वितीये द्वादशे च स्थिताः, तदा हानि = सकलविधक्षति कुर्वन्ति । सौम्यः = शुभग्रहाः व्यये स्थितास्तदा शुभव्ययं कुर्वन्ति । पापजा कर्त्तरी रोगं करोति । शुभजा कर्त्तरी शुभं करोति । अत्र स्पष्टार्थं वालावबोधाय युक्तिर्विलिख्यते — कर्त्तरी भाषायां 'कैंची' उच्यते, तत्र यथा लोहपत्रद्वयं भवति, तत्र कस्यापि वस्त्रादेः कर्त्तनाय यदा कर्त्तरी उपयुज्यते तदा पूर्वलोहपत्रमग्रतो याति अपरलोहपत्रं पृष्ठतो याति, एवं तयोस्तीक्ष्णधारयोर्योगेन तन्मध्यगतं वस्त्रादि कर्त्तितं भवति, एवमेव व्ययस्थमार्गी पापो लग्नाभिमुखं याति धनस्थवक्री पापः पृष्ठतो याति अतः लग्नस्य = शरीररूपपत्रस्य ताभ्यां पापाभ्यां कर्त्तनं जायते ॥ २६॥

ज्योति — यदि दिनप्रवेशलग्न से दूसरे और बारहवें घर में पापग्रह स्थित हों तो धन का क्षय करते हैं । यदि बारहवें घर में शुभग्रह स्थित हों तो उत्तम काम में खर्च होता है । पापग्रह से उत्पन्न कर्तरीयोग रोगकारक और शुभग्रहजनित कर्तरीयोग शुभफल देता है ॥ २६ ॥

अथ चन्द्रकृतानिष्टकथनम् —

लग्नेऽष्टमे वा क्षीणेन्दुर्मृत्युदः पापदृग्युतः ।
रोगी वा ग्रहणं वापि रिपुतः शत्रुभोरपि ॥ २७ ॥

कुन्तला — पापदृग्युतः = पापग्रहदृष्टयुतः क्षीणेन्दुः = क्षीणचन्द्रः, लग्ने, वाऽष्टमे स्थाने स्थितस्तदा मृत्युदः भवति । वा जन्मपत्रे आयुःपूर्णत्वे रोगः, वा रिपुतः = शत्रुतः = ग्रहणं = वशगतत्वं भवति । शत्रुभीः = शत्रुभयमपि भवति ॥ २७ ॥

ज्योति — यदि दिनप्रवेश लग्न से आठवें स्थान में पापग्रहों से दृष्ट या युक्त होकर क्षीण चन्द्रमा स्थित हो तो उस प्राणी को मृत्यु देता है अथवा वह रोगी होकर बैरियों से पकड़ा जाता है और किसी शत्रु अथवा हथियार से भयभीत होता है ॥ २७ ॥

अथान्यदरिष्टयोगकथनम् —

चन्द्रे सभौमे निधनारिसंस्थे नृणां भयं शस्त्रकृतं रिपोर्वा ।
पापैर्मुखस्थैः पतनं गजाश्वयानात्तनौ स्याद्बहुला च पीडा ॥ २८॥

कुन्तला — सभौमे = कुजयुक्ते, चन्द्रे, निधनारिसंस्थे = अष्टमषष्ठस्थानस्थिते सति नृणां = मनुष्याणां शस्त्रकृतं भयं वा रिपोः = शत्रोः, भयं वाच्यम् । पापैः = पापग्रहैः = रविकुजशनिक्षीणचन्द्रैः, मुखस्थैः गजाश्वयानात् = हस्तिघोटकवाहनात् पतनम् = अधःपातः, तनौ = शरीरे, बहुला = अधिका, पीड़ा भवति ।। २८।।

ज्योति — यदि वर्ष लग्न से आठवें तथा छठें स्थान में मङ्गलसहित चन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य को हथियार तथा शत्रु से भय होता है । यदि पापग्रह चतुर्थ स्थान में स्थित हों तो हाथी वा घोड़े की सवारी से गिर कर चोट लगने का भय होता है और शरीर में बहुत पीड़ा होती है ।। २८ ।।

अथ शुभफलकथनम् —

शुभा द्यूने विजयदा द्यूतादर्थे सुखावहाः ।
नवमे धर्मभाग्यार्थराजगौरवकीर्तिताः ।। २९ ।।

कुन्तला — शुभाः = शुभग्रहा द्यूने = सप्तमस्थाने स्थिताः तदा द्यूतात् = अक्षादिक्रीडनतः, विजयदाः स्युः । तथा शुभा अर्थे = द्वितीये स्थाने स्थितास्तदा सुखावहाः = हर्षप्रदाः स्युः । शुभा नवमे स्थितास्तदा धर्मभाग्यार्थराजगौरवकीर्त्तिताः = धर्मलाभः, भाग्योदयः, अर्थलाभः, राजगौरवं = भूपसत्कारः, कीर्तिता = यशः प्रतिष्ठालाभत्वं च भवति ।। २९ ।।

ज्योति — दिन प्रवेशलग्न से सप्तम शुभ ग्रह स्थित हों तो वे जुए में विजय देते हैं । यदि दूसरे घर में हों तो सुख प्राप्त कराते है । नवें स्थान में हों तो धर्म, धन, राजगुरुत्व और कीर्ति प्रदान करते हैं ।। २९ ।।

अथ दिनप्रवेशे चन्द्रावस्थावशेन फलकथनम् —

दिनप्रवेशेऽस्ति विधुरवस्थायां तु यादृशि ।
तदवस्थातुल्यमसौ फलं दत्ते न संशयः ।। ३० ।।

कुन्तला — दिनप्रवेशे विधुः = चन्द्रः, यादृशि अवस्थायां = दशायां , अस्ति, असौ चन्द्रः तदवस्थातुल्यमेव फलं = शुभाशुभं, दत्ते, अत्र संशयः न अस्ति ।। ३०।।

ज्योति — दिनप्रवेश के समय में चन्द्रमा जिस अवस्था में हो उसी अवस्था के तुल्य फल देता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। ३० ।।

अथ चन्द्रावस्थासाधनकथनम् —

विहाय राशिं चन्द्रस्य भागा द्विघ्राः शरोद्धृताः ।
लब्धं गता अवस्थाः स्युर्भोग्यायाः फलमादिशेत् ।। ३१।।

कुन्तला — चन्द्रस्पष्टराश्यादेः, राशिं = राशिस्थानाङ्क, विहाय = त्यक्त्वा, येऽवशिष्टाः भागाः = अंशाः, ते द्विघ्नाः = द्विगुणाः, शरोद्धृताः = पञ्चभक्ताः, तदा लब्धं गताः = व्यतीताः, अवस्थाः, स्युः तत्र भोग्यायाः = गताग्रिमावस्थायाः फलं = शुभाशुभं, आदिशेत् = कथयेत् ।। ३१ ।।

ज्योति — दिनप्रवेश के समय स्पष्ट चन्द्रमा की राशि को छोड़कर अंशादिकों को दो से गुणा करे । फिर उनमें पाँच का भाग देने से जो लब्ध हो सो गत अवस्था होती है । उसमें जो भोग्यावस्था हो उसका फल कहे ।। ३१ ।।

अथावस्थाफलकथनम् —

प्रवासः प्रवासीपगे रात्रिनाथेऽर्थनाशस्तुनष्टोपगे मृत्युभीतिः ।
मृतावस्थिते स्याज्जयायां जयस्तुविलासस्तु हास्योपगे कामिनीभिः ।। ३२ ।।

रतौ स्याद्रतिः, क्रीडिता सौख्यदात्री, प्रसुप्ताऽपि निद्रां कलिं देहपीडाम् ।
भयं तापहानी सुखं स्यात्तु भुक्ताज्वराकंम्पितासुस्थितासु क्रमेण ।। ३३ ।।

कुन्तला — प्रवासोपगे = प्रवाससञ्ज्ञकप्रथमावस्थां गते, रात्रिनाथे = चन्द्रे, प्रवासः = परदेशवासः भवति । नष्टोपगे = नष्टसञ्ज्ञकद्वितीयावस्थाङ्गते चन्द्रे सति अर्थनाशः = धननाशः । मृतावस्थिते = मृत्युसञ्ज्ञतृतीयावस्थां गते चन्द्रे सति, मृत्युभीतिः = मरणभयम् भवति । जयायां = जयावस्थायां चतुर्थ्यां जयः । हास्योपगे = हास्यावस्थां गते चन्द्रे विलासः = चित्तोल्लासव्यापारः । रतौ = सुरतावस्थायां, कामिनीभिः = स्त्रीभिर्विलासवतीभिः रतिः = मैथुनं स्यात्, क्रीडितावस्था तु सौख्यदात्री, प्रसुप्ताऽवस्था तु निद्रां = शयनं, कलिं = कलहं, ददाति । अथ भुक्ताज्वराकम्पितासुस्थितासु क्रमेण देहपीड़ा, भयं, तापहानी, सुखं स्यात् । अर्थात् भुक्तावस्थायां देहपीड़ा । ज्वरावस्थायां भयम् । कम्पितावस्थायां तापहानी भवतः । सुस्थितावस्थायां सुखं स्यात् ।। ३२ – ३३ ।।

ज्योति — (१) प्रवासावस्था में चन्द्रमा हो तो परदेशवास होता है (२) नष्टावस्था में द्रव्य का नाश होता है (३) मृतावस्था में मृत्यु होती है (४) जयावस्था में जय मिलती है (५) हास्य में कामिनियों के साथ विलास प्राप्त होता है (६) रति अवस्था में रति पर्याप्त विषयसुख मिलता है । (७) क्रीडिता अवस्था में सौख्य होता है । (८) प्रसूता अवस्था में नींद और कलह होता है । (९) इसी तरह भुक्तिअवस्था में देह में पीड़ा (१०) ज्वरावस्था में भय (११) कम्पितावस्था में ताप (ज्वर) और हानि (१२) तथा सुस्थितावस्था में सुख होता है । क्रमशः ये फल घटते हैं ।। ३२ – ३३ ।।

अथ मृगयाविचारकथनम् —

सवीर्यौ कुजज्ञौ नृपाखेटसिद्ध्यै न सिद्धिर्यदा वीर्यहीनाविमौ स्तः ।
जलाखेटमाहुः सवीर्यैर्ग्रहर्क्षैर्जलाख्यैर्नगाख्यैर्नगाखेटमाहुः ।। ३४ ।।

कुन्तला — सवीर्यौ = सबलौ, बलयुक्तौ कुजज्ञौ = भौमबुधौ तु नृपाखेटसिद्ध्यै = नरेशमृगयासफलाय भवतः । अर्थान्ममाद्य मृगया सफला भविष्यति नवेति प्रश्ने यदि तात्कालिकौ मङ्गलबुद्धौ बलयुक्तौ भवतस्तदाऽवश्यं मृगया सफला वाच्या । यदा इमौ = कुज बुधौ विबलौ स्तस्तदा मृगयासिद्धिर्न वाच्या । तत्र · सवीर्यैः = बलयुक्तैः, ग्रहर्क्षैः = योगकर्तृग्रहराशिभिः, जलाख्यैः = जलचरसञ्ज्ञकैः = कर्कवृश्चिकमीनसञ्ज्ञैः, जलाखेटं = जलचरमीनगोधाकच्छपादिजीवानामाखेटम् आहुः । नगाख्यैः = वनचरसञ्ज्ञकैः = मेषसिंहधनुः—सञ्ज्ञकैः, नगाखेटं = पर्वतवनचरजीवहननक्रीडनम् आहुः ॥ ३४ ॥

ज्योति — यदि मङ्गल और बुध ये दोनों सबल हों तो वह राजाओं के शिकार की सिद्धि के लिए होते हैं । यदि निर्बल हों तो मृगया की सिद्धि नहीं होती । जलसंज्ञक राशियों अर्थात् कर्क, वृश्चिक और मीन में जलसम्बन्धी शिकार सिद्ध होते हैं और पर्वतसंज्ञक राशियों अर्थात् मेष, सिंह और धन में पर्वतसम्बन्धी शिकार सिद्ध होते हैं ॥ ३४ ॥

अथान्यदाह —

लग्नास्तनाथौ केन्द्रस्थौ निर्बलौ क्लेशदायिनी ।
मृगयोक्तां शुभफला वीर्याढ्यौ यदि तौ पुनः ॥ ३५ ॥

कुन्तला — लग्नास्तनाथौ = मृगयाप्रश्नकालिकलग्नसप्तमस्थानस्वामिनौ ग्रहौ केन्द्रस्थौ (१। ४। ७। १०) एतत्स्थानगतौ, निर्बलौ = पश्चाल्पबलौ तदा मृगया = आखेटः, क्लेशदायिनी उक्ता । यदि पुनस्तौ लग्नेशसप्तमेशौ बलाढ्यौ भवतस्तदा शुभफला विनाऽऽयासेन झटिति सफला मृगया वाच्येति ॥ ३५॥

ज्योति — यदि लग्न और सप्तमस्थान के स्वामी ये दोनों निर्बल होकर पहले, चौथे, सातवें तथा दसवें इनमें से किसी स्थान में स्थित हों तो वह मृगया क्लेशदायिनी होती है । यदि वे दोनों बली होकर केन्द्र में स्थित हों तो मृगया शुभफलदायिनी होती है ॥ ३५॥

अथ भोजनचिन्ताविचारकथनम् —

लग्नाधिपो भोज्यदाता, सुखेशो भोज्यमीरितम् ।
बुभुक्षा मदपः, कर्मपतिर्भोक्तेति चिन्तयेत् ॥ ३६ ॥

कुन्तला — अद्य मया किञ्च भुक्तं, वा किं किमहं भोक्ष्यामीति प्रश्ने—तत्कालप्रश्नलग्नाधिपः = लग्नेशो ग्रहः, भोज्यदाता = भोजयिता, सुखेशः = चतुर्थेशः, भोज्यं = भोजनवस्तु भवेत् । मदपः = सप्तमेशः, बुभुक्षा = भोक्तुमिच्छा क्षुधा भवति । कर्मपतिः = दशमेशः भोक्ता = भोजनकर्त्ता, इति चिन्तयेत् ॥ ३६॥

ज्योति — आचार्यों ने लग्नस्वामी भोजनदाता और चौथे घर के स्वामी को भोज्य वस्तु कहा है । इसी प्रकार सप्तमभाव का स्वामी भोजन की इच्छा और दशम घर के स्वामी को भोजनकर्ता समझना चाहिये ॥ ३६॥

अथ भोजनविवरणमेवकथनम् —

लग्ने लाभे च सत्खेटयुतदृष्टे सुभोजनम् ।
जीवे लग्ने सिते वापि सुभोज्यं दुःस्थितावपि ॥ ३७ ॥

मन्दे तमसि वा लग्ने सूर्येणालोकिते युते ।
लभ्यते भोजनं नात्र शस्त्रभीतिस्तदा क्वचित् ॥ ३८ ॥

रविदृष्टं युतं वापि लग्नं न यदि तत्र हि ।
उपवासस्तदा वाच्यो नक्तं वा विरसाशनम् ॥ ३९ ॥

चन्द्रे कर्मगते भोज्यमुष्णं शीतं सुखे कुजे ।
तुर्ये खेटस्य वसतो भोज्यान्ने रसमादिशेत् ॥ ४० ॥

स्निग्धमन्नं सिते तुर्ये तैलसंस्कृतमर्कजे ।
नीचोपगे कदशनं विरसं न च संस्कृतम् ॥ ४१ ॥

कुन्तला — लग्ने, लाभे = एकादशे च स्थाने, सत्खेटयुक्ते = शुभग्रहयुक्ते तदा सुभोजनम् = सरसोत्तमवस्तु भोजनीयं वाच्यम् । जीवे = गुरौ, वा सिते = शुक्रे, लग्ने सति, तदा दुःस्थितौ = सद्वस्तुभोजनासम्भवेऽपि सुभोजनं ईरितम् = उक्तम् ।

अथ मन्दे = शनौ, वा तमसि = राहौ, लग्ने सति, तथा सूर्येण = रविणा आलोकिते = दृष्टे, युते वा सति भोजनं नैव लभ्यते, प्रत्युत तदा क्वचित, शस्त्रभीतिः भवेत् । यदि तत्र = उक्तयोगे अर्थात् शनिराहुयुतलग्नं रविदृष्टं न वा युतं न तदा उपवासः वाच्यः । वा दिने उपवासः, नक्तं = रात्रौ विरसाशनं = नीरस—वासि—कदन्नभोजनं वाच्यम् । चन्द्रे कर्मगते = दशमस्थे भोज्यं वस्तु उष्णं = तप्तमेव वाच्यं, कुजे सुखे = चतुर्थे सति शीतं = पर्युषितं, चिरकालरन्धितं, वा दधि-चिपिटान्नं वाच्यम् । तुर्ये = चतुर्थे, वसतः = वर्त्तमानस्य, खेटस्य = ग्रहस्य, वशतः, भोज्यान्ने रसमादिशेत् । तत्र सिते = शुक्रे, तुर्ये = चतुर्थे सति स्निग्धं = चिक्कणं, दधिदुग्धपायसादि भोजनं वाच्यम् । सुर्खे अर्कजे = शनौ सति, तैलसंस्कृतम् = तैलतलितं व्यञ्जनादि वाच्यम् । सुखेशे, वा सुखस्थे ग्रहे नीचे = नीचराशौ सति, कदशनं = कुत्सितान्नभोजनं, विरसं = रसहीनं, संस्कृतं न च, भर्जिततण्डुलचणकयवादि भोजनं वाच्यम् ॥ ३७ – ४१ ॥

ज्योति — लग्न, एकादश स्थान यदि शुभग्रह से युत दृष्ट हो, तो अच्छा भोजन प्राप्त होता है । यदि बृहस्पति या शुक्र लग्न में हों, तो दारिद्र्यादि दुःख की स्थिति (भोजन प्राप्ति के असम्भव समय) में भी अच्छा भोजन मिलता है । यदि शनि या राहु लग्न में हों, और रवि से दृष्ट युत हों, तो भोजन नहीं मिलता, बल्कि कहीं से शत्रुभय या शस्त्रों का भी भय हो सकता है । यदि लग्न, शनि, राहु को सूर्य नहीं देखे तो उपवास (बिना भोजन के रह जाना) होता है, या दिन भर कुछ नहीं बल्कि रात में कुछ नीरस

भोजन मिल जाता है । चन्द्र दशम में हों, तो गर्म खाना मिलता है । मङ्गल हो तो ठण्डा अन्न खाने को मिलता है । चतुर्थस्थान में स्थित ग्रह के अनुसार भोज्य अन्न में रस स्वाद आदि का विचार कहना चाहिए । जैसे शुक्र यदि चौथे में हो, तो चिकना कोमल अन्न, शनि चौथे में रहने से तेल का बनाया हुआ अन्न, चतुर्थेश या चतुर्थ स्थान स्थित ग्रह यदि नीच में हों तो कुत्सित अन्न (भूँजा, होरहा, भाजा आदि) भोजन कहना चाहिए, सिद्ध अन्न नहीं कहना चाहिए ।। ३७ – ४१ ।।

सूर्यादिभिर्लग्नगतैः सवीर्यै राजादिगेहे भुजिमामनन्ति ।
सुखे सुखेशे सबले सुभोज्यं चरादिकं स्यादसकृत्सकृद्धि ।। ४२ ।।

कुन्तला — सवीर्यैः = सबलैः सूर्यादिभिर्ग्रहैं लग्नगतैः सद्भिः राजादिगेहे भुजिं आमनन्ति = कथयन्ति । सूर्ये चन्द्रे च बलवति राजगृहे, कुजे बलयुक्ते नेतृगृहे बुधे बलिनि राजकुमारगृहे एवं ज्ञेयम् । सुखे = चतुर्थस्थाने, सुखेशे सबले तदा सुभोज्यं वाच्यं, दुर्बले कुभोज्यं वाच्यम् । सुखे चरादिकं तदा असकृत् सकृत् भोजनं वाच्यम् । चरे सुखेऽनेकवारं, स्थिरे सुखे एकवारं, द्विःस्वभावे द्विवारं भोजनं वाच्यम् ।। ४२ ।।

ज्योति — यदि सूर्यदि ग्रह बलवान् होकर लग्न में स्थित हों तो राजा आदि के घर में भोजन मिलना चाहिये । यदि चौथे घर का स्वामी बलवान् होकर चौथे घर में स्थित हों तो सुन्दर भोजन मिलें । यदि चौथे घर का स्वामी चरराशि में हो तो अनेक बार भोजन प्राप्त हो । यदि स्थित राशि में चतुर्थेश स्थित हो तो एक बार और द्विःस्वभाव राशि में स्थित हो तो दो बार भोजन मिले ।। ४२ ।।

मूलत्रिकोणगे खेटे लग्ने पितृगृहेऽशनम् ।
मित्रालये मित्रभस्थे शत्रुगेहेऽरिगेहगे ।। ४३ ।।

शुभेक्षितयुते लग्ने बलाढ्ये स्वगृहे भुजिः ।
गृहराशिस्वभावेन यत्नादन्यत्र चिन्तयेत् ।। ४४ ।।

कुन्तला — मूलत्रिकोणगे खेटे = ग्रहे लग्ने सति, पितृगृहे = पैतृकस्थानेऽशनं = भोजनं भवति । मूलत्रिकोणं तु 'सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिककुम्भधराः' इति लघुजातकोक्तं चिन्त्यम् । अथ लग्नस्थे खेटे मित्रभस्थे = स्वमित्रराशौ, गतवति मित्रालये भोजनं वाच्यम् । अथ लग्नस्थे ग्रहे शत्रुभस्थे = शत्रुराशौ, सति शत्रुगेहे भोजनं वाच्यम् । शुभेक्षितयुते लग्ने बलाढ्ये सति स्वगृहे भुजिर्भोजनं भवति । अन्यत्र राशौ गृहराशिस्वभावेन, तत्तद्राशिरस–पदार्थ–काल–स्थान–प्रकृतितारतम्यवशेन भोजन विचारः कर्त्तव्यः ।। ४३ – ४४ ।।

ज्योति — यदि ग्रह मूलत्रिकोण स्थित होकर लग्न में हो तो पिता के घर, मित्रराशि में स्थित होने से मित्र के घर में और शत्रु के घर में स्थित हो तो शत्रु के घर

भोजन प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रश्नलग्न के अनुसार चतुर्थस्थान में जिस ग्रह की योग दृष्टि हो वह ग्रह जिन मामा, चाचा आदि सम्बन्धियों के कारक हों उनके यहाँ भोजन समझना चाहिये ॥ ४३ – ४४ ॥

अथ ग्रहभेदेन भोजनपदार्थभेदकथनम् —

तिलान्नमर्के हिमगौ सुतण्डुलान्भौमे मसूराञ्चणकाञ्च भोज्यम् ।
बुधे समुद्गः खलु राजमाषा गुरौ सगोधूमभुजिः सवीर्ये ॥ ४५ ॥

शुक्रे यवा बाजरिका युगन्धराः शनौ कुलित्थादि समाषमन्नम् ।
भोज्यं तृणान्नं शिखिराहुवीर्याच्छुभेक्षणलोकनतः सहर्षम् ॥ ४६ ॥

सूर्ये मूलं पुष्पमिन्दौ कुजे स्यात्पत्रं शाखा चापि शाकं सवीर्ये ।
शुक्रेज्यज्ञैर्व्यञ्जनं भूरिभेदं मन्देनेत्थं सामिषं राहुकेत्वोः ॥ ४७ ॥

कुन्तला — अर्के = सूर्ये बलयुक्ते तिलान्नं = तिलयुक्तान्नं, हिमगौ = चन्द्रे बलयुते सुतण्डुलान्, भौमे = कुजे बलयुते मसूरान्, चणकान् = गोज्यान्नम् । बुधे = बलिनि समुद्गः = मुद्गद्युदलसहितः राजभाषा = बोड़ा, गुरौ = जीवे बलयुते सगोधूमभुजिः = गोधूम–चूर्णनिर्मितभोज्यम् । शुक्रे सवीर्ये सति यवाः = शिशिरर्तुजातशूकधान्यविशेषाः, बाजरिकाः = बाजरेति विख्याताः । युगन्धराः = देशमेदेन जोनहरी, मकई, जनेरा, इत्यादि नामकाः । शनौ सवीर्ये सति कुलित्थादि समाषं { कुरथी उरीद} अन्नम् । शिखिराहुवीर्यात् = केतुराह्वोर्बला–धिक्यात्, तृणान्नं = खोभिया, रामदाना, ओइरी आदि, भोज्यं वाच्यम् । सर्वत्र शुभेक्षणालोकनतः = शुभग्रहदर्शनयोगतः, सहर्ष = विनोदयुक्तं भोजनं ज्ञेयम् । पापयोगेक्षणात् कलहयुक्तं भोजनं वाच्यमिति शेषः । अथ व्यञ्जनभेदमाह । सूर्ये बलाधिके मूलं = आलू, कन्दा, शालगम, मूली, खम्हारु आदि, व्यञ्जनं ज्ञेयम् । इन्दौ = चन्द्रे बलाधिके, पुष्पं = गोभी प्रभृति, शाकं वाच्यम्, कुजे = भौमे, सवीर्ये पत्रं, बथुआ, गेन्हारी, चौराई, कञ्चु, पालक आदि शाकं व्यञ्जनं ज्ञेयम् । अपि वा शाखा = शाकवृक्षशाखा, नालिकाशाकशाखादि, वाच्यम् । शुक्रेज्यज्ञैः = शुक्रगुरुबुधैः बलयुक्तैः, भूरिभेदं = बहुविधं, (व्यञ्जनं तरकारीतिलौकिके प्रसिद्धं) ज्ञेयम् । इत्थं मन्देन = शनिना बलवता, राहुकेत्वोः अपि बलवतोः सतोः सामिषं = आमिषेण = मत्स्यमांसमाषादिकेन युक्तं व्यञ्जनं वाच्यम् ॥ ४५ – ४७॥

ज्योति — यदि लग्न में बलवान् सूर्य स्थित हो तो तिल, चन्द्रमा बली हो तो चावल, मङ्गल बली हो तो मसूर तथा चना, बुध बलवान् हो तो मूँग सहित उड़द और बृहस्पति बली हो तो गेहूँ का भोजन मिले ।

इसी प्रकार शुक्र बलवान् हो तो जौ, बाजरा, जुन्हरी और जमीकन्द, शमैश्चर बली हो तो उड़द समेत कुलथी, राहु केतु ये दोनों बलवान् हों और शुभ ग्रह देखते हों तो आनन्द सहित भूसी तथा किनकी का भोजन मिलता है ।

यदि सूर्य बलवान् हो तो मूली का शाक, चन्द्रमा बली हो तो पुष्प गोभी आदि का फूल और शाक, मङ्गल बलवान् हो तो डाली सहित पत्तों का शाक, शुक्र, बृहस्पति और बुध ये बली हों तो नाना प्रकार के व्यञ्जन, शनैश्चर बली हो तो इसी प्रकार भोजन प्राप्त होता है और यदि राहु–केतु ये दोनों बली हों तो आमिष जैसे मछली आदि मांस युक्त भोजन प्राप्त होता है ।। ४५ – ४७।।

अथ स्वप्नचिन्ता —

।। लग्नांशगेऽर्के तनुगेपि वाऽस्मिन् दुःस्वप्नमीक्षेत यथाऽर्कबिम्बम् ।
रक्ताम्बरं वह्निमथापि चन्द्रे शुभ्राश्वरत्नांबरपुष्पवज्रम् ।। ४८।।

स्त्रियः सुरूपाश्च कुजे सुवर्णरक्ताम्बरस्त्रङ्मणिविद्रुमाणि ।
बुधे हयस्वर्गतिधर्मवार्ता गुरौ रतिर्धर्मकथा सुरेक्षा ।। ४९।।

सद्बन्धुसङ्गश्च सिते जलानां पारे गतिर्देवरतिर्विलासः ।
शनावरण्याद्रिगतिश्च नीचैः सङ्गश्च राहौ शिखिनीत्यमेव ।। ५०।।

सहजधीमदनायरिपुस्थितो यदि शशी गुरूभानुसितेक्षितः ।
नवमकेन्द्रगते च शुभग्रहे स्वबलया मनुजो रमते तदा ।। ५१।।

कुन्तला — अर्के = सूर्ये, लग्नांशगे = लग्ननवांशराशिगते सति, अपि वा लग्नगते = लग्नस्थे, तदा अस्मिन्नुक्तयोगद्वये दुःस्वप्नं = अनिष्टस्वप्नं, ईक्षेत = पश्येत्, तथा अर्कबिम्बं = सूर्यबिम्बम्, रक्ताम्बरं = रक्तवस्त्रम्, वा रक्तवस्त्रयुक्तं पुरूषं, वह्निं = अग्निं च पश्यति । अथ चन्द्रे लग्नांशगे वा लग्नगते, शुभ्राश्यवरत्नाम्बरपुष्पवज्रम् = श्वेतानि, घोटक–मुक्ता–वस्त्र–पुष्प–हीरकाणि, तथा सुरूपाः = मनोहराः स्त्रियश्च स्वप्ने पश्यति । कुजे = भौमे लग्नगे लग्नवांशगे वा सुवर्णरक्ताम्बरस्त्रङ्मणिविद्रुमणि = हेम–रक्तवस्त्र–रक्तमाल्य–रक्तमणि–प्रवालादीनि पश्यति । बुधेता दृशे हयस्वर्गतिधर्मवार्त्ता = घोटक व्योमगमन–पुराणतीर्थविषयकचर्चा, स्वप्ने भवति । गुरौ तादृशे सति, रतिः = स्त्रीसङ्गः, धर्मकथा, देवतीर्थादिदर्शनगमनरूपा, सुरेक्षा = देवदर्शनं, सद्बन्धुसङ्गः = मित्रबान्धवमिलनम्, सिते = शुक्रे तादृशे सति जलानां = नद्यादीनां, पारे = परपारे, गतिः = गमनं, देवरतिः = देवसेवाप्रेम, विलासः = क्रीडनं चेति वाच्यम् । शनौ तादृशे अरण्याद्रिगतिः = वनपर्वतप्रदेशभ्रमणम्, नीचैः = क्षुद्रजनैः, सङ्गः, राहौ शिखिनि = केतौ च लग्नगते, लग्ननवांशगते वा सति इत्थं = शनिवत् अरण्याद्रिगतिः, इति स्वप्ने पश्यति । यदि शशी = चन्द्रः, सहजधीमद–नायरिपुस्थितः = ३। ५। ७। ११। ६ एतदन्यतमस्थितः, गुरूभानुसितेक्षितः = बृहस्पति–सूर्य–शुक्रदृष्टः, वा शुभग्रहे बुधगुरूशुक्रे नवमकेन्द्रगते च सति तदा मनुजः = स्वप्नद्रष्टा मनुष्यः, स्वप्ने स्वबलया = प्रकृष्टस्त्रिया रूपवत्या युवत्या रमते = आलिङ्गनं करोति ।। ४८ – ५१।।

ज्योति — सूर्य यदि लग्न के नवांश अथवा लग्न में स्थित हो तो मनुष्य अनिष्ट स्वप्न देखता है । जैसे — सूर्य का बिम्ब, लाल कपड़े और अग्नि आदि । चन्द्रमा आदि लग्न के नवांश या लग्न में हो तो स्वप्न में सफेद घोड़ा, रत्न, कपड़ा, वज्र, फूल और सुन्दर स्त्रियों को देखता है । मङ्गल लग्न के नवांश या लग्न में स्थित हों तो स्वप्न में सुवर्ण, लाल कपड़ा, लाल फूलों की माला मणि और मूँगे आदि देखता है । यदि बुध लग्न के नवांश या लग्न में हो तो स्वप्न में घोड़े की सवारी, स्वर्ग–गमन, धर्मसम्बन्धी बातें करने का स्वप्न देखता है और बृहस्पति लग्न के नवांश अथवा लग्न में हो तो स्वप्न देखता है और बृहस्पति लग्न के नवांश अथवा लग्न में हो तो स्वप्न में मैथुन, धर्म कथा वर्णन, शिवालय, ठाकुरद्वारा आदि में देवमूर्तियों का दर्शन और सजातीय जनों के समागम आदि का स्वप्न देखता है । यदि शुक्र लग्नांश या लग्न में हो तो जलाशयों के पार गमन, देवरति और विलास का स्वप्न देखता है । यदि शनि लग्न के नवांश या लग्न में हो तो स्वप्न में वन भ्रमण, पर्वतारोहण और नीचों की सङ्गति का स्वप्न देखता है । राहु और केतु से स्वप्न दर्शन भी शनि के समान जानना चाहिए । यदि तीसरे, पाँचवें, सातवें, ग्यारहवें तथा छठें इन स्थानों में से किसी स्थान में चन्द्रमा बैठा हो और उसको गुरु, सूर्य तथा शुक्र, ये तीनों देख रहे हों और नवें, पहले, चौथे, सातवें और दशवें इन स्थानों में शुभग्रह हों तो मनुष्य किसी सुन्दरी स्त्री के साथ रमण करने का स्वप्न देखता है ॥ ४८ – ५१ ॥

आसादसीमगुणमंडितपंडिताग्र्यो व्याख्यद्भुजङ्गपगवीः श्रुतिवित्सुवृत्तः ।
साहित्यरीतिनिपुणो गणितागमज्ञश्चिन्तामणिविपुलगर्गकुलावतंसः ॥ ५२ ॥
तदात्मजाऽनन्तगुणोऽस्त्यनन्तो योऽधोक् सदुक्तिं किल कामधेनुम् ।
सत्तुष्टये जातकपद्धतिं च न्यरूपयद् दुष्टमतं निरस्य ॥ ५३ ॥
पद्माम्बयाऽसावि ततो विपश्चिच्चर्च्चन नीलकण्ठः श्रुतिशास्त्रनिष्ठः ।
विद्वच्छिवप्रीतिकरं व्यधासीत्समाविवेकं मृगयावतंसम् ॥ ५४ ॥
शाके नन्दाभ्रबाणेन्दु १५०९ मित आश्विनमासके ।
शुक्लेऽष्टम्यां समातन्त्रं नीलकण्ठबुधोऽकरोत् ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीगर्गवंशोद्भवश्रीदैवज्ञानन्तसुतश्रीनीलकण्ठदैवज्ञविरचितं वर्षतन्त्रं समाप्तम् ॥ २ ॥

ज्योति — पिता अनन्त और पद्मा माता द्वारा पाण्डित्य आदि सभी गुणों से सम्पन्न नीलकंठ नामक उनके पुत्र की उत्पत्ति हुई । नीलकंठ ने १५०९ आश्विनमास की शुक्ल अष्टमी को 'वर्षतन्त्र' की रचना की ॥ ५४ – ५५ ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठज्योतिर्वित्कृत वर्षतन्त्रे ज्योतिषाचार्य डा० रामचन्द्रपाठकेन कृता संस्कृत 'कुन्तला' — 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ॥

॥ इति श्रीनीलकण्ठ्यां वर्षतन्त्रम् ॥

अथ प्रश्नतन्त्रम्

तत्र प्रश्नविचारस्य प्रयोजनमाह वराह —

दैवज्ञस्य हि दैवेन सदसत्फलवाञ्छया ।
अवश्यं गोचरे मर्त्यः सर्वः समुपनीय ते ।। १ ।।

अश्रौषीच्च पुरा विष्णोर्ज्ञानार्थे समुपस्थितः ।
वच लोकनाथोऽपि ब्रह्मा प्रश्नादिनिर्णयम् ।। २ ।।

कुन्तला — दैवज्ञस्य = ज्योतिःशास्त्रविज्ञस्य, मते, दैवेन = पूर्वार्जितसदसत्कर्म–रूपेण, गोचरे = जन्मराश्यवधिकक्रियमाणफलविचारे, सर्वः = सकलः, मर्त्यः = लोकः, सदसत्फलवाञ्छया = शुभाशुभफलज्ञानाकांक्षया, अवश्यं = ध्रुवं, समुपनीयते = प्राप्यते । शुभाशुभप्रारब्धकर्मप्रेरणया शुभाशुभसमये जनो गणकं पृच्छति । अर्थात् प्रश्नगोचरकालाधीनं भावि शुभाशुभफलं भवतीति ।। १ – २ ।।

ज्योति — ज्योतिषी यदि दैवबल से शुभाशुभ फल कहना चाहे तो ग्रहों के संचार से मनुष्यों को सब शुभाशुभ फल कह सकता है ।

एक समय ब्रह्मदेव की कर्मफल जानने की इच्छा हुई, तब वे उसे जानने को विष्णु के समीप गये । वहाँ विष्णु भगवान् के मुखकमल से प्रश्न आदि का निर्णय सुनकर ब्रह्माजी ने ज्यौतिष शास्त्र द्वारा जगत् में इसका प्रचार किया ।। १ – २ ।।

तस्मान्नृपः कुसुमरत्नफलाग्रहस्तः प्रातः प्रणम्य वरयेदपि प्राङ्मुखस्थः ।
होराङ्गशास्त्रकुशलान् हितकारिणश्च संहृत्य दैवगणकान् सकृदेव पृच्छेत् ।। ३ ।।

कुन्तला — तस्मात् कारणात्, कुसुमरत्नफलाग्रहस्तः = पुष्पद्रव्यफलपूर्णहस्तः, प्राङ्मुखस्थः = पूर्वाभिमुखः, नृपः = राजा, इत्युपलक्षणम्, सर्वोऽपि जनः, प्रातः = प्रभातसमये, प्रणम्य = दैवज्ञं नमस्कृत्य, वरयेत् = अशुभफलनिराकरणपूर्वकं शुभेच्छितफलं वरयेत् । तथा होराङ्गशास्त्रकुशलान् = फलितस्कन्धनिपुणान्, हितकारिणः = प्रियान्, दैवगणकान् = ज्योतिर्विदः, भाग्यगणनानिरतान् जनान्, संहृत्य = अन्यद्वार्त्ता त्यक्त्वा, सकृत् = एकवारमेव, पृच्छेत् = प्रश्नं कुर्यात् । यतः प्रश्नाद्यक्षरवशेनैव प्रश्नशुभाशुभविचारो गणकेन क्रियते । तत्रानेककथानामेककाले पृष्ठानां न भिन्नं भिन्नं समुचितमुत्तरं सम्भवेदतः सर्वान् संहृत्य एकविषयमेव पृच्छेत् ।। ३ ।।

ज्योति — राजा आदि जनों को चाहिए कि प्रश्न करने के समय दाहिने हाथ में फूल, रत्न तथा फल आदि वस्तु लेकर प्रातः काल के समय नारायण को प्रणाम करके पूर्व मुख बैठे और होराङ्गशास्त्र में कुशल और हितचिन्तक ज्योतिषी पण्डितों को बुलाकर थोड़े शब्दों में केवल एक प्रश्न करे ।। ३ ।।

अथोत्तमफलितज्ञज्योतिज्ञेलक्षणकथनम् — (उत्पलः) —

दशभेदं ग्रहगणितं जातकमवलोक्य निरवशेषमपि ।
यः कथयति शुभमशुभं तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी ।। ४ ।।

कुन्तला — दशभेदं = दशप्रकारकम्, ग्रहगणितं = ग्रहसाधनगणितं, निरवशेषं = सकलं, जातकं = बृहज्जातकादिग्रन्थं, विलोक्य = दृष्ट्वा, चिरं विचिन्त्य यः शुभम् अशुभंच ग्रहस्थितिवशेन कथयति, तस्य = दैवज्ञस्य, वाणी = वचनं, मिथ्या = असत्या न भवति ।। ४।।

ज्योति — दीप्तादि अवस्था–भेद से दस प्रकार के जो ग्रह हैं उन ग्रहों के गणित; भावबलाबल, जातकादि सम्पूर्ण प्रश्नसम्बन्धी गणित को देखकर अच्छे प्रकार से विचारकर शुभ वा अशुभ फल कहने वाले पण्डित की वाणी कभी मिथ्या नहीं हो पाती ।। ४ ।।

एतच्छास्त्रं विनीतेभ्यो दीयमानं सत्सफलं भवति तदाह —

विनयावनताय दीयमाना । प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय ।। ५ ।।

कुन्तला — इयं विद्या विनययथावनताय = अनुद्धताय जनाय दीयमाना सती कल्पलता इव सत्फलाय प्रभवेत्, न तूद्धतायेति तथोक्तं जातकार्णवे —

'क्षुद्रपाखण्डधूर्त्तेषु श्रद्धाहीनोपहासके ।
ज्ञानं न तथ्यतामेति यदि शम्भुः स्वयं वदेत् ।।
भक्तार्तदीनवदने दैवज्ञो न दिशेद्यदि ।
विफलं भवति ज्ञज्ञनं तस्मात्तेभ्यः सदा वदेत् । इति ।। ५ ।।

ज्योति — यह विद्या विनय नम्रता वाले को ही दी जाने पर सफल होती है । क्षुद्र, पाखण्डी, धूर्त, श्रद्धारहित उपहासक, इन अयोग्य पुरुषों के पूछने पर प्रश्न का उत्तर यथार्थ नहीं होता, फिर चाहे स्वयं शम्भु भी उसको उत्तर क्यों न दें । भक्त, दुःखी, म्लानमुख, इनको दैवज्ञ यदि नहीं बतलाता तो उसका उत्तर विफल हो जाता है । अतएव इनके प्रश्न का उत्तर अवश्य दे ।। ५ ।।

स्मृतिरप्याह —

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवाधिस्तेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवे शठाय न माम्ब्रूया वीर्यवती तथा स्यामिति ।। ६ ।।

कुन्तला — ह = हर्षेण, वै = निश्चयेन, विद्या = शास्त्रज्ञानं, ब्राह्मणम् (प्रति) आजगाम, तथा कथितवती च, अहं ते = तव, शेवधिः = निधिः, अस्मि, अत एव मां गोपाय = रक्ष, सादरमनुक्षणं स्मर, स्वमनसि सदैव मां संरक्ष । असूयकाय = निन्दकाय, अनृजवे = कुटिलाय, शठाय = कृतघ्नाय, उद्धताय च मां = विद्यां, न, ब्रूयाः = कथय, तथा तेन प्रकारेण नियमे = पालिते, अहं वीर्यवती = विशेषयोग्यतावती सफला च स्यां = भविष्यामीति ।। ६।।

अथ प्रष्टुः परिचयकथनम् —

ऋजुरयमनृजुर्वाऽयं प्रष्टा पूर्वं परीक्ष्य लग्नबलात् ।
गणकेन फलं वाच्यं दैवं तच्चित्तगं स्फुरति ॥ ७ ॥

लग्नस्थे शशिनि शनौ केन्द्रस्थे ज्ञे दिनेशरश्मिगते ।
भौमज्ञयोः समदृशा लग्नगचन्द्रेऽनृजुः प्रष्टा ॥ ८ ॥

लग्ने शुभग्रहयुते सरलः क्रूरान्विते भवेत्कुटिलः ।
लग्नेऽस्ते सौम्यदृशा विधुगुरूदृष्ट्या च सरलोऽयम् ॥ ९ ॥

यदि गुरुबुधयोरेकः पश्यत्यस्ताधिपञ्च रिपुदृष्ट्या ।
तत्कुटिलः, प्रष्टा खल्वनयोरेकस्तयोः साधुः ॥ १० ॥

कुन्तला — अयं = अग्रे वर्त्तमानः, प्रष्टा = प्रश्नकर्त्ता, जनः, ऋजुः = सरलः, वा अयं अनृजुः = कुटिलः, अस्तीति लग्नबलात् = लग्नविचारवशात्, पूर्वं = प्रथमं, परीक्ष्य, ततः गणकेन = फलादेशिना ज्योतिर्विदा, फलं = शुभाशुभं वाच्यम्, दैवं = भाग्यं, भाविफल, तच्चित्तगं = गणकमनोगतं सत्, स्फुरति = प्रकटितं भवति । अथ तद्योगमाह —

शशिनि = चन्द्रे, लग्नस्थे, शनौ = मन्दे, केन्द्र — (१। ४। ७। १०) स्थे सति ज्ञे = बुधे, दिनेशरश्मिगते = अस्तङ्गते, रवितश्चतुर्दशांशान्तर्गते सति अथवा भौमज्ञयोः = कुज—बुधयोः, समदृशा = तुल्यदृष्ट्या, लग्नगचन्द्रे दृष्टे सति प्रष्टा = प्रच्छको जनः, अनृजुः = कुटिलः, भवति । अथवा लग्ने शुभग्रहयुते सति प्रष्टा सरलो भवति । लग्ने क्रूरान्विते = पापयुतदृष्टे सति कुटिलः प्रष्टा भवति ।

अथवा लग्ने, अस्ते = सप्तमस्थाने च सौम्यदृशा = बुधदृष्ट्या, विधुगुरुदृष्ट्या = पूर्ण चन्द्रगुरुदृष्ट्या दृष्टे सति अयं सरलः स्यात् । वा यदि गुरूबुधयोः, एकः = एकतरः कश्चिद्ग्रहः, रिपुदृष्ट्या (१। ४। ७। १०) एतत्स्थानान्यतमदृष्ट्या, अस्ताधिपं = सप्तमेशं पश्यति तदा प्रष्टा कुटिलः स्यात् । वा गुरुबुधयोरेको ग्रहः मित्रदृष्ट्या लग्नं पश्यति तदा साधुः = सरलः प्रष्टा वाच्यः ॥ ७ — १०॥

ज्योति — पण्डित को चाहिए कि वह पहले लग्नबल से प्रश्नकर्ता की परीक्षा करे कि यह सीधा है या कुटिल । यह परीक्षा करने के बाद प्रश्नफल कहे । लग्नबल से प्रश्नकर्ता के चित्त की गति और दैव (कर्मपाक) प्रकट हो जाता है ।

यदि लग्न में चन्द्रमा, केन्द्रस्थान में शनि और बुध अस्तङ्गत हो अथवा लग्न में स्थित चन्द्रमा मङ्गल—बुध द्वारा समान दृष्टि से देखा जाता हो तो समझ ले कि प्रश्नकर्ता का चित्त सरल नहीं है ।

यदि लग्न में शुभग्रह हों तो प्रष्टा का चित्त सरल और यदि क्रूरग्रह हों तो कुटिल जानना चाहिए । यदि लग्न में और सातवें स्थान में शुभग्रहों की दृष्टि हो अथवा चन्द्रमा पर गुरू की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्ता सरल स्वभाव का है, ऐसा जानना चाहिए ।

यदि बृहस्पति और बुध ये दोनों ग्रह सप्तमेश को शत्रुदृष्टि से देखते हों तो प्रश्नकर्त्ता को कुटिल तथा इन दोनों में से यदि एक भी मित्रदृष्टि से देखता हो तो प्रश्नकर्त्ता को सरल स्वभाव का जानना चाहिए ॥ ७ — १० ॥

अथ यत्र बहवः प्रश्ना युगपत् सम्भवन्ति तत्र निरूपणप्रकारश्चण्डेश्वरप्रश्न विद्यायाम् —

आदिमं लग्नतो ज्ञानं चन्द्रस्थानाद्द्वितीयकम् ।
सूर्यस्थानात्तृतीयं स्यात्तुर्यं जीवगृहाद्भवेत् ॥ ११ ॥

बुधभृग्वोर्बली यः स्यात्तद्गृहात्पञ्चमं पुनः ।
राश्यनुरूपं कथयेत्संज्ञाध्यायोक्तवद्बुधः ॥ १२ ॥

कुन्तला — बहुषु प्रश्नेषु, आदिमं = प्रथमं, लग्नतः = प्रश्नलग्नात् ज्ञेयम् । द्वितीयकं तु चन्द्रस्थानात् ज्ञेयम् । तृतीयं प्रश्नवस्तु सूर्यस्थानात् विचार्यम् । तुर्य = चतुर्थ तु जीवगृहात् = गुरूराशितो विचिन्त्यम् । अथ बुधभृग्वोः = बुधशुक्रयोः यो बली ग्रहः, तद्गृहात् पञ्चमं प्रश्नविषयकं विचार्यम् ॥ ११ — १२ ॥

ज्योति — ज्योतिषी को चाहिए कि हमारा पहला प्रश्न लग्न से, दूसरा चन्द्रमा से, तीसरा सूर्य के स्थान से, चौथा बृहस्पति के स्थान से, पाँचवाँ प्रश्न बुध और शुक्र इनमें से जो बली हो उसने कहना चाहिए । यहाँ संज्ञाध्याय मे कहे राश्यनुसार धातु, रूप, रङ्ग, आकार तथा गुण आदि के प्रभाव से प्रश्न का शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥ ११ — १२ ॥

सम्यग्विचार्य लग्नं ब्रूयात्प्रश्नं सकृद्यथाशास्त्रम् ।
यस्त्वेकं ब्रूतेऽसौ तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी ॥ १३ ॥

कुन्तला — यः जनः, यथाशास्त्रं = शास्त्रादेशानुसारं सम्यक् = समीचीनतया, लग्नं विचार्य सकृत् एकमेव प्रश्नं ब्रूयात् = वदेत्, तस्य ज्योतिर्विदो वाणी = उक्तिः, मिथ्या = असत्या, न भवेत् ॥ १३ ॥

ज्योति — जो ज्योतिषी अच्छे प्रकार से शास्त्रानुसार लग्न को विचारकर केवल एक ही प्रश्न को कहना है, उसकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती ॥ १३ ॥

अत एवोक्तं प्रश्नचिन्तामणौ —

राशिचक्रं समभ्यर्च्य फलैः पुष्पैः सरत्नकैः ।
प्रष्टा सुभूमौ दैवज्ञानेकं पृच्छेत्प्रयोजनम् ॥ १४ ॥

कुन्तला — प्रष्टा प्रश्नकर्त्ता सुभूमौ फलैः सरत्नकैः = सद्रव्यैः पुष्पैः राशिचक्रं = प्रश्नकुण्डलीचक्रं समभ्यर्च्य = सम्पूज्य दैवज्ञान् = प्रश्नगणननिरतान्, अत्रादर्शे बहुवचनम् । एकमेव प्रयोजनं = प्रष्टव्यं पृच्छेत् ॥ १४ ॥

ज्योति — पवित्र भूमि पर बैठकर राशिचक्र का फूल और रत्नों से पूजन कर प्रश्नकर्ता दैवज्ञ (ज्योतिषी) से अपने प्रयोजनानुसार केवल एक प्रश्न पूछे ॥ १४ ॥

दशभेदं ग्रहाणां च गणितं भावजं तथा ।
विमृश्यैकञ्च कथयेन्नानेकं प्राह पद्मभूः ॥ १५ ॥

दीप्ताद्यं दशभेदं च ग्रहाणां भांशजं फलम् ।
विचार्य प्रवदेद्यस्तु तस्योक्तं नान्यथा भवेत् ॥ १६ ॥

कुन्तला — ग्रहाणां दशभेदं = दशविधं, गणितं, तथा भावजं गणितं च विमृश्य = विचार्य एकमेव प्रश्नं कथयेत् । अनेकं न कथयेत् । इति पद्मभूः = ब्रह्मा प्राह । ग्रहाणां दीप्ताद्यं दशभेदं भांशजं फलं विचार्य यः फलं प्रवदेत्तस्य उक्तं = वचनं अन्यथा नहि भवेत् ॥ १५–१६ ॥

ज्योति — दैवज्ञ गणित तथा भाव से उत्पन्न ग्रहों के दीप्तादि दस भेदों को विचार कर फल प्रश्न कहे । अनेक प्रश्नों का उत्तर न कहे, ऐसा ब्रम्हाजी का कथन है । जो दीप्तादि दस भेद और ग्रहों के भाव से उत्पन्न फल विचारकर कहता है, उसकी बाणी मिथ्या नहीं होती ॥ १५ – १६ ॥

अथ ग्रहाणामवस्था आह —

दीप्तो दीनोऽथ मुदितः स्वस्थः सुप्ता निपीडितः ।
मुषितः परिहीनश्च सुवीर्यश्चाधिवीर्यकाः ॥ १७ ॥

स्वोच्चे दीप्तः समाख्यातो नीचे दीनः प्रकीर्तितः ।
मुदितो मित्रगेहस्थः स्वस्थश्च स्वगृहे स्थितः ॥ १८ ॥

शत्रुगेहस्थितः सुप्तो जितोऽन्येन निपीडितः ।
नीचाभिमुखगो हीनां मुषितोऽस्तङ्गतो ग्रहः ॥ १९ ॥

सुवीर्यः कथितः प्राज्ञैः स्वोच्चाभिमुखसंस्थितः ।
अधिवीर्यो निगदितः सुरश्मिः शुभवर्गजः ॥ २० ॥

कुन्तला — दीप्तः १, दीनः २, मुदितः ३, स्वस्थः ४, सुप्तः ५, निपीडितः ६, मुषितः ७, परिहीनः ८, सुवीर्यः ९, अधिवीर्यकः १०, एते ग्रहाणां दशभेदा अवस्थाः भवन्ति । तत्र स्थोच्चे स्थितो दीप्तः, समाख्यातः = कथितः । नीचे ग्रहो दीनः । मित्रगेहस्थो मुदितः । स्वगृहे स्थितः स्वस्थः । शत्रुगेहस्थितोग्रहःसुप्तः । अन्येन ग्रहेणजितो ग्रहो निपीडितः । नीचाभिमुखः नीचासन्नगामी ग्रहः हीनः कथ्यते । अस्तङ्गतः प्रहो मुषितः चोरितः कथ्यते । स्वोच्चभिमुखसंस्थितो ग्रहः प्राज्ञैः सुवीर्यः कथितः । सुरश्मिः = उदितः, शुभवर्गजः ग्रहः अधिवीर्यः कथ्यते ॥ १७–२० ॥

ज्योति — १ दीप्त, २ दीन, ३ मुदित, ४ स्वस्थ, ५ सुप्त, ६ पीड़ित, ७ मुषित, ८ परिहीन, ९ सुवीर्य, १० अधिवीर्य ग्रहों की ये ही दस–अवस्थायें होती हैं । अपने उच्च राशि में स्थित ग्रह दीप्त, नीच राशि में स्थित दीन, मित्र के घर में स्थित ग्रह मुदित, अपनी राशि में स्थित ग्रह स्वस्थ, शत्रु के घर में स्थित ग्रह सुप्त, अन्य पापग्रहों से जीता हुआ ग्रह पीड़ित, नीचाभिलाषी ग्रह हीन, अस्तङ्गत ग्रह मुषित, उच्चभिलाषी ग्रह सुवीर्य और सुन्दर रश्मि तथा शुभवर्ग में प्राप्त ग्रह अधिवीर्यसंज्ञक कहा गया है ॥ १७ – २० ॥

अथ तद्वशेन फलान्याह —

दीप्ते सिद्धिश्च कार्याणां दीने दुःखसमागमः ।
स्वस्थे कीर्तिस्तथा लक्ष्मीरानन्दो मुदिते महान् ॥ २१ ॥

सुप्ते रिपुभयं दुःखं धनहानिर्निपीडिते ।
सुपीते परिहीने च कार्यनाशोऽर्थसंक्षयः ॥ २२ ॥

गजाश्ववकनकावाप्तिः सुवीर्ये रत्नसम्पदः ।
अधिवीर्ये राज्यलब्धिर्ग्रहैमित्रार्थसङ्गमः ॥ २३ ॥

कुन्तला — दीप्ते ग्रहे योगकरे, कार्याणां सिद्धिर्भवति । दीने योगकरे ग्रहे सति दुःखसमागमः, स्वस्थे ग्रहे कीर्त्तिः, मुदिते ग्रहे लक्ष्मीः, महान् आनन्दश्च भवेत् । सुप्ते ग्रहेरिपुभयं = शत्रुभयम्, दुःखं, निपीडिते ग्रहे धनहानिः, सुपीते = मुषिते, परिहीने च ग्रहे कार्यनाशः, अर्थसंक्षयः = धननाशः च भवति । सुवीर्ये ग्रहे गजाश्वकनकावाप्तिः = हस्तिघोटकसुवर्णप्राप्तिः, रत्नसम्पदश्च भवन्ति । अधिवीर्ये ग्रहे तु राज्यलब्धिः मित्रार्थसङ्गग्रहश्च भवति ॥ २१ – २३॥

ज्योति — दीप्त अवस्था में स्थित ग्रह कार्य की सिद्धि करता है, दीन में दुःख का आगमन, स्वस्थ में कीर्ति तथा लक्ष्मी प्राप्ति, मुदित में अत्यन्त आनन्द, सुप्तावस्था में शत्रुभय तथा दुःख, पीड़ित में धन की हानि, मुषित तथा हीन में कार्य तथा धन का नाश, सुवीर्यावस्था में हाथी, घोड़ा, सुवर्ण और रत्न तथा सम्पत्ति का लाभ, अधिवीर्य में राज्यलाभ और मित्र तथा धन का सङ्गम होता है ॥ २१ – २३ ॥

अथ रविग्रहस्वरूपकथनम् —

पूर्वः सत्वं नृपस्तातः क्षत्रं ग्रीष्मोऽरूणश्चलः ।
मधुदृक् पैत्तिको धातुः शूरः सूक्ष्मकचो रविः ॥ २४ ॥

कुन्तला — रविः = रविग्रहः, पूर्वः = पूर्वदिक्पतिः, सत्वं = सत्वगुणप्रधानः, नृपः = राजा तातः = पितृग्रहः । दिवाऽर्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञकाविति बृहज्जातकोक्तत्वात् । क्षत्रं = क्षत्रियजातिस्वामी, ग्रीष्मः = उष्णप्रकृतिः, अरुणः = रक्तवर्णः, चलः = कुजगुरूशनि ग्रहापेक्षया

शीघ्रगतिः, वा चपलः, मधुदृक् = मधुवर्णनेत्रः, पैत्तिकः = पित्तात्मकः, धातुः = गैरिकादिधातु—स्वामी, शूरः = पराक्षेपासहिष्णुः, वा पराक्रमी, सूक्ष्मकचः = अतिलघुकेशः, ईदृशो भवति ।। २४।।

ज्योति —— सूर्य पूर्व दिशा का स्वामी सतोगुणी, राजा व पितासंज्ञक, क्षत्रिय जाति ग्रीष्म ऋतु, रक्तवर्ण, चपलस्वभाव, मधु के समान रंगीन नेत्र वाला, पित्तधातु शूर, सूक्ष्मकेश युक्त रहता है ।। २४ ।।

अथ चन्द्रस्वरूपकथनम् ——

कफी वर्षा मृदुर्माता पयो गौरश्च सात्विकः ।
जीवो वैश्यश्चरो वृत्तो मारुतांशो विधुः सुदृक् ।। २५ ।।

कुन्तला —— विधुः = चन्द्रः, कफी = कफात्मकः, वर्षा = वर्षर्तुपतिः । मृदुः = कोमलः, माता = मातृग्रहः, पयः = क्षीरप्रियः, गौरः = धवलवर्णः, सात्त्विकः = सत्वगुणप्रधानः, जीवः = जीवजन्तुस्वामी, वैश्यः = वैश्यवर्णस्वामी, चरः = शीघ्रगतिग्रहः, वृत्तः = वर्तुलः, मारुतांशः = वातांशः, सुदृक = सुनयनः, ईदृशो भवति ।। २५ ।।

ज्योति —— चन्द्रमा कफप्रकृति, वर्षा ऋतु का प्रभु, कोमल देह, माता स्थान, जलतत्व, गौरवर्ण, सतोगुणी, प्राणदाता, वैश्य जाति, चर स्वभाव, गोलाकार, वायव्य दिशा का स्वामी और सुहावने नेत्रोंयुक्त होता है ।। २५ ।।

अथ कुजस्वरूपकथनम् ——

ग्रीष्मः क्षत्रतमो रक्तो याम्यः सेनाग्रणीश्वरः ।
युवा धातुश्च पिङ्गाक्षः क्रूरः पित्तं शिखी कुजः ।। २६ ।।

कुन्तलाः —— कुजः = भौमः, ग्रीष्मः = ज्येठाषाढयोरधिपतिः, क्षत्रतमः = क्षत्रियजातिस्वामी, रक्तः, अरुणवर्णः, याम्यः = दक्षिणदिकपतिः, सेनाग्रणीः = सेनाग्रगण्यः, चरः = चपलस्वभावः, युवा = तरुणः, धातुः = गैरिकादिधातुपतिः, पिङ्गाक्षः = पीतनयनः, क्रूरः = पापग्रहः, पित्तं = पित्तात्मकः, शिखी = शिखावान् ईदृशो भवति ।। २६ ।।

ज्योति —— मङ्गल ग्रीष्म ऋतु, क्षत्रिय जाति, तमोगुणी, रक्तवर्ण, दक्षिण दिशा का स्वामी, सेना का स्वामी, चर स्वभाव, युवावस्था, शुक्रधातु, पीत नेत्र और क्रूर प्रकृति, इनसे युक्त रहता है ।। २६ ।।

अथ बुधस्वरूपकथनम् ——

शरदीशो हरिर्दीर्घः षण्ढो मूलं कुमारकः ।
लिपिज्ञ उत्तरेशश्च शूद्रः सौम्यस्त्रिधातुकः ।। २७ ।।

कुन्तला — सौम्यः = बुधः, शरदीशः = शरदृतुपतिः, हरिः = श्यामवर्णः, दीर्घः = उन्नतदेहः, षण्ढः = नपुंसकः, मूलं = मूलस्वामी, कुमारः = राजकुमारः, 'राजा रविः शशधरश्च बुधः कुमारः सेनापतिः क्षितिसुत' इत्याद्युक्तत्वात् । लिपिज्ञः = लेखककर्मनिपुणः, उत्तरेशः = उत्तरदिक्पतिः, शूद्रः = शूद्रजातिपतिः, त्रिधातुकः = वातपित्तकफात्मकश्च भवति ।। २८ ।।

ज्योति — बुध शरद ऋतु का स्वामी, हरा रङ्ग, लम्बी, देह, मूल वस्तु का अधिपति, कुमार अवस्था, लेखक, उत्तर दिशा का स्वामी, शूद्र जाति, सरल स्वभाव और तीनों धातु के समान इन गुणों से युक्त रहता है ।। २८ ।।

अथ गुरुस्वरूपकथनम् —

सत्त्वं वित्तो हिमः श्लेष्मा दीर्घो मन्त्री द्विजो नरः ।
मध्यैशानी कफी जीवो मधुपिङ्गलदृक् तथा ।। २९।।

कुन्तला — जीवः = गुरुः, सत्वं = सत्त्वप्रधानः, वित्तः = धनी, हिमः = शीतलस्वभावः, श्लेष्मा = कफात्मकः, दीर्घः = उन्नतदेहः; मन्त्री = इन्द्रराज्यसञ्चालकप्रधानः, द्विजः = ब्राह्मणः, नरः = पुरुषग्रहः, मध्यं = दिनमध्यबली, ईशानविदिक्पतिः, कफी = कफात्मकः, मधुपिङ्गलदृक् = मधुसमपीतवर्णनयनः, भवति ।। २९ ।।

ज्योति — बृहस्पति सतोगुणी, पीतवर्ण, ठण्डा स्वभाव, श्लेष्मप्रकृति, लम्बी देह, मंत्री, ब्राह्मण जाति, मधुरप्रिय, ईशान दिशा का स्वामी, कफ धातु तथा शहद के समान पीले नेत्र वाला होता है ।। २९ ।।

अथ शुक्रस्वरूपकथनम् —

शुक्रः शान्तो द्विजो नारी वैश्यो मन्त्री चरः सितः ।
आग्नेयीदिक्फश्चाम्लः कुटिलासितमूर्धजः ।। ३० ।।

कुन्तला — शुक्रः = शुक्रग्रहः, शान्तः = अनुद्धतः, द्विजः = ब्राह्मणजातिः, नारी = स्त्रीग्रहः, वश्यः = वशंगतः, मन्त्री = असुरराज्यसञ्चालकः, चरः = चपलः, सितः = गौरवर्णः, आग्नेयीदिक् = अग्निकोणस्वामी, कफः = कफी, अम्लः = अम्लरसप्रियः, कुटिलासितमूर्धजः = वक्रकृष्णशिरः केशः, भवति ।। ३०।।

ज्योति — शुक्र शांत स्वभाव, ब्राह्मण वर्ण, स्त्रीसंज्ञक, वैश्यजाति, मंत्रज्ञ, चरस्वभाव, श्वेतवर्ण, अग्नि दिशा का स्वामी, कफ प्रकृति, अम्लधातु, वक्र, श्याम रंग के केश इन गुणों से युक्त होता है ।। ३० ।।

अथ शनिस्वरूपकथनम् —

कृष्णस्तमः कृशो वृद्धः षण्ढो मूलान्त्यजाऽलसः ।
शिशिरः पवनः क्रूरः पश्चिमो वातुलः शनिः ।। ३१ ।।

कुन्तला — शनिः कृष्णः = कृष्णवर्णः, तमः = पापग्रहः, कृशः = दुर्बलः, वृद्धः = वृद्धवयस्कः, षण्ढः = नपुंसकः, मूलम् = मूलस्य स्वामी, अन्त्यजः = अन्त्यजवर्गस्वामी च, अलसः = आलस्ययुक्तः, शिशिरः = माघफाल्गुनयोरधिपतिः, पवनः = वातात्मकः, क्रूरः = खलप्रकृतिकः, पश्चिमः = पश्चिमदिक्पतिः, वातुलः = वायुतत्वात्मकः भवति ।। ३१ ।।

ज्योति — शनि कृष्णवर्ण, तमोगुणी, दुर्बल देह, वृद्धावस्था, नपुंसक, मूलवस्तु, चाण्डालों का स्वामी, आलसी, शिशिर ऋतु का अध्यक्ष, वायु, धातु, क्रूरस्वभाव, पश्चिम दिशा का स्वामी और वाचाल है ।। ३१ ।।

अथ राहुग्रहस्वरूपकथनम् —

राहुर्धातुः शिखी मूलं शेषमन्यच्च मन्दवत् ।
चिन्तनीयं विलग्ने ज्ञात् केन्द्रगाद्वा बलाधिकात् ।। ३२ ।।

कुन्तला — राहुः = राहुग्रहः, धातुः = गैरिकादिधातुस्वामी, शिखी = शिखावान्, मूलं = मूलस्वामी, अन्यत् शेषं वर्णादिकं मन्दवत् = शनिवत्, ज्ञेयम् । राहुस्वरूपं शनि–वन्निषादजातिरित्युक्तत्वात् । अथास्य प्रयोजनमुच्यते — विलग्ने = विलग्ननवांशतः, वाज्ञात् = बुधात्, केन्द्रगात् = केन्द्रस्थग्रहात्, वा बलाधिकात् = सर्वाधिकबलयुक्तग्रहात् रूपं चिन्तनीयम् । तथोक्तं बृहजातके —"लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।" इति ।। ३२ ।।

ज्योति — राहु धातु का स्वामी, जटाधारी, मूल वस्तु है, तथा शेष सभी गुण शनि के समान हैं । केतु का भी स्वरूप ऐसा ही है । पूर्वोक्त ग्रह लग्न और लग्नेश अथवा केन्द्र स्थान में या जो ग्रह अधिक बली हों, उसके अनुसार प्रश्नसमय का लक्षण कहे ।। ३२ ।।

सौख्यमायुर्वयो जातिरारोग्यं लक्षणं गुणम् ।
क्लेशाकृती रूपवर्णास्तनोश्चिन्त्या विचक्षणैः ।। ३३ ।।

कुन्तला — तनोः = लग्नभावात्, सौख्यं, आयुः, वयः, जातिः आरोग्यं, लक्षणं, गुणम्, क्लेशाकृती, रूपवर्णा एते विचक्षणैः चिन्त्याः ।। ३३ ।।

ज्योति — सुख, आयु, अवस्था, जाति, आरोग्यता, शरीर के लक्षण, गुण, क्लेश, आकृति, रूप, रंग, यह सब लग्न से विचार करना चाहिए ।। ३३ ।।

अथ द्वितीयभावाद्विचारणीयकथनम् —

मुक्ताफलञ्च माणिक्यं रत्नधातुधनाम्बरम् ।
हयकार्याध्वविज्ञानं वित्तस्थानाद्विलोकयेत् ।। ३४ ।।

कुन्तला — वित्तस्थानात् = द्वितीयभावात्, मुक्ताफलं, माणिक्यं, रत्नधातुधनाम्बरं, हयकार्याध्वविज्ञानं विलोकयेत् ॥ ३४ ॥

ज्योति — मोती, माणिक, रत्न, धातु, धन, वस्त्र, अश्व, कर्म तथा मार्ग–सम्बन्धी कार्य धन भाव से देखे जाते हैं ॥ ३४ ॥

अथ तृतीयभावे विचारणीयकथनम् —

भगिनीभ्रातृभृत्यानां दासकर्मकृतामपि ।
कुर्वीत वीक्षणं विद्वान् सम्यग्दुश्चिक्यवेश्मतः ॥ ३५ ॥

कुन्तला — दुश्चिक्यवेश्मतः = सहज (तृतीय) भावात्, भगिनीभ्रातृभृत्यानां, दासकर्मकृताम्, अपि वीक्षणं विद्वान् कुर्वीत ॥ ३५ ॥

ज्योति — बहिन, भाई, सेवक और सेवाकर्म, व्यापारादि कर्म तथा पराक्रम इन सब बातों को विद्वान् तीसरे घर से विचार करना चाहिए ॥ ३५ ॥

अथ चतुर्थभावे विचारणीयकथनम् —

वाटिकाखलकक्षेत्रमहौषधिनिधीनपि ।
विवरादिप्रवेशं च पश्येत्पातालतो बुधः ॥ ३६ ॥

कुन्तला — बुधः = पण्डितः पातालतः = चतुर्थस्थानात्, वाटिका = पुष्पवाटी, खलं = शस्यमर्दनस्थानं, क्षेत्रं = शस्योत्पत्तिस्थानं, महौषधिः = विशेषभेषजम्, निधिः = गुप्तगर्तरक्षितद्रव्यम्, एतान्, तथा विवरादिप्रवेशं = भूगर्त्तविलनिवेशं च पश्येत् ॥ ३६ ॥

ज्योति — बगीचा, कुआँ, तालाब आदि जलाशय, खेती, औषधी, निधि, खजाना और कन्दरादिक में प्रवेश, इन बातों को चौथे स्थान से विचार करना चाहिए ॥ ३६ ॥

अथ पञ्चमभावात् किं किं विचारणीयं ? तदाह —

गर्भापत्यविनेयानां मन्त्रसन्धानयोरपि ।
विद्याबुद्धिप्रबन्धानां सुतस्थाने विनिर्णयः ॥ ३७ ॥

कुन्तला — सुतस्थाने = पुत्रभावात्, अत्र पञ्चभ्यर्थे सप्तमी । अर्थात् पञ्चमभावात्, गर्भस्य, अपत्यस्य = सन्तानस्य, विनेयस्य = इतस्ततः कस्यापि सञ्चालनस्य, मन्त्रः = विचारः वा मन्त्रग्रहणम्, सन्धानं = मैत्रीकरणम्, तयोः । विद्याबुद्धिप्रबन्धानां विनिर्णयः = विनिश्चयः, कार्य इति ॥ ३७ ॥

ज्योति — गर्भ, सन्तान, विनय, मंत्रसंधान, सलाह आदि विद्या व बुद्धि बढ़ाने का प्रबन्ध इन सब बातों का पाँचवें स्थान से विचार करना चाहिए ॥ ३७ ॥

अथ षष्ठभावाद्विचारणीयकथनम् —

चौरभी रिपुसंग्रामखरोष्ट्रक्रूरकर्मणाम् ।
मातुलातङ्कभृत्यानां रिपुस्थानाद्विनिर्णयः ॥ ३८ ॥

कुन्तला — रिपुस्थानात् = षष्ठस्थानात्, चौरभीः = चौरभयम्, रिपुः = शत्रुः, संग्रामः = युद्धम्, खरः = गर्दभः, उष्ट्रः, क्रूरकर्म = परहानिक्रिया, मारणादिकर्म, तेषां, तथा मातुलः = मातृभ्राता, आतङ्कः = भयम्, भृत्यः = सेवकः एतेषां च विनिर्णयः कार्यः ॥ ३८॥

ज्योति — चोरी से भय, शत्रुओं से लड़ाई, गधा, ऊँट तथा क्रूरकर्म, मामा का पक्ष, रोग और सेवक, इनका विचार छठें स्थान से करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अथ सप्तमभावाद्विचारणीयकथनम् —

वाणिज्यं व्यवहारं च विवादं च समं परैः ।
गमागमकलत्राणि पश्येत्प्राज्ञः कलत्रतः ॥ ३८ ॥

कुन्तला — कलत्रतः = सप्तमस्थानात्, वाणिज्यम् = व्यापारं क्रयविक्रयरूपं, व्यवहारं = धनदानग्रहंणं, परैः = अन्यैः, समं विवादं = वाक्कलहंच, गमागमौ = गतागतौ, कलत्रं = स्त्री, एतानि प्राज्ञः = पण्डितः, पश्येत् = विलोकयेत् ॥ ३८ ॥

ज्योति — व्यापार, व्यवहार और दूसरे के साथ विवाद अथवा मिलाप, आना–जाना, स्त्रीसम्बन्धी विचार, यह सब तों बुद्धिमान सातवें घर से विचार करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अथाष्टमभावाद्विचारणीथकथनम् —

नद्युत्तारेध्ववैषम्ये दुर्गे शात्रवसङ्कटे ।
नष्टे दुष्टे रणे व्याधौ छिद्रे छिद्रं निरीक्षयेत् ॥ ३९ ॥

कुन्तला — नद्युत्तारे = नदीतरणे, अध्ववैषम्ये = मार्गसङ्कटे, दुर्गे = वनपर्वतगमने, वायुयान जलयानदिकारोहणे वा शात्रवसङ्कटे = वैरिभये, नष्टे = नष्टधने, दुष्टे = अनिष्टकार्ये, रणे = युद्धे, छिद्रे = विवरे, गोप्यप्रकाशने च छिद्रं = अष्टमभावं निरीक्षयेत् = पश्येत्, एतेषां विचारोऽष्टमभावात् प्रकर्त्तव्य इति भावः ॥ ३९ ॥

ज्योति — नदी में तैरना, मार्गसम्बन्धी विचार, विषमस्थान, किला, शत्रु से भय और नष्टता, दुष्टता, रण, व्याधि और गृहच्छिद्र आदि का विचार करना हो तो सब आठवें स्थान से किया जाता है ॥ ३९ ॥

नवमभवात् विचारणीयकथनम् —

वपीकूपतडागादिप्रपादेवगृहाणि च ।
दीक्षां यात्रां मठं धर्म धर्मान्निश्चिन्त्य कीर्तयेत् ॥ ४० ॥

कुन्तला — वापी = परितो बद्धसोपाना लघुपुष्करिणी, कूपः प्रसिद्धः, तडागः = महापुष्करिणी, प्रपा = पानीयशाला, देवगृहम् = देवमठमन्दिरम्, तानि, तथा दीक्षां = मन्त्रग्रहणं, यात्रां = स्थानान्तरगतिम्, मठं = शिवालयम्, धर्मम् = पाठपुरश्चरणादिकम्, एतत्सर्वं धर्मान्नवमस्थानान्निश्चिन्त्य = विविच्य, कीर्त्तयेत् = कथयेत् ॥ ४० ॥

ज्योति — बावली, कुआँ, तालाब, गोशाला, देवमन्दिर, यात्रा मठ और धर्म-कार्य का विचार नवम स्थान से करना चाहिए ॥ ४० ॥

अथ दशमभावाद्विचारणीयकथनम् —

राज्यं मुद्रां परं पुण्यं स्थानं तातं प्रयोजनम् ।
वृष्ट्यादिव्योमवृत्तान्तं व्योमस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ४१ ॥

कुन्तला — व्योमस्थानात् = कर्म (दशम) भावात् राज्यं = प्रजापालनं, मुद्रां = रूप्यकं, परं = परमं, पुण्यं = चान्द्रायणव्रतादिधर्माचरणम्, स्थानं = स्थानलाभस्थैर्यादिकं, तातं = पितरं, प्रयोजनम् = आवश्यकीयविषयम् वृष्ट्यादि = जलवर्षणादि, व्योमवृत्तान्तं = आकाशसम्बन्धिवृत्तं च निरीक्षयेत् = विचारयेत् ॥ ४१ ॥

ज्योति — राज्य, मुद्रा (मोहर), पुण्य, स्थान, पिता, प्रयोजन, वृष्टि आदि आकाश सम्बन्धी बातें दशम स्थान से विचार करना चाहिए ॥ ४१ ॥

अथैकादशभावाद्विचारणीयकथनम् —

गजाश्वयानवस्त्राणि सस्यकाञ्चनकन्यकाः ।
विद्वान् विद्यार्थयोर्लाभं लक्षयेल्लाभलग्नतः ॥ ४२ ॥

कुन्तला — लाभलग्नतः = एकादशभावात् — गजः = हस्ती, अश्वः = घोटकः, अनयोर्यानमारोहणं, वस्त्रं = अंशुकं, एतानि, सस्यकाञ्चनकन्यकाः = सस्यं = क्षेत्रगतधान्यजातं, काञ्चनं = सुवर्णम्, कन्यकाः = पुत्र्यः, एताः तथा विद्यार्थयोः = शास्त्रधनयोः लाभं = प्राप्ति च लक्षयेत् = चिन्तयेत् ॥ ४२ ॥

ज्योति — हाथी, घोड़ा, पालकी, वस्त्र, अन्न, सुवर्ण, कन्या, विद्या तथा धन का लाभ इनका विचार ग्यारहवें स्थान से करना चाहिए ॥ ४२ ॥

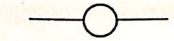
अथ व्ययभावाद्विचारणीयकथनम् —

त्यागभोगविवादेषु दानेष्टकृषिकर्मसु ।
व्यवस्थानेषु सर्वेषु विद्धि विद्वद् ! व्ययं व्ययात् ॥ ४३ ॥

कुन्तला — हे विद्वन् ! व्ययात् = व्ययभावात्, त्यागभोगविवादेषु, दानेष्टकृषि–कर्मसु, सर्वेषु व्ययस्थानेषु व्ययं = धनव्ययं विद्धि = जानीहि ॥ ४३ ॥

ज्योति — त्याग, भोग, दूसरे से कलह, दान, इष्ट वस्तु, खेती और सब प्रकार के खर्च का विचार बारहवें स्थान से करना चाहिए ॥ ४३ ॥

॥ इति नीलकण्ठयां प्रश्नतन्त्रे प्रश्नविचाराध्यायः ॥



अथ भावप्रश्नाध्यायः

अथ साधारणतया सकलभावविषयकवृद्धिहानी आह (षट्पञ्चाशिकायाम्) —

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्यतस्यास्ति वृद्धिः ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतो जन्मतो वा ॥ १ ॥

कुन्तला — पृच्छतः = प्रश्नलग्नात्, वा जन्मतः = जन्मलग्नात्, यः यः (कः अपि) भावः स्वामिदृष्टः वा स्वामियुतः, वा सौम्यैः = शुभग्रहैः, युतदृष्टः स्यात्, तस्य तस्य भावस्य वृद्धिः अस्ति । एवं यः यः भावः पापैः — पापग्रहैः, युतदृष्टः, स्यात् तस्य भावस्य हानिः = फलहीनता निर्देष्टव्या = कथनीया ॥ १ ॥

ज्योति — जो कोई भी भाव अपने स्वामी अथवा किसी शुभ ग्रह से देखा जाता हो या युक्त हो तो उस भाव की वृद्धि होती है । जो पापग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो उसकी हानि जानना चाहिए । यह प्रश्नसमय तथा जन्मसमय से विचार करने योग्य बातें हैं ॥ १ ॥

सौम्ये विलग्ने यदि वा स्ववर्गे शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ।
अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ २ ॥

कुन्तला — विलग्ने = प्रश्नलग्ने, सौम्ये = शुभग्रहे सति, यदि वा विलग्ने स्ववर्गे = स्वामिवर्गे, वा सौम्ये स्ववर्गे सति, वा विलग्ने शीर्षोदये = मिथुनसिंहकन्या–

तुलावृश्चिककुम्भान्यतमराशौ सति कार्य सिद्धिम् उपैति = प्राप्नोति । अतः, विपर्यस्तं = विपरीतं, चेदथवा पापे विलग्ने, यदि वाऽन्यवर्गे, पृष्ठोदये कार्यस्य असिद्धिहेतुः भवति । विमिश्रं = शुभपापयुतदृष्टलग्नं चेत्तदा कृच्छ्रेण = क्लेशेन संसिद्धिकरं भवति ।। २ ।।

ज्योति — सौम्य राशि का लग्न हो अथवा लग्न अपने वर्ग में हो या शुभग्रह लग्न में हो अथवा शुभग्रहों के वर्ग में स्वयं स्थित हो, किंवा शीर्षोदय लग्न हो तो प्रश्नकर्ता के कार्य की सिद्धि होती है । इससे विपरीत हो अथवा क्रूर लग्न हो या क्रूर ग्रह लग्न में हो तथा क्रूर लग्न अपने वर्ग में हो अथवा पृष्ठोदय लग्न हो तो कार्य की सिद्धि नहीं होती । यदि मिश्रग्रह हो अर्थात् शुभग्रह और पाप ग्रह मिलकर सौम्य लग्न में हों या पृष्ठोदय लग्न में शुभग्रह हो तो कठिनता से या विलम्ब से कार्य की सिद्धि होती है ।। २ ।।

अथ कार्यसिद्धियोगानाह (भुवनप्रदीपे) —

लग्नपतिर्यदि लग्नं कार्याधिपतिश्च वीक्षते कार्यम् ।
लग्नाधीशः कार्यं कार्येशः पश्यति विलग्नम् ।। ३ ।।

लग्नेशः कार्येशं विलोकयेल्लग्नपं तु कार्येशः ।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्णं कार्यसंसिद्धिः ।। ४ ।।

कुन्तला — लग्नपतिः = प्रश्नलग्नेशः, यदि लग्नं = प्रश्नलग्नं पश्यति, कार्याधिपतिः = कार्येशः, कार्यविषयभेदात्कार्येशो भिन्नो भिन्नो भवति । यथा धनलाभप्रश्ने धनेशः कार्येशः । सहजलाभप्रश्ने सहजेशः । गृहसुखादिलाभप्रश्ने चतुर्थेशः । पुत्रलाभप्रश्ने पञ्चमेशः । स्त्रीलाभप्रश्ने सप्तमेशः । राज्यलाभप्रश्ने दशमेशः कार्येशः । स यदि कार्य = कार्याश्रयभावं, वीक्षते = पश्यति, वा लग्नाधीशः = लग्नेशः, कार्यं, कार्येशः विलग्नं पश्यति, वा लग्नेशः कार्येशः लग्नपं = लग्नेशं विलोकयेत्, तथा तत्र शीतगुदृष्टौ सत्यां = तौ चन्द्रेण विलोकितौ च तदा कार्यसंसिद्धिः परिपूर्णा भवति ।। ३–४।।

ज्योति — लग्न का स्वामी यदि लग्न को देखता हो और कार्यभाव का स्वामी कार्यभाव को देखता हो तथा लग्नस्वामी कार्यभाव को और कार्यभाव का स्वामी लग्न को देखता हो तथा लग्न का स्वामी कार्यभाव के स्वामी को और कार्यभाव का स्वामी लग्नस्वामी को देखता हो और चन्द्रमा की भी दृष्टि हो तो कार्य की पूर्ण सिद्धि होती है ।। ३–४।।

अथ कार्यसिद्धियोगस्य न्यूनाधिकत्वकथनम् —

कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्यो न लग्नपो लग्नम् ।
लग्नाधिपं च पश्यति शुभग्रहश्चार्धयोगोऽत्र ।। ५ ।।

एकः शुभो ग्रहो यदि पश्यति लग्नाधिपं विलग्नं वा ।
पादोनयोगमाहुस्तदा बुधाः कार्यसंसिद्धौ ॥ ६ ॥

लग्नपतौ देशमे सति शुभग्रहौ द्वौ त्रयोऽथवा लग्नम् ।
पश्यन्ति यदि तदानीमाहुर्योगं त्रिभागोनम् ॥ ७ ॥

लग्नेशदर्शने सति पश्यन्तः पूर्णयोगकराः ।
क्रूरावेक्षणवर्ज्यश्चन्द्रः सौम्याश्च खेचरा लग्नम् ॥ ८ ॥

कुन्तला — सौम्यः = शुभग्रहः, लग्नपः = लग्नेशः, यदि लग्नं न पश्यति तदा कार्यसिद्धेः पाश्योगं = योगचतुर्थांशं कथयन्ति । अत्र यदि शुभग्रहः लग्नाधिपं = लग्नेशं, पश्यति, तदा कार्यसिद्धेः अर्धयोगः भवति । यदि एकः शुभग्रहः लग्नाधिपं = लग्नेशं, पश्यति, तदा कार्यसिद्धेः अर्धयोगः भवति । यदि एकः शुभग्रहः लग्नाधिपं, वा विलग्नं पश्यति, तदा बुधाः कार्यसंसिद्धौ पादोनयोगं = त्रिचरणयोगम् । आहुः कथयन्ति ।

लग्नपतौ = लग्नेशे, दशमे सति, वा द्वौ शुभग्रहौ, अथवा त्रयः शुभग्रहा दशमे स्थिताः । अथवा यदि त्रयः शुभाः लग्नं पश्यन्ति, तदानीं त्रिभागेनं = तृतीयांशोनं योगं आहुः । लग्ने लग्नेशदर्शने सति वा लग्नलग्नेशौ पश्यन्तः शुभग्रहा भवेयुस्तदा पूर्णयोगकरा भवन्ति । चन्द्रः क्रूरावेक्षणवर्ज्यः = पापदृष्टिरहितः, सौम्याः खेचराः = शुभग्रहाः, लग्नं पश्यन्ति तदाऽपि कार्यसिद्धेः पूर्णयोगः इति ॥ ५—८ ॥

ज्योति — यदि शुभग्रह लग्न को देखता हो, किन्तु लग्नस्वामी लग्न को न देखे तो बुधजन चौथाई योग कहते हैं । यदि लग्नस्वामी को शुभ ग्रह न देखता हो तो आधा योग अर्थात् दश विश्वा कार्यसिद्धि योग होता है । यदि एक शुभग्रह लग्न और लग्नस्वामी को भी देखता हो तो बुधजन तीन चरण अर्थात् १५ विश्वा कार्यसिद्धियोग बताते हैं । यदि लग्नस्वामी की दृष्टि हो और दो अथवा तीन शुभग्रह लग्न देखते हों तो त्रिभाग उन तृतीयांश कर्म कार्यसिद्धियोग होता है । यदि चन्द्रमा क्रूरग्रहों की दृष्टि से वर्जित होकर शुभ ग्रह के लग्न को देखे और लग्न के स्वामी की भी लग्न पर दृष्टि हो एवं क्रूरदृष्टिवर्जित चन्द्रमा तथा शुभग्रह लग्न व लग्नेश को देखते हों तो पूर्ण अर्थात् २० विश्वा कार्यसिद्धि का करने वाला योग होता है ॥ ५ — ८ ॥

अथानिष्टयोगकथनम् —

क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टश्च यो ग्रहः ।
विरश्मितां प्रपन्नश्च सोऽनिष्टफलदायकः ॥ ९ ॥

कुन्तला — यः कश्चिद्ग्रहः क्रूराक्रान्तः = पापग्रहविजितः, क्रूरयुतः = पापयुतः, विरश्मितां = अस्ततां, प्रपन्न = प्राप्तः च भवेत् सः अनिष्टफलदायकः भवति ॥ ९ ॥

ज्योति — जो ग्रह पापग्रह से पीड़ित, पापग्रह से युक्त, पापदृष्ट और रश्मिरहित अर्थात् अस्त हो गया हो तो वह अनिष्टफलदायक होता है ॥ ९ ॥

अथ कार्यसिद्धिप्रश्नविचारकथनम् —

अमुकं गदेति कार्यं कदा भविष्यत्यमुत्र पृच्छायाम् ।
लग्नाधिपतिः कार्यें लग्नं कार्याधिपः पश्येत् ॥ १० ॥

लग्नस्थः कार्येशः पश्यति चेल्लग्नपं तदैव भवेत् ।
तत्कार्यं यद्यन्यस्थितं तदा सत्वरं न स्यात् ॥ ११ ॥

पश्यति तदा च लग्नं द्रक्ष्यति चन्द्रं विलग्नपं च यदा ।
लग्ने कार्ये च यदा द्वयोश्च योगे तदा सिद्धिः ॥ १२ ॥

यदि लग्नपं न पश्यति कार्याधीशो विलग्नमथ तस्य ।
कार्यस्य हानिरुक्ता लग्नमृते किमपि नो वाच्यम् ॥ १३ ॥

कुन्तला — अमुकं कार्यं कदा भविष्यति इति गद = वद ? अमुत्र = अस्यां पृच्छायां, यदि लग्नाधिपतिः = प्रश्नलग्नेशः कार्यं = तत्कार्यविषयाश्रितभावं पश्येत्, कार्येशः लग्नं पश्येत्, अथवा चेत् कार्येशः लग्नस्थः सन् लग्नस्वामिनं पश्यति तदैव तत् कार्यं भवेत् । यदि कार्येशः अन्यस्थितः = लग्नभिन्नस्थानगतः सन् लग्नेशं पश्यति तदाऽपि कार्यं भवेत्परन्तु सत्वरं नार्थाद्विलम्बेन कार्यसिद्धिः स्यात् ।

यदा कार्येशः लग्नं पश्यति, चन्द्र, विलग्नपं = लग्नेशं च द्रक्ष्यति, तदा कार्यसिद्धिः । वा यदि लग्ने वा कार्यभावे द्वयोर्लग्नेशकार्येशयोर्योगे सति, तदा सिद्धिः = कार्यसिद्धिः स्यात् । यदि कार्याधीशः लग्नपं = लग्नेशं, विलग्नं च न पश्यति, तदा तस्य कार्यस्य हानिः = क्षतिः, उक्ता । अत्र कार्यसिद्धिप्रश्ने लग्नं, ऋते = विना, किमपि = किञ्चिदपि नो वच्यम् ॥ १० — १३ ॥

ज्योति — यदि प्रश्नकर्ता कहे कि हमारा काम कब होगा ? इस प्रश्नकाल में यदि लग्न को लग्न का स्वामी और कार्यभाव को कार्यभाव का स्वामी देखता हो तो शीघ्र कार्य की सिद्धि होगी । कार्यभाव का स्वामी लग्न में हो और वह लग्न स्वामी को देखता हो तो भी शीघ्र कार्यसिद्धि होगी । यदि लग्नस्वामी अन्यत्र स्थित हो तो कार्यसिद्धि शीघ्र न होगी ।

यदि चन्द्रमा लग्न अथवा लग्नस्वामी को देखता हो अथवा लग्नेश और कार्येश एक ही स्थान में बैठे हों तो कार्य की सिद्धि होगी । यदि लग्नेश अथवा कार्येश कार्यस्थान को न देखे तो कार्यसिद्धि नहीं होती । लग्न के सिवाय अन्य भावों से कुछ भी विचार नही करना चाहिए ॥ १० — १३ ॥

अथ प्रत्येकभाव प्रश्ननिरूपणं ताजिकशास्त्रोक्ततन्त्रे —

तत्रादौ लग्नप्रश्ननिरूपणम् —

भूतं भवद्भविष्यन्मम किं कथयेति जातपृच्छायाम् ।
लग्नपतेः शशिनो वा बलमन्वेष्यं बलाभावे ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा नवांशकबलं शुभदृग्योगं च सर्वकालेषु ।
प्रष्टुः शुभमादेश्यं विपरीतं व्यत्ययादेषा ॥ १५ ॥

लग्नेशो मूसरिफो यस्मादतीतमाख्येयम् ।
येन युतस्तस्माद्भवदेष्यं यो योक्ष्यते तस्मात् ॥ १६ ॥

यदि लग्ने लग्नपतिः सौम्ययुतो वा विलोकितः सौम्यैः ।
तत्प्रष्टुर्व्याकुलता शरीरदोषा विनश्यन्ति ॥ १७ ॥

पापो यदि लग्नपतिस्तदा कलिव्याधिधननाशः ।
सौम्ये निर्वृतिबुद्धिर्द्रव्याप्तिः सौख्यमतुलं च ॥ १८ ॥

कुन्तला — मम भूतं = गतं, भवत् = वर्तमानं, भविष्यत् = भावि, शुभाशुभं फलं किं ! इति कथय = वद, इत्येव जातपृच्छायां = उत्पन्नप्रश्ने प्रथमं लग्नपतेः = लग्नराशीशस्य शशिनः = चन्द्रस्य च बलं = वीर्य, अन्वेष्यम् = साधनीयम्, तत्र तयोर्बलाभावे सति कार्यनाश इति योज्यम् । अथ सर्वकालेषु नवांशकबलं, शुभदृग्योगं च दृष्ट्वा प्रष्टुः = प्रश्नकर्तुः, शुभं = अनुकूलं फलम्, आदेश्यम् । व्यत्ययात् = पापदृग्योगात्, विपरीतं फलमशुभं वाच्यम् ।

लग्नेशः यस्माद्ग्रहात् मूसरिफः कृतः, तस्मादतीतं = गतं फलमादेश्यम् । लग्नेशो ग्रहः येन युतस्तस्माद्ग्रहाद्भवद्वर्तमानं फलं वाच्यम् । तथा लग्नेशो येन योक्ष्यते = योज्यते = युक्तो भवति, तस्माद्ग्रहात्, एष्यं = भविष्यत् फलं विचार्यम् ।

यदि लग्ने लग्नपतिः सौम्ययुतः सौम्यैर्विलोकितश्च भवति तदा तत्प्रष्टुर्व्याकुलता नश्यति, शरीरदोषाश्च नश्यन्ति । यदि पापः लग्नपतिः पापयुतेक्षितश्च भवति तदा कलि—व्याधिधननाशा भवन्ति । यदि सौम्यः = शुभग्रहः, लग्नपतिस्तदा निर्वृतिबुद्धिः = स्थिरमतिः, द्रव्याप्तिः = धनलाभः, अतुलं सौख्यं च भवति ॥ १४ — १८ ॥

ज्योति — यदि कोई प्रश्नकर्ता पूछे कि हमारा भूत, भविष्य तथा वर्तमान फल क्या होगा ? इस प्रश्न में लग्नस्वामी या चन्द्रमा का बल विचार करना चाहिए । यदि बल का अभाव हो तो नवांश बल देखकर अथवा शुभ ग्रह की दृष्टि या शुभ ग्रहों के योग का विचार करके शुभ और अशुभ फल कहना चाहिए ।

जिसके साथ लग्नेश का ईसराफ योग हो, उससे भूत (अतीत) कहे और लग्नस्वामी का जिससे योग हो उसे वर्तमान कहे और दृष्टि से भविष्य फल कहना चाहिए ।

यदि लग्नेश पापग्रह हो तो कलह, रोग और धन का नाश होता है । यदि वह शुभग्रहों से देखा जाता हो तो प्रश्नकर्ता के चित्त की व्याकुलता और शरीर दोष नष्ट हो जाते हैं । यदि लग्न का स्वामी पापग्रह हो तो कलह, रोग तथा धन का नाश हो और यदि लग्न का स्वामी शुभग्रह हो तो पवित्र बुद्धि, द्रव्य की प्राप्ति और अतुल सुख प्राप्त होता है ॥ १४ – १८ ॥

अथ द्वितीयस्थानपृच्छा तत्रैव —

धनलाभस्य प्रश्ने लग्नेशेनेन्दुनाऽथ धननाथः ।
कुरुते यदीत्थशालं शुभयुतिदृष्ट्यां भवेल्लाभः ॥ १९ ॥

क्रूरग्रहैर्धनस्थैर्दूरे लाभोऽन्यदप्यशुभम् ।
क्रूरमुथशिले धनेशे प्रष्टा म्रियतेऽथवा विलग्नेशे ॥ २० ॥

धनधनपतीत्थशाले मंदगतिर्यत्र भावानाम् ।
तनुधनसहजादीनां प्रष्टस्तद्द्वारतो लाभः ॥ २१ ॥

कुन्तला — धनलाभस्य प्रश्ने धननाथः = द्वितीयेशः, लग्नेशेन, वा इन्दुना चन्द्रेण यदि इत्थशालं कुरुते, शुभयुतिदृष्ट्यां च सत्यां लाभः = धनलाभः भवेत् ।

क्रूरग्रहैः = पापग्रहैः, धनस्थैः = द्वितीयस्थानगतैः सद्भिः, दूरे = दूरदेशे लाभः । अन्यदपि अशुभं फलं वाच्यम् । वा धनेशे = द्वितीयेशे क्रूरमुथशिले, सति प्रष्टा जनःम्रियते । अथवा विलग्नेशे धनधनपतीत्थशाले = द्वितीयभावद्वितीयेशाभ्यामित्थशालयोगे, एवं तनुधन–सहजादीनां भावानां मध्ये यत्र मन्दगतिर्ग्रहस्तिष्ठेत् तद्द्वारतः प्रष्टुर्लाभः भवेत् ॥ १९ – २१ ॥

ज्योति — धनलाभ के प्रश्न में लग्नेश से चन्द्रमा, राशीश और धनभावेश का इत्थशाल योग हो और शुभग्रहयुक्त हो वा शुभग्रहों की दृष्टि हो तो धन का लाभ होता है । पापग्रह धन स्थान में हो तो दूर अथवा बहुत दिनों से लाभ हो और अन्य भी कुछ अशुभ हो । यदि धनेश वा लग्नेश ये दोनों पापग्रहों के साथ इत्थशाल योग करते हों तो प्रश्नकर्ता मरण को प्राप्त हो । यदि धनुभाव या धनभावेश मन्दगति होकर तनु, धन सहज आदि भावों से किसी भाव के साथ इत्थशाल योग करता हो तो उस भाव के द्वारा धन प्राप्त हो ॥ १९ – २१ ॥

प्रश्नदीपके द्वितीयभावपृच्छाकथनम् —

लग्नस्थं चन्द्रजं चन्द्रः क्रूरो वा यदि पश्यति ।
धनलाभो भवत्याशु किंत्वनर्थोऽपि पृच्छतः ॥ २२ ॥

चन्द्रलग्नधनाधीशा दृष्टा युक्ताः परस्परम् ।
धनकेन्द्रत्रिकोणस्थाः सद्यो लाभकराः स्मृताः ॥ २३ ॥

शुभदस्वामिषड्वर्गे लग्ने सौम्ययुतेक्षिते ।
प्रष्टुस्तात्कालिकी लब्धिरलब्धिस्तु विपर्यये ॥ २४ ॥

चतुर्थे सप्तमे चन्द्रे खे रवौ लग्नगे शुभे ।
प्रष्टुः सद्योऽर्थलाभः स्याल्लग्ने वा सुरमन्त्रिणि ॥ २५ ॥

कुन्तला — चन्द्रः लग्नस्थं चन्द्रजं = बुधं पश्यति, यदि वा क्रूरः पापग्रहः लग्नगतं बुधं पश्यति तदा पृच्छतः जनस्य आशु = शीघ्रमेव, धनलाभः भवति, किन्तु अनर्थः = क्षतिः अपि भवति । चन्द्रलग्नधनाधीशाः = चन्द्र–लग्नेश–धनेशाः परस्परं दृष्टा युक्ताः धनकेन्द्रत्रिकोणस्थाः २। १। ४। ७। १०। ५। ९ एषुस्थिताः, तदा सद्यः = शीघ्रं, लाभकराः स्मृताः = कथिताः । लग्ने शुभदस्वामिषड्वर्गे सति, सौम्ययुतेक्षिते, तदा प्रष्टुः तात्कालिकी लब्धिः = धनलाभः स्यात् । एतस्य विपर्यये अर्थाद् पापशत्रुवर्गे गते लग्ने पापयुतेक्षिते तदा अलब्धिः = द्रव्यक्षतिः स्यात् । चन्द्रे चतुर्थे सप्तमे सति, रवौ खे = दशमे, शुभे लग्नगे सति, प्रष्टुः सद्यः = झटिति अर्थलाभः स्यात् । वा सुरमन्त्रिणि = गुरौ, लग्ने सति धनलाभः स्यात् ॥ २२ – २५॥

ज्योति — बुध यदि लग्न में हो और उसको चन्द्रमा अथवा क्रूरग्रह देखता हो तो शीघ्र लाभ होता है परन्तु प्रश्नकर्ता की हानि भी हो सकती है । चन्द्र, लग्न और धनभाव के स्वामियों में परस्पर दृष्टि हो अथवा ये एक राशि में बैठे हों और धनभाव या केन्द्र त्रिकोण स्थान में स्थित हों तो शीघ्र लाभदायक होते हैं । यदि शुभफल देने वाले स्वामी के षड्वर्ग में लग्न हो और शुभ ग्रह की दृष्टि भी हो तो प्रश्नकर्ता को तत्काल लाभ होता है । इससे विपरीत हो तो विपरीत फल समझना चाहिए । चतुर्थ तथा सप्तम स्थान में चन्द्रमा, दशम घर में सूर्य, लग्न में शुभ ग्रह अथवा बृहस्पति हो तो प्रश्नकर्ता को शीघ्र धन का लाभ होता है ॥ २२ – २५ ॥

अथ तृतीयभावपृच्छाकथनम् ताजिकोक्तप्रश्नतन्त्रे —

सहजपतिर्यदि सहजं पश्यति चेत्तद्द्वयं शुभैर्दृष्टम् ।
तद्भ्रातरो गतरुजः स्वस्थाः क्रूरेक्षणे वामम् ॥ २६ ॥

यदि सहजपतिः षष्ठे तत्पतिना मुथशिलेऽथ तन्मांद्यम् ।
षष्ठेशे सहजस्थे सहजपतौ क्रूरिते वाऽपि ।
सूर्यस्य रश्मिसंस्थे भयावहं प्रष्टुरादेश्यम् ॥ २७ ॥

षष्ठाष्टमभावेशौ यद्भावेशेत्थशालिनौ स्याताम् ।
पीडां तस्य प्रवदेत्षष्ठाष्टमसंस्थिते वाऽपि ॥ २८ ॥

एवं सर्वे भावाः पित्रोस्तुर्ये सुते सुतानां च ।
भृत्यचतुष्पदवर्गस्यास्ते स्त्रियाः सुहृदो ये ॥ २९ ॥

कुन्तला — (१) यदि सहजपतिः = तृतीयेशः, सहजं = तृतीयभाव पश्यति, चेत् तद्द्वयं = सहजपतिः सहजभावश्च इति द्वयं शुभैः = शुभग्रहैः, दृष्ट, तदा तद्भ्रातरः, गतरुजः = नीरोगाः, स्वस्थाः = प्रकृतिस्था भवन्ति । क्रूरेक्षणे = पापदृष्टे अर्थात् सहजभावे सहजेशे च पापदृष्टे वामं = विपरीतं फलं वाच्यम्, अर्थात्तदा भ्रातरो रोगपीडिताः = स्युः।

(२) यदि सहजपतिः षष्ठे, तत्पतिना = षष्टेशेन, मुथशिले = इत्थशाले सति, तदा तन्मान्द्यं = तत्तस्य भ्रातुर्मान्द्यं = मन्दता रोगः स्यात् ।

(३) अपि वा षष्टेशे सहजस्थे, सहजपतौ क्रूरिते = पापाक्रान्ते, सूर्यस्य रश्मिसंस्थे = अस्तङ्गते सति प्रष्टुर्भ्रातुर्भयावहम्, आदेश्यम् ।

(४) अपि वा षष्टाष्टमभावेशौ यद्भावेशेन इत्थशालिनौ स्यातां, तस्य = तद्भावविचार्यमाणवस्तुनः पीडां प्रवदेत् । वा यद्भावेशे षष्टाष्टमसंस्थिते सति तद्भावविषयस्य नाशः स्यात् । एवं सर्वे भावा विचारणीयाः । यथा तु यें = चतुर्थे, पित्रोः = मातापित्रोर्विचारः । सुतानां = पुत्रकन्यानां, सुते = पञ्चमभावे विचारः । भृत्यचतुष्पदवर्गस्य = सेवकपशुवर्गस्य, स्त्रियाः, तथा सुहृदः = मित्राणि, तेषां विचारः अस्ते = सप्तमभावे कार्यः ॥ २६ – २९॥

ज्योति — तीसरे भाव का स्वामी यदि तीसरे घर को देखता हो, तृतीय भाव और तृतीयभावेश को यदि शुभ ग्रह देखते हों तो प्रश्नकर्ता के भाई का रोग दूर होता है । यदि पापग्रह देखते हों तो इससे विपरीत फल होता है । तीसरे भाव का स्वामी यदि छठें स्थान में हो या षष्ठेश से इत्थशाल करता हो तो उसके भाई को उस ग्रह सम्बन्धी रोग होता है । यदि षष्ठेश तीसरे भाव में हो या तीसरे भाव का स्वामी पापयुक्त हो अथवा सूर्य के साथ अस्तङ्गत हो गया हो तो भी ऐसा ही फल समझना चाहिए । छठें तथा आठवें स्थान के स्वामी ये दोनों जिस भाव के स्वामी के साथ इत्थशाल करते हों अथवा छठें स्थान में स्थित हों तो उसे उस भावसम्बन्धी पीड़ा कहनी चाहिए । इसी प्रकार सब भावों का विचार करना चाहिए । यदि चौथे स्थान के स्वामी से षष्ठेश या अष्टमेश का इत्थशाल हो अथवा इन भावों के स्वामी चतुर्थ स्थान में बैठे हों या चतुर्थेश इन भावों में हो तो माता–पिता को पीड़ा होती है । पञ्चमभाव से पुत्रों का, सप्तम भाव से सेवक, स्त्री तथा चतुष्पद इत्यादि का विचार करना चाहिए ॥ २६ – २९॥

अथ चतुर्थस्थानपृच्छा —

लग्नपतीन्दुचतुर्थे यदि मुथशिलमथवा ग्रहे गमनम् ।
प्रष्टुः पृथ्वीलाभदमसाम्यदृग्योगतो नैव ॥ ३० ॥

यदि पृच्छति कृषको में क्षेत्राल्लाभो भवेन्नो वा ।
लग्नं कृषकस्तुर्य भूमिर्द्यूनं च कृषिस्तरुर्दशमम् ॥ ३१ ॥

लग्ने क्रूरोपगते स्याच्चौरोपद्रवस्तु कृषिकर्तुः ।
वक्रातिचारवर्ज्ये क्रूरे चौरस्य कृषिलाभः ॥ ३२ ॥

लग्नस्थे शुभखेटे साफल्यं कर्षकस्य कृषितः स्यात् ।
तुर्ये च क्रूरगते त्यक्त्वा भूमिं प्रयात्येषः ॥ ३३ ॥

द्यूने च शुभोपगते शुभं कृषेस्त्वन्यथा तु विपरीतम् ।
दशमे दशमपतौ वा शुभयुतदृष्टे शुभा वृक्षाः ॥ ३४ ॥

कुन्तला — लग्नपतिः = लग्नेशः, इन्दुः = चन्द्र अनयोर्ये चतुर्थस्थाने, तयोर्यदि मुथशिलं स्यादथवा—तयोश्चतुर्थस्थाने ग्रहे सति प्रष्टुर्गमनं (यात्रा) पृथ्वीलाभदं वाच्यम् । असौम्यः = पापग्रहस्तस्य दृग्योगतः = दृष्टिसंयोगाभ्यां पृथ्वीलाभसंभवः नैव वाच्यः ।

यदि कृषिकर्मकर्ता जनः, पृच्छति, यत् मे = मम, क्षेत्राल्लाभः भवेद्वा नो भवेत् । तदा तत्कालिकलग्नं कृषिकः, ततस्तुर्य = चतुर्थ भं भूमिः, द्यूनं = सप्तमं भं कृषिः, दशमंभं तरुः ज्ञेयः । अत्र क्रूरोपगते लग्ने सति कृषिकर्तुः चौरोपद्रवः भवति । तत्रापि लग्नगतक्रूरग्रहे वक्रातिचारवर्ज्ये सति चौरस्य कृषिलाभः स्यात् । लग्नस्थे शुभखेटे तदा कर्षकस्य कृषितः साफल्यं स्यात् । तुर्ये = चतुर्थे, क्रूरगते = पापयुते तदा एषः कृषिकः भूमि त्यक्त्वा प्रयाति, शस्यसञ्चयप्रतीक्षां न करोति । द्यूने = सप्तमे, शुभोपगते सति कृषेः शुभं = साफल्यं भवति । अन्यथा द्यूने पापोपगते कृषेः फलं विपरीतं भवति । वा दशमपतौ = कर्मेशे, दशमे, शुभयुतदृष्टे तदा वृक्षाः = क्षेत्रशस्य समूहाः शुभाः = नीरोगाः फलशालिनश्च स्युः ॥ ३० — ३४॥

ज्योति — लग्न का स्वामी, चन्द्रमा और चतुर्थभावस्वामी ये तीनों परस्पर इत्थशाल योग करें अथवा एक ही स्थान में स्थित हों तो प्रश्नकर्ता को पृथ्वी का लाभ होता है और पापग्रह से दृष्ट या युक्त हों तो भूमि का लाभ नहीं होता ।

यदि कोई किसान पूछे कि हमको खेती से लाभ होगा या नहीं तो लग्न को कृषिकर्ता चतुर्थभाव को भूमि, सप्तमभाव को खेती तथा दशम भाव को अन्नवृक्षादि समझना चाहिए और इन भावों का बलाबल विचारकर कृषिप्रश्न का शुभाशुभ फल कहना चाहिए ।

यदि लग्न में पापग्रह स्थित हों तो खेतीवाले को चोरों से उपद्रव होता है । यदि लग्नस्थित पापग्रह वक्री वा अतिचारी न हो तो उसे चोर से भी लाभ होता है ।

लग्न में यदि शुभ ग्रह स्थित हों तो किसान को खेती से लाभ होगा और चतुर्थ स्थान में क्रूर ग्रह स्थित हों तो भूमि को छोड़कर किसान भाग जायेगें ।

यदि सप्तम स्थान में शुभग्रह हों तो किसान को खेती से अच्छा लाभ होता है । इससे विपरीत हो अर्थात् पापग्रह स्थित हों तो हानि होती है । दशमभाव में दशमेश हो या शुभ ग्रह से युत दृष्ट हों तो अन्नादि वृक्ष अच्छे होते हैं ॥ ३० — ३४ ॥

भूभाटकपृच्छायां लग्नं प्रष्टा च भाटकं द्यूने ।
तस्योत्पत्तिर्दशमे तथाऽवसानं चतुर्थे स्यात् ॥ ३५ ॥

लग्नस्य लग्नपस्य च शुभयोगे शुभमशोभनं वामे ।
द्यूने क्रूरोपगते यस्मादपि भाटकस्ततोऽनर्थः ॥ ३६ ॥

दशमे क्रूरोपगते नोत्पत्तिर्बहुतरा भवेत्प्रष्टुः ।
क्रूरार्दिते तु तुर्ये स्यादवसाने शुभं नास्य ॥ ३७ ॥

कुन्तला — भूभाटकपृच्छायां, भुवः = पृथिव्याः, भाटकः = फरः, भवनभाटकश्च तयोः पृच्छायां लग्नं = प्रष्टा भवति, द्यूने = सप्तमे, भाटकं भवति, दशमे तस्य = भाटकस्य, उत्पत्तिः भवति । तथा चतुर्थे तस्य अवसानं = पूर्णत्वप्रतिदानम्, भवति । इति तावत्संज्ञाकरणम् ।

अथ लग्नस्य लग्नपस्य च शुभयोगे = शुभग्रहदृष्टिसंयोगे सति शुभं = भाटकद्रव्यं स्यात् । वामे = विलोमे, अर्थात् लग्नस्य, लग्नपस्य च पापदृग्योगे अशुभं वाच्यम् । द्यूने = सप्तमे, क्रूरोपगते = पापयुते, सति, यस्माज्जनाद्भाटकः = भाटकद्रव्यलाभस्ततोऽपि अनर्थः भवति । दशमे क्रूरोपगते प्रष्टुर्बहुतरा उत्पत्तिर्न भवेत् । तुर्ये = चतुर्थे क्रूरार्दिते = पापपीडिते सति, अवसाने = परिणामे अस्य कृषकस्य शुभं न स्यात् ॥ ३५ — ३७ ॥

ज्योति — यदि पृथ्वी सम्बन्धी भाड़ा, किराया, किश्त आदि के प्रश्न हों तो लग्न को प्रश्न करने वाला, सप्तम को किराया, दशम को उत्पत्ति और चतुर्थ को परिणाम कल्पना करके इन स्थानों का बलाबल विचार कर शुभाशुभ उत्तर देना चाहिए । लग्न तथा लग्नेश यदि शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो शुभ फल और पापग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हों तो अशुभ फल कहना चाहिए । यदि सप्तम स्थान में पापग्रह स्थित हों तो भाड़ा आदि में किसी प्रकार का अनर्थ हो सकता है । यदि दशम भाव में पापग्रह हों तो प्रश्नकर्ता को बहुत भाड़ा प्राप्त नही हो पाता । चतुर्थ स्थान में यदि पापग्रह हों तो परिणाम अच्छा नहीं होता अथवा भाड़ा मिलने में बाधा होती है ॥ ३५ — ३७ ॥

अथ पञ्चमस्थानपृच्छा —

यदि पृच्छत्येतस्याः स्त्रियो भवेन्मे प्रजा न वा ? कश्चित् ।
लग्नेन्द्वोः सुतपतिना मुथशिलभावे प्रसूतिः स्यात् ॥ ३८ ॥

सुतभावपतिर्लग्ने लग्नपचन्द्रौ सुतेऽथवा स्याताम् ।
सत्वरितमेव वाच्या सविलम्बे नक्तयोगेन ॥ ३९ ॥

द्विशरीरे चे विलग्ने शुभयुतपुत्रे द्व्यपत्ययोगोऽस्ति ।
यदि लग्नपुत्रपतिः पुंराशौ चेत्स्यात्तदा सुतो गर्भे ॥ ४० ॥

कुन्तला — एतस्याः स्त्रियः सकाशात् मे प्रजा = सन्ततिः, भवेत् वा न भवेत् ? इति यदि कश्चित् जनः पृच्छति, तदा लग्नेन्द्वोः = लग्नचन्द्रयोः, सुतपतिना = पञ्चमेशेन, मुथशिलभावे सति प्रसूतिः स्यात् । वा सुतभावपतिः = पञ्चमेशः, लग्ने स्थितः, लग्नपचन्द्रौ = लग्नेशचन्द्रौ, सुते = पञ्चमे, स्थितौ स्यातां, तदाऽपि प्रसूतिः सत्वरितमेव = शीघ्रमेव वाच्या । नक्तयोगेन सविलम्बं प्रसूतिर्वाच्या । वा द्विशरीरे = द्विस्वभावराशौ, विलग्ने सति शुभयुतदृष्टे च सति तदा द्व्यपत्ययोगः = एकदा सन्तानद्वयोत्पत्तियोगः स्यात् । यदि लग्न–पुत्रपतिः =

लग्नपञ्चमेशः पुंराशौ = पुरुषराशौ भवेत्, तदा गर्भे सुतः = पुत्रः वाच्यः । एवं यदि लग्नपुत्रपतिः स्त्रीराशौ भवेत्, तदा गर्भे कन्या वाच्येति ।। ३८ – ४०।।

ज्योति — यदि पृच्छक पूछे कि हमारी स्त्री को सन्तान होगी या नहीं तो यदि लग्न स्वामी और चन्द्रमा इन दोनों का पञ्चमभावेश के साथ इत्थशाल हो तो सन्तति अवश्य होने की बात कहनी चाहिए । यदि पञ्चम भाव का स्वामी लग्न में हो और लग्नेश और चन्द्रमा पञ्चम स्थान में हो तो शीघ्र पुत्र उत्पन्न होता है । यदि नक्तयोग हो तो विलम्ब से पुत्र उत्पन्न होता है । यदि द्विस्वभाव लग्न हो और पञ्चम स्थान में शुभग्रह स्थित हो तो दो सन्तानें होंती हैं । यदि लग्नेश तथा पञ्चमेश पुरूष राशि में स्थित हों तो गर्भ में पुत्र है ऐसा कहना चाहिए ।। ३८ – ४०।।

अथ पञ्चमभावपृच्छायां चन्द्रवशेन विचारः —

पुंराशौ पुंग्रहकृतमुथशिलयुक्तस्तदाऽपि सुतगर्भः ।
अथवा विधुरपराह्ने सूर्यात्पृष्ठे तदा स्त्री स्यात् ।। ४१ ।।

होरास्वामी पुरुषः पुंराशौ चेत्तथाऽपि सुतगर्भः ।
चन्द्रयुक्तेक्षिते गर्भे सौम्ययुक्तेक्षितेऽपि वा ।। ४२ ।।

उच्चस्थेऽभ्युदिते तत्र पुण्यापत्यं प्रजायते ।
तुङ्गेन्दुसौम्ययोगे गर्भे चिरजीविपुत्रसंभूति ।। ४३ ।।

कुन्तला — विधुः = चन्द्रः, पुंराशौ = विषमराशौ, पुंग्रहकृतमुथशिलयुक्तः = रविकुजगुरुराहकृतेत्थशालः वर्त्तते, तदाऽपि सुतगर्भः = पुत्रस्य गर्भः । गर्भे पुत्र इत्यर्थः । अथवा विधुश्चन्द्रः अपराह्ने = मध्यन्दिनानन्तरकाले, सूर्यात् पृष्ठे = पृष्ठभागे, राश्यादिना न्यूने भवेत्तदा स्त्री = कन्या गर्भे वाच्या । अर्थात् कृष्णपक्षस्य सार्धसप्तम्या उपरि भागे एवं स्यात् । वा प्रश्नलग्ने या होरा, तस्याः स्वामी पुरुषग्रहः, अर्थात्सूर्यः चेत् पुंराशौ भवेत्तदाऽपि सुतगर्भः, वाच्यः । वा गर्भे = पञ्चमभावे, वा पञ्चमेशे, चन्द्रयुक्तेक्षिते = चन्द्रयुतदृष्टे, अपि वा सौम्ययुक्तेक्षिते, पञ्चमेशे उच्चस्थे = स्वोच्चराशिस्थे, अभ्युदिते = दीप्तांशबहिर्गते सति प्रष्टुः पुण्यापत्यं = धर्मयुक्तसन्तानः, प्रजायते = उत्पद्यते ।। ४१ – ४३।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा पुरुषराशि में हो और पुरुषराशि से इत्थशाल योग करे तो भी पुत्र उत्पन्न होता है । यदि अपराह्न काल में सूर्य से पीछे की राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो कन्या होती है । यदि लग्नेश पुरुषग्रह हो और पुरुषराशि में हो तो गर्भ में स्थित पुत्र कहना चहिए । यदि उच्चगामी चन्द्रमा शुभ ग्रहों से युक्त दृष्ट या पंचम स्थान में हो तो दीर्घायु पुत्र होने की बात कहनी चाहिए ।। ४१ – ४३ ।।

अथ पञ्चमभावपृच्छायामेव गर्भसम्भवप्रश्नकथनम् —

एषा गर्भवती किल न वा प्रमाणं प्रयाति गर्भोऽयम्? ।
प्रश्ने लग्नपशशिनोः सुतस्थयोर्गर्भवत्येव ॥ ४४॥

यद्येतयोर्मुथशिलं केन्द्रे सुतपेन गर्भिणी तदपि ।
आपोक्लिमेत्थशालादनीक्षणाल्लग्नपुत्रयोर्नैवम् ॥ ४५ ॥

कुन्तला — एषा स्त्री गर्भवती किल विद्यते न वा ? अथवा अयं गर्भः प्रमाणं निश्चयं न प्रयाते = न गच्छति ? इत्थं जाते प्रश्ने लग्नपशशिनोः = लग्नेशचन्द्रयोः, सुतस्थयोः = पञ्चमभावगतयोः सतोः, इयं स्त्री गर्भवती एवास्ति । वा यदि अनयोः = लग्नेशचन्द्रयोः केन्द्रे १। ४। ७। १० स्थितयोः सुतपेन = पञ्चमभावेशेन मुथशिलम् = इत्थशालं जायते, तदापि गर्भिणी भवति । वा आपोक्लिमे ३। ६। ९। १२ स्थितयोर्लग्नेशचन्द्रयोः इत्थशालात् लग्नपुत्रयोर्भावयोः सुतपेन अनीक्षणात् = अदर्शनात्, एवं = गर्भसम्भवः, न वाच्यः ॥ ४४ – ४५॥

ज्योति — यदि प्रश्नकर्ता पूछे कि हमारी स्त्री गर्भवती होगी या नहीं तो प्रश्नकाल में यदि लग्नस्वामी और चन्द्रमा पंचम स्थान में हों या पंचमभाव को देखते हो तो गर्भवती होगी, ऐसा कहना चाहिए । यदि केन्द्र स्थान में स्थित पंचमेश के साथ लग्नस्वामी और चन्द्रमा का इत्थशाल योग हो तो भी गर्भिणी है ऐसा कहे । यदि आपोक्लिम स्थान में इत्थशाल हो अथवा लग्नस्वामी पुत्रभाव को और पुत्रस्वामी लग्न को नहीं देखता हो तो गर्भवती नहीं है, ऐसा कहना चाहिए ॥ ४४ – ४५॥

अथ गर्भनाशयोगकथनम् —

चरलग्ने क्रूरेन्द्वोर्मुथशिलभावे विनश्यति हि गर्भः ।
लग्नपशशिनोस्तत्पतिस्थवक्रिमुथशिलेऽपि तथा ॥ ४६ ॥

कुन्तला — चरलग्ने (मे० कर्क, तु० म०) राशौ स्थितयोः, क्रूरेन्द्वोः = पापचन्द्रयोः, मुथशिलभावे = इत्थशाले सति गर्भः = सन्तानसम्भवः, विनश्यति = पतति एवं चरलग्ने गतयोर्लग्नपशशिनोः = लग्नेशचन्द्रयोः, तदाशिपतिग्रहवक्रीग्रहाभ्यां मुथशिले जातेऽपि तथा = गर्भो नश्यतीति ज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

ज्योति — यदि चरलग्न में पापग्रह चन्द्रमा के साथ इत्थशाल योग करे तो गर्भ नष्ट हो जाता है । यदि लग्नस्वामी व चन्द्रमा नीचादि पतित ग्रहों से इत्थशाल करें तो गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथ पञ्चमभावपृच्छायामेव–सन्तानजीवितमरणयोः प्रश्नकथनम् —

जीवितमरणप्रश्ने बालानामन्त्यपे शुभैर्दृष्टे ।
केन्द्रस्थे सितपक्षे शुभयुक्तेऽन्त्ये विधौ जीवेत् ॥ ४७ ॥

क्रूरश्चेदन्त्यपतिर्दग्धश्चापोक्लिमेऽयुक्तः ।
क्रूरस्तु जातमात्रो म्रियते बालोऽथवा गर्भे ॥ ४८ ॥

कुन्तला — बालानां = शिशूनां जीवितमरणप्रश्ने, अयमुत्पन्नो बालो जीविष्यति नवेति प्रश्ने, अन्त्यपे = व्ययेशयो वा अष्टमेशे केन्द्रस्थे, शुभैः शुभग्रहैः दृष्टे तदा बालो जीवेत् । अथवा सितपक्षे = शुक्लपक्षे प्रश्नः स्यात् तत्र शुभयुक्ते विधौ = चन्द्रे, अन्त्ये = द्वादशे स्थिते सति बालः जीवेदिति । अथानिष्टयोगमाह — चेत् = यदि, अन्त्यपतिः = व्ययेशः, क्रूरः = पापः, स्यात्, दग्धः = पापाक्रान्तोऽस्तङ्गतश्च भूत्वाऽऽपोक्लिमे स्थितः स्यात्, अयुक्तः = शुभैरयुक्तश्च भवेत्, क्रूरैस्तु युतो भवेत् तदा जातमात्रो बालो म्रियते, अथवा गर्भे एंव बालो म्रियते ॥ ४७ – ४८॥

ज्योति — बालक के जीवन–मरण प्रश्न में बारहवें भाव का स्वामी यदि केन्द्र में शुभ ग्रह से दृष्ट हो और बारहवें स्थान में शुक्लपक्ष का चन्द्रमा स्थित हो अथवा शुभग्रह से युक्त हो तो बालक अधिक उम्र वाला होता है । यदि बारहवें का स्वामी क्रूरग्रह होता हुआ दग्ध हो तथा आषोक्लिम स्थान में पापग्रह से दृष्ट वा युक्त हो तो बालक उत्पत्ति के समय अथवा गर्भ में ही मर जाय ॥ ४७ – ४८ ॥

अथ पञ्चमभावप्रश्ने तावत्प्रसवकालज्ञानप्रश्नमाह –

प्रसवज्ञानप्रश्न भुक्तांल्लग्नांशकान् परित्यज्य ।
भोग्याद्विचिन्त्य शेषाननुमित्येवं वदेद्दिवसान् ॥ ४९ ॥

कुन्तला — प्रसवज्ञानप्रश्ने कियद्भिर्दिवसैर्मम प्रसवो भविष्यतीति प्रश्ने–भुक्तान् = गतान्, लग्ननवांशकान् परित्यज्य, भोग्यान्, नवांशकान् अनुमित्या = अनुमानेन, शेषान् = अवशिष्टान्, दिवसान् वदेत् । अर्थात् प्रश्नलग्ने यावन्तो नवांशा गतास्तावन्तो गर्भमासा गता वाच्याः । यावन्तो नवांशाश्च भोग्यास्तावद्भिर्मासैः प्रसवसम्भवो वाच्यः । तत्र वर्त्तमाननवांशसम्बन्धिकालज्ञानार्थं त्रैराशिकम्–यदि (३।२०) एतत्तुल्यनवांशमानेनैको मासस्त्रिंशद्दिनानि वा तदा वर्त्तमान नवांशभोग्यभागैः किं ? एवं वर्त्तमान नवांशभोग्यावयव–सम्बन्धिसमयो दिनादिक आयातीति स्पष्टम् ॥ ४९॥

ज्योति — यदि बालक की उत्पत्ति का प्रश्न हो तो इस प्रश्न में लग्न के भुक्त अंशों को छोड़कर भोग्यांश्या पर से दिनों का अनुमान करना चाहिए । उसे ही दिन कहना चाहिए अथवा लग्न के युक्त अंशों के समान गर्भ के भुक्तमास और भोग्यांशों से शेष दिन अनुमान से कहना चाहिए ॥ ४९ ॥

अथवा गर्भमासज्ञानकथनम् — (भवन प्रदीपे)

मासज्ञानस्य पृच्छायां गर्भिण्या भृगुनन्दनः ॥ ५० ॥

लग्नात्स्याद्यावति स्थाने मासानाख्याति तावतः ।
सुतात्संख्या तदा वाच्या यदा धर्मात्परं गतः ॥ ५१॥

कुन्तला — गर्भिण्याः = गर्भवत्याः, मासज्ञानस्य पृच्छायां = प्रश्ने, भृगुनन्दनः = शुक्रः, लग्नात् = प्रश्नलग्नात् यावति = यत्संख्यके, स्थाने भवेत्, तावतः = तत्सङ्ख्यकान् मासान् आख्याति = कथयति । यदि शुक्रः कर्मादिभावे स्थितः स्यात्तदा गर्भप्रसवसम्भवमासा नवाधिका आयान्ति । तत्र निर्वाहमाह — यदि धर्मात् = नवमभावात्, परं गतः = अग्रभावे गतः शुक्रः स्यात्, तदा सुतात् = पञ्चमभावात्, शुक्राधिष्ठितभावसङ्ख्यके मासे प्रसवसम्भवो वाच्यः ॥ ५० — ५१॥

ज्योति — यदि प्रसव कितने महीने में होगा? ऐसा प्रश्न हो तो लग्न से शुक्र जितने स्थान में हो, उतने महीने में प्रसव कहना चाहिए । लेकिन यदि लग्न से १०, ११ या १२ वें स्थान पर शुक्र आता हो तो वहां पंचमभाव से शुक्र राशि गिनकर महीना कहना चाहिए ॥ ५० — ५१॥

अथ दिनरात्र्योः कदा प्रसवसम्भवस्तदाह —

लग्नान्तर्दिनराशिर्दिवा ग्रहो लग्नपश्च दिनराशौ ।
तद्दिवसे जन्म वाच्यं विपरीते व्यत्ययश्चैषाम् ॥ ५२॥

अथ रात्रिलग्नमह्ना तदधिपतिश्चेत्तु तस्य राशिपतेः ।
बलमूह्यं दिनहोरापुंराशिस्त्रीगृहेऽप्येवम् ॥ ५३ ॥

कुन्तला — लग्नान्तः = लग्नमध्ये, यदि दिनराशिः = दिनबली राशिः स्यात्, वा दिवा = दिवसे, प्रश्नः स्यात्, तथा लग्नपः = प्रश्नलग्नेशः, दिनराशौ = दिनबलीराशौ, वा दिनान्तर्गतराशिस्थितौ भवेत्, तदा दिवसे = दिने जन्म वाच्यम् । एषां लक्षणानां व्यत्यये = विपरीते रात्रिबलीराशिवशात्, व्यत्ययः = रात्रौ जन्म वाच्यम् ।

अथ वा रात्रिलग्नं = रात्रिबली राशिः प्रश्नलग्नं स्यात्, तथाऽह्ना = दिनेन, प्रश्नः तदधिपतिः = प्रश्नलग्नेशः, यः स्यात्, तस्य राशिपतेः = राशिस्वामिनः, बलम् ऊह्यं = चिन्त्यं, दिनहोरापुंराशिस्त्रीगृहेऽपि एवं तर्क्यम् ॥ ५२ — ५३॥

ज्योति — यदि लग्न दिवाबली हो और लग्नस्वामी दिवाबली राशि में स्थित हो तो दिन में प्रसव होगा, इससे विपरीत अर्थात् रात्रिबली लग्न और लग्नेश हो और लग्नेश रात्रिबली राशि में हो तो रात्रि को प्रसव होगा ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्न दिवाबली हो लग्नेश रात्रिबली राशि में या इससे विपरीत हो तो दोनों में जो बली उसके अनुसार फल कहना चाहिए ।

यदि रात्रि बली राशि लग्न हो, दिन में प्रश्न हो, लग्नेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जो ग्रह, उसका स्वामी जो ग्रह हो, उन सभी का बल विचार कर कहना चाहिए । इस प्रकार, दिन, होरा, पुरुषराशि, स्त्री राशि में भी तर्क करना चाहिए ॥ ५२ — ५३ ॥

अथापत्यप्राप्तिप्रश्नकथनम् —

अस्मिन्वर्षेऽपत्यं भविता विलग्नमंचमाधीशौ ।
भजतो यदीत्थशालं तत्रैवाब्दे भवति नूनम् ॥ ५४ ॥

यदि वा मिथो ग्रहगतौ स्यातामेतौ च संततिस्तदपि ।
वाच्या तस्मिन्वर्षे शुभयोगादन्यथा न पुनः ॥ ५५ ॥

सूताप्रसूतयुवतिज्ञाने सुतपोऽथ षष्ठपः सूर्यात् ।
निर्गत्योदयमायात्ततः प्रसूते च नारीयम् ॥ ५६ ॥

अथ जीवसौम्यशुक्रा आकाशे उदयिनस्तथाप्येवम् ।

कुन्तला — अस्मिन् = वर्त्तमानवर्षे मम अपत्यं भविता ?, इति प्रश्ने तत्काले विलग्नपञ्चमाधीशौ = लग्नेशपञ्चमेशौ, यदि इत्थशालं भजतः = कुरुतः, तदा तत्र वर्षे नूनं = निश्चितं, अपत्यं भवति । यदि वा एतौ लग्नेशपञ्चमेशौ मिथो गृहगतौ स्यातां, लग्नेशः पञ्चमे, पञ्चमेशो लग्ने स्थित एवं तदाऽपि सन्ततिः = सन्तानं भवति । तस्मिन् वर्षे शुभग्रहयोगात् सन्ततिर्वाच्या । पुनः अन्यथा पापग्रहयुतदृष्ट्या न सन्ततिरिति ।

सूताप्रसूतयुवतिज्ञाने = प्रसूतायाः प्रश्ने, सुतपः = पञ्चमेशः, अथवा षष्ठपः = षष्ठेशः सूर्यात् निर्गत्य उदयम् आयात् = उदितः स्यात्, ततः इयं नारी प्रसूते । अथवा जीवसौम्यशुक्राः आकाशे उदयिनः = उदितास्तदाऽपि एवं (इयं नारी सूते) ॥ ५४ – ५६॥

ज्योति — इस वर्ष हमारे कोई सन्तान होगी या नहीं, ऐसे प्रश्न में यदि लग्नस्वामी तथा पंचमस्वामी इन दोनों का परस्पर इत्थशाल हों तो अवश्य सन्तान हो । यदि लग्नस्वामी और पंचमस्वामी ये दोनों एक ही स्थान में अथवा परस्पर दूसरे के स्थान में विद्यमान हों तथा शुभग्रहों से युक्त हों तो उस वर्ष में संतति होगी, अन्यथा नहीं । 'यह स्त्री प्रसववती होगी अथवा नहीं ऐसे प्रश्न में पंचम भाव तथा षष्ठभाव का स्वामी यदि सूर्य के साथ निकल गया हो अर्थात् उदित हो गया हो तो स्त्री प्रसववती होगी अन्यथा नहीं । यदि बृहस्पति, मङ्गल और शुक्र दशम स्थान में स्थित हों तो भी स्त्री प्रसववती होगी ॥ ५४ – ५६॥

अथ षष्ठस्थानपृच्छा —

रोगादयमुत्थास्यति नवेति लग्नं भिषक् द्यूनम् ॥ ५७ ॥

व्याधिर्दशमं रोगी हिबुकं भेषजमिहाहुराचार्य्याः ।
क्रूरार्दिते विलग्ने वैद्यान्न गुणस्तदौषधाद्रोगः ॥ ५८ ॥

वृद्धिमुपयाति दशमे क्रूरैर्निजबुद्धितोऽप्यगुणः ।
अस्ते च क्रूरयुक्ते मांद्यान्मांद्यं तथौषधाद्बन्धौ ॥ ५९ ॥

सौम्योपगतैरेतैररोगता रोगिणो भवति ।
लग्नेशेन्द्वोः सौम्येत्थशालतो रोगनाशनं वाच्यम् ।। ६० ।।
वक्रे तु तत्र खेटे भूयोऽपि गदः समुपयाति ।

कुन्तला — अयं = निर्दिष्टः जनः, रोगात् = रोगशय्यातः, उत्थास्यति न वा ? इति प्रश्ने लग्नं = भिषक् = वैद्य, द्यूनं = सप्तमस्थानं, व्याधिः = रोगः, दशमं स्थानं रोगी, हिबुकं = चतुर्थस्थानं भेषजम् = औषधम्, आचार्या आहुः । इति तावत् सञ्ज्ञाकरणम् । अथ विचारः — तत्र विलग्ने, क्रूरार्दिते = पापनिपीड़िते सति, वैद्यात् = वैद्योपचारात्, गुणः = रोगह्रासः, न वाच्यः । अपि तु, तदौषधात् = वैद्यौषधात्, रोगः वृद्धिं = उपचयं, उपयति = गच्छति । वा क्रूरैः = पापैः, दशमे स्थितैः सद्भिः निजदोषतः = स्वकृतकुपथ्यभोजनतः, अपि अगुणः = भेषजगुणप्रभावः न भवति । अस्ते = सप्तमे च क्रूरयुक्ते = पापयुक्ते, तदा औषधात् = भेषजसेवनात्, मान्द्यात् = एकस्मात् रोगान् मान्द्यम् = अन्यरोगः, भवेत् । एवं बन्धौ = चतुर्थस्थाने = पि पापयुक्ते सति एकरोगमुक्त्यनन्तरमन्यरोगप्रारम्भः स्यात् । एतैरुक्तयोगैः सौम्योपगतैः =शुभग्रहयुतदृष्टैः सद्भिः, रोगिणः = रोगार्त्तस्य, अरोगता = आरोग्यं भवति । तथा लग्ने शेन्द्वोः = लग्नेशचन्द्रयोः, सौम्येत्थशालतः = शुभग्रहेत्थशालयोगात्, रोगनाशनं वाच्यम् । तत्र खेटे = दशमेशे, चतुर्थेशे सप्तमेशे च विशेषतः, वक्रे सति भूयः = पुनः, गदः = रोगः समुपयाति ।। ५७ — ६०।।

ज्योति — 'अमुक रोगी रोग से छुटकारा पावेगा अथवा नहीं ?' इस प्रश्न में लग्न को वैद्य, सप्तमभाव को रोग, दशमभाव को रोगी और चतुर्थ भाव को औषध समझकर विचार करना चाहिए । यदि लग्न पापग्रहों से युक्त हो तो वैद्य से लाभ नहीं हो अर्थात् रोग बढ़े । यदि दशमस्थान में पापग्रह हों तो अपने ही कुपथ्य से रोग बढ़ जाता है ।

यदि सप्तम स्थान में पापग्रह हों तो एक रोग से अन्य रोग उत्पन्न हो जाय । यदि चौथे स्थान में पापग्रह हों तो औषध से दूसरा रोग हो जाय और इन सब में शुभग्रह हों तो रोगी रोग मुक्त हो जाता है ।

लग्नेश और चन्द्रमा का यदि शुभग्रह से इत्थशाल योग हो तो रोग का नाश हो और वह यदि वक्रगामी हो तो फिर से रोग उत्पन्न हो जाता है ।। ५७ — ६०।।

अथ रोगिणः प्रश्नान्मरणयोगकथनम् —

भूमिस्थे लग्नस्थे द्युनस्थे शशिमुथशिले भवेन्मृत्युः ।। ६१ ।।
लग्नस्थे रन्ध्रपतौ लग्नपशशिनोविनाशे वा ।
लग्नाधिपे च सूर्ये चन्द्रः सप्तेशमुथशिलविधायी ।। ६२ ।।
सप्तेशे षष्ठस्थे तन्मरणं रोगिणो वाच्यम् ।
रन्ध्रेशेन विनष्टेनास्तमितेनापि केन्द्रस्थे ।। ६३ ।।

लग्नेशं च मुथशिले मृत्युः स्याद्रोगपृच्छायाम ।
अथ वा तयोश्च केन्द्रे मुथशिलतः क्रूरपीडिते मरणम् ॥ ६४ ॥

कुन्तला — वक्रे ग्रहे भूमिस्थे = चतुर्थस्थे, लग्नस्थे = प्रथमस्थानस्थे, द्युनस्थे = सप्तम स्थानस्थे सति तत्र शशिमुथशिले = चन्द्रकृतेत्थशालयोगे सति, मृत्युर्मरणं भवेत् वा रन्ध्रपतौ = अष्टमेशे, लग्नस्थे, वा अष्टमेशे लग्नपशशिनोः = लग्नेशचन्द्रयो सकाशात्, विनाशे = अष्टमस्थाने भवेत्तदाऽपि रोगिणो मृत्युः स्यात् । वा लग्नाधिपे सूर्ये सति अर्थात् सिंहराशिः प्रश्नलग्नं स्यात्, तत्र चन्द्रः सप्तमेशमुथशिलविधायी = शनिना सहेत्थशाली भवेत्, वा सप्तेशे कस्मिंश्चिलग्ने षष्ठस्थे सति तदा रोगिणो मरणं वाच्यम् । वा रन्ध्रेशेन = अष्टमेशेन, विनष्टेन = नीचस्थेन, अस्तमितेन = अस्तङ्गतेन ग्रहेण केन्द्रस्थे लग्नेशेऽष्टमेशे च मुथशिले कृते सति रोगपृच्छायां मृत्युः स्यात् । अथवचा क्रूरपीडिते = पापाक्रान्ते केन्द्रे स्थितयोः तयोर्लग्नेशाष्टमेशयोर्मुथशिलतः रोगिणो मृत्युः स्यादिति ॥ ६१ — ६४॥

ज्योति — यदि लग्नेश चतुर्थ स्थान में स्थित होकर चन्द्रमा के साथ इत्थशाल करता हो तो मृत्यु होती है । यदि लग्न में अष्टमभाव का स्वामी और लग्न का स्वामी एवं चन्द्रमा अष्टमस्थान में हो तो भी मृत्यु होती है ।

यदि लग्नेश सूर्य हो और चन्द्रमा सप्तमेश के साथ इत्थशाल करे और सप्तमेश छठें स्थान में हो तो रोगी का मरण हो जाता है । यदि अष्टमेश नष्टबली होकर केन्द्रस्थान में हो और लग्नेश के साथ इत्थशाल योग कर रहा हो तो रोगसम्बन्धी प्रश्न में रोगी की मृत्यु होती है । यदि लग्नेश तथा अष्टमेश केन्द्र में बैठकर इत्थशाल करते हों और दोनों पापग्रह से पीड़ित हों तो मृत्यु होती है ॥ ६१ — ६४ ॥

अथ रोगिरोगविषयप्रश्नकथनम् —

सूर्यद्वादशभागं प्रविष्टे लग्नेश्वरेऽप्येवम् ।
लग्ने चरे च रोगी क्षणे स्यादरुक् सरुक् चापि ॥ ६५ ॥

द्विशरीरे पररोगः स्थिरे गदस्यव रोगत्वम् ।
शशिनो वक्रमुथशिले स्थिररोगो मंदमुथशिले पूर्वम् ॥ ६६ ॥

मूत्रनिरोधाद्रोगोत्पत्तिर्ज्ञेया कृतप्रश्ने ।
अथ पृच्छायाः पूर्वं सप्ताहानि च विलोक्य चत्वारि ॥ ६७ ॥

यदि तेषु शशिकवी शुभयुतदृष्टौ तदा शस्तम् ।
मंदोऽयमथ नवेति प्रश्ने लग्नेश्वरोऽथ चन्द्रो वा ॥ ६८ ॥

षष्ठेशमुथशिली स्यादस्तमितो वा तदा मन्दः ।

कुन्तला — लग्नेश्वरे = लग्नेशे, सूर्यद्वादशभागं = रविद्वादशांशं प्रविष्टे सति एवं फलम् वाच्यम् । अर्थात् रोगिणो मरणमेव भवति । लग्ने चरे = चरराशौ = मेषकर्कतुलामकरं— राश्यन्यतमे राशौ सति रोगी क्षणे अरुक् = रोगमुक्तः, क्षणे सरुक् चापि भवति । अथ लग्ने द्विशरीरे = द्विःस्वभावे, पररोगः = अन्यरोगः स्यात् । स्थिरे लग्ने तु गदस्य = पूर्वरोगस्यैव रोगत्वम् । शशिनः = चन्द्रस्य, वक्रमुथशिले = वक्रग्रहेत्थशाले सति, स्थिररोगः स्यात् । मन्दमुथशिले चन्द्रस्य मन्दगतिग्रहेणेत्थशाले सति पूर्वं मूत्रनिरोधात् = मूत्रकृच्छ्रात् रोगोत्पत्तिः ज्ञेया । अथ पृच्छायाः पूर्वं चत्वारि सप्ताहानि विलोक्य तेषु समयेषु यदि शशाङ्करवी शुभयुतदृष्टौ भवतस्तदा शस्तं = आरोग्यं वाच्यम् । अयं जनः मन्दः = रोगवान् न वा ? इति प्रश्ने लग्नेश्वरः, वा चन्द्रः षष्ठेशमुथशिली, वाऽस्तमितः = अस्तङ्गतः स्यात्तदा मन्दः = रोगः वाच्यः ॥ ६५ — ६८ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश सूर्य के द्वादशांश में हो तो मृत्यु होती है । यदि लग्नेश अष्टमभाव के तथा अष्टमभावेश लग्न में हो अथवा परस्पर दृष्टि हो तो भी मृत्यु हो । यदि चरलग्न हो तो रोगी क्षण—क्षण में सुखी—दुखी होता रहता है । यदि द्विस्वभाव लग्न हो तो एक रोग से दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, स्थिर लग्न हो तो आदि से अन्त तक एक रोग बना रहता है । यदि चन्द्रमा किसी वक्री ग्रह से इत्थशाल योग करे तो रोग स्थिर रहता है । यदि शनैश्चर से इत्थशाल योग हो तो मूत्र के रुकने से रोग की उत्पत्ति समझना चाहिए । यदि प्रश्न के पहले चार या सात दिनों में सूर्य तथा चन्द्रमा शुभग्रह से युक्त अथवा दुष्ट हो तो शुभफल समझना चाहिए । 'यह मनुष्य रोगी है या नहीं, इस प्रश्न में प्रश्नलग्नेश अथवा चन्द्रमा षष्ठेश से इत्थशाल कर रहा हो अथवा अस्तङ्गत हो तो रोगी है, ऐसा कहना चाहिए ॥ ६५ — ६८ ॥

अथ स्वामिभृत्यचतुष्पादप्रकरणम् —

ईशोऽन्यो मम भविता न वेति लग्नेश्वरस्य यदि केन्द्रे ॥ ६९ ॥

नो भवति मुथशिलं षष्ठांतयपतिभ्यां तदा नान्यः ।
वक्री वाऽन्येन समं लग्नपतिः सहजनवमसंस्थेन ॥ ७० ॥

कुरुते यदीत्थशालं तदाऽन्यनाथो भवेत्प्रष्टुः ।
लग्नपतौ केन्द्रस्थे रिपुदृष्ट्वा क्रूरवीक्षिते पुण्ये ॥ ७१ ॥

रविरश्मिगतेऽथ भवेद्यावज्जीवं च नान्यपतिः ।

कुन्तला — मम ईशः = पालकः = नाथः = जीविकाश्रयजनः (मालिक), अन्यः कोऽपि भविता न वा ? इति प्रश्ने यदि केन्द्रे = १ । ४ । ७ । १० एतदन्यतमस्थाने स्थितस्य

लग्नेशव्ययस्य षष्ठान्त्यपतिभ्यां = षष्ठेशव्ययेशाभ्यां, मुथशिलं नो भवति, तदाऽन्यः = पूर्वस्माद्भिन्नः जनः, ईशो न भवितेति वाच्यम् । वा यदि लग्नपतिः = लग्नेशः, वक्री भवन्, सहजनवमसंस्थेन अन्येन सममित्थशालं कुरुते तदा प्रष्टः = प्रच्छकस्य, अन्यनाथः भवेत् । अथ यदि लग्नपतौ = लग्नेशे, केन्द्रस्थे, रिपुदृष्ट्या = शत्रुदृष्ट्या, क्रूरवीक्षिते = पापदृष्टे, पुण्ये = पुण्यसहमे, रविरश्मिगते = अस्तङ्गते च सति, मावज्जीवं = आजीवम्, अन्यपतिः = अपरनाथः, न भवेत् ।। ६९ – ७१ ।।

ज्योति — यदि कोई पूछे कि 'हमारा अन्य स्वामी होगा या नहीं अर्थात् अन्यत्र हमारी नौकरी लगेगी या नहीं ?' इस प्रश्न में लग्नस्वामी यदि केन्द्र में हो और छठें या बारहवें स्थान के स्वामी के साथ इत्थशाल न हो तो अन्य स्वामी नहीं होगा, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्न का स्वामी वक्री हो या तीसरे अथवा नवें स्थान में स्थित ग्रह से इत्थशाल करता हो तो प्रश्नकर्ता का अन्य स्वामी होगा; ऐसा कहे । यदि लग्नेश केन्द्र में बैठा हो और चौथे स्थान के स्वामी को क्रूरग्रह शत्रुदृष्टि से देखत हो अथवा लग्नस्वामी अस्त हो तो जब तक जिये तब तक दूसरा स्वामी नहीं होगा ऐसा कहे ।। ६९ – ७१ ।।

अथ वर्त्तमानप्रभुप्रकृतिज्ञानार्थं प्रश्नः—

अयमीशो भद्रो मे पृच्छायां लग्नपस्य कंबूले ।। ७२ ।।

स्वामी स एव भव्यो द्यूनेशस्य च शुभोऽन्येशः ।
ग्रहभूमिस्थानानां लग्नप्रश्ने पुरोक्त एव विधिः ।। ७३ ।।

सम्यग्विचार्य वाच्यं शुभमशुभं पृच्छतः स्वधिया ।

कुन्तला — अयं मम निर्दिष्टः जनः, भद्रः = शुभङ्करः, ईशः भविता न वा ? इति पृच्छायां । लग्नपस्य = लग्नेशस्य, चन्द्रेण कम्बूले सति स एव स्वामी भव्यः = शुभप्रदः, वाच्यः यदि द्यूनेशस्य = सप्तमेशस्य चन्द्रकृतकम्बूले सति, अन्येशः = पूर्वभिन्नप्रभुः, शुभः = उपकारकरः भावीति । गृहभूमिस्थानानां गृहं = भवनं, भूमिः = क्षेत्रम्, स्थानं = पदं जीविका तेषां प्रश्ने पुरोक्तः = पूर्वोक्त एव विधिः ज्ञेयः । स्वधिया = निजमत्या सम्यक् विचार्य पृच्छतः = प्रश्नकर्त्तुः, शुभम्, अशुभं च फलं वाच्यम् ।। ७२ – ७३ ।।

ज्योति — 'हमारा यह स्वामी अच्छा है या नहीं ?' इस प्रश्न में यदि लग्न का स्वामी शुभग्रह के साथ कम्बूलयोग करता हो तो दूसरा स्वामी अच्छा है और यदि सप्तमेश शुभग्रह से कम्बूल योग करता हो तो भी दूसरा अच्छा होगा ऐसा कहना चाहिए ।

गृह तथा भूमि के स्थिर रहने या चलायमान होने के प्रश्न में भी तदनुसार भली भाँति विचार करके प्रश्नकर्ता के लिए शुभाशुभ फल कहना चाहिए ।। ७२ – ७३ ।।

अथ भृत्यचतुष्पदलाभप्रश्नविचारकथनम् —

भृत्यचतुष्पदलाभप्रश्ने लग्नेशशीतगू षष्ठे ॥ ७४ ॥

षष्ठेशमुथशिलौ वा लग्ने षष्ठेश्वरोऽथ तल्लाभः ।
भृत्यस्य वाहनस्य च यद्वा प्रश्ने च लग्नलग्नपती ॥ ७५ ॥

अर्थी दाता सप्तमसप्तमपौ तद्बलात्प्राप्तिः ।

कुन्तला — भृत्यः = सेवकः, चतुष्पदः = गोमहिषीघोटकादि, तयोर्लाभप्रश्ने लग्नेशशीतगू = लग्नेशचन्द्रौ यदि षष्ठे = षष्ठस्थाने स्थितौ, षष्ठेशमुथशिलौ = षष्ठेशग्रहेण इत्थशालकारिणौ च भवतः । अथवा षष्ठेश्वरः = षष्ठभावेशः, लग्ने स्यादिति पृथग्योगाद्वये तल्लाभः = भृत्यस्य चतुष्पदस्य च लाभो भवतीति वाच्यम् । यद्वा भृत्यस्य वाहनस्य विषये प्रश्ने लग्न–लग्नपती ग्रहौ, अर्थी = याचकरूपौ, सप्तमसप्तमयौ ग्रहौ दाता–दातारौ ज्ञेयौ, तद्बलात् = सप्तमसप्तमेशबलात् प्राप्तिः वाच्या ॥ ७४ – ७५॥

ज्योति — सेवक तथा चौपाये के लाभप्रश्न में लग्न का स्वामी तथा चन्द्रमा यदि छठें स्थान में हो तो अथवा छठें स्थान के स्वामी से इत्थशाल करता हो या छठें स्थान का स्वामी लग्न में हो तो लाभ होगा, ऐसा कहना चाहिए ।

सेवक तथा वाहन सम्बन्धी प्रश्न में लग्न और लग्नस्वामी अर्थी तथा सप्तम व सप्तमभावसम्बन्धी दाता माने जाते हैं । इनका बलाबल देखकर प्राप्ति तथा अप्राप्ति कहना चाहिए । जैसे — लग्नस्वामी का सप्तम भाव से, सप्तमभाव का स्वामी लग्न से अथवा लग्नस्वामी व सप्तम स्वामी का परस्पर इत्थशाल योग हो तो सेवक व वाहन की प्राप्ति होगी और ईसराफ योग होने से प्राप्ति नहीं होगी, ऐसा कहना चाहिए ॥ ७४ – ७५॥

अथ सप्तमस्थानपृच्छाकथनम् —

स्त्रीलाभस्य प्रश्ने स्मराधिपे लग्नपेन शशिना वा ॥ ७६ ॥

कृतमुथशिले युवत्या अयाचिताया भवेल्लाभः ।
यदि लग्नपो विधुर्वा द्यूने तद्याचितां स्त्रियं लभते ॥ ७७ ॥

लग्नेशान्मूसरिफे चन्द्रऽस्तपमुथशिले स्वयं लाभः ।
येन समं तु मुथशिलस्तत्र विनष्टे च पापयुतदृष्टे ॥ ७८ ॥

निकटीभूय तदा किल विनश्यति स्त्रीगतं कार्यम् ।
पापेऽत्र रन्ध्रनाथे स्त्रीजातेरेव विघटते कार्यम् ॥ ७९ ॥

सहजपतौ भ्रातृभ्यस्तुर्येशे पितृत एव नान्येभ्यः ।
सौम्यकृतयुतिदृग्भ्यां पूर्वोक्तस्थानतः शुभं वाच्यम् ॥ ८० ॥

कुन्तला — स्त्रीलाभस्य प्रश्ने = मम स्त्रीलाभो भविष्यति न वा ? इति प्रश्ने, स्मराधिपे = सप्तमेशे लग्नपेन = लग्नेशेन, वा शशिना = चन्द्रेण, कृतमुथशिले सति, तदा अयाचिताया युवत्याः = स्त्रियाः, लाभः = प्राप्तिः, स्यात् । यदि लग्नपः = लग्नेशः, वा विधुः = चन्द्रः, द्युने = सप्तमस्थाने भवेत्, तदा याचितां = अर्थितां, मनोऽनुकूलां स्त्रियं लभते ।

वा लग्नेशात् चन्द्रे मूसरिफे, वाऽस्तपमुथशिले = सप्तमेशकृतेत्थशाले सति स्त्रियाः स्वयम् = आत्मना एव लाभः वाच्यः । अथ येन ग्रहेण समं मुथशिलस्तत्र ग्रहे विनष्टे अस्तङ्गते, पापयुतदृष्टे सति तदा स्त्रीगतं = स्त्रीविषयकं कार्यं, निकटीभूयकिल = निश्चयेन विनश्यति । अत्र पापे = पापग्रहे, रन्ध्रनाथे = अष्टमेशे सति, स्त्रीजातेः सकाशादेव कार्य = कृत्यं, विघटते = नश्यति । तथा सहजपतौ = तृतीयेशे, पापग्रहे सति भ्रातृभ्यः कार्य विनश्यति । तुर्येशे = चतुर्थेशे, पापे सति पितृत एव कार्यनाशः । अन्येभ्यो जनेभ्यो नहि 'सर्वत्र कार्यनाशसम्भवयोगे, शुभग्रहकृतयुतदृग्भ्यां = शुभयुतदृष्ट्या पूर्वोक्तस्थानतः शुभं फलं वाच्यम् ॥ ७६ – ८० ॥

ज्योति — स्त्रीलाभसम्बन्धी प्रश्न में सप्तम भावेश और लग्नेश अथवा चन्द्रमा का इत्थशाल योग हो तो बिना माँगी स्त्री का लाभ होता है । यदि लग्नस्वामी या चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो तो भी बिना माँगी स्त्री प्राप्त होती है । यदि लग्नेश सप्तम भाव से ईसराफ योग करता हो और चन्द्रमा का सप्तमेश के साथ इत्थशाल हो तो अपने आप स्त्री की प्राप्ति हो जाती है । जिस किसी ग्रह के साथ इत्थशालयोग हो वह ग्रह नष्टबली और पापग्रह युक्त वा दृष्ट हो तथा सप्तम में नष्टबली ग्रह या पापग्रह हो तो स्त्रीलाभ सम्बन्धी कार्य समीपवर्ती होने पर भी नष्ट हो जाता है । यदि सप्तम भाव में पापग्रह या अष्टम भाव का स्वामी बैठा हो तो स्त्री जाति द्वारा स्त्रीसम्बन्धी कार्य नही होता है । यदि तीसरे भाव के स्वामी से सम्बन्ध हो तो भाई से, चतुर्थभाव के स्वामी से सम्बन्ध हो तो पिता से एवं जिस भाव के स्वामी से सम्बन्ध हो, उसके द्वारा कार्य का नाश होता है । यदि सप्तमभाव या सप्तम भावेश पर शुभग्रह का योग हो अथवा शुभग्रह की दृष्टि हो तो उक्त सम्बन्ध वाले मनुष्य द्वारा लाभ होगा ॥ ७६ – ८० ॥

अथ स्त्रीस्नेहप्रश्नः —

प्रीतिस्थानप्रश्ने स्मरपतिलग्नेशमुथशिले स्नेहः ।
झकटकदृशा झकटकः शशिकंबूले तु साऽपि शुभा ॥ ६८ ॥

यदि मन्दो लग्नेशः केन्द्रे च स्यात्तदा बली प्रष्टा ।
अस्तेश्वरे च मन्दे केन्द्रे प्रतिवादिनोऽस्ति बलम् ॥ ६९ ॥

उभयोरेकस्थितयोर्ज्ञातव्या झकटकं तयोः प्रीतिः ।
सूर्ये न शुभं विबले नरस्य शुक्रे स्त्रियो द्वयोर्द्वितयौ ॥ ७० ॥

कुन्तला — प्रीतिस्थानप्रश्ने, स्मरपतिलग्नेशमुथशिले = सप्तमेशलग्नेशयोरित्थ—शाले सति स्त्रिया सह स्नेहः वाच्यः । अत्र लग्नेशः स्वामी, सप्तमेशः स्त्रीग्रहो ज्ञेयः । यदि तयोर्लग्नेशसप्तमेशयोः झकटकदृशा = रिपुदृष्ट्या = १। ४। ७। १० दृष्ट्या मिथो दृष्टिः स्यात्तदा दम्पत्योः झकटकः = कलहः स्यात् । तत्र यदि शशिकंबूलयोगे सति, तदा सा = स्त्री शुभा = सच्छीला भवति ।

यदि लग्नेशः मन्दः = मन्दगतिग्रहः वा शनिः सन् केन्द्रे १। ४। ७। १० स्थाने स्यात्तदा प्रष्टा = प्रच्छक; पुरुषो बली = जयनशीलः स्यात् । यदि च अस्तेश्वरे = सप्तमेशे, मन्दे = मन्दगतिग्रहे, वा शनौ केन्द्रे सति तदा प्रतिवादिनः बलमस्ति । यदि उभयोर्लग्नेशसप्तमेशयोः एकस्थितयोः तदा झकटकं कलहं प्रति तयोः = वादिप्रतिवादिनोः, प्रीतिः = मेलनं स्यात् । सूर्ये विबले सति नरस्य = पुरुषस्य, शुभं न भवति । शुक्रे विबले स्त्रियाः शुभं न भवति । द्वयोः = सूर्यशुक्रयोः, विबलयोः सतोर्द्वितयौ = स्त्रीपुरुषौ न शुभौ, अर्थाद्दम्पत्योरपि शुभं न वाच्यम् ॥ ६८ — ७० ॥

ज्योति — स्त्री प्रीति सम्बन्धी प्रश्न में यदि सप्तम भावेश और लग्नेश का इत्थशाल हो तो स्त्री से प्रीति होगी और यदि उनकी शत्रुदृष्टि हो तो कलह हो और चन्द्रमा कंबूलयोग कर रहा हो तो स्त्री सरल स्वभाव वाली होती है । यदि शनि लग्नेश होकर केन्द्र में बैठा हो तो प्रश्नकर्ता बली होता है और यदि सप्तमेश शनि केन्द्र में हो प्रतिवादी को बली जानना चाहिए । यदि लग्न का स्वामी और सप्तमेश ये दोनों एक ही राशि में स्थित हों तो पहले कलह होता है किन्तु बाद में प्रीति हो जाती है । यदि सूर्य बलहीन हो तो पुरुष को शुभ नहीं है । यदि शुक्र बलहीन हो तो स्त्री को शुभ नहीं होगा, ऐसा समझना चाहिए । यदि दोनों बलरहित हों तो दोनों का शुभ नहीं होगा, ऐसा समझना चाहिए ॥ ६८ — ७० ॥

अथ रुष्टाऽऽगमनप्रश्नविचारः —

मम गृहिणी रुष्टा पुनरेष्यति नो वाऽथ भूम्यधःस्थरवौ ।
भूपरिगते च शुक्रे नैति पुनर्वक्रितेऽभ्येति ॥ ७१ ॥

सूर्यान्निर्गतशुक्रे वक्रेऽपि समेति चान्यथा रुष्टा ।
क्षीणेन्दौ बहुदिवसैः पूर्णविधौ च द्रुतमुपैति ॥ ७२ ॥

कुन्तला — रुष्टा = विरुद्धा, प्रतिकूला, क्रोधिता वा मम गृहिणी = भार्या पुनर्मम गृहे एष्यति न वा ? इति प्रश्ने भूम्यधःस्थरवौ = भूमेश्चतुर्थस्थानादधस्तृतीयद्वितीयप्रथम स्थानगते रवौ, शुक्रे च भूपरि = चतुर्थादुपरि = पञ्चमषष्ठसप्तमे सति रुष्टा स्त्री न एति = न आयाति । अर्थादत्र रविः पुरुषग्रहस्तस्य हर्षस्थानं चतुर्थादुपरि, लग्नतश्चतुर्थपर्यन्तं, तथा शुक्रः स्त्रीग्रहस्तस्य हर्षस्थानं = लग्नाच्चतुर्थपर्यन्तं, न चतुर्थादुपरि, अतः स्त्रीपुंग्रहयोः = रविशुक्रयोः हर्षस्थानपतनाभावान्नागमनं = न मिलनं तस्या इत्याशयः । अथ भूपरिगतेऽपि शुक्रे वक्रे सति

पुनः सा रुष्टा अभ्येति । सूर्यान्निर्गतशुक्रे = अनस्तङ्गते, शुक्रे वा वक्रिणि च सति सा समेति = समायाति । अन्यथा = शुक्रेऽस्तङ्गते मार्गे च सति सा रुष्टेव तिष्ठति नायातीति । तत्र क्षीणेन्दौ सति बहुदिवसैरायाति । पूर्णविधौ = पूर्णचन्द्रे च द्रुतं = सत्त्वरमुपैति = आयाति ।। ७१ – ७२।।

ज्योति — यदि कोई प्रश्नकर्ता प्रश्न करे कि 'हमारी रूठी हुई स्त्री फिर घर आवेगी या नहीं ?' इस समय चतुर्थ स्थानपर्यन्त सूर्य हो और चतुर्थ भाव के ऊपर शुक्र हो तो स्त्री नहीं आवेगी, ऐसा कहना चाहिए । यदि शुक्र वक्री हो तो आवेगी ऐसा कहना चाहिए । यदि सूर्य के सन्निध्य से शुक्र का उदय हुआ हो और शुक्र वक्री हो तो रुष्टा स्त्री अपने आप ही लौट आवेगी । यदि इससे विपरीत हो तो नहीं आवेगी । यदि क्षीण चन्द्रमा हो तो बहुत दिनों में और पूर्ण चन्द्रमा हो तो रुष्ट स्त्री शीघ्र लौट आती है ।। ७१ – ७२।।

अथ कन्याचरित्रज्ञानाय प्रश्नः —

एषा कुमारिका किल निर्दोषा किन्न वेति पृच्छायाम् ।
लग्ने स्थिरे स्थिरर्क्षे लग्नपशशिनोश्च निर्दोषा ।। ७३ ।।

चरराशिगतैरेतैरियं कुमार्यपि च जातदोषा स्यात् ।
द्विशरीरस्थे चन्द्रे चरलग्ने स्वल्पदोषा स्यात् ।। ७४ ।।

शशिभौमावेकर्क्षे स्थिरवर्जे तत्परेण गुप्तमियम् ।
रमिता शनिचन्द्रमसोर्लग्नगयोः प्रकटमुपभुक्ता ।। ७५ ।।

यदि भौमशनी केन्द्रे विधुदृष्टो वृश्चिकेऽथ शुक्रः स्यात् ।
तद्द्रेष्काणेऽथ तदा निर्भ्रान्तं जातदोषैषा ।। ७६ ।।

कुन्तला — एषा = मनोगता, कुमारिका = कन्या, निर्दोषा = शुद्धचरित्रा, अस्ति किं न वा ? इति पृच्छायां = प्रश्ने, लग्ने स्थिरे = वृषसिंह वृश्चिककुम्मान्यतमराशौ स्थिते, लग्नपशशिनोः = लग्नेशचन्द्रयोः, स्थिरर्क्षे = स्थिरराशौ, स्थितयोः सतोः, कन्या निर्दोषा = परसंसर्गरहितैव वाच्या ।

अथ एतैः = लग्न–लग्नेश–चन्द्रैः, चरद्दाशिगतैः सद्भिः, इयं कुमारी = अविवाहिताऽपि जातदोषा = परपुरुषसंसर्गिणी स्यात् । अथ चन्द्रे द्विशरीरे = द्विःस्वभाव– राशौ, चरलग्ने च सति स्वल्पदोषा = कदाचिदन्यसङ्गवती वाच्या । तत्र शशिमौमौ = चन्द्रकुजौ, स्थिरवर्जे = चरद्विःस्वभावराशौ यदि भवतस्तदा परेण = अन्येन, इयं कुमारी गुप्तम् = अप्रकाशं, प्रच्छन्नं, रमिता वाच्या । अथ शनिचन्द्रमसोः = शनि चन्द्रयोः, लग्नगतयोः सतोः, सा प्रकटम् = व्यक्तमेव, परेण उपभुक्ता = विहितसुरता वाच्या अर्थात् तस्या व्यभिचारः सर्वैर्ज्ञायते एव । यदि भौमशनी केन्द्रे भवेतां तथा विधुदृष्टः = चन्द्रदृष्टः, शुक्रः तद्द्रेष्काणे = चन्द्रदेष्काणे स्यात्, तदा निर्भ्रान्तं = निःसन्देहम्, एषा = कुमारिका जातदोषा भवतीति ।। ७३ – ७६।।

ज्योति — 'यह कन्या निर्दोष है या सदोष ?' इस प्रश्न में लग्न स्थिर हो और स्थिर राशि में लग्न का स्वामी व चन्द्रमा हो तो यह कन्या निर्दोष है, ऐसा कहना चाहिए । यदि प्रश्नलग्न चरसंज्ञक हो और लग्नेश व चन्द्रमा चर राशि में हों तो उस कन्या को दोषी समझना चाहिए और यदि द्विस्वभाव राशि में चन्द्रमा हो और लग्न चर हो तो कन्या को थोड़े दोषवाली समझना चाहिए । यदि चन्द्रमा तथा मङ्गल एक ही राशि में हो परन्तु वह राशि चर तथा द्विःस्वभाव हो तो वह किसी से गुप्त रमण कर चुकी है, ऐसा समझना चाहिए । यदि शनि और चन्द्रमा लग्न में स्थित हों तो प्रगट भोग किया समझना चाहिए । मङ्गल तथा शनि यदि केन्द्र में हों और शुक्र वृश्चिक में हो और उनको चन्द्रमा देखता हो अथवा वृश्चिक के द्रेष्काण में शुक्र हो तो उसको दोषी समझना चाहिए ।। ७३ – ७६ ।।

अथ स्वपरप्रसूतिपरीक्षाप्रश्नः —

एषा किल प्रसूता सिते घटे ज्ञे हरौ च नो सूता ।
अनयोरलिवृषगतयोः सूता नारी परिज्ञेया ।। ७७ ।।

कुन्तला — एषा स्त्री किल प्रसूता = उत्पन्नसन्ताना, अस्ति न वा ? इति प्रश्ने, सिते = शुक्रे, घटे = कुम्भे, ज्ञे = बुधे, हरौ = सिंहे च सति नो सूता वाच्या । अत्र बुधशुक्रयोरराश्यन्तरता सर्वथा असम्भवा । अतः घटे = इत्यत्र 'घट' इति विज्ञेयम् । एवमनयोः शुक्रबुधयोः, अलिवृषगतयोः सतोः नारी प्रसूता विज्ञेया । अत्रापि तयोः सप्तराश्यन्तरस्थितत्वमसम्भवम् तेन तौ वृषे वा वृश्चिकराशौ भवेतां तदा योगोऽयं घटते । अन्यथा असम्भवः ।। ७७ ।।

ज्योति — अमुक स्त्री प्रसूता हुई है अथवा नहीं ? इस प्रश्न में यदि शुक्र कुम्भ या बुध सिंह का हो तो प्रसूता नही हुई है, ऐसा समझना चाहिए । यदि शुक्र वृश्चिक तथा बुध वृष का हो तो प्रसूता समझना चाहिए ।। ७७ ।।

भौमबुधशुक्रचन्द्रा द्विशरीरे चापवर्जिते चेत्स्युः ।
अग्रेऽस्ति तत्प्रसूतिश्चापे नाग्रे न पृष्ठतः सूता ।। ७८ ।।

क्रूरश्चेच्चररराशौ परतः सूता स्थिरे तु निजपत्युः ।
मिश्रे तु मिश्रमूह्यं जातकसन्देहपृच्छायाम् ।। ७९ ।।

कुन्तला — चेत् = यदि भौमबुधशुक्रचन्द्राः, चापवर्तिते = धनूरहिते द्विशरीरे = द्विःस्वभावे स्युः, तदा अग्रे प्रसूतिरस्ति । यदि चापे ते स्युस्तदा अग्रे न प्रसूतिः न पृष्ठतः प्रसूतिः वाच्या । वा क्रूरः = पापग्रहः, चरराशौ भवेत्, तदा परतः = स्वामिभिन्नजनात् सूता । यदि क्रूरः स्थिरे भवेत् तदा निजपत्युः प्रसूता वाच्या । मिश्रे = पापशुभे, मिश्रेचरस्थिरद्विःस्वभावे सति, मिश्रम् = उभयम् । जातकसन्देहपृच्छायां = अयं जातः परजातो वा पितृजात इति सन्देह प्रश्ने वाच्यम् ।। ७८ – ७९ ।।

ज्योति — यदि मङ्गल, बुध, शुक्र तथा चन्द्रमा धनराशि के अतिरिक्त द्विस्वभाव राशि में विद्यमान हों तो यह स्त्री प्रथम ही प्रसूता हो चुकी है, ऐसा जानना चाहिए । यदि धनराशि में वे ग्रह विद्यमान हों तो न पहले प्रसूता हुई है और न आगे होगी ऐसा समझना चाहिए । यदि चर राशि में क्रूरग्रह हों तो दूसरे से और स्थिर राशि में हों तो अपने पति से द्विस्वभाव राशि में हों तो वर्णसङ्कर बालक जानना चाहिए ॥ ७८ – ७९॥

अथ गर्भसन्देहपृच्छाकथनम् —

गुर्विण्येषा पत्युः परपुरुषाद्वेति लग्नसुतपत्योः ।
शुभयुतिदृग्भ्यां स्वपतेः शनिभौमदृशाऽन्यतो गुर्वी ॥ ८० ॥

कुन्तला — एषा स्त्री पत्युः सङ्गेन गुर्विणी, वा परपुरुषाद्गुर्विणी अस्तीति प्रश्ने लग्नसुतपत्योः = लग्नेशपञ्चमेशयोः, शुभयुतिदृग्भ्यां = शुभग्रहयोगदृष्टिभ्यां, स्वपतेः = निजस्वामिनो गर्भो बोध्यः । लग्नेशपञ्चमेशयोः शनिभौमदृशा सता अन्यतः = परपुरुषात्, गुर्विणी वाच्येति ॥ ८०॥

ज्योति — 'अमुक स्त्री अपने पति से गर्भिणी है अथवा दूसरे से ! इस प्रश्न में यदि लग्नेश और पंचमेश ये दोनों शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हों तो वह स्त्री अपने पति से और यदि शनि तथा मङ्गल से दृष्ट हों तो दूसरे से गर्भिणी हुई है ऐसा जानना चाहिए ॥ ८०॥

अथ पातिव्रत्यपरीक्षा —

कुलटा सतीयमथवा लग्नपतिश्चन्द्रमाश्च भौमेन ।
एकांशे मुथशिलकृत्तदैव भवने भजत्यन्यम् ॥ ८१ ॥

यदि निजगृहगो भौमस्तदाऽन्यदेशं प्रयाति जारकृते ।
रविणेति मुथशिले सत्युपभुक्ता सा तु राजपुरुषेण ॥ ८२ ॥

सौम्येन लेखकर्वाणङ्गनिजमे शुक्रेण योषयंव स्त्री ।
एतैर्योगैरसती विपरीते सुचरितेति विज्ञेयम् ॥ ८३ ॥

लग्नपतिनाऽथ शशिना मूसरिफे भूसुते भवेज्जारः ।
युक्तः पुनर्गुरुदृशा पुत्रभयाद्रविदृशा च राजभयात् ॥ ८४ ॥

सितदृष्ट्या परनारी भयात्सितज्ञैकराशिगतदृष्ट्या ।
जारस्य स्थविरत्वाल्लज्जितात्पतति जारं सा ॥ ८५ ॥

कुन्तला — इयं स्त्री कुलटा = व्यभिचारिणी, अथ वा सती = पतिव्रता अस्ति ?, इति प्रश्ने लग्नपति: = तत्काललग्नेश:, चन्द्रमा:, च भौमेन = कुजेन, एकांशे कृतमुथशिल: = कृतेत्थशाल:, तदैव भवने = स्वगृहे, अन्यं = जारपुरुषं, भजति । अर्थाद्व्यभिचारिणी वाच्येति ।

यदि भौम: = कुज:, निजगृहग: = मेषवृश्चिकयोरन्यतरराशिगत: तदा सा स्त्री जारकृते = परपुरुषसङ्गाय, अन्यदेशम् = स्वगृहाद्बहि: क्वापि सङ्केतितगृहे, प्रयाति = गच्छति । यदि निजगृहगस्य भौमस्य, रविणा = सूर्येण, मुथशिले सति, तदा सा स्त्री राजपुरुषेण उपभुक्ता = रमिता वाच्या । यदि तादृशभौमस्य सौम्येन मुथशिले तदा सङ्गकर्त्ता लेखकवणिग् जन: स्यात् । यदि निजभे = स्वगृहगे भौमे शुक्रेण कृतमुथशिले तदा स्त्री स्त्रियैव रमते । काष्टादिकृत्रिमलिङ्गं स्वकट्यां बद्ध्वा रमते । यथा बृहज्जातके स्त्रीजातकाध्याये, 'अन्योन्यांशगयो: सितावनिजयो:' इत्यादिश्लोके योगेऽस्ति ।

एतै: = उक्तै:, योगै:, असती = असच्चरित्रा स्त्री वाच्या । अस्मात्, विपरीते सुचरिता = पवित्रचरित्रा, इति विज्ञेयम् । अथ पूर्वोक्तयोगेषु भूसुते = कुजे लग्नपतिना = लग्नेशेन, वा शशिना मूसरिफयोगे सति, जार: = कृतमैथुन: परपुरुष:, युक्त: = सौन्दर्य—धनशीलादियुक्तो वाच्य: । यदि गुरुदृशा दृष्टे भौमे तदा पुत्रभयाद्व्यभिचारिणी, रविदृशा दृष्टे भूमिजे राजभयात् परपुरुषसङ्गिनी वाच्या, सितदृष्ट्या भौमे दृष्टे तदा परनारीभयात् व्यभिचारनिरता स्यात् । सितज्ञैकराशिगतदृष्ट्या = शुक्रबुधयोरेकर्क्षभवदृष्ट्या दृष्टे सति जारस्य = पतिभिन्नप्रियपुरुषस्य स्थविरत्वात् = वृद्धत्वात्, लज्जिता सा जारं अनुतप्ता पतति = गच्छति ॥ ८१ — ८५॥

ज्योति — 'यह स्त्री पतिव्रता है या कुलटा ?' इस प्रश्न में यदि लग्नेश तथा चन्द्रमा मङ्गल के साथ एक ही अंश पर इत्थशालयोग कर रहा हो तो उसे उसी घर में किसी से फँसी समझना चाहिए । मङ्गल यदि अपनी राशि में बैठा हो तो वह किसी अन्य पुरुष के साथ भाग जायेगी, ऐसा समझना चाहिए । यदि मङ्गल का सूर्य के साथ इत्थशालयोग हो तो किसी राजपुरुष के साथ सम्बन्ध होगा, ऐसा समझना चाहिए । यदि मंङ्गल का बुध के साथ मुथशिल हो तो किसी लेखक या वैश्य से फँसी, ऐसा समझना चाहिए । यदि मङ्गल का शुक्र के साथ इत्थशालयोग हो तो किसी स्त्री ने उससे सम्भोग किया है ऐसा कहना चाहिए । प्रश्न के समय इन योगों के होने से व्याभिचारिणी और इन योगों के न होने से पतिव्रता कहना चाहिए । यदि लग्नेश चन्द्रमा के साथ मङ्गल का ईसराफ योग पड़े तो स्त्री को यार से फँसी और जो बृहस्पति की दृष्टि हो तो पुत्र के भय से तथा सूर्य की दृष्टि हो तो राजभय से प्रेमी का त्याग करेगी, ऐसा समझना चाहिए । यदि मंङ्गल पर शुक्र की दृष्टि हो तो वह स्त्री प्रेमी की स्त्री के भय से प्रेमी को त्याग देगी, ऐसा समझना चाहिए । यदि शुक्र तथा बुध एक राशि में बैठे हों और मंङ्गल को देख रहें हो तो प्रेमी की वृद्धावस्था होने से लज्जा मानकर वह प्रेमी को त्याग देगी, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८१ — ८५॥

अथाष्टमस्थानपृच्छायां तावन्नृपसङ्ग्रामप्रश्नकथनम् —

नृपसंग्रामप्रश्ने विलग्नलग्नेशसंस्थितात्खेटात् ।
शशिमूसरिफात्प्रष्टाऽस्तास्तपसंस्थेन्दुमुथशिलाच्छत्रुः ॥ ८६ ॥

कुन्तला — नृपसंग्रामप्रश्ने = राज्ञोर्युद्धप्रश्ने, विलग्नलग्नेशसंस्थितात् खेटात् = लग्नस्थितग्रहात्, वा लग्नेशाक्रान्तराशिस्थितादन्यग्रहात् शशिमूसरिफात् = चन्द्रकृतमूसरिफ–योगात् प्रष्टा = प्रच्छकराजा जयशीलः, वा लग्नलग्नेशस्थितग्रहात् अस्तास्तपसंस्थेन्दुमथ–शिलात् = सप्तमसप्तमेशाक्रान्तराशिस्थचन्द्रकृतेत्थशालात्, शत्रुः = प्रच्छकनृपप्रतिवादी राजा जययुक्तः स्यात् ॥ ८६॥

ज्योति — संग्रामसम्बन्धी प्रश्न में लग्न और लग्नेश प्राप्त ग्रह से यदि चन्द्रमा का ईसराफ योग हो तो प्रश्नकर्ता की जय होगी, ऐसा समझना चाहिए । यदि सप्तमभाव तथा सप्तमेश का चन्द्रमा के साथ इत्थशाल हो तो शत्रु की जय होगी, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८६ ॥

अथवा शनिकुजजीवाः शीघ्रेभ्यो बलयुता उपरिचराः ।
बुधसितचन्द्रास्तेभ्यश्च दुर्बलाश्चराश्च संचिन्त्याः ॥ ८७ ॥

कुन्तला — अथवा शनिकुजजीवा ग्रहाः शीघ्रेभ्यः = शीघ्रगतिभ्यः बुधशुक्र–चन्द्रेभ्यः, बलयुताः = अधिकबलशालिनः, तथा च उपरिचराः = अग्रेचराः, अथ बुधसितचन्द्राः, तेभ्यः = शनिकुजजीवेभ्यः दुर्बलाः, अधश्चराः = राश्यादिना न्यूनास्तदा प्रष्टुर्जय इति शेषः ॥ ८७ ॥

ज्योति — अथवा शनि, मंगल, गुरु, सूर्य के (ऊपर रहने वाले मन्दगति) ये यदि शीघ्र (सूर्याधःस्थ बुध, शुक्र, चन्द्रमा) से अधिक अंश में हों तो बली और अल्प अंश में हों तो दुर्बल समझे जाते हैं । इस प्रकार शनि, मङ्गल, गुरू के बली होने पर प्रष्टा की विजय, दुर्बल होने से पराजय समझना चाहिए । क्योंकि मन्दगति (शनि, मङ्गल, गुरु) ये प्रष्टा के ग्रह समझे जाते हैं तथा शीघ्र (बुध, शुक्र, चन्द्रमा) ये शत्रु के ग्रह कहे गये हैं, इसको ध्यान में रखना आवश्यक है ॥ ८७ ॥

अथ युद्धचतो राज्ञोर्जयादियोगकथनम् —

लग्नपतावस्तपतेः षट्त्रिदशायमुथशिले द्वयोः स्नेहः ।
वर्गद्वयमध्येऽधः पतितः सोऽन्येन वध्यः स्यात् ॥ ८८ ॥

वर्गद्वयाधिपानां मूसरिफेऽस्तङ्गतेन रणदैर्ध्यम् ।
लग्नस्वामिनि मन्दे कम्बूले उपरिगे जयः प्रष्टुः ॥ ८९॥

एवं गुणे तु तस्मिन्विप्रविनष्टेऽस्तपतिनीचस्थे ।
केन्द्रेऽस्ते वाऽस्तपतौ प्रष्टुर्हानिः प्रवक्तव्या ॥ ९० ॥

लग्नादधः शुभे सति उपरि च मन्दे शुभः सहायः स्यात् ।
लग्नपतौ रन्ध्रस्थे रन्ध्रपतिमुथशिले मृतिः प्रष्टुः ॥ ९१ ॥

सप्तेशे धनसंस्थे धनेशकृतमुथशिले रिपोर्नाशः ।
लग्नेशदशमपत्योर्मुथशिलतः पृच्छकस्य जयवीर्ये ॥ ९२ ॥

तुर्यास्तपयोरेवं शत्रोर्योगे जयो ज्ञेयः ।
उभयवर्गेऽपि केन्द्रे तत्पतिकृतमुथशिले बलं ज्ञेयम् ॥ ९३ ॥

चरराशौ सबलत्वं जित्वा प्रान्ते विनाशस्तु ।
लग्नपतावन्त्यस्थे प्रष्टा नश्यति परोऽस्तपे षष्ठे ॥ ९४ ॥

खपतौ लग्ने प्रष्टुस्तुर्येशेऽस्ते रिपोः सहायबलम् ।
यन्मुथशिलौ रवीन्दू तस्य बलं मुसरिफे हानिः ॥ ९५ ॥

कुन्तला — लग्नपतौ = लग्नेशे, अस्तपतेः = सप्तमेशात् षट्त्रिदशायमुथशिले = ६।३।१०।११ एतदन्यतमस्थाने सप्तमेशेन मुथशिले सति द्वयोः = युद्धयतो राज्ञोः स्नेहः = सन्धिः स्यात् । यदि लग्नपतौ तद्वर्गद्वयस्य मध्यगतः स्यात्तदा स = प्रष्टा नृपः युद्धे अधः पतितः = भूमौ निपतितः सन् अन्येन = रिपुणा नृपेण वध्यः स्यात् । लग्नस्वामिनि मन्दे = मन्दगतिग्रहे वा शनौ कम्बूले, उपरिगे = पुरःस्थिते, तदा प्रष्टुर्जयः स्यात् । एवं गुणे तस्मिन् लग्नेशे विप्रविनष्टे = अस्तङ्गते, वा अस्तपतिनीचस्थे = सप्तमेशग्रहनीचराशिगते, वा अस्तपतौ = सप्तमेशे, केन्द्रे = १।४।७।१० स्थानस्थे, वा अस्ते तथा प्रष्टुः राज्ञः हानिः = क्षतिः प्रवक्तव्या = वाच्या । लग्नात् = लग्नराशितः, अधः = पूर्वराश्यादौ शुभे = शुभग्रहे सति, मन्दे = मन्दगतिग्रहे च उपरि = लग्नात्पुरतः स्थिते सति प्रष्टुः शुभः = सत्पुरुषः, सहायः स्यात् । लग्नपतौ = लग्नेशे, रन्ध्रस्थे = अष्टमस्थे, रन्ध्रपतिमुथशिले = अष्टमेशेत्थशाले सति प्रष्टुः मृतिः = प्राणघातः स्यात् । वा सप्तेशे = सप्तमेशे, धनसंस्थे = द्वितीयस्थानगते, धनेश—कृतमुथशिले = द्वितीयेशग्रहेत्थशाले सति रिपोः = शत्रोः, प्रतिपक्षिणः, नाशः = क्षयः स्यात् । वा लग्नेशदशमपत्योः = लग्नेशकर्मेशयोः मुथशिलतः = इत्थशालतः सकाशात्, पृच्छकस्य जयवीर्ये वाच्ये । एवं तुर्यास्तपयोः = चतुर्थेशसप्तमेशयोर्योगे शत्रोः जयः ज्ञेयः । अत्र उभयवर्गे = वादिप्रतिवादिनोरपि वर्गे केन्द्रे, तत्पतिकृतमुथशिले स्वस्वामिग्रहेत्थशाले, तयोर्बलं चिन्त्यं, यस्य वर्गेशस्य बलाधित्यं, तस्य जय इत्यूहःकार्य ।

चरराशौ यदि पूर्वोक्तयोगस्य सबलत्वं स्यात् तदा पूर्वं जित्वाऽपि प्रान्ते विनाशः = पराजयः, स्यात्, वा लग्नपतौ = लग्नेशे, अन्त्यस्थे = द्वादशस्थानस्थे सति प्रष्टा जनः

नश्यति, अस्तपे = सप्तमेशे, षष्ठे सति परः = शत्रुः, नश्यति, खपतौ = दशमेशे लग्ने, तदा प्रष्टुर्जयः स्यात् । वा तुर्येशे = चतुर्थेशे अस्ते = सप्तमे सति, रिपोः = शत्रोः सहायबलं भवेत् । वा रवीन्दू यन्मुथशिलौ = येन ग्रहेण कृतमुथशिलौ, तस्य बलं ज्ञेयम्, मुसरिफे योगे तु हानिर्वाच्या ॥ ८८ – ९५॥

ज्योति — ३। ६। १०। ११ (उपचय) स्थान में लग्नेश का सप्तमेश से इत्थशाल हो तो परस्पर स्नेह (सन्धि) एवं यदि प्रष्टा ग्रह और शत्रु ग्रह दोनों में जो अल्पांश हो वह दूसरे से वध्य (पराजित) होता है । यदि दोनों ग्रहों का अस्तग्रह के साथ ईसराफ योग होता हो तो बहुत दिन तक संग्राम होता है । यदि लग्नेश मन्द गति होकर कम्बूल योग करता हो तो प्रश्नकर्ता की विजय होती है । उपर्युक्त योग होते हुए भी यदि सप्तमस्थान का स्वामी अस्त हो, मध्य में हो अथवा केन्द्र में हो तो प्रश्नकर्ता की हानि होती है ।

यदि लग्न से नीचे शुभग्रह और लग्न से ऊपर शनि हो तो युद्ध में अच्छे सहायक मिलते हैं । यदि लग्नेश अष्टम स्थान में हो या अष्टमेश से इत्थशाल करता हो तो प्रश्नकर्ता की हानि होती है । यदि सप्तमेश धनभाव में स्थित हो और धनेश के साथ इत्थशालयोग करता हो तो शत्रु का नाश होता है । यदि लग्नेश तथा दशमेश का इत्थशाल हो तो पराक्रम द्वारा प्रश्नकर्ता की विजय होती है । यदि चतुर्थेश और सप्तमेश का इत्थशाल योग हो तो शत्रु की जीत होती है । यदि दोनों वर्गस्वामियों में केन्द्रस्थित केन्द्रेश से इत्थशाल हो तो प्रश्नकर्ता की जय जानना चाहिए । यदि वर्गेश चरराशि में रहता हुआ बलवान् हो तो वह पहले शत्रु को जीत ले किन्तु बाद में स्वयं नष्ट हो जाता है । यदि लग्नपति बारहवें भाव में हो तो प्रश्नकर्ता स्वयं नष्ट हो जाता है और यदि सप्तेश छठें स्थान में हो तो शत्रु का नाश होगा, ऐसा समझना चाहिए । यदि दशमेश लग्न में और चतुर्थेश सप्तम भाव में हो तो पृच्छक को शत्रु की सेना से सहायता मिलती है । यदि यायी के ग्रह को सूर्य तथा चन्द्रमा का इत्थशाल हो तो विजय और यदि मूसरिफ योग हो तो उसकी सेना का नाश होता है ॥ ८८ – ९५॥

अथ नवमस्थानपृच्छायां गमनप्रश्नकथनम् —

मम गमनं भविता किं नवेति लग्नेश्वरे न वा केन्द्रे ।
नवमेशमुथशिले सति नवमेशे वा भवेद्गमनम् ॥ ९६ ॥

लग्नस्थे नवमपतौ लग्नाधिपमुथशिले च सञ्चारात् ।
रहितो याति पुनर्ना नवमदृशा वर्जिते योगे ॥ ९७ ॥

लग्नपतौ केन्द्रस्थे सहजग्रहमुथशिले च विक्रूरे ।
गनं स्यादस्मिन्वा केन्द्रे क्रूरे च नास्ति गतिः ॥ ९८ ॥

अस्ते क्रूरेऽपि च यत्कार्ये निर्याति विघ्नमत एव ।
आकाशस्थे पापे राजकुलाज्ज्येष्ठतो निजाद्वाऽपि ॥ ९९॥

नवमेशे मुथशिलगे लग्नाधीशेन पापरिपुदृष्टे ।
गमनेऽवसानतः स्यात्प्रष्टुः कष्टं क्षयोऽर्थस्य ॥ १००॥

लग्नेशे नवमेशे मुथशिलकृति रन्ध्रसप्तमे कष्टम् ।
उदये यस्मिन्यायाद्विनिःसृतिः स्यात्सुखकरः पन्थाः ॥ १०१॥

कुन्तला — कस्यापि कार्यस्य कृते मम गमनं भविता ? वा कि न भविता ? इति प्रश्ने लग्नेश्वरे = लग्नेशे केन्द्रे = १। ४। ७। १० एतदन्यतमस्थानस्थे, नवमेशमुथशिले = नवमेशेत्थशाले सति, नवमेशे केन्द्रे लग्नेशमुथशिले सति गमनं भवेत् । वा नवमपतौ लग्नस्थे लग्नाधिपमुथशिले = लग्नेशेत्थशाले सति, सञ्चारात् = चलनात्, रहितः याति = गमनं न स्यादित्यर्थः । वा तादृशे योगे नवमदृशा वर्जिते सति ना = पुरुषः पुनः गमनं न याति । लग्नपतौ = लग्नेशे, केन्द्रस्थे, सहजग्रहमुथशिले = सहजभावस्थग्रहेत्थशाले, सति, तथा विक्रूरे = पापरहिते, तदा गमनं स्यात् । वा अस्मिन् एव योगे क्रूरे = पापे, केन्द्रे सति गतिः = गमनं न अस्ति । वा क्रूरे पापे अस्ते = सप्तमस्थे, तदा यत्कार्ये, निर्याति = निर्गच्छति तत्कार्ये अत एव विघ्नं स्यात् । वा पापे आकाशस्थे = दशमस्थे, सति तदा राजकुलात् = राजवंशात् ज्येष्ठतः = ज्येष्ठबन्धुवर्गात् वा निजात् = स्वकीयाज्जनात् विघ्नं स्यात् ।

नवमेशे लग्नाधीशेन मुथशिले, पापरिपुदृ सति तदा गमने = यात्रायां, प्रष्टुः प्रश्नकर्तुः, अवसानतः कष्टं = शरीरक्लेशः, अर्थस्य = धनस्य, क्षयः = नाशः स्यात् । वा नवमेशे लग्नस्थे, मुथशिलकृति = इत्थशालयोगकारके रन्ध्रसप्तमे = अष्टमसप्तमे सति कष्टं वाच्यम् । यस्मिन् उदये यायात् = गच्छेत्, तत्र विनिःसृतिः = विशेषेण निःसरणं तथा पन्थाः = मार्गः, सुखकरः स्यात् ॥ ९६ — १०१॥

ज्योति — 'हमारी यात्रा होगी अथवा नहीं ?' इस प्रश्न में यदि केन्द्रस्थ लग्नेश को नवमेश के साथ इत्थशाल योग होता हो अथवा नवमेश केन्द्र में हो तो यात्रा होगी । यदि नवमेश लग्न में हो और लग्नेश के साथ इत्थशाल करता हो किन्तु लग्नेश और नवमेश की नवम स्थान में दृष्टि न हो तो गमन नहीं होता । यदि लग्नेश केन्द्र में हो और तृतीयेश से इत्थशाल करता हुआ पापी न हो तो गमन होगा और केन्द्र में क्रूर ग्रह बैठे हों तो भी गमन नहीं होगा । यदि सप्तम भाव में पापग्रह हो तो यात्री जिस कार्य से यात्रा करे, उसमें विघ्न होगा यदि दशमभाव में पापग्रह हो तो राजकुल से या अपने बड़े भाई अथवा सगे–सम्बन्धी से विघ्न होता है ।

यदि नवमेश लग्नेश के साथ इत्थशाल करता हो और उस पर पापग्रह की शत्रु दृष्टि हो तो गमन होगा, परन्तु अन्त में कष्ट और नाश होता है । यदि लग्नेश व नवमेश का परस्पर इत्थशाल हो और नवमेश आठवें स्थान में हो तो यात्रा में कष्ट होता है । वे यदि लग्न में हों तो मार्ग सुखकारी हो जाता है ॥ ९६ — १०१॥

लग्नान्मार्गानुभवो व्याम्नः कार्यं स्मराद्गतिस्थानम् ।
भूमेः कार्यं परिणतिरेवं लग्ने शरीरसुखम् ॥ १०२॥

कुन्तला — लग्नात् = लग्नराशिवशात्, मार्गानुभवः = मार्गसुखदुःखानुभ्वः, व्योम्नः = दशमात् स्थानात् कार्य = कर्त्तव्यकृत्यविचारः स्यात् । स्मरात् = सप्तमस्थानात्, गतिस्थानं = गन्तव्यस्थलज्ञानं भवति । भूमेः = चतुर्थस्थानात्, परिणतिः = कर्त्तव्यकार्यपरिणामः, स्यात् । एवं लग्ने शरीरसुखं चिन्त्यम् ॥ १०२॥

ज्योति — लग्न के समोदय–विषमोदय से मार्ग का अनुभव करना चाहिए अर्थात् लग्न का जैसा सम या विषम उदय हो वैसा ही सरल या कष्टदायक मार्ग कहना चाहिए । इसी तरह दशम भाव से कार्य, सप्तम भाव से गमनस्थान, चौथे भाव से कार्य का परिणाम एवं लग्न से सुख–दुःख विचार करना चाहिए ॥ १०२॥

अथ कार्यसिद्ध्यसिद्धियोगकथनम् —

दशमे शुभे च सिद्धिः कार्यस्यास्ते प्रयाति यत्स्थाने ।
तत्र शुभं च चतुर्थे परिणामः सुन्दरः कार्ये ॥ १०३॥

कुन्तला — दशमे शुभे सति कार्यस्य सिद्धिः स्यात्, अस्ते = सप्तमे शुभे सति यत्स्थाने प्रयाति तत्र = तत्स्थाने शुभं वाच्यम् । चतुर्थे शुभग्रहे सति कार्ये सुन्दरः = शोभनः परिणामः भवति ॥ १०३॥

ज्योति — यदि दशमस्थान में शुभग्रह हों तो कार्य की सिद्धि होगी । यदि सप्तम स्थान में शुभग्रह हों तो सुखपूर्वक गमन होगा । यदि चौथे स्थान में शुभग्रह हों तो कार्य का परिणाम अच्छा होगा ॥ १०३॥

अथ कार्ये कुतः कुतो भयसम्भवस्तदाह —

लग्नेशं शशिनं वा यः क्रूरस्तुदति तत्र मनुजर्क्षे ।
मनुजत्रिराशिके वा तदा भयं द्विपदतो गन्तुः ॥ १०४॥

जलराशौ वारिभयं चतुष्पदर्क्षे तथाऽश्वादेः ।
घटचापे द्रुमकंटकभयं हरौ व्याघ्रसिंहादेः ॥ १०५॥

कुन्तला — यः क्रूरः = पापग्रहः, यत्र राशौ लग्नेशं = लग्नस्वामिनं वा शशिनं = चन्द्रं, तुदति = पीडयति, तत्र राशौ मनुजर्क्षे = द्विपदराशौ = मिथुनकन्यातुलेषु, वा मनुजत्रिराशिके = द्विपदराशित्रिराशिङ्के च सति गन्तुः = प्रस्थातुः द्विपदतः = मानवात्, भयं वाच्यम् । अथ तत्र जलराशौ = जलचरराशौ सति वारिभय = जलचरनक्रमकरजीवभयं, वा

जलनिमज्जनभयं वाच्यम् । अथ तत्र चतुष्पदर्क्षे = मेषवृषराशौ सति अश्वादेः = घोटकादेः पशोर्भयम् । घटचापे = कुम्भधनुषोरन्यतरे द्रुमकण्टकभयं = वृक्षपतनकण्टकवेधनपीडनंवाच्यम् । हरौ = सिंहे, व्याघ्रसिंहादेः भयं वाच्यम् ॥ १०४ – १०५॥

ज्योति — यदि लग्नेश और चन्द्रमा को पापग्रह पीड़ित करें और वह नरराशि या नरराशि के द्रेष्काण में हो तो गमनकर्ता को द्विपद (दो पैरवाले अर्थात् मनुष्य) से भय होगा, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश जलराशि में हो तो जलजन्तुओं से भय होगा । यदि लग्नस्वामी चतुष्पद राशि में हो तो घोड़ा आदि चौपाये पशुओं से भय होगा । यदि लग्नेश कुम्भ व धन में हो तो वृक्ष–कंटकादि से तथा सिंह का हो तो व्याघ्रसिंहादि वनपशुओं से भय होता है ॥ १०४ – १०५॥

अथ नगरप्रवेशे लाभालाभप्रश्नः —

नगरप्रवेशतोऽस्मात् फलमस्ति न वा प्रवेशलग्नमिह ।
तस्मिन्धनपे वक्रे नो हरणं कार्यसिद्धिर्वा ॥ १०६॥
अतिचरिते बहुदिवसं हरणं नो कार्यसिद्धिरीषदपि ।
नवमतृतीयगतेऽस्मिन्कार्यं कृत्वाऽऽशु निजपुरं याति ॥ १०७॥
लग्ने कर्मण्याये धनपयुते शोभनं ज्ञेयम् ।
सक्रूरसप्तमस्थे पथि विघ्नाञ्झकटकञ्चतुर्थस्थे ॥ १०८॥

कुन्तला — अस्मात् नगरप्रवेशतः फलं = लाभादिकं फलं अस्ति, न वा ? इति प्रश्ने इह प्रवेशलग्नं साध्यं तत् प्रवेशपुरं ज्ञेयम् । तस्मिन् लग्ने धनपे = धनेशे सति, वा वक्रे सति हरणं = अवस्थानं, वा कार्यसिद्धिर्न स्यात् । लग्नस्थे धनपे अतिचरिते = अतीचारे, सति बहुदिवसं = चिरकालं, हरणं = स्थितिः, नो भवति, कार्यसिद्धिरपि ईषत् = स्वल्पा भवति । यदि अस्मिन् = धनेशे नवमतृतीयगते तदा कार्य = स्वार्थसिद्धि कृत्वा आशु = शीघ्रं निजपुरं = स्वनिवासस्थानं, याति । वा धनपयुते = धनेशयुते लग्ने सति, वा धनपयुते कर्मणि = दशमे सति, वा धनपयुते आये = एकादशे सीत कार्य शोभनं ज्ञेयम् । वा धनपे सक्रूरसप्तमस्थे = पापाक्रान्तसप्तमराशिगते सति विघ्नान् = मार्गे बाधाबहुलान् वदेत् । वा धनपे सक्रूरचतुर्थस्थे तदा मार्गे झकटकं कलहः वाच्यम् ॥ १०६ – १०८॥

ज्योति — इस नगर में जाने से मुझे लाभ होगा या नुकसान होगा? इस प्रश्न में द्वितीयेश लग्न में हो, वक्री हो, तो वहाँ ठहरना नहीं होता है । या लग्नस्थ धनेश अतिचारी हो, तो अधिक दिनों तक वहाँ नही ठहरना चाहिए, कार्यसिद्धि नही होती है । यदि धनेश नव में तीसरे स्थान में हो, तो कार्य सिद्ध करके अपने घर जाय । या धनेश लग्न में दशम में या एकादश में हो, तो कार्य सिद्ध अच्छी होगी । यदि धनेश पापग्रह से युक्त सप्तमराशि में हो तो रास्ते में विघ्न बाधा होती है । यदि चौथे स्थान में पापयुक्त धनेश हो, तो रास्ते में किसी से झगड़ा होता है ॥ १०६ – १०८ ॥

इति नवमस्थानपृच्छाविचारः —

अथ दशमस्थानपृच्छायां तावद्राज्याप्तिप्रश्नकथनम् —

राज्याप्तिप्रश्नलग्ने लग्नेशे शशिनि वा नभःपतिना ।
कृतमुथशिलेऽम्बरदृशा राज्यं रूपक्रमाद्भवति ॥१०९॥

अन्योन्यभवनगमनात्क्रूराभावेऽथ चिन्तितप्राप्तिः ।
लग्नस्थे वाऽन्येन च सौम्येनाम्बरस्य मुथशिलेऽप्येवम् ।
पापार्दिते तु मन्दे निकटीभूयोत्तरत्यधो राज्यम् ॥११०॥

भूमिस्थे क्रूरदृशा त्वपवादः शुभदृशा कीर्तिः ।
मन्दग्रहे बलवति क्रूरवियुक्ते यदा शशी विबलः ॥१११॥

मन्दे बलेन भ्रमणात् राज्यप्राप्तिर्भवेत्प्रष्टुः ।
लग्नाधिपतौ स्वगृहे लाभे राज्यस्य तुङ्गगे भौमे ॥११२॥

लग्नाम्बराधिपौ यदि कंबूलौ केन्द्रगेन्दुमुथशिलतः ।
उत्तमरात्यावाप्तिः स्वर्क्षस्थे चेन्दुतो विपुला ॥११३॥

कुन्तला — राज्याप्तिप्रश्नलग्ने, लग्नेशे = लग्नपतौ वा शशिनि = चन्द्रे नभःपतिना = दशमेशेन, कृतमुथशिले सति अम्बरदृशा दृष्टे तदा रूपक्रमात् = स्ववंशानुसारेण राज्यं भवतीति ।

तयोर्लग्नेशदशमेशयोः अन्योन्यभवनगमनात् = परस्परराशिस्थितत्यात्, यथा लग्नेशः कर्मणि, कर्मेशो लग्ने सति तथा च तयोः स्थाने क्रूराभावे = पापयुतिदृष्टिसम्बन्ध–वर्जिते, तदा तु अचिन्तितप्राप्तिः = अप्रयासेन राज्यलाभः, स्यात् । वा लग्नस्थे अम्बरस्य = दशमस्थ नाथे अन्येन सौम्येन = शुभेन मुथशिले सत्यप्येवं फलं वाच्यम् । उक्तयोगे मन्दे = मन्दगतिग्रहे, पापार्दिते = पापाक्रान्ते सति राज्यं निकटीभूय, अधुना लब्धं लब्धमिति सम्भवं दृष्ट्वाऽपि परिणामेऽध उत्तरति अथाद्राज्यस्य अप्राप्तिः भवेत् ।

तत्र भूमिस्थे = चतुर्थस्थानस्थिते बलवति मन्दग्रहे, क्रूरदृशा = क्षुतदृष्ट्या = १।४। ७।१० दृशा मुथशिले सति, अपवादः = लोके अपकीर्त्तिः सम्भवेत् । तादृशे मन्दग्रहे शुभदृशा मुथशिले सति कीर्त्तिः स्यात् । वा मन्दग्रहे बलवति सति क्रूरवियुक्ते = पापसंयोगदृष्टिरहिते, तदाऽपि कीर्त्तिः स्यात् । तदा तु शशी = चन्द्रः विबलः, मन्दे = मन्दगतिग्रहे, अबले = बलहीने, न = नहि, सति अर्थाद्बलयुक्ते सति, तदा प्रष्टुः भ्रमणात् = अनेकस्थलसञ्चारात्, राज्यप्राप्तिः भवेत् । वा लग्नाधिपतौ स्वगृहे = लग्ने, (एवं कर्कसिंहलग्नयोरेव, रविचन्द्रयोरेकराश्थधिपत्वात् । कर्कसिंह भिन्नलग्ने तु कुजादीनां तन्नाथानां राशिद्वयाधिपत्वाल्लग्नभिन्नं स्थानमपि स्वगृहं भषति । यथा वृषलग्ने लग्नेशः शुक्रो यदि तुलायां, वा

मिथुनलग्ने लग्नेशो बुधः कन्यायां, तदा लग्नेशो लग्नभिन्ने निजगृहे भवतीति ज्ञेयम्) । अर्थात् लग्नेशे स्वराशिगते, भौमे = कुजे, तुङ्गगे = स्वोच्चराशिगते, तदा राज्यस्य लाभः वाच्यः ।

यदि लग्नाम्बराधिपौ = लग्नेशदशमेशौ केन्द्रगेन्दुमुथशिलतः = केन्द्रस्थचन्द्रेत्थशाल—योगतः सतः कम्बूलौ, तदा उत्तमराज्यवाप्तिः स्यात् । वा लग्नेशदशमेशौ स्वर्क्षस्थे = कर्के स्थितात् इन्दुतः = चन्द्रात्, मुथशिले, विपुला राज्यप्राप्तिः भवति ।। १०९ — ११३।।

ज्योति — राज्यसम्बन्धी प्रश्न में यदि लग्न का स्वामी वा चन्द्रमा लग्न में हो और दशमेश के साथ इत्थशाल करे और मित्रदृष्टि हो तो अपने कुल के अनुसार राज्य प्राप्त होता है । यदि लग्नेश दशम मे और पापग्रहरहित दशमेश लग्न में हो तो चिन्तित राज्य व सुख की प्राप्ति होगी और यदि लग्नेश दशम स्थान में स्थित शुभग्रह से इत्थशाल करता हो तो भी राज्य प्राप्त होगा । मन्दगति ग्रह पापग्रह से पीड़ित हो तो राज्य प्राप्त होकर भी उसका नाश हो जाता है । यदि लग्नेश तथा दशमेश चौथे स्थान में हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो अपवाद और शुभग्रह की दृष्टि हों तो कीर्ति होती है ।

यदि मन्दगति ग्रह बलवान् हो और पापग्रह का योग न हो, चन्द्रमा बल हीन हो तथा शनि बलवान् हो तो भ्रमण करने से राज्य की प्राप्ति होती है । यदि लग्न का स्वामी अपने घर में हो और अपनी उच्च राशि में मङ्गल हो तो राज्य का लाभ होता है । यदि लग्नेश तथा दशमेश इत्थशाल योग करते हुए केन्द्रस्थ चन्द्रमा से कम्बूलयोग करते हों तो भी राज्य का लाभ होता है । यदि लग्नेश तथा दशमेश अपनी राशि में हों और इत्थशाल योग करते हुए केन्द्रगत चन्द्रमा से कम्बूल योग करें तो उत्तम राज्य की प्राप्ति होती है ।। १०९—११३।।

अथ कार्यसिद्धिप्रश्नकथनम् —

यत्रर्क्षे लग्नेशस्तत्पतिरशुभे गृहे तदा कार्यम् ।
न स्यादस्ते कष्टाद्दशमदृशा कटुकता कार्ये ।। ११४।।

कुन्तला — लग्नेशः यत्र = यस्मिन् ऋक्षे = राशौ भवेत्, तत्पतिः = तत्स्थाननाथः अशुभे = अशुभप्रदे = (६।८।१२) गृहे भवेत् तदा कार्यं न स्यात् । वा लग्नेशे अस्ते = सूर्यकराक्रान्ते, तदा कष्टात् = क्लेशात्, अत्यन्तप्रयासात् कार्यं वाच्यम् । यदि तादृशे योगे दशमदृशा दृष्टे, तदा, कार्ये कटुकता = कलहः स्यात् ।। ११४।।

ज्योति — लग्नेश जिस राशि में हो उसका स्वामी यदि अनिष्ट स्थान में हो तो कार्य नहीं होता है । यदि वह ग्रह अस्तङ्गत हो तो कठिनाई से राज्यकार्य सिद्ध होता है और यदि दशमभाव शत्रु दृष्टि से दृष्ट हो तो कार्य में विघ्न होता है ।। ११४ ।।

अथैतद्राज्यलाभेन मम कीदृशः परिणामः स्यादिति प्रश्ने विचारकथनम् —

राज्यप्राप्तौ सत्यां यदि चेच्छति कोऽपि परिणतिं च तदा ।
लग्नं शरीरकार्यं गृहकर्मास्तं नभश्च राज्यार्थम् ।। ११५।।

लाभो मित्रस्यार्थे चतुर्थकं कर्मणोऽवसितये च ।
द्रव्यं धनाय सहजं भृत्येभ्यो रिपुकृतेश्च वैरिभ्यः ॥ ११६॥

एतैः शुभैः शुभं स्यादशुभे वामं च सर्वकार्याणाम् ।
वित्तस्वामिनि भौमे नीचस्थे पारदारिके व्ययकृत् ॥ ११७॥

जीवे धर्मायरिपौ गुरुपूजायै सिते विलासाय ।
वाणिज्याय ज्ञे पुनरिन्दौ मुथशिलिनि चान्यथाऽन्यर्थम् ॥ ११८॥

लग्नपतौ पतितस्थे विबले राज्यात्ययस्तु कम्बूले ।
कोऽपि गुणः स्यात्पापाक्रांतैरशुभं च्युतौ भवति ॥ ११९॥

कुन्तला — राज्यप्राप्तौ राल्यलाभे सति यदि कः अपि राजा तस्य राज्यलाभस्य परिणतिं परिणामं ज्ञातुम् च इच्छति अभिलषति, तदा लग्नं शरीरकार्य बोध्यं, अस्तम् सप्तमभवनं गृहकर्म ज्ञेयम्, नभः दशमस्थानं राज्यार्थम्, बोध्यम् । चतुर्थकं स्थानं मित्रस्यार्थे लाभः इति चिन्त्यम् । तथा कर्मणः कार्यस्य अवसितये परिणामाय च ज्ञेयम् । तथा द्रव्यं द्वितीयस्थानं धनाय धनलाभाय, चिन्त्यं, सहजं तृतीयस्थानं, भृत्येभ्यः = सेवकेभ्यः, वैरिभ्यः = शत्रुभ्यः = षष्ठस्थानेभ्यः, रिपुकृतेः = शत्रुहेतोश्चिन्त्यम् । एतैः स्थानैः शुभैः = शुभस्वामिकैः शुभयुतदृष्टैः सद्भिः शुभं स्यात्, तथा एतैरशुभैः पापसम्बन्धैः = सर्वकार्याणां वामं = विलोमं बोध्यम् । वित्त स्वामिनि = धनेशे, भौमे नीचस्थे सति तदा पारदारिके = परस्त्रीविषयके कार्ये व्ययकृत् स्यात् ।

वा धनेशे जीवे धर्मायरिपौ = ९। ११। ६ सति, गुरुपूजायै व्ययकृत् । द्वितीयेशे सिते = शुक्रे धर्यायरिपौ सति विलासाय = मनोविनोदाय व्ययकृत् । द्वितीयेशे ज्ञे = बुधे धर्मायरिपौ सति तदा वाणिज्याय व्ययकृद् भवति । पुनस्तादृशे योगे इन्दौ = चन्द्रे, मुथशिलिनि सति अन्यथा अर्थम्, बोध्यम्, अर्थात् दुर्भावं विहाय सद्भावेन व्ययं करोति ।

लग्नपतौ = लग्नेशे, पतितस्थे = पापग्रहस्थानगते, वा अनिष्टस्थानस्थिते, विबले = बलहीने सति राज्यात्ययः = राज्यनाशः स्यात् । तत्र कम्बूले सति = चन्द्रकृतेत्थशालपूर्वक कम्बूलयोगे च सति कोऽपि = विशेषः, गुणः स्यात् । पापाक्रान्तैः = पापयुतदृष्टैर्योगकारकैर्ग्रहैः च्युतौ = राज्यत्यागे अशुभं भवति ॥ ११५ — ११९॥

ज्योति — यदि राज्य प्राप्ति के बाद राज्य की दृढ़ता के विषय में यदि कोई प्रश्न करे तो भी यही फल कहना चाहिए । राज्य के परिणामसम्बन्धी प्रश्न में लग्न से शरीर, सप्तम भाव से गृहकार्य, दशम भाव से राज्यकार्य, चतुर्थ भाव से लाभ, मित्रकार्य तथा निवास । धनभाव तथा ग्यारहवें भाव से धन, तीसरे भाव से सेवक और छठें भाव से शत्रु का विचार करना चाहिए । यदि इन स्थानों में शुभग्रह हों तो शुभ फल और पाप ग्रह हों तो अशुभ फल कहना चाहिए । यदि द्वितीय भाव का स्वामी मङ्गल हो और वह लग्नेश के साथ इत्थशाल करता हो तो परस्त्री के कारण धन का व्यय होता है । यदि

बृहस्पति धनेश हो तो धर्मकार्य में, सूर्य धनेश हो तो गुरु के पूजन में और शुक्र धनेश हो तो विलास के लिए धन का व्यय होता है ।

यदि बुध धनेश हो तो वाणिज्य – व्यवसाय में और चन्द्रमा धनेश होकर इत्थशाल करता हो तो व्यर्थ दूसरे के लिए व्यय होता है । यदि लग्नेश नीच स्थान में उपस्थित होकर बलहीन हो तो राज्य का नाश होता है । यदि कम्बूल योग हो तो कुछ शुभ फल भी प्राप्त होता है । यदि वह पापग्रह से आक्रांत हो तो सर्वथा अशुभ ही फल होता है ।। ११५ – ११९ ।।

अथ मन्त्रिविषयकपृच्छायाकथनम् —

नरपतिसचिवस्नेहप्रश्ने कम्बूललग्नसप्तमयोः ।
मुथशिलयोः शुभदृष्ट्या शुभता राज्ये मिथः स्नेहः ।। १२० ।।

कुन्तला — नरपतिसचिवस्नेहप्रश्ने नरपतेः = राज्ञः, सचिवस्य = मन्त्रिणः, परस्परं स्नेहस्य = प्रेम्णः प्रश्ने, भूपमन्त्रिणोमिथो प्रेम स्थास्यति न वेति प्रश्ने, कम्बूललग्नसप्तमयोः = कम्बूलयोगघटनपूर्वकलग्नसप्तमयोः स्थानयोः शुभदृष्ट्या मुथशिलयोः = घटितेत्थशालयोगयोः सतोः राज्ये तयोर्भूपमन्त्रिणोर्मिथः स्नेहः स्यात् ।। १२० ।।

ज्योति — किसी भी राजा तथा राजमन्त्री के स्नेह–सम्बन्धी प्रश्न में यदि लग्न स्वामी और सप्तमस्वामी दोनों कम्बूल अथवा इत्थशाल योग करते हों और शुभ ग्रह की दृष्टि भी हो तो राजा व राजमन्त्री में परस्पर स्नेह रहे और राज्य का कल्याण हो।। १२० ।।

अथैतद्राज्यं चरं स्थिरं वा भवेदिति प्रश्ने विचारः —

राज्यं चरं वा लग्नपगगनेशयोः सहयोः ।
यद्येको मन्दः स्यात्केन्द्रे तत्स्थितमतोऽन्यथा वाच्यम् ।। १२१ ।।

यदि वा स वाममार्गे भूमौ वा प्रच्युतिर्भवेत् पूर्वम् ।
कम्बूले सति लभते शीघ्रन्त्वथ मुसरिफे न पुनः ।। १२२ ।।

कुन्तला — इदं मम राज्यं चरम् = अचिरस्थायि, वा स्थिरम् = अचलम्, भविष्यति ? एवं प्रश्ने लग्नपगगनेशयोः = लग्नेशदशमेशयोः ग्रहयोः मध्ये यदि एकः ग्रहः मन्दः = मन्दगतिः केन्द्रे १। ४। ७। १० स्यात्तदा तद्राज्यं स्थिरं = अचलं वाच्यम्, अन्यथा केन्द्रभिन्नस्थाने स्यात्तदा चलं वाच्यम् ।

यदि वा स मन्दगतिग्रहः वाममार्गे = वक्रे, भवेत्, वा भूमौ = चतुर्थे तदा पूर्वं प्रच्युतिः भवेत् । पश्चात् कम्बूले सति शीघ्रं लभते । अथ मूसरीफयोगसम्भवे जाते तु पुनर्न लभते ।। १२१ – १२२ ।।

ज्योति — अमुक, राज्य चर है या स्थिर ?' इस प्रकार के प्रश्न में लग्नेश और दशमेश ये दोनों यदि एक राशि में हो और कोई अन्य मन्दगति ग्रह केन्द्र में हो तो राज्य स्थिर रहेगा, अन्यथा चर । यदि वह मन्दगति ग्रह वक्री होकर चतुर्थ भाव में हो तो पहले राज्य की हानि होकर पश्चात् उन्नति हो । यदि कम्बूल योग हो तो शीघ्र राज्य का लाभ हो और ईसराफ योग हो तो राज्य का लाभ नहीं होता ॥ १२१ — १२२॥

अथैकादशस्थानपृच्छा —

नृपतेर्गौरवलाभाशादि मम स्यान्न वेति चप्रश्ने ।
आयेशलग्नपत्योः स्नेहदृशा मुथशिले द्रुतं भवति ॥ १२३॥

रिपुदृष्ट्या बहुदिवसैः केन्द्रे चायेशचन्द्रकम्बूले ।
वाच्या पूर्णेवाशा चरस्थिरद्वि:स्वभावगे स्वनामफलम् ॥ १२४॥

मन्दे क्रूरोपहते भूत्वाऽऽशाऽऽशु प्रणाशमुपयाति ।
क्रूरायुक्ते च शुभयुज्यधिकारवशेन लब्ध्याशा ॥ १२५॥

कुन्तला — नृपते: = राज्ञ:, सकाशात् मम गौरवलाभाशादि = संमानप्राप्त्य–भिलाषाप्रभृति फलं स्यान्न वा ? इति प्रश्ने आयेशलग्नपत्यो: = लाभेशलग्नेशयो: स्नेहदृशा = (३।५।९।११) एतत्स्थानदृष्ट्या मुथशिले = इत्थशाले सति द्रुतं = झटिति, तद्राजगौरव–लाभादि फलं भवतीति ।

अथ लग्नेशलाभेशयो: रिपुदृष्ट्या (१।४।७।१०) मुथशिले सति बहुदिवसै: = विशेषदिनै: राजसंमानसौभाग्यलाभ: सम्भवेत् । यदि च केन्द्रे आयेशचन्द्रकम्बूले सति तदा पूर्णा = सम्पूर्णा इव आशा वाच्या, अर्थात् सत्त्वरमेव सफला आशा स्यात् । चरस्थिरद्वि:स्वभावगे आयेश चन्द्रकम्बूले सति, स्वनामफलम् = स्वनामानुसारं फलं बोध्यम् । यथा चरराशौ नृपगौरवप्राप्तिर्न स्थिरा । भूत्वाऽपि पुनर्नष्टा स्यात् । स्थिरे तु नृपगौरवं स्थिरं, द्वि:स्वभावे तूभयात्मकं वाच्यम् ।

मन्दे = मन्दगतिग्रहे, क्रूरोपहते = पापाक्रान्ते, सति आशा = राजगौरवाशा, आशु = शीघ्रं, भूत्वा पश्चात् प्रणांशं विनाशं, उपयाति = गच्छति । अथ मन्दे क्रूरायुक्ते = पापसम्बन्धरहिते, शुभयुजि = शुभसंयोगदृष्टियुक्ते च सति लब्ध्याशा = तद्राजगौरव प्राप्तिसम्भव: स्यात् ॥ १२३ — १२५॥

ज्योति — मुझे राजा से गौरव तथा धन आदि के लाभ होने की आशा है या नहीं ? इस प्रश्न में यदि लाभभावेश और लग्नेश का मित्रदृष्टि से इत्थशाल योग हो तो शीघ्र लाभ होने की बात कहनी चाहिए ।

यदि लाभेश और लग्नेश में शत्रु दृष्टि से इत्थशाल हो तो बहुत दिनों में लाभ होता है । यदि उन दोनों का केन्द्र में इत्थशाल हो और लाभेश का चन्द्रमा से कम्बूल योग हो तो आशा पूर्ण होगी । परन्तु लाभेश चर, स्थिर और द्वि:स्वभाव इन दो में से जिस स्वभाव की राशि में हो, उनके नाम सदृश फल होना चाहिए ।

यदि लाभेश अस्त वा पापग्रह से पीड़ित हो तो पहले आशा पूर्ण होकर फिर नष्ट हो जाती है । यदि पाप रहित शुभ ग्रह हो तो अपने अधिकार के समान आशा पूर्ण होने की बात कहनी चाहिए ॥ १२३ – १२५॥

मम मित्रेण समं प्रीतिर्भविष्यति न वा ? इति प्रश्ने विचारः —

मित्रेण सह प्रीतिर्भविता लग्नेश्वरायपत्योश्च ।
प्रियदृष्ट्या मुथशिलतः प्रीतिर्वाऽन्योन्यगृहयानात् ॥ १२६ ॥

केन्द्रे स्थितयोरनयोर्मैत्री किल पूर्वजातैव ।
पणफरगतौ पुरस्तादापोक्लिमतो महाप्रीतिः ॥ १२७ ॥

कुन्तला — मम मित्रेण सह प्रीतिः = प्रेम, भविता = भविष्यति, न वेति प्रश्ने लग्नेश्वरायपत्योः = लग्नेशलाभेशयोः प्रियदृष्ट्या = स्नेहदृष्ट्या (३।५।९।११) दृशा मुथशिलतः = इत्थशालतः अन्योन्यगृहयानात् = मिथो गृहगमनात् प्रीतिः वाच्या । केन्द्रे स्थितयोः अनयोर्लग्नेशलाभेशयोर्मुथशिलतः पूर्वजाता एव मैत्री वाच्या । पणफरगतौ तौ लग्नेशलाभेशौ तदा पुरस्तात् = अग्रे प्रेम वाच्यम्, परतो न च प्रीतिः । तयोर्लग्नेशलाभेशयोः, आपोक्लिमतः = ३।६।९।१२ एतत्स्थानगतत्वात्, महाप्रीतिः स्यात् ॥ १२६ – १२७॥

ज्योति — मित्र के साथ प्रेमसम्बन्धी प्रश्न में यदि लग्नेश और लाभभावेश परस्पर मित्रदृष्टि से इत्थशाल करते हों अथवा लग्नेश लाभभाव में और लाभेश लग्न में हो तो परस्पर प्रीति होने की बात कहनी चाहिए । यदि लग्नेश तथा लाभेश दोनों केन्द्र में स्थित हों तो मैत्री पहले ही से है, यदि पणफर स्थान में दोनों हों तो आगे प्रीति होगी और यदि आपोक्लिमस्थान में हों तो प्रीति बहुत बढ़ेगी, ऐसा जानना चाहिए ॥ १२६ – १२७॥

अथ गुप्तकार्यसिद्धिपृच्छाकथनम् —

गुप्तं कार्यमिदं मे सिद्ध्यति लग्नेश्वरेऽथ चन्द्रमसि ।
शुभमुथशिलगे केन्द्रे तन्निकटे वाऽथ सिद्धिः स्यात् ॥ १२८॥

कुन्तला — मे = मम, इदं = मनोगतं, गुप्तं = अप्रकटं, कार्यं सिद्ध्यति नवा ? इति प्रश्ने लग्नेश्वरे अथवा चन्द्रमसि = चन्द्रे, केन्द्रे स्थिते, शुभमुथशिलगे = शुभेत्थशाले, सति वा केन्द्रस्थित्यभावे तन्निकटे = केन्द्रसमीपे अर्थात् पणफरे सति सिद्धिः = कार्यस्य सिद्धिः स्यात् । आपोक्लिमस्थे नहि सिद्धिरित्यर्थाज्ज्ञायते ॥ १२८॥

ज्योति — 'मेरा अमुक गुप्त कार्य सिद्ध होगा या नहीं ?' इस प्रश्न में यदि लग्नेश और चन्द्रमा शुभ ग्रह के साथ इत्थशाल करते हुए केन्द्र या केन्द्र के समीप पणफर में हो तो गुप्त कार्य सिद्धि होती है ॥ १२८॥

अथ द्वादशस्थानपृच्छाविचारः —

रिपुविग्रहपृच्छायां बलवति षष्ठे रिपुः सबलः ।
द्वादशपे शुभदृष्टे बलवति वाच्यं बलं प्रष्टुः ॥ १२९॥

रिपुविग्रहपृच्छायां नामोच्चारे रिपोर्बलिन्यस्ते ।
गुप्ते च द्वादशपे बलवति वाच्यं बलं प्रष्टुः ॥ १३०॥

कुन्तला — रिपुणा = शत्रुणा सह विग्रहो विरोधस्तत्सम्बन्धिन्यां पृच्छायां बलवतिषष्ठे = षष्ठभावे, वा षष्ठेशे सति रिपुः = शत्रुः, सबलः, निजापेक्षया प्रबलः स्यात् । द्वादशपे = द्वादशेशे बलवति च शुभदृष्टे सति प्रष्टुः = पृच्छकस्य बलं वाच्यम् ।

नामोच्चारे = प्रश्ने, अस्ते = सप्तमे बलिनि सति रिपोः = शत्रोः बलं वाच्यम्, बलवति द्वादशपे गुप्ते = अस्ते प्रष्टुः बलं वाच्यम् ॥ १२९ – १३० ॥

ज्योति — किसी शत्रु से युद्धसम्बन्धी प्रश्न में छठाँ भाव या षष्ठेश बलवान् हो तो शत्रु को बलवान् समझे और यदि द्वादश भाव या भावेश बलवान् हो और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्ता का शुभ होता है । शत्रु विग्रह प्रश्न में नाम के निकालने में सप्तम भाव या सप्तमेश बली हो तो शत्रु को बलवान् कहना चाहिए । यदि द्वादश भाव बलवान् हो तो प्रश्नकर्ता बलवान् होता है ॥ १२९ – १३० ॥

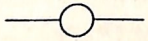
अथ व्ययविषयपृच्छा —

शुभयुतदृष्टे सद्व्ययमशुभेक्षणयोगतो व्ययमनर्थात् ।
एवं भावेष्वखिलेषूह्यं सदसत्फलं सुधिया ॥ १३१॥

कुन्तला — व्ययभावे शुभयुतदृष्टे सति सद्व्ययम्, अशुभेक्षणयोगतः = पापदृष्टिसंयोगतः अनर्थाद् व्ययं भवति । एवम् अखिलेषु = सर्वेषु भावेषु सुधिया सदसत्फलं = शुभा शुभफलम् ऊह्यं = तर्क्यम् । अर्थाद्यद्भावपे यद्भावे च शुभयुतदृष्टे तद्भावगं शुभफलम् । यद्भावपे यद्भावे चाशुभयुतदृष्टे च सति तद्भावजम्, अशुभफलं वाच्यम् ॥ १३१ ॥

ज्योति — यदि बारहवें भाव का स्वामी शुभग्रह से युक्त हो तो शुभकार्य में व्यय (खर्च) हो और वह पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो पाप कार्य में व्यय होता है । इसी प्रकार पण्डितों को सभी भावों का शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥ १३१ ॥

॥ इति नीलकण्ठ्यां प्रश्नतन्त्रे भावप्रश्नाध्यायः ॥



अथ विशेषप्रश्नाध्यायः

तत्र पथिकागमनकथनम्, ताजिके समरसिंहेन —

आगमने पृच्छायां लग्नेशे लग्नमध्यसंस्थेन ।
कृतमुथशिले समेति हि सुखमस्ततुरीयगे कष्टात् ॥ १ ॥

स्थानाच्चलितः प्रश्ने लग्नपतौ सहजनवमगृहसंस्थे ।
लग्नस्थेन मुथशिले पन्थानं वहति पथिकोऽयम् ॥ २ ॥

रन्ध्रेऽथ धने तस्मिन्नाकाशस्थेन मुथशिलेऽप्येवम् ।
केन्द्रस्थितेत्थशाले लग्नेक्षणवर्ज्यमेति न कदापि ॥ ३ ॥

लग्नाधिपतौ वक्रे लग्नं पश्यत्यमुत्र चन्द्रे वा ।
वक्रगमूथशिले सति समेति पथिकः सुखं शीघ्रम् ॥ ४ ॥

अन्त्यस्थितलग्नपतौ शशिना कृतमुथशिले द्रुतमुपैति ।
लग्नाद्वाऽपि चतुर्थाच्छुभाद् द्वितीयतृतीयगा वाऽपि ॥ ५ ॥

कथयन्ति नष्टलाभं प्रवासिनश्चागमं त्वरितम् ।

कुन्तला — आगमने = पथिकागमने, पृच्छायां यत्र कुत्रापि स्थाने स्थिते लग्नेशे लग्नमध्यसंस्थेन = प्रथमदशमस्थानस्थितेन ग्रहेण, तत्रापि स्पष्टार्थं सप्तमेशेन कृतमुथशिले सति सुखम् = अक्लेशम् समेति = समायाति । वा लग्नेशे अस्ततुरीयगे = सप्तमचतुर्थस्थिते, सप्तमेशेन कृतमुथशिले सति कष्टात् = प्रयासात् समेति । अत्र लग्नं = पथिकः । सप्तमराशिः = मार्गः । चतुर्थस्थानं = तस्य सुखम् । वित्तम् । द्वितीयन्तु धनमेव सर्वतः प्रसिद्धम् । तेषां बलाबलविवेकेन परदेशागमनशीलस्य सर्वं विचार्यम् । एतदेव मूलग्रंथोक्तविचारापेक्षया सूक्ष्मम् ।

स्थानात् = इष्टस्थानात्, अमुको जनश्चलितो न वेति प्रश्ने लग्नपतौ = लग्नेशे सहजनवमगृहसंस्थे = तृतीयनवमस्थे, लग्नस्थेन ग्रहेण मुथशिले = इत्थशाले सति, अयं पथिकः पन्थानं वहति = मार्गे वर्त्तते ।

वा तस्मिन् = लग्नपतौ रन्ध्रे = अष्टमे, वा धने = द्वितीये स्थिते, आकाशस्थेन = दशमस्थेन ग्रहेण मुथशिले सति अपि, एवं फलं = अर्थात् पथिकः पन्थानं वहति । यदि तादृशे लग्नेशे केन्द्रस्थितेत्थशाले लग्नेक्षणवर्ज्ये = लग्नदृष्टिरहिते च सति तदा कदाऽपि न पथिकः एति = आयाति ।

वा लग्नाधिपतौ वक्रे, वा अमुत्र = लग्ने, चन्द्रे सति, वक्रगमूथशिले = वक्रीग्रहेत्थशाले सति, पथिकः सुखम् = अक्लेशं, शीघ्रम् = सत्त्वरं, समेति = समागच्छति ।

वा अन्त्यस्थितलग्नपतौ = द्वादशस्थानस्थिते लग्नेशे, शशिना = चन्द्रेण, कृतमुथशिले सति, पथिकः = मार्गवर्त्ती, द्रुतं = शीघ्रम् उपैति = आगच्छति । लग्नात्, अपि वा चतुर्थात्, शुभात् = शुभग्रहाधिष्ठितस्थानात् द्वितीयतृतीयगाः शुभग्रहाः नष्टलाभं, प्रवासिनः = पथिकस्य त्वरितम् आगमनम् = समागमं कथयन्ति ॥ १ — ५॥

ज्योति — पथिक के आगमन सम्बन्धी प्रश्न में यदि लग्नस्वामी तथा लग्नस्थित ग्रह से इत्थशाल हो तो पथिक सुख से घर आता है और यदि सप्तम तथा चतुर्थ स्थान में स्थित ग्रह से इत्थशाल हो तो कष्ट से घर लौटेगा । यदि लग्नेश तीसरे वा नवें स्थान में स्थित होकर लग्न ग्रह के साथ इत्थशाल योग करता हो तो पथिक चल पड़ा है, ऐसा समझना चाहिए ।

यदि लग्नेश अष्टम अथवा द्वितीय स्थान में स्थित होता हुआ दशम स्थान में स्थित किसी ग्रह से इत्थशाल करे तो भी पथिक मार्ग में है, और यदि लग्नेश केन्द्र में स्थित दशमेश से इत्थशाल करता हो तो भी पथिक मार्ग में है, ऐसा कहना चाहिए । यदि लग्नेश अन्यत्र रहकर लग्न को न देखे तो पथिक कदापि नहीं आयेगा, ऐसा कहना चाहिए ।

यदि लग्नेश वक्री होकर लग्न या चन्द्रमा को देखे तथा वक्री ग्रह से मुथशिल करे तो पथिक शीघ्र आता है । यदि लग्नेश द्वादशभाव में बैठकर चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो पथिक शीघ्र आता है । यदि लग्न से अथवा चौथे भाव से शुभग्रह दूसरे या तीसरें हों तो पथिक शीघ्र ही घर आता है । इस योग में नष्ट वस्तु का लाभ तथा प्रवासी मनुष्य का तुरन्त आगमन होता है ॥ १ — ५॥

अथ प्रश्नचिन्तामणौ पथिकागमनप्रश्नः —

ग्रहः षष्ठेऽथ जामित्रे वाक्पतिः कण्टके स्थितः ।
पथिकागमनं ब्रूते सिते ज्ञे वा त्रिकोणगे ॥ ६ ॥

कुन्तला — कोऽपि, ग्रहः षष्ठेऽथ जामित्रे = सप्तमे, स्थितः, वाक्पतिः = बृहस्पतिः, कण्टके = केन्द्रे, स्थितः, वा = अथवा सिते = शुक्रे, वा ज्ञे = बुधे त्रिकोणगे = नवमपञ्चमस्थानस्थे, तदा पथिकागमनं = परदेशिनः आगमनं, ब्रूते = आचार्यः कथयति ॥ ६॥

ज्योति — यदि छठें अथवा सातवें घर में कोई ग्रह हो, बृहस्पति केन्द्र में बैठा हो अथवा शुक्र और बुध त्रिकोण में बैठे हों तो पथिक का शीघ्र आगमन होता है ॥ ६॥

पृष्ठोदये पापदृष्टे शुभदृग्वर्जिते बुधः ।
लग्नात्षष्ठे यदा पापा यातुश्च निधनं वदेत् ॥ ७ ॥

कुन्तला — पृष्ठोदये = पृष्ठोदयराशौ लग्ने, पापदृष्टे, शुभदृग्वर्जिते = शुभग्रहदृष्टिरहिते, तथा लग्नात् षष्ठे पापाः स्थिताः स्युस्तदा यातुः = गन्तुः निधनं = मरणं वदेत् ॥ ७ ॥

ज्योति — यदि पृष्ठोदय लग्न पाप से दृष्ट और शुभ दृष्टि से वर्जित हो और लग्न से छठें स्थान में पापग्रह हो तो यात्री की मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

यदा क्रूरास्तृतीयस्था देशाद्देशान्तरं गतः ।
चौरेणैव हृतस्वश्च पथिकः केन्द्रगा यदि ॥ ८ ॥

कुन्तला — यदा क्रूराः = पापा लग्नात् षष्ठे स्थाने स्थितास्तदा पथिकः देशात् = एकस्मात् परदेशाद्देशान्तरमन्यदेशं गतः वाच्यः । यदि क्रूराः केन्द्रगाः = १।४।७।१० स्थान स्थिताः, तदा पथिकः, चौरेण = तस्करेण हृतस्वः = अपहृतधनः वाच्यः ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि प्रश्नकाल में पापग्रह तीसरे स्थान में हो तो पथिक को एक देश से अन्य देश को चला गया समझना चाहिए । यदि केन्द्र में क्रूरग्रह बैठे हों तो पथिक को चोरों से लूटा गया जानना चाहिए ॥ ८ ॥

पापैः षष्ठत्रिलाभस्थैः कंटकस्थैः शुभग्रहैः ।
प्रवासी सुखमायाति दूरस्थोऽपि सुनिश्चितम् ॥ ९॥

कुन्तला — पापैः = पापग्रहैः, षष्ठत्रिलाभस्थैः = ६।३।११ गतैः, शुभग्रहैः कण्टकस्थैः = केन्द्रस्थैः तदा, दूरस्थ = दूरदेशस्थितोऽपि, प्रवासी = परदेशी सुनिश्चितं = ध्रुवं, सुखं = सकुशलम् , आयाति = गृहं प्रत्यायाति ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि पापग्रह छठें, तीसरे अथवा ग्यारहवें स्थान में हों और शुभग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण में हो तो पथिक दूर भी हो तो सुखपूर्वक घर पहुँच जाता है ॥ ९ ॥

चतुरस्त्रे त्रिकोणे वा पापगेहस्थितः शनिः ।
पापदृष्टश्च नियतं बन्धनं यातुरादिशेत् ॥ १०॥

कुन्तला — शनिः, चतुरस्त्रे, केन्द्रे, वा त्रिकोणे = नवपञ्चमे वा पापगेहस्थितः पापदृष्टश्च भवेत् तदा यातुः = पथिकस्य नियतं = निश्चितं बन्धनम् = कारागारनिवासात्मकम् आदिशेत् = कथयेत् ॥ १०॥

ज्योति — यदि केन्द्र तथा त्रिकोण में और पापराशि में पापग्रह से दृष्ट होकर शनि बैठा हो तो पथिक को बन्धन में पड़ गया जानना चाहिए ॥ १०॥

शुभयुक्ते स्थिरे लग्ने स्थिरो बन्धश्चरेऽन्यथा ।
द्वितनौ सौम्यसंयुक्ते बन्धमोक्षौ क्रमेण तु ॥ ११॥

कुन्तला — तत्र विशेषमाह – शुभयुक्ते स्थिरे लग्ने प्रश्नश्चेत्तदा बन्धः स्थिरः = चिरसमयावधिकः स्यात् । शुभयुक्ते चरे लग्ने प्रश्नश्चेत्तदा बन्धः = कारागारवासः अन्यथा = चलः, अचिरकालात्मकः स्यात् । द्वितनौ द्विःस्वभावे = प्रश्नलग्ने, सौम्यसंयुक्ते क्रमेण बन्धमोक्षौ भवतः ॥ ११॥

ज्योति — यदि स्थिर लग्न में शुभग्रह हो तो बन्धन स्थिर हो और चर लग्न हो तो क्षणिक तथा द्विःस्वभाव लग्न हो तो पथिक को बन्धन से छूट गया समझे ॥ ११॥

पापास्त्रिकोणजामित्रे विलग्ने पृष्ठकोदये ।
शत्रुभिर्वीक्ष्यमाणाश्च यातुः कष्टं वदेत्सुधीः ॥ १२ ॥

कुन्तला — पापाः = पापग्रहाः, त्रिकोणजामित्रे = ५।७।९ स्थाने स्थिताः, वा विलग्ने, पृष्ठकोदये = पृष्ठोदयराशौ लग्ने वा स्थिताः, शत्रुभिः = शत्रुग्रहैः, वीक्ष्यमाणाः, तदा सुधीः = विद्वान्, यातुः = पथिकस्य, कष्टं = क्लेशं, वदेत् ॥ १२ ॥

ज्योति — यदि पापग्रह त्रिकोण या सातवें घर में हों तथा पृष्ठोदय राशि लग्न में हों और शत्रु से देखे जाते हों तो कष्ट में पड़ा कहना चाहिए ॥ १२ ॥

मार्गस्थानगतैः सौम्यैर्मार्गं तस्य शुभं भवेत् ।
क्रूरैर्दुःखं विलग्नस्थैः पापैः क्लेशमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥

कुन्तला — सौम्यैः शुभैः, मार्गस्थानगतैः = सप्तमस्थानस्थितैस्तदा तस्य = पथिकस्य शुभं वदेत् । क्रूरैः = पापैः = शनिरविकुजैः विलग्नस्थैः सद्भिः, (पथिकः) दुःखं = क्लेशम् अवाप्नुयात् = प्राप्नुयात् ॥ १३ ॥

ज्योति — यदि मार्गस्थान नवम मे शुभग्रह बैठे हों तो पथिक का मार्ग शुभ बताना चाहिए । यदि मार्गस्थान में पापग्रह हों तो दुःख तथा लग्न में पापग्रह हों तो क्लेश में पड़ा समझना चाहिए ॥ १३ ॥

चरलग्ने चरांशे वा चतुर्थे चन्द्रमाः स्थितः ।
प्रवासी सुखमायाति कृतकार्यश्च वेश्मनि ॥ १४ ॥

कुन्तला — चरलग्ने वा चरांशे वा चतुर्थे यदि चन्द्रमाः स्थितः स्यात्, तदा प्रवासी पथिकः, कृतकार्यः सन् वेश्मनि = गृहे, सुखं = सकुशलम्, आयाति ॥ १४॥

ज्योति — यदि लग्न में चरराशि या चर नवांश हो और चन्द्रमा चौथे हों तो पथिक कार्य पूर्ण करके सुखपूर्वक घर आ रहा है, ऐसा समझना चाहिए ॥ १४ ॥

कंटकैः सौम्यसंयुक्तैः पापग्रहविवर्जितः ।
प्रवासी सुखमायाति निधनस्थे सुधाकरे ॥ १५ ॥

कुन्तला — कण्टकैः = १।४।७।१० स्थानैः शुभसंयुक्तैः, पापग्रहवर्जितैः = पापशून्यैः । अर्थात् शुभाः केन्द्रगताः, पापाः केन्द्रेतरस्थानगतास्तदा प्रवासी = पथिकः, सुख = सकुशलं, आयाति । अथवा सुधाकरे = चन्द्रे, निधनस्थे = अष्टमस्थे तदा पथिकः सकुशलं, आयाति ॥ १५॥

ज्योति — यदि केन्द्रस्थान में शुभग्रह हों और पाप ग्रह का अभाव हो तथा अष्टम स्थान में चन्द्रमा बैठा हो तो पथिक सुखपूर्वक लौट आता है ॥ १५॥

गमागमौ तु न स्यातां योगे दुरुधुराकृते ।
शुभैः शुभकृतो रोधः पापैस्तस्करतो भयम् ॥ १६ ॥

कुन्तला — अथ शुभैः = शुभग्रहैः, दुरुधुराकृते योगे = दुरुधुरायोगे, शुभकृतः = शुभकार्येण देवाराधनतीर्थसेवनशास्त्राध्यापनादि कार्येण कृतः रोधः = गमननिरोधः स्यात् । पापैः कृते दुरुधुरायोगे, पापकृतः = व्यभिचारादिदुःखकर्मकृतः, रोधः = यात्रानिषेधो वाच्यः । तथा तस्करतः = चौरात्, भयं भवेत् ॥ १६॥

ज्योति — यदि प्रश्न के समय चन्द्रमा सम्बन्धी दुरुधरा योग हो तो पथिक न ही आता है और न ही जाता है । यदि यह योग शुभग्रहों से युक्त हो तो शुभ कार्य में बाधा हो और पापग्रहों से युक्त हो तो चौरादि से हानि होती है ॥ १६॥

गमागमौ हि न स्यातां स्थिरराशौ विलग्नगे ।
न रोगोपशमो नाशो द्रव्याणां च पराभवः ॥ १७ ॥

कुन्तला — स्थिरराशौ विलग्नगे सति पथिकस्य गमागमौ न स्याताम् । रोगोपशमो न, तथा द्रव्याणां नाशः, च = पुनः पराभवो भवति ॥ १७ ॥

ज्योति — यदि लग्न में स्थिर राशि हो तो आना–जाना नहीं हो । उस समय न रोग का नाश हो, न धन का नाश हो और न पराजय ही होवे ॥ १७॥

विपरीतं चरे वाच्यं फलं मिश्रं द्विमूर्तिषु ।
स्थिरवत्प्रथमे खण्डे परार्धे चरराशिवत् ॥ १८ ॥

कुन्तला — चरे = चरे लग्ने, विपरीतं फलं = गमागमौ स्यातां, रोगोपशमः, द्रव्याणां लाभः, इति फलं वाच्यम् । द्विमूर्त्तिषु = द्विःस्वभावलग्नेषु मिश्रम् = उभयात्मकं फलं वाच्यम् । तत्र द्विःस्वभावलग्ने प्रथमे खण्डे = प्रथमहोरायां, स्थिरवत् फलम् । परार्धे = द्वितीयहोरायां, चरराशिवत् फलं बोध्यम् ॥ १८॥

ज्योति — यदि चर लग्न हो तो विपरीत, द्विःस्वभाव हो तो मिश्र, द्विःस्वभाव के पूर्व भाग में स्थिर के समान फल हो और उत्तरार्द्ध में चरराशि के समान फल कहना चाहिए ॥ १८ ॥

प्रवासी शीघ्रमायाति गुरुशुक्रौ त्रिवित्तगौ ।
चतुर्थस्थानगावेतौ शीघ्रमायाति कार्यकृत् ॥ १९॥

कुन्तला — यदि गुरुशुक्रौ त्रिवित्तगौ = तृतीयद्वितीयगौ, तदा प्रवासी = पथिकः, शीघ्रम् आयाति । वा एतौ गुरुशुक्रौ = चतुर्थस्थानगौ, तदा कार्यकृत् = कार्यकर्त्ता शीघ्रम् आयाति, गृहमिति शेषः ।। १९।।

ज्योति — यदि प्रश्न के समय तीसरे तथा दूसरे स्थान में गुरु और शुक्र बैठे हों तो पथिक सुखपूर्वक आवे । यदि चौथे स्थान में गुरु—शुक्र बैठे हों तो पथिक शीघ्र कार्य पूर्ण करके घर वापस आवे ।। १९।।

इन्दुः सप्तमगो लग्नात् पथिकं वक्ति मार्गगम् ।
मार्गाधिपश्च राश्यर्धात्परभागे व्यवस्थितः ।। २० ।।

कुन्तला — इन्दुः = चन्द्रः, लग्नात् सप्तमगः, तदा पथिकं मार्गगं = पथिगतं वक्ति = कथयति । वा मार्गाधिपः = सप्तमेशः, राश्यर्धात् परभागे = द्वितीयद्रेष्काणे व्यवस्थितः, तदाऽपि पथिकं मार्गगं वक्ति ।। २०।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा लग्न के सातवें भाव में हो तो पथिक को मार्ग में जाने । यदि मार्ग (नवम भाग) का स्वामी राशि के उत्तरार्ध में हो तो भी वही फल होता है ।। २० ।।

शुक्रार्कजीवसौम्यानामेकोऽपि स्याद्धरायगः ।
तदाऽऽशु गमनं ब्रूयात्प्रष्टुर्न गमनं व्यये ।। २१ ।।

कुन्तला — शुक्रार्कजीवसौमयानां = शुक्ररविगुरुबुधानां मध्ये एकोऽपि यदि ग्रहः धरायगः = चतुर्थलाभस्थानगतः, तदा प्रष्टुः, आशु = शीघ्रं गमनं = प्रत्यागमनं, वाच्यम् । यदि तेषामेकतमो ग्रहो व्यये = द्वादशस्थाने स्यात्तदा गमनं = प्रत्यावर्तनं न वाच्यम् ।। २१।।

ज्योति — यदि शुक्र, सूर्य, बृहस्पति तथा बुध इनमें से कोई एक भी ग्रह २, ११ स्थान में हो तो प्रवासी का शीघ्र गमन होता है और यदि बारहवें में कोई हो तो गमागम कुछ भी नहीं होता है ।। २१।।

लग्नाद्यावतिथे रथाने बली खेटो व्यवस्थितः ।
ब्रूयात्तावतिथे मासे पथिकस्य निवर्तनम् ।। २२ ।।

कुन्तला — लग्नाद् यावतिथे = यत्संख्यके स्थाने बली खेटः = बली ग्रहः व्यवस्थितः, तावतिथे मासे पथिकस्य = विदेशिनः निवर्त्तनं = प्रत्यागमनं ब्रूयात् = कथयेत् ।। २२।।

ज्योति — प्रश्नलग्न से जितनी संख्यावाले स्थान में बलवान् ग्रह बैठे हों उतनी संख्या के मास में प्रवासी घर लौटता है ।। २२ ।।

एवं कालं चरांशस्थे द्विगुणं च स्थिरांशके ।
द्विःस्वभावांशगे खेटे त्रिगुणं चिन्तयेत्सुधीः ।। २३ ।।

कुन्तला — एवमनेन प्रकारेण यः कालः सिद्धस्तं कालं चरांशस्थे ग्रहे जानीयात् । स्थिरांशस्थे ग्रहे द्विगुणं कुर्यात् । द्विःस्वभावांशगे ग्रहे त्रिगुणं सुधीश्चिन्तयेत् ॥ २३॥

ज्योति — यदि पूर्वोक्त बलवान् ग्रह चर राशि के नवांशों में बैठे हों तो पूर्वोक्त समय में आयेगा । यदि स्थिरांश में वे बलवान् ग्रह हों तो पूर्वोक्त समय से द्विगुण समय में आगमन कहे । यदि द्विःस्वभाव लग्न के अंश में बली ग्रह हों तो त्रिगुण समय में प्रवासी लौटे ॥ २३ ॥

यातुर्विलग्नाज्जामित्रभवनाधिपतिर्यदा ।
करोति वक्रमावृत्तेः कालं तु ब्रुवते परे ॥ २४ ॥

कुन्तला — यातुः = पथिकस्य, विलग्नाजजामित्रभवनाधिपतिः = सप्तमाधिपः, यदा वक्रं = विलोमगमनं करोति, तदा एव आवृत्तेः = आवृत्त्या द्वित्र्यादिगुणनयाकालं परे जगुः ॥ २४॥

ज्योति — आगमन के प्रश्नलग्न में सप्तम भाव का स्वामी जिस समय वक्री हो तो प्रवासी लौट आने की इच्छा करता है ॥ २४ ॥

चतुर्थे दशमे वाऽपि यदि सौम्यग्रहो भवेत् ।
तदा न गमनं क्रूरैस्तत्रस्थैर्गमनं भवेत् ॥ २५ ॥

कुन्तला — चतुर्थे दशमे स्थाने यदि सौम्यग्रहः = शुभग्रहः भवेत्, तदा पथिकस्य गमनं = प्रत्यावर्त्तनं न भवति । अर्थात् परदेशवास एव वाच्यः । यदि क्रूरैः = पापैः तत्रस्थैः = चतुर्थदशमस्थैः, तदा पथिकस्य गमनं भवति ॥ २५॥

ज्योति — यदि चौथे तथा दसवें स्थान में शुभग्रह हो तो गमन नहीं होता । यदि पापग्रह वहाँ स्थित हो तो गमन हो ॥ २५ ॥

लग्नाद्वा लग्ननाथाद्वा यत्संख्याः क्रूरखेचराः ।
नवमे द्वादशे वाऽपि तत्संख्याः स्युरुपद्रवाः ॥ २६ ॥

कुन्तला — लग्नात्, वा लग्ननाथात् = लग्नेशात्, यत्संख्यकाः = यन्मिताः, क्रूरखेचराः = पापग्रहाः, नवमे, अपिवा द्वादशे स्थाने स्थिताः, तावन्तः उपद्रवाः = क्लेशाः स्युः ॥ २६॥

ज्योति — यदि लग्न तथा लग्नस्वामी से नवें या बारहवें स्थान में जितने पापग्रह हों तो मार्ग में उतने स्थान में ही उपद्रव होते हैं ॥ २७ ॥

लग्नाद्वा लग्ननाथाद्वा यावंतः सौम्यखेचराः ।
मार्गे तत्रोदया वाच्याः स्थाने स्थाने विचक्षणैः ॥ २७ ॥

कुन्तला — एवं लग्नात् वा लग्ननाथात् = लग्नेशाक्रान्तराशितः, यावन्तः सौम्यखेचराः = शुभग्रहाः स्थिताः, तावत्सङ्ख्यकाः मार्गे = पथि स्थाने विचक्षणैः, उदयाः = अभ्युदयाः इष्टलाभाः वाच्याः ।। २७।।

ज्योति — प्रश्नलग्न तथा लग्नेश से नवम स्थान में जितने शुभग्रह हों उतने स्थान में पथिक को मार्ग में भाग्योदय होगा ।। २६।।

क्रूरयुक्तेक्षितो मन्दः शुभदृग्योगवर्जितः ।
धर्मस्थस्तनुते व्याधि प्रोषितस्याष्टगो मृतिम् ।। २८ ।।

कुन्तला — क्रूरयुक्तेक्षितः = पापयुतदृष्टः, शुभदृग्योगवर्जितः, मन्दः = शनिः धर्मस्थः = नवमस्थानस्थितः, तदा व्याधि = रोगं तनुते । यदि तादृशः शनिः अष्टमः = अष्टमस्थः, तदा प्रोषितस्य = प्रस्थितस्य, विदेशिनः मृति = मरणं, तनुते = दिशति ।। २८।।

ज्योति — यदि पापग्रह से युक्त या दृष्ट शुभ ग्रहों के योग से वर्जित होता हुआ शनि नवम स्थान में स्थित हो और अन्य कोई योग न पड़ता हो तो शरीर में रोग होता है । यदि आठवें में हो तो मृत्यु होती है ।। २८।।

जामित्रस्य शुभोत्थे याता नायाति दुरुधुरायोगे ।
मित्रस्वामिनिषेधात्पापोत्थे शत्रुरुक्चौरात् ।। २९।।

कुन्तला — जामित्रस्य = सप्तमस्य, शुभोत्थे = शुभग्रहजनिते, दुरुधुरायोगे, सप्तमभावे यदि चन्द्रः षष्टाष्टमगतौ शुभौ च भवत इत्यर्थः, तदा याता = प्रस्थितो जनः मित्रस्वामि निषेधात् न आयाति । एवं पापोत्थे दुरुधुरायोगे शत्रुरुक्चौरात् = वैरिरोगतस्करोपद्रवपतनात्, न आयाति ।। २९।।

ज्योति — यदि प्रश्नलग्न से छठें या सातवें स्थान में शुभग्रहों से दुरुधरा योग पड़ रहा हो तो पथिक मित्र या स्वामी के कहने से रुक जाता है लौट कर नही आता है । यदि पापग्रह हो तो शत्रु, रोग तथा चोर से कष्ट को प्राप्त होता है ।। २९।।

चन्द्रार्कयोश्छिद्रगयोर्यमेन संदृष्टयोः स्यात्परशस्त्रभीतिः ।
रन्ध्रे सिते ज्ञे च सुखाप्तिरारे मन्दे भयं पापयुगीक्षितेऽध्वनि ।। ३० ।।

कुन्तला — चन्द्रार्कयोः = चन्द्रसूर्ययोः, छिद्रगयोः = अष्टमस्थानगयोः, यमेन = शनिना संदृष्टयोस्तदा परशस्त्रभीतिः = शत्रुशस्त्रभयं स्यात् । वा सिते = शुक्रे, ज्ञे = बुधे च रन्ध्रे = अष्टमे सति, शुभेक्षिते = शुभयुतदृष्टे तदा सुखाप्तिः = सुखप्राप्तिः सम्भवेत् । अथआरे = कुजे, मन्दे = शनौ च रन्ध्रे सति तथा पापयुगीक्षिते च सति अध्वनि = मार्गे भयं वदेत् ।। ३०।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा और सूर्य अष्टम स्थान में हों और दोनों पर शनि की दृष्टि हो तो पथिक को मार्ग में शस्त्र से भय होता है । यदि अष्टम स्थान में शुक्र या बुध हो तो सुख मिलता है । यदि अष्टम स्थान में मङ्गल या शनि पापग्रह युक्त या दृष्ट हो तो मार्ग में भय होता है ॥ ३०॥

अथ दूरस्थो जीवति मृतो वेत्थं यदा प्रश्नः —

लग्नेश्वरे शीतकरेऽथे षष्ठे तुर्येऽष्टमे वाऽप्यतिनीचगे वा ।
अस्तङ्गते छिद्रपतोत्थशालयुक्ते शुभैर्दूरगतो मृतः स्यात् ॥ ३१॥

भूभेरधःस्थेन च वक्रगेण यदीत्थशालं कुरुते शशाङ्कः ।
सौम्यैरदृष्टे मरणं प्रकुर्याद्दूरस्थितस्यापि विदेशगस्य ॥ ३२॥

सौम्यैः षष्ठान्त्यरन्ध्रस्थैर्विबलैश्च शुभेक्षितैः ।
पापयुक्तौ शशाङ्कार्कौ तदा दूरस्थितो मृतः ॥ ३३॥

पृष्ठोदये पापयुते त्रिकोणकेन्द्राष्टषष्ठोपगतैश्च पापैः ।
सौम्यैरदृष्टैः परदेशसंस्थो मृतो गदार्तो नवमे च सूर्ये ॥ ३४॥

तुर्योपरिस्थेन खगेन चन्द्रमा यदीत्थशालं कुरुते शुभेक्षितः ।
सौम्यैर्युतो वा परदेशसंस्थितः सुखी च जीवेत्पथि सौख्यमेति ॥ ३५॥

कुन्तला — लग्नेश्वरे शीतकरे चन्द्रे षष्ठे वा तुर्ये = चतुर्थे, अपिवा अष्टमे वा अतिनीचगे सति वा अस्तङ्गते वा छिद्रपतीत्थशालयुक्ते = अष्टमेशग्रहेत्थशाले, शुभैः = शुभग्रहैः, अयुक्ते = योगरहिते, तदा दूरगतः = दूरदेशगतः, मृतः स्यात् ।

यदि शशाङ्कः = चन्द्रः, भूमेः = चतुर्थस्थानात्, अधःस्थेन = पूर्वस्थानस्थितेन वक्रगेण = वक्रगतेन, इत्थशालं कुरूते, तथा सौम्यैः = शुभैः अदृष्टे, तदा दूरस्थितस्य विदेशगस्यापि मरणं प्रकुर्यात् ।

सौम्यैः = शुभैः षष्ठान्त्यरन्ध्रस्थैः = ६।८।१२ एतत्स्थानगतैः, विबलैः = हीनबलैः, अशुभेक्षितैः = पापदृष्टैः, तदा दूरस्थितो जनः = मृतो वाच्यः । यदि वा शशाङ्कार्कौ पापयुक्तौ तदाऽपि दूरस्थितः = परदेशगतः, मृतो वाच्यः ।

पृष्ठोदये लग्ने, पापयुते, पापैः त्रिकोणकेन्द्राष्टषष्ठोपगतैः ९।५।१।४।७।१०।६।८ स्थितैः सौम्यैः = शुभैः, अदृष्टैः, तदा परदेशसंस्थः मृतो वाच्यः । सूर्ये नवमस्थे सति गदार्त्तः = रोगपीड़ितो वाच्यः ।

यदि चन्द्रमास्तुर्योपरिस्थेन ग्रहेण इत्थशालं कुरुते, तथा च शुभेक्षितश्च भवेत् वा सौम्यैः युतः भवेत्, तदा सुखी जीवेच्च, पथि सौख्यम् एति = गच्छति ॥ ३१ — ३५॥

ज्योति — अमुक प्रवासी मनुष्य जीवित है या मर गया ? ऐसे प्रश्न में यदि लग्नेश तथा चन्द्रमा छठें, चौथे या आठवें स्थान में रहकर अति नीच राशिस्थ तथा अस्तंगत हों और इत्थशाल करे तो प्रवासी दूर जाकर मर गया है । यदि प्रश्नलग्न से चतुर्थ स्थान में स्थित वक्री ग्रह से चन्द्रमा इत्थशाल करे और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न पड़ती हो तो विदेश गये हुए परदेशी की मृत्यु होती है । यदि निर्बल शुभ ग्रह छठें, बारहवें तथा आठवें स्थान में शुभ ग्रह से दृष्ट हो और चन्द्रमा तथा सूर्य पाप ग्रहों से युक्त हों तो प्रवासी को मारा हुआ समझना चाहिए ।

यदि पृष्ठोदय लग्न हो और पापग्रह त्रिकोण, केन्द्र, षष्ठ और अष्टम स्थान में हों, और शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो परदेश में गये हुए पुरुष का मरण और नवम सूर्य हो तो रोग से पीड़ित जानना चाहिए । यदि चतुर्थ भाव से सातवें भाव पर्यन्त किसी भाव में बैठा चन्द्रमा किसी ग्रह से इत्थशाल करे वह शुभ ग्रह से दृष्ट वा युक्त हो तो परदेशी मनुष्य को जीवित जाने तथा वह सुखपूर्वक घर आवेगा ऐसा कहे ॥ ३१ – ३५॥

अथ परचक्रागमनपृच्छा (षट्पञ्चशिकायाम्) —

मार्गान्निवर्तते शत्रुः पापैः शत्रुगृहाश्रितैः ।
चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्भग्नो निवर्तते ॥ ३६ ॥

झषालिकुम्भकर्कटा रसातले यदा स्थिताः ।
रिपोः पराजयस्तदा चतुष्पदैः पलायनम् ॥ ३७ ॥

मेषधनुसिंहवृषा यद्युदयस्था भवति हिबुके वा ।
शत्रुनिवर्ततेऽत्र ग्रहसहिता वा वियुक्ता वा ॥ ३८ ॥

नागच्छति परचक्रं यदाऽर्कचन्द्रौ चतुर्थभवनस्थौ ।
गुरुबुधशुक्रा हिबुके यदा तदा शीघ्रमायाति ॥ ३९ ॥

स्थिरोदये जीवशनैश्चरे स्थिते गमागमौ नैव वदेत्तु पृच्छतः ।
त्रिपञ्चषष्ठा रिपुसङ्गमाय पापाश्चतुर्था विनिवर्तनाय ॥ ४० ॥

दशमोदयसप्तमगाः सौम्या नगराधिपस्य विजयकराः ।
अरार्की ज्ञगुरुसिताः प्रभङ्गदौ विजयदा नवमे ॥ ४१ ॥

उदयर्क्षाच्चन्द्रर्क्षं भवति च यावद्दिनैश्च तावद्भिः ।
आगमनं स्याच्छत्रोर्यदि न हि मध्ये ग्रहः कश्चित् ॥ ४२ ॥

कुन्तला — पापैः शत्रुगृहाश्रितैः शत्रुः मार्गान्निवर्त्तते । चतुर्थगैः पापैस्तु प्राप्तः अपि शत्रुः भग्नः सन् निवर्त्तते ।

रसातले = चतुर्थस्थाने, यदा झषलिकुम्भकर्कटाः राशयः स्थितास्तदा रिपोः = शत्रोः पराजयः स्यात्, तदा तु चतुष्पदैः शत्रोः पलायनं वाच्यम् । वा चतुर्थेस्थाने चतुष्पदराशिगतैः शत्रोः पलायनं भवति ।

यदि मेष—धनुः—सिंह—वृषाः अर्थाच्चतुष्पदा राशयः उदयस्थाः = लग्नस्थाः वा हिबुके = चतुर्थेस्थिताः, तथा ग्रहसहिता वा ग्रहेण वियुक्तास्तदाऽपि शत्रुः निवर्त्तते ।

यदा अर्कचन्द्रौ चतुर्थभवनस्थौ तदा परचक्रम् = शत्रुवर्गः न आगच्छति वा यदा बुधगुरुशुक्रा हिबुके = चतुर्थे स्थितास्तदा शीघ्र शत्रुः आयाति ।

स्थिरोदये = स्थिरराशिलग्ने सति तत्र जीवशनैश्चरे = गुरुशनिग्रहे = स्थिते तदा पृच्छतः गमागमौ नैव वदेत् । पापाः त्रिपञ्चषष्ठे स्थितास्तदा रिपुसङ्गमाय भवन्ति। पापाश्चतुर्थे स्थितास्तदा विनिवर्त्तनाय भवन्ति ।

सौम्याः = शुभग्रहाः दशमोदयसप्तमगाः, तदा नगरधिपस्य = राज्ञः विजयकराः भवन्ति । आराकीं = भौमशनी, नवमे प्रमङ्गदौ भवतः । ज्ञगुरुसिताः = बुध गुरु शुक्राः गवमे विंजयदा भवन्ति ।

उदयर्क्षात् = लग्नराशितः, चन्द्रर्क्ष = चन्द्रराशिः, यावद्भवति, तावद्भिर्दिनैः शत्रोरागमनं वाच्यम् । यदि कश्चिद्ग्रहस्तन्मध्ये नहि भवेत् ।। ३६ — ४२।।

ज्योति —— यदि पापग्रह षष्ठभाव में बैठा हो तो शत्रु मार्ग ही से लौट जाता है । यदि चतुर्थ भाव में पापग्रह हों तो सामने पहुँचा हुआ भी शत्रु मार खाकर हट जाता है ।

यदि प्रश्नलग्न से चौथे मीन, वृश्चिक, कुम्भ, कर्क राशियाँ हों तो शत्रु की पराजय हो जाती है । यदि चतुष्पद राशि चौथे हो तो शत्रु स्वयं भाग खड़ा होता है ।

लग्न या चतुर्थभाव में मेष, सिंह, धनु या वृष राशि ग्रह सहित या ग्रह रहित हो तो शत्रु मार्ग से लौट जाता है ।

चतुर्थभाव में सूर्य और चन्द्र हों तो शत्रु की सेना नहीं आती है । यदि चतुर्थभाव में गुरु, बुध और शुक्र हो तो शत्रु की सेना शीघ्र आती है ।

यदि स्थिर लग्न में गुरु तथा शनि बैठा हो तो पृच्छक से कहे कि शत्रु का आगमन नहीं होगा । यदि तीसरे छठे तथा पाँचवें पापग्रह हों तो शत्रु से भेंट होती है तथा यदि चौथे पापग्रह हों तो शत्रु हट जायेंगे ।

यदि दशम लग्न और सप्तम भाव सौम्य ग्रह हों तो नगराधिपति (स्थायी) की विजय होती है । यदि उक्त (१०,७) में मङ्गल, शनि, बुध और गुरु तथा शुक्र हों तो पराजय और यदि ये नवें स्थान में हों तो विजय होती है ।

लग्न से चन्द्रमा जितनी राशि पर हो, यदि उनके मध्य में कोई भी ग्रह न हो तो उतने दिवस में शत्रु का आगमन होगा ।। ३६ — ४२।।

अन्यत्रापि प्रश्नप्रदीपे—

दैत्येज्यवाचस्पतिसोमपुत्रैरेकर्क्षगैर्लग्नगतैर्बलाढ्यैः ।
द्वाभ्यामथेज्ये भृगजेऽथ लग्ने हन्याद्रणे यायिनृपं पुरेशः ॥ ४३ ॥

सूर्येन्दुभौमार्कजसैंहिकेयैः सर्वैश्चतुर्भिस्त्रिभिरेव लग्नगैः ।
हन्यात्तदा स्थायिनमाशु यायी द्यूनस्थितैर्यायिनृपं पुरेशः ॥ ४४ ॥

शुक्रेज्यशीतांशुबुधामरेज्यैः सर्वैस्त्रिभिर्द्यूनगतैर्बलाढ्यैः ।
हन्याद्रणे स्थायिनमाशु यायी सुखास्पदस्थैश्च शुभैः सुसन्धिः ॥ ४५ ॥

कुजेत्थशाले हिमगौ विलग्ने बन्धोऽथ मृत्युर्युधि नागरस्य ।
भौमेत्थशाले च विधौ कलत्रे बन्धं मृति वा लभतेऽत्र यायी ॥ ४६ ॥

लग्नेशजामित्रपयोश्च मध्ये भवेद्ग्रहो यः स्वगृहोच्चसंस्थः ।
तद्वर्गमत्वा नृपयोश्च संधिर्ज्ञेयो बुधैर्लेखकपण्डिताभ्याम् ॥ ४७ ॥

क्रूरे कलत्रे ह्युदये शुभग्रहो यच्छेद्धनं यायिनृपाय नागरः ।
विपर्ययाद्यायिनृपः पुरेश्वरं दुर्गाद्विनिष्काश्य ददाति वाऽऽस्पदम् ॥ ४८ ॥

रवीत्थशाले शशिजे सुगुप्ताश्चरा भवेयुश्च कुजेसराफात् ।
ग्रहाच्छशाङ्केन युतश्च तस्मिन् ये येऽन्यवेषाश्च भवन्ति चाराः । ४९ ॥

कुन्तला — अथ बलाढ्यैः = बलयुक्तैः, दैत्येज्यवाचस्पतिसोमपुत्रैः = शुक्रजीव—बुधैः, एकर्क्षगैः, वा लग्नगतैः अथवा शुक्रजीवबुधेषु द्वाभ्यां लग्नगताभ्यां, अथवा ईज्ये = जीवे, वा भृगुजे = शुक्रे लग्ने सति पुरेशः = नगरेशः, रणे = संयुगे यायिनृपं = आगन्तुकराजानं हन्यात् = नाशयेत् ।

सूर्येन्दुभौमार्कजसैंहिकेयैः = रविचन्द्रकुजशनिराहुभिः, एतैः सर्वैः, वा तेषु चतुर्भिः, वा त्रिभिः ग्रहैः लग्नगैः, तदा यायी नृपः, स्थायिनं नृपं हन्यात् । वा तेषु सर्वैः वा त्रिभिः ग्रहैः द्युनगतैः, तदा पुरेशः नृपः यायिनृपं हन्यात् ।

वा शुक्रेज्यशीतांशुबुधामरेज्यैः = शुक्रगुरूचन्द्रबुधैः सर्वैः, वा त्रिभिर्बलाढ्यैर्ग्रहैः द्यूनगतैः = सप्तमस्थानगतैः, तदा रणे = संग्रामे यायी नृपः स्थायिनं नृपम् आशु हन्ति । यदि तैर्ग्रहैः सुखास्पदस्थैः = चतुर्थदशमगतैः शुभैः सुसन्धिः = यायिस्थायिनोर्मेलनं भवति ।

हिमगौ = चन्द्रे विलग्ने, कुजेत्थशाले, तदा नागरस्य = नगरेशस्य, युधि = रणे, बन्धः = बन्धनं, अथवा मृत्युर्मरण स्यात् । वा विधौ = चन्द्रे कलत्रे =सप्तमे भौमेत्थशाले, तदा यायी नृपः बन्धं, वा मृर्ति = मरणं लभते = प्राप्नोति ।

लग्नेशजामित्रपयोः = लग्नेशसप्तमेशयोर्मध्ये यः कश्चिद्ग्रहः स्वगृहोच्चसंस्थः, भवेत्, तद्वर्गमत्या = तत्तस्य ग्रहस्य यो भूप——सेनापति——कुमार——मन्त्रिदासानामन्यतमो वर्गः स्याद्यथा रविचन्द्रौ राजानौ, कुजः सेनापतिः, बुधो राजकुमारः, गुरुभृगू मन्त्रिणौ, शनिः किङ्करः, एवं तस्य मत्यः = संमत्या लेखकपण्डिताभ्यां नृपयोः यायिस्थायिनोः सन्धिः ज्ञेयः।

तथोक्तं बृहज्जातके ——"राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्त्रांशुजः ।। इति ।।

कलत्रे = सप्तमे, क्रूरे = पापग्रहे सति, शुभग्रहः उदये = लग्ने सति नागरः = नगरेशः, यायिनृपाय धनं यच्छेत् = प्रयच्छति । विपर्ययात् = ऊक्तवैपरीत्यात्, यायिनृपः पुरेश्वरं दुर्गात् = निजगुप्तगारात् निष्काश्य आस्पदं = स्थानं ददाति ।

शशिजे बुधे सप्तमे रवीत्थशाले तदा चराः = गुप्तवेशधरा राजकार्यकराः भवेयुः । च = पुनः कुजेसराफात् = भौमकृतेसराफयोगात्, ग्रहात्, शशाङ्केन = चन्द्रेण यो ग्रहो युतः स्यात्, तस्मिन् ग्रहे, अन्यवेषाः = गुप्ताः चरा भवन्ति ।। ४३ – ४९।।

ज्योति —— जय–पराजयसम्बन्धी प्रश्न में शुक्र, गुरु तथा बुध यदि एक राशि में बल युक्त होकर लग्न में हों अथवा गुरु, शुक्र इन दोनों में से एक भी बली होकर लग्न में हो तो संग्राम में स्थायी राजा चढ़कर आने वाले राजा को पराजित करता है ।

यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा राहु ये सब ग्रह अथवा इनमें से चार या तीन ग्रह लग्न में हों तो स्थायी राजा को यायी राजा पराजित करता है ।

शुक्र, चन्द्रमा, बुध तथा गुरु ये सब ग्रह बलवान् होकर अथवा इनमें से तीन ग्रह सप्तम स्थान में हों तो यायी राजा स्थायी राजा को शीघ्र नष्ट कर देता है और चौथे स्थान में हो तो शीघ्र सन्धि हो जाती है ।

यदि चन्द्रमा मङ्गल के साथ इत्थशाल करता हुआ लग्न में अथवा चौथे स्थान में हो तो युद्ध में स्थायी राजा की मृत्यु हो जाती है । पूर्वोक्त चन्द्रमा यदि सातवें घर में हो तो यायी राजा की मृत्यु तथा बन्धन होता है ।

लग्नेश और सप्तमेश इन दोनों के मध्य में जो ग्रह अपनी राशि व उच्च के हो तो उसके लेखक तथा पण्डितादि द्वारा दोनों राजाओं में संधि होती है ।

यदि पापग्रह सातवें और शुभग्रह लग्न में हो तो चढ़ाई करने वाले राजा को स्थायी राजा द्रव्य देकर मिला लेता है । यदि लग्न में पापग्रह और सप्तम भाव में शुभ ग्रह हों तो यायी राजा स्थायी राजा को किले से एक बार निकालकर पुनः राज्यासन पर बैठा देता है ।

यदि बुध और सूर्य का इत्थशाल हो तो गुप्त रूप से राजा का दूत रहता है । यदि मङ्गल से इसराफ योग हो और चन्द्रमा से युक्त हो तो दूत दूसरा वेश धारण करके शत्रु के राज्य में रहता है ।। ४३ – ४९।।

अथ प्रश्नचिन्तामणौ दुर्गप्रश्नः—

प्रश्ने विलग्ने क्रूरे वा दुर्गभङ्गी हि जायते ।
विशेषतो भूमिपुत्रे राहौ वा मूर्तिगे सति ॥ ५० ॥

सप्तमे सिंहिकासूनौ दुर्गं शीघ्रेण लभ्यते ।
जामित्रोदयगे क्रूरे रिःफगे लग्ननायके ॥ ५१ ॥

द्वितीये वाऽष्टमे षष्ठे तदा दुर्गं न लभ्यते ।
सक्रूरो लग्नपो वक्री युद्धदः केन्द्रसंस्थितः ॥ ५२ ॥

षष्ठाधिपे द्यूनगते पापे वा युद्धमादिशेत् ।
पृच्छायां केन्दगैः क्रूरैः कीटे दुर्गे वधो नृणाम् ॥ ५३ ॥

भौमाष्टमेशावेकत्र तदाऽतिनिधनं नृणाम् ।
स्वायपुत्रस्थिते जीवे कीटमध्ये भयं नहि ।
शनौ भौमे च केन्द्रस्थे बहूनां वधबन्धनम् ॥ ५४ ॥

लग्नगतो यदि पापः पापेन युतेक्षितो वा स्यात् ।
लग्नात्पूर्वापरगौ पापौ युद्धं तदा घोरम् ॥ ५५ ॥

कुन्तला — प्रश्ने = प्रश्नकाले, क्रूरे = पापे विलग्ने सति दुर्गभङ्ग जायते, (तत्र) भूमिपुत्रे = कुजे, वा राहौ लग्नगे सति विशेषतः, दुर्गभङ्ग जायते । वा सिंहिकासूनौ = राहौ सप्तमे सति शीघ्रेण दुर्ग लभ्यते । क्रूरे = पापे जामित्रोदयगे = सप्तमलग्नगे, लग्ननायके = लग्नेशे, रिःफगे = द्वादशे, वा द्वितीये, वा अष्टमे षष्ठे भवेत्तदा पुनः दुर्ग न लभ्यते । सक्रूरः = समापः, वक्री = विलोमगतिकः, लग्नपः = लग्नेशः केन्द्रसंस्थितः = १।४।७।१० एतत्स्थानस्थितः सन् युद्धदः भवति ।

षष्ठाधिपे = षष्टेशे, वा पापे द्यूनगते = सप्तमस्थे, तदा युद्धम् आदिशेत् = कथयेत् । पृच्छायां = प्रश्ने, क्रूरैः = पापैः केन्द्रगैः, तत्रापि कीटे = कर्कवृश्चिकराश्यन्वतरे नृणां दुर्गे बुधः = नाशः भवति ।

वा भौमाष्टमेशौ, एकत्र यत्र कुत्रापि स्थाने भवतः, तदा नृणाम् अतिनिधनं = कष्टान्मरणं भवति । तत्र जीवे स्वायपुत्रस्थिते = द्वितीयैकादशपञ्चमस्थान स्थिते कीटराशिमध्ये च स्थिते तदा भयं नहि भवति । शनौ भौमे च केन्द्रस्थे, तदा बहूनां जनानां वधबन्धनम् आदिशेत् = कथयेत् । यदि पापः लग्नगतः वा पापेन युतेक्षितः, स्यात्, तदा घोरं युद्धं वाच्यम् । वा लग्नांत् पापौ पूर्वापरगौ, अर्थात् कर्त्तरीयोगे सति, तदा घोरं = भयङ्करं, युद्धं वाच्यम् ॥ ५० — ५५ ॥

ज्योति — दुर्गसम्बन्धी प्रश्न के समय क्रूर ग्रह लग्न में हों तो दुर्ग भङ्ग न होता है यदि मङ्गल तथा राहु लग्न में हो तो किला कदापि नही टूटेगा । यदि सप्तम स्थान में राहु हो तो किला शीघ्र जीत लिया जायगा । यदि पापग्रह लग्न में व सप्तम में और लग्नेश बारहवें, दूसरे, आठवें तथा छठें स्थान में हो तो किला नहीं जीता जायेगा । यदि लग्नेश वक्री होकर केन्द्र में हो तो युद्ध होता है ।

छठें भाव का स्वामी यदि सप्तम भाव में हो अथवा पापग्रह सप्तम हो तो भी युद्ध होता है । यदि प्रश्न समय में केन्द्र स्थान क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो किले के युद्ध में बहुत मनुष्यों का वध होता है ।

यदि मङ्गल और अष्टम भाव का स्वामी एक राशि में हो तो प्रश्नकर्ता के बहुत से मनुष्यों का नाश होगा । यदि दूसरे, ग्यारहवें तथा पाँचवें भाव में बृहस्पति बैठा हो तो किले में कोई भय नहीं होता है । यदि शनि और मङ्गल केन्द्र में हों तो युद्ध में बहुतेरे मनुष्य मारे व बाँधे जाते हैं ।

पापग्रह यदि लग्न में हो और पापग्रह से युक्त दृष्ट हो और लग्न से बारहवें तथा दूसरे स्थान में पापग्रह हों तो घोर युद्ध होता है ॥ ५० — ५५॥

अथ रोगिणः शुभाशुभविचारः —

विलग्ने षष्ठपः पापो जन्मराशिं निरीक्षते ।
रोगिणस्तस्य मरणं निश्चयेन वदेद्बुधः ॥ ५६ ॥

चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे पापमध्यगतेऽपि वा ।
मृतिः स्याद्बलसंयुक्तसौम्यदृष्ट्याऽचिरात्सुखम् ॥ ५७ ॥

विधौ लग्ने स्मरे भानौ रोगी याति यमालयम् ।
प्रश्ने क्रूरग्रहे लग्ने रोगवृद्धिश्चिकित्सकात् ॥ ५८ ॥

तथा लग्नगते सौम्ये वैद्योक्तममृत वचः ।
लग्नं वैद्यो द्युनं व्याधिः खं रोगी तुर्यमौषधम् ॥ ५९ ॥

रोगिणो भिषजो मंत्री मैत्री भेषजरोगयोः ।
व्याधेरुपशमो वाच्यः प्रकोपः शात्रवे तयोः ॥ ६० ॥

लग्ननाथे च सबले केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे ।
उच्चगे वा त्रिकोणे वा रोगी जीवति निश्चयम् ॥ ६१ ॥

एकः शुभो बली लग्ने त्रायते रोगपीडितम् ।
सौम्या धर्मारिलाभस्थास्तृतीयस्था गदापहाः ॥ ६२ ॥

कुन्तला —— षष्ठपः = षष्ठेशः वा पापः विलग्ने स्थितः जन्मराशि निरीक्षते = पश्यति तदा बुधः = गणकः तस्य रोगिणः यस्य विषये प्रश्नः कृतस्तस्य निश्चयेन मरणं वदेत् । चन्द्रे चतुर्थाष्टमगे, अपि वा पापमध्यगते सति मृतिः स्यात् । तत्र बलयुक्तशुभग्रहदृष्ट्या दृष्टे सति अचिरात् = सत्वरमेव सुखं स्यात् ।

विधौ = चन्द्रे लग्ने सति भानौ = सूर्ये स्मरे = सप्तमे सति अर्थात् पूर्णिमायां सन्ध्यायां यदि प्रश्नः स्यात्तदा रोगी जनः यमालयं = यमगृहं याति । प्रश्ने क्रूरग्रहे = पापग्रहे लग्ने सति चिकित्सकात् = वैद्यात् रोगवृद्धिः भवति ।

तथा सौम्ये = शुभग्रहे लग्नगते सति, वैद्योक्तम् अमृतं वचो वचनं भवांत । अत्र लग्नं = लग्नराशिशीलः, वैद्यः = चिकित्सकः, द्यूनं = सप्तमं, व्याधिः = रोगः, खं = दशमस्थानं रोगी, तुर्य = चतुर्थस्थानम्, औषधं भवति ।

रोगिणः = दशमेशस्य, भिषजः = लग्नेशस्य यदि मैत्री, वा भेषजरोगयोः = औषध–रोगयोर्मैत्री स्यात्तदा व्याधेः = रोगस्य उपशमः = प्रशमः, निवृत्तिः, स्यात्, तयोः लग्नेशदशमेशयोः शात्रवे = शत्रुभावे सति व्याधेः प्रकोपः वाच्यः ।

सबले = बलयुक्ते, लग्ननाथे = लग्नेशे शुभग्रहे, केन्द्रसंस्थे च सति वा उच्चगे = स्वोच्चराशिगते वा त्रिकोणे = मूलत्रिकोणे, सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलि कुम्भधराः इति परिभाषिते त्रिकोणे सति रोगी निश्चयं जीवति ।

बली एकः शुभग्रहः लग्ने स्थितः तदा रोगपीड़ितं = रोगिणं, त्रायते = रक्षति । सौम्याः = शुभग्रहाः, धर्मारिलाभतृतीयस्थाः = ९। ६। ११। ३ एषु स्थितास्तदा गदापहाः = रोगशान्तिकरा भवन्ति ।। ५६ — ६२।।

ज्योति —— किसी रोगी के शुभाशुभ प्रश्न में यदि छठें स्थान का स्वामी पापग्रह के लग्न में हो और जन्मराशि को देखता हो तो उस रोगी का मरण निश्चित समझना चाहिए । यदि चौथे तथा आठवें स्थान में और पापग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तो रोगी की अवश्य मृत्यु हो जाती है । यदि शुभग्रह बलवान होकर चन्द्रमा को देखे तो रोगी आगे चलकर रोगमुक्त हो जाता है ।

यदि चन्द्रमा लग्ने में और सूर्य सप्तम हो तो रोगी मर जाता है । यदि लग्न में पापग्रह हों तो वैद्य की दवा से रोग बढ़ जाता है । यदि लग्न में शुभग्रह हों तो वैद्य के वचन अमृत समान समझना चाहिए । लग्न वैद्य सप्तम भाव रोग, दशम भाव रोगी और चौथा भाव औषध समझ करके रोग सम्बन्धी प्रश्न का विचार करना चाहिए ।

यदि रोगी और वैद्य में, दशमेश और लग्नेश में, औषध और रोग में चतुर्थेश और सप्तमेश में मित्रता हो तो रोग की शान्ति हो और यदि शत्रुता हो तो रोग का प्रकोप कहना चाहिए ।

यदि लग्नेश बलवान् हो और शुभग्रह केन्द्र अथवा अपनी उच्च राशी तथा त्रिकोण में हों रोगी रोग से बच जाता है । यदि एक भी बलवान् शुभग्रह लग्न में हो तो वह रोगी की रक्षा करता है । यदि शुभग्रह नवें और तीसरे स्थान में बैठें हों तो वे रोग के नाशक होते हैं ॥ ५६ – ६२॥

अथ देवदोषज्ञानम् —

वह्न्यङ्कद्वादशे षष्ठे लग्नात्पापग्रहो यदि ।
हतो गदैर्जलैश्शस्त्रैस्तस्य दोषः कुलोद्भवः ॥ ६३ ॥

प्रेताश्च राहौ पितरः सुरेज्ये चन्द्रेऽम्बुदेव्यस्तपनेऽपि देव्यः ।
स्वगोत्रदेव्यश्च शनौ बुधे च भूतानि विन्द्याद्व्ययरन्ध्रसंस्थे ॥ ६४ ॥

शाकिन्य आरे भृगुजेऽम्बुदेव्यो गृह्णन्ति मर्त्यं विमुखं मुकुन्दात् ।
स्वर्क्षोच्चगे वीर्ययुते च साध्याश्चन्द्रे च नीचे विबले न साध्याः ॥ ६५ ॥

केन्द्रस्थैर्बलिभिः पापैरसाध्या देवतागणाः ।
सौम्यग्रहैश्च केन्द्रस्थैः साध्या मन्त्रस्तवार्चनैः ॥ ६६ ॥

कण्टकाष्टत्रिकोणस्थाः शुभा उपचये शशी ।
लग्ने च शुभसन्दृष्टे रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥ ६७ ॥

कुन्तला — लग्नात् यदि पापग्रहः वह्न्यङ्कद्वादशे षष्ठे ३। ९। ६। १२ स्थाने अर्थादापोक्लिमे भवेत् तदा तस्य गदैः = रोगैः, जलैः = सलिलदोषैः, शस्त्रैः, कुलोद्भवः = वंशक्रमागतः दोषः स्यात् ।

तत्र राहौ व्ययरन्ध्रसंस्थे = द्वादशाष्टमस्थानस्थिते सति, प्रेताः दोषकराः स्युः । सुरेज्ये अष्टमव्ययस्थे पितरः दोषकराः वाच्याः । चन्द्रेऽष्टमव्ययस्थे अम्बुदेव्यः = जलदेवाङ्गनाः दोषकर्त्र्यः । तपने = सूर्येऽष्टमव्ययस्थे सति देव्यः = कुमारीप्रेता बाधका वाच्याः । तत्रापि शनौ चाष्टमव्ययस्थे सति स्वगोत्रदैव्यः = स्वकुलदेवताः, बाधका ज्ञेयाः । बुधे व्ययाष्टमस्थे सति भूतानि = मृतनराः, दोषकराः । आरे = कुजेऽष्टमव्ययस्थे सति शाकिन्यः दोषकर्त्र्यः । भृगुजे = शुक्रे, व्ययाष्टमस्थे सति अम्बुदेव्यः = जलदेवताः मुकुन्दात् = विष्णोः विमुखं = विष्णुभक्तिहीनं मर्त्यं गृह्णन्ति । चन्द्रे स्वर्क्षोच्चगे = कर्कटवृषगते वीर्ययुक्ते च सति रोगाः साध्याः = भवन्ति । वा चन्द्रे नीचे = वृश्चिके, विबले = बलशून्ये च सति साध्याः चिकित्सायोग्या न भवन्ति ।

बलिभिः पापैः केन्द्रस्थैः, तदा देवतागणाः असाध्याः भवन्ति । सौम्यग्रहैः केन्द्रस्थैस्तदा मन्त्रस्तवार्चनैः = अपस्तुतिपूजनैः साध्याः भवन्ति ।

शुभाः = शुभग्रहाः, कण्टकाष्टत्रिकोणस्थाः = १।४।७।१०।८।९।५ स्थिताः, शशी = चन्द्रः उपचये = ३।६।१०।११ एतदन्यतमे स्थाने भवेत्, लग्ने च शुभसन्दृष्टे तदा रोगी जनः रोगात् विमुच्यते ॥ ६३ – ६७॥

ज्योति — यदि लग्न से नवें, बारहवें और छठें स्थान में पापग्रह हों तो रोगी तथा जलशस्त्रादि से पीड़ित मनुष्य को अपने कुल से उत्पन्न देवता का दोष जानना चाहिए। यदि ८।१२ स्थान में राहु हो तो प्रेतदोष, बृहस्पति हो तो पितरों का दोष, चन्द्रमा हो तो जल देवी का, सूर्य हो तो देवी का और शनि बुध हो तो अपने कुलपूज्य देवता का दोष समझना चाहिए।

यदि आठवें तथा बारहवें मङ्गल हो तो शाकिनी का और शुक्र हो तो जलदेवी का दोष जानना चाहिए। जो मनुष्य नारायण से विमुख रहते हैं उन्हीं को ये दोष होते हैं। यदि उक्त ग्रह अपनी राशि वा उच्चादि में हों तो उपाय से दोष शान्त हो जाता है। यदि चन्द्रमा और बृहस्पति बलहीन हों तो असाध्य समझना चाहिए।

यदि पापग्रह बली होकर केन्द्र में हो तो वे देवता असाध्य होते हैं और यदि शुभग्रह केन्द्र में हों तो मन्त्र—स्तोत्रादि से साध्य समझना चाहिए। यदि केन्द्र अष्टम और त्रिकोण स्थान में शुभग्रह हों तथा उपचय में चन्द्रमा हो और लग्न को शुभग्रह देखते हों तो रोगी रोग से मुक्त हो जाता है ॥ ६३ — ६७॥

(त्रैलोक्यप्रकाशे) नृपसेवकशुभाशुभप्रश्नः —

शीर्षोदये (३।५।६।७।८।११) **सौम्ययुतेक्षिते वा सौम्यैर्द्वितीयाष्टमसप्तमस्थैः ।**
तृतीयलाभारिगतैश्च पापैः सौख्यार्थलाभो नृपसेवकस्य ॥ ६८ ॥

लग्नाद्द्वितीये मदनाष्टमर्क्षे वित्तक्षयं सम्भ्रममार्तिमुत्युम् ।
कुर्वन्ति पापाः क्रमशो नरेन्द्राद्भृत्यस्य तस्मात्परिवर्जयेत्तम् ॥ ६९॥

लग्नाद्द्वितीयाष्टमसप्तमर्क्षाः पापाः प्रणाशं नृपभृत्ययोर्द्वयोः ।
कुर्वन्ति तेष्वेव गताश्च सौम्याः कुर्युर्धुनारोग्यसुखानि चोभयोः ॥ ७०॥

शशाङ्कसौम्यैरुदयास्तभावौ दृष्टौ युतौ वा सबलैर्न पापैः ।
प्रष्टुस्तदा स्याद्धृदि पार्थिवस्य स्नेहप्रसादादकृपाप्रतीपात् ॥ ७१॥

कुन्तला — प्रश्नलग्ने = शीर्षोदये सति वा तस्मिन् सौम्ययुतेक्षिते सति, वा सौम्यैः = शुभग्रहैः द्वितीयाष्टमसप्तमस्थैः, पापैः = शनिरविकुजैः, तृतीयलाभारिगतैः, तदा, नृपसेवकस्य = राजसेवननिरतस्य सौख्यार्थलाभः = सुखधनप्राप्तिः, भवति ।

लग्नात् द्वितीये मदनाष्टमर्क्षे = सप्तमाष्टमस्थे स्थिताः पापाः भृत्यस्य = सेवकस्य, नरेन्द्रात् = भूपात् वित्तक्षयं = धननाश, सम्भ्रमं = मनोवेगं, आर्तिं = पीडाम्, मृत्युं = मरणं च कुर्वन्ति । तस्मात्तं नरेन्द्रं वर्जयेत् । लग्नात् पापाः द्वितीयाष्टमसप्तमस्थाः, तदा द्वयोर्नृपभृत्ययोः प्रणाशं कुर्वन्ति । सौम्याः = शुभग्रहाः, तेषु = द्वितीयाष्टमसप्तमेषु गताः, तदा उभयोः = नृपसेवकयोः धनारोग्यसुखानि कुर्युः ।

शशाङ्कसौम्यैः = चन्द्रबुधगुरुशुक्रैः, उदयास्तभावौ = लगनसप्तमभावौ दृष्टौ वा युतौ सबलैः पापैः न युतेक्षितौ, भवेताम् तदा प्रष्टुः = प्रश्नकर्त्तुः, पार्थिवस्य हृदि, अकृपाप्रतीपात् = दयोदयात्, स्नेहप्रसादौ = प्रेमप्रसन्नत्वे च भवतः ।। ६८ — ७१ ।।

ज्योति — स्वामी–सेवक सम्बन्धी प्रश्न में शीर्षोदय लग्न हो और उसमें शुभग्रह बैठा हो अथवा शुभग्रह देखते हों अथवा दूसरे, आठवें और सातवें भाव में भी शुभ ग्रह हों तो तीसरे, छठें तथा ग्यारहवें स्थान में पापग्रह हों तो राजा के सेवक को सुख और धन का लाभ होता है ।

यदि लग्न से दूसरे, सातवें और आठवें स्थान में पापग्रह बैठे हों तो वे धनक्षय, सभ्रम, कष्ट और मृत्यु आदि अनिष्ट करते हैं । इसलिये उस स्वामी को त्याग देना चाहिए । यदि लग्न से दूसरे तथा आठवें स्थान में पापग्रह हों तो स्वामी और सेवक दोनों का नाश हो और यदि शुभग्रह हों तो दोनों को धन आरोग्य तथा सुख मिलता है ।

यदि चन्द्रमा और बुध ये दोनों सप्तम स्थान में बलवान् शुभग्रहों से दृष्ट या युक्त होकर बैठे हों, किन्तु पापयुक्त न हों तो प्रश्नकर्ता के हृदय में स्नेह व कृपा रहती है और यदि शुभग्रह के स्थान में पापग्रह बैठे हों तो विपरीत फल होता है ।। ६८ — ७१ ।।

अथान्य ईशो मम भविष्यति न वा ? इति प्रश्ने —

षष्ठेश्वरेण व्ययपेन केन्द्रे यदीत्थशालं कुरुते विलग्नपः ।
प्रष्टुस्तदाऽन्यः प्रभुरर्थदः स्यादतः प्रतीपात्र भवेत्परः प्रभुः ।। ७२ ।।

लग्नेश्वरे स्वर्क्षगते स्वतुङ्गकेन्द्रस्थिते शीतकरेत्थशाले ।
शुभग्रहैर्दृष्टयुते बलान्विते प्रष्टुर्निजस्वाम्यमितार्थलाभः ।। ७३ ।।

जायेश्वरे स्वोच्चनिजर्क्षसंस्थे केन्द्रस्थिते शीतकरेत्थशालगे ।
शुभग्रहैर्दृष्टयुते बलोत्कटैः प्रष्टुस्तदाऽन्यः प्रभुरर्थदो भवेत् ।। ७४ ।।

इदं गृहं वा शुभमन्यदालयं स्थानन्त्विदं वा शुभमन्यदालयम् ।
ममात्र भद्रं गमनात्तु तत्र वा पृष्ठोदयोत्थं विधिना विमृश्य ।। ७५ ।।

कुन्तला — केन्द्रे = १।४।७।१० स्थाने स्थितः, विलग्नपः = लग्नेशः यदि षष्ठेश्वरेण = षष्ठेशेने, वा व्ययपेन = व्ययेशेन इत्थशालं कुरुते, तदाः प्रष्टुः = प्रश्नकर्त्तुः अन्यः = द्वितीयः प्रभुः अर्थदः = धनदः स्यात् । अतः प्रतीपात् = विलोमात्, परः = अन्यः, प्रभुः = ईश्वरः अर्थदः न स्यात् ।

लग्नेश्वरे = लग्नेशे, स्वर्क्षगते = स्वराशिस्थिते, स्वतुङ्गकेन्द्रस्थिते =स्वोच्चकेन्द्रगते, शीतकरेत्थशाले = चन्द्रकृतमुथशिलयोगे, बलान्विते = बलयुक्ते, शुभग्रहैः = दृष्टयुते, तदा प्रष्टुः = प्रश्नकर्त्तुः, निजस्वाम्यमितार्थलाभः = स्वप्रभोः अतुलधनलाभः स्यात् ।

जायेश्वरे = सप्तमेशे, स्वोच्चनिजर्क्षसंस्थे, केन्द्रस्थिते, शीतकरेत्थशाले = चन्द्रकृतमुथशिले, बलोत्कटै: = वीर्ययुक्तै: शुभग्रहैर्दृष्टयुते तदा प्रष्टु: = प्रच्छकस्य अन्य: प्रभु: = स्वामी, अर्थद: = धनद: भवेत् ।

इदं गृहं मम शुभं भविष्यति वा अन्यत् = अपरं गृहम् ? वा इदं स्थानं शुभप्रदं भविष्यति ? अत्र मम भद्रं = कुशलम्, वा इतो गमनात् कुशलं ? इत्येवं प्रश्नेषु पृष्ठोदयोत्थं = पृष्ठोदयराशिलग्नजनितं सर्वं विधिना = युक्त्या विमृश्य = विचार्य, फलं बोध्यम् ।। ७२ – ७५।।

ज्योति —— यदि षष्ठेश व बारहवें भाव के स्वामी से केन्द्र में स्थित लग्नेश इत्थशाल करे तो प्रश्नकर्ता को अन्य स्वामी धन देगा । । यदि इनसे विपरीत हो तो अन्य प्रभु नहीं होगा ऐसा कहना चाहिए ।

लग्नेश यदि अपनी राशि वा अपने उच्च में स्थित होकर केन्द्र में हो और चन्द्रमा से इत्थशाल करता हो तथा शुभग्रहों से युक्त, दृष्ट और बलवान् हो तो प्रश्नकर्ता को अपने प्रथम स्वामी से ही असंख्य धन प्राप्त होता है ।

यदि सप्तमेश अपनी राशि, अपने उच्च और केन्द्र में होकर चन्द्रमा के साथ इत्थशाल करता हो और बलवान् शुभग्रह उसे देखते हों वा युक्त हो तो प्रश्नकर्ता को अन्य प्रभु से धन प्राप्त होता है ।

यदि गृह हमको शुभ है अथवा अन्य स्थान, अन्यत्र गमन में शुभ होगा या नहीं इत्यादि प्रश्नों में भी इसी प्रकार विचार का फल कहना चाहिए ।। ७२ – ७५।।

अथ नष्टद्रव्यलाभप्रश्न: । तत्र धनप्राप्तौ प्रश्नचिन्तामणौ ——

प्रश्ने चतुर्थाधिपतिस्तत्रस्थे वाऽवलोकिते ।
अवश्यं वर्तते तत्र धनं चन्द्रेऽथ वा वदेत् ।। ७६ ।।

कुन्तला —— चतुर्थाधिपति: = चतुर्थेश:, प्रश्ने = प्रश्नलग्ने, भवेत्, अथवा चन्द्रे तत्र = लग्नस्थे, वा चतुर्थाधिपेन अवलोकिते = दृष्टे, तत्र अवश्यं धनं वर्त्तते, इति वदेत् ।। ७६ ।।

ज्योति —— प्रश्नलग्न में चतुर्थेश हो वा चतुर्थेश प्रश्नलग्न को देखे तो धन अवश्य प्राप्त हो । यदि चन्द्रमा भी प्रश्नलग्न में हो तो अवश्य द्रव्य प्राप्त होने की बात कहनी चाहिए ।। ७६ ।।

वित्तपे धनगे बन्धौ वाऽस्ति तत्र धनं बहु ।
पापे तुर्यगते द्रव्यं स्थितं तूर्णं न लभ्यते ।। ७७ ।।

कुन्तला —— वित्तपे = द्वितीयेशे धनगे = द्वितीयस्थानगते, अपिवा बन्धौ = चतुर्थस्थाने गतवति सति तत्र बहु = अधिकं धनं विद्यते । पापे = पापग्रहे तुर्यगते = चतुर्थस्थानगते सति स्थितं द्रव्यं = धनं तूर्णं = शीघ्र न लभ्यते ।। ७७ ।।

ज्योति — यदि धनभावेश धनस्थान अथवा चतुर्थ स्थान में हो तो बहुत धन प्राप्त होता है । चतुर्थ भाव में पापग्रह हो तो रखा हुआ धन भी नहीं मिलता ॥ ७७ ॥

भौमे सप्ताष्टराशिस्थे धनमन्यत्र नाप्यते ।
लग्ने तमो रविश्छिद्रे तदा द्रव्यं न लभ्यते ॥ ७८ ॥
(सप्ताष्टदशपातालेशो विधुर्धनदो गुरुः ॥ ७८ ॥)

कुन्तला — भौमे = कुजे सप्ताष्टराशिस्थे सति, अन्यत्र, धनं, अर्थात् यत्र पूर्व रक्षितं, तत्र न विद्यते, ततोऽन्यतो गतम्, अत एव न आप्यते । तमो राहुः लग्ने, रविः रविः छिद्रे = अष्टमे स्थितस्तदा द्रव्यं न लभ्यते ।

(सप्तष्टादशपातालेशः = ७। ८। १०। ४ एतदन्यतमभावपतिः, विधुः = चन्द्रः वा गुरुः स्यात्तदा धनदः = अर्थलाभकारो भवति ।) ॥ ७८ ॥

ज्योति — यदि मङ्गल सप्तम व अष्टम राशि में हो तो अन्यत्र धन है और प्राप्त नहीं होता । यदि लग्न में राहु तथा अष्टम सूर्य हो तो द्रव्य की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ७८ ॥

लग्नेश्वरे द्यूनगते विलग्ने जायेश्वरे नष्टधनस्य लाभः ।
जायेशलग्नाधिपतीत्थशाले द्यूने विनष्टं धनमेति मर्त्यः ॥ ७९ ॥

कुन्तला — लग्नेश्वरे = लग्नेशे, द्यूनगते = सप्तमस्थानगते, जायेशे = सप्तमेशे विलग्ने, तदा नष्टधनस्य लाभः भवति । वा द्यूने = सप्तमस्थाने जायेशलग्नाधिपतीत्थशाले = सप्तमेशलग्नेशयोर्मुथशिले सति मर्त्यः = मनुष्यः, विनष्टं धनम्, एति = प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७९ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश सप्तम में और सप्तमेश लग्न में हो तो नष्ट धन प्राप्त होता है । यदि सप्तमेश और लग्नेश का सप्तम स्थान में इत्थशाल हो तो नष्ट धन आप से आप प्राप्त हो जाता है ॥ ७९ ॥

लग्नेशजायाधिपतीत्थशाले लग्नेश्वरं यच्छति तस्करोऽर्थम् ।
सूर्ये विलग्नेऽस्तमिते शशाङ्के न लभ्यते यद्द्रविणं विनष्टम् ॥ ८० ॥

कुन्तला — लग्नेशजायाधिपतीत्थशाले सति सप्तमेशो लग्नेशं महो यच्छति = ददाति, तदाऽर्थ = धनं तस्करो ददाति । सूर्ये विलग्ने, शशाङ्के अस्तमिते, सति तदा विनष्टं द्रविणं = धनं, न लभ्यते ॥ ८० ॥

ज्योति — यदि लग्नेश और सप्तमेश का इत्थशाल हो तो चोर स्वयं ही धन दे जाता है । यदि सूर्य लग्न में तथा चन्द्रमा सातवें में हो तो नष्ट धन प्राप्त नही होता है ॥ ८० ॥

कर्मेशलग्नाधिपतीत्थशाले चौरः स्वमादाय पुरात्पलायते ।
चन्द्रेऽस्तपे चार्ककरप्रविष्टे तल्लभ्यते नष्टधनं सतस्करम् ॥ ८१ ॥

कुन्तला — कर्मेशलग्नाधिपतीत्थशाले = दशमेशलग्नेशयोर्मुथशिले सति, चौरः स्वं = धनम्, आदाय = गृहीत्वा, पुरात् = स्वग्रामात् पलायते । चन्द्रे, अस्तपे = सप्तमेशे च अर्ककरप्रविष्टे = अस्तङ्गते सति, सतस्कर = सचौरं, तत् नष्टधनं लभ्यते ।। ८१ ।।

ज्योति — यदि दशम भाव का स्वामी लग्नेश के साथ इत्थशाल करता हो तो चोर धन लेकर नगर से अन्यत्र भाग जाता है । यदि चन्द्रमा तथा सप्तमेश ये दोनों अस्तङ्गत हों तो चोरसहित धन प्राप्त हो जाता है ।। ८१ ।।

अस्तेश्वरे केन्द्रगतेऽस्ति चौरस्तत्रैव वाऽन्यत्र पुराद्विनिर्गतः ।
धर्मेशदुश्चिक्यपतीत्थशाले जायेश्वरेऽन्यत्र गतः स चौरः ।। ८२।।

कुन्तला — अस्तेश्वरे = सप्तमेशे, केन्द्रगते सति चौरः = तस्करः, तत्रैव = चौर्यस्थले विद्यते । वा सप्तमेशे अन्यत्र = केन्द्राद्भिन्नस्थाने स्थिते सति चौरः पुरात् = ग्रामात्, विनिर्गतः = बहिः पलायितो वाच्यः । जायेश्वरे = सप्तमेशे धर्मेशदुश्चिक्यपतीत्थशाले = नवमेशतृतीयेशयोर्मुथशिले सति, स चौरः अन्यत्र = पुराद्बहिर्गतः ।। ८२ ।।

ज्योति — यदि सप्तमेश केन्द्र में हो तो चोर उसी नगर में है बाहर नहीं भागा है । यदि धर्मेश, तृतीयेश और सप्तमेश का परस्पर इत्थशाल हो तो चोर को भाग गया समझना चाहिए ।। ८२ ।।

कर्मेशलग्नाधिपतीत्थशाले यल्लभ्यते राजकुलाच्च चौर्यम् ।
त्रिधर्मपद्यूनपतीत्थशाले त्वन्यप्रदेशाद्गमने तदाप्तिः ।। ८३ ।।
शुभेत्थशाले हिमगौ विलग्ने खस्थेऽथ वा नष्टधनस्य लाभः ।
सुस्नेहदृष्ट्या रविणा शुभेन दृष्टे विलग्ने हिमगौ च लाभः ।। ८४ ।।

कुन्तला — कर्मेशलग्नाधिपतीत्थशाले = दशमेशलग्नेशयोर्मुथशिले सति राजकुलात्, चौर्य = चोरितं वस्तु लभ्यते । त्रिधर्मपद्यूनपतीत्थशाले = दशमेशलग्नेशयोर्मुथशिले सति राजकुलात्, चौर्य = चोरितं वस्तु लभ्यते । त्रिधर्मपद्यूनपतीत्थशाले = तृतीयेशनवमेशसप्तमेशानामित्थशाले सति अन्यप्रदेशाद् गमने तदाप्तिः = चोरितधनलाभः । हिमगौ = चन्द्रे, विलग्ने अथवा खस्थे = दशमस्थे शुभेत्थशाले सति नष्टधनस्य लाभः । वा हिमगौ = चन्द्रे, विलग्ने, रविणा, शुभेन = शुभग्रहेण च सुस्नेहदृशा = मित्रदृशा दृष्टे तदा नष्टधनस्य लाभः स्यात् ।। ८३ – ८४।।

ज्योति — यदि दशमेश और लग्नेश का इत्थशाल हो तो पुलिस द्वारा चोर पकड़ लिया जाता है । यदि तीसरे, नवें और सातवें इन भावों के स्वामी का परस्पर इत्थशाल हो रहा हो तो दूसरे देश में जाने से चोरी का माल प्राप्त होता है । यदि लग्न अथवा दशम भाव में बैठे हुए चन्द्रमा शुभग्रहों के साथ इत्थशाल करता हो तो नष्ट धन का लाभ होता है । यदि लग्न में चन्द्रमा को सूर्य तथा शुभग्रह मित्रदृष्टि से देखते हों तो भी नष्ट धन मिल जाता है ।। ८३ – ८४।।

अथ षट्पञ्चाशिकायाम् —

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा ।
स्थितं तत्रैव तद्द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ।। ८५।।

कुन्तला — स्थिरोदये = स्थिरराशिलग्ने, वा तत्र स्थिरराशिनवांशे, अपि वा वर्गोत्तमगते = चरराशिप्रथमनवांशे, स्थिरराशौ पञ्चमनवांशे, द्विःस्वभावराशौ नवमनवांशे, लग्नांशे सति स्वकीयेनैव आत्मना, वा आत्मीयजनेन चोरितं तद्द्रव्यं तत्रैव = निजगृहे एव स्थितं वाच्यम् ।। ८५।।

ज्योति — यदि स्थिर लग्न का उदय हो और स्थिरराशि का नवांश हो और वर्गोत्तम नवांश हो तो उसी जगह पर नष्ट द्रव्य कहे अथवा आत्मीय व्यक्ति में से किसी ने चुरा लिया है, ऐसा समझना चाहिए ।। ८५।।

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विलग्नतः ।
द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्धनम् ।। ८६।।

कुन्तला — विलग्नतः = विलग्नस्य आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु द्वारदेशे, तथा मध्ये = गृह मध्ये, गृहान्ते = गृहद्वितीयप्रान्ते धनं वदेत् । अर्थात् लग्नस्य प्रथमद्रेष्काणे द्वारदेशे, लग्नस्य द्वितीयद्रेष्काणे गृहमध्ये, लग्नस्य तृतीयद्रेष्काणे सति गृहापरप्रान्ते धनं रक्षितं वदेत् = कथयेत् ।। ८६।।

ज्योति — यदि लग्न का प्रथम द्रेष्काण हो तो नष्ट वस्तु द्वार के समीप कहना चाहिए । यदि मध्य का द्रेष्काण हो तो घर के बीच में और तीसरा द्रेष्काण हो तो घर के पीछे नष्ट वस्तु को विद्यमान कहना चाहिए ।। ८६।।

प्रश्नतन्त्रे —

पतितधनस्थप्रश्ने मिथो गृहस्थौ विलग्नसप्तेशौ ।
यदि मुथशिलन्तयोः स्यात्तदाऽऽशुतत्रैव वदति धनम् ।। ८७।।

कुन्तला — पतितधनस्थप्रश्ने = निधिस्थापितवित्तलाभप्रश्ने यदि विलग्नसप्तेशौ = लग्नेशसप्तमेशौ, मिथो गृहस्थौ = परस्परराशिगतौ, लग्नेशः सप्तमे, सप्तमेशः लग्ने, तथा च यदि तयोः = लग्नेशसप्तमेशयोः मुथशिलं, तदा आशु = शीघ्रं, तत्रैव धनं गणकः वदति = कथयति ।। ८७ ।।

ज्योति — गिरे हुए धन के प्रश्नसमय में यदि लग्नेश सप्तम में और सप्तमेश लग्न में हो और दोनों का इत्थशाल योग हो रहा हो तो तुरन्त कह देना चाहिए कि नष्ट धन वहीं है ।। ८७ ।।

नष्टं क्व दिशि प्राप्तं ? पृच्छायां लग्नगे विधौ प्राच्याम् ।
खस्थाने याम्यायामस्ते वारुण्यां वा भुव्युदीच्याम् ॥ ८८॥

कुन्तला —— वा नष्टं मदीयं धनं क्व = कस्यां, दिशि प्राप्तं = गतम् ? इति पृच्छायां = प्रश्ने, विधौ = चन्द्रे लग्नगे सति, प्राच्यां = पूर्वस्यां धनं गतं वाच्यम् । वा विधौ खस्थाने = दशमस्थाने सति याम्यायाम् — दक्षिणस्याम्, धनं वाच्यम् । वा विधौ अस्ते = सप्तमे सति वारुण्यां = पश्चिमस्यां धनं वाच्यम् । वा विधौ भुवि = चतुर्थस्थानस्थे सति, उदीच्याम् = उत्तरस्यां गतं धनं वाच्यम् ॥ ८८॥

ज्योति —— यदि चन्द्रमा लग्न में हो तो पूर्व, दशम में हो तो दक्षिण, सप्तम में हो तो पश्चिम और चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा हो तो उत्तर दिशा में नष्ट धन प्राप्त हो ॥ ८८ ॥

यदि नेन्दुः केन्द्रे तच्चत्वारिंशांशकैश्च पञ्चयुतैः ।
भागे दिक्क्रम उक्तो वह्न्यवनीवायुवारिराशौ वा ॥ ८९॥

कुन्तला —— यदि इन्दुः = चन्द्रः केन्द्रे न भवेत् तदा पञ्चयुतैः चत्वारिंशांशकैः = पञ्चचत्वारिंशांशकैः भागैः दिक्क्रम उक्तः । वा वह्न्यवनीवायुवारिराशौ दिक्कमउक्तः । अग्नि तत्त्वात्मके राशौ लग्ने अग्निकोणे, भूमितत्त्वात्मके राशौ लग्ने नैर्ऋत्यकोणे, वायु तत्त्वात्मके राशौ लग्ने वायुकोणे, जलतत्वात्मकेराशौ ऐशान्यकोणे धनं वदेत् ॥ ८९॥

ज्योति —— यदि चन्द्रमा केन्द्र में न हो तो जिस केन्द्र के समीप हो, उस दिशा में नष्ट धन कहना चाहिए । यदि अग्नितत्व की राशि लग्न हो तो पूर्व, पृथ्वी तत्त्व लग्न हो तो दक्षिण, वायुतत्व लग्न हो तो पश्चिम और जलतत्व की लग्न हो तो उत्तर दिशा में नष्ट धन गया समझना चाहिए ॥ ८९॥

नष्टवीतवित्तलब्धेः पृच्छायां चौरसप्तमं ततो लाभः ।
हिबुकं द्रव्यस्थानं लग्नं चन्द्रश्च धननाथः ॥ ९०॥

लग्नेशोऽस्तेऽस्तपतिना चेन्मुथशिली ततो लाभः ।
यद्यष्टेशो लग्ने तदा स्वयं तस्करोऽर्पयति ॥ ९१॥

कुन्तला —— नष्टवीतवित्तलब्धेः = भ्रष्ट—पतित—चोरितधनलाभस्य, पृच्छायां, चौरसप्तमं चौरः सप्तमं भवनं बोध्यम् । ततः = सप्तमात्, लाभः = धनलाभः, विचिन्त्यः । हिबुकं = चतुर्थस्थानं, द्रव्यस्थानं बोध्यम् । चन्द्रः वा धननाथः लग्नं प्रति भवेत् लग्ने स्थितो भवेत् । वा लग्नेशः अस्ते = सप्तमे यदि अस्तपतिना = सप्तमेशेन मुथशिली तदा ततो लाभः वाच्यः । यदि अष्टेशः = अष्टमेशः लग्ने भवेत्तदा स्वयम् = आत्मना तस्करः चौर आगत्य अर्पयति = ददाति ॥ ९० — ९१॥

ज्योति — चोरी गये हुये धन मिलने के प्रश्न में सप्तम स्थान से चोर, चतुर्थ स्थान से प्रष्टा, लग्नसे धन और चन्द्रमा को धनेश जानना चाहिए । यदि लग्नेश सप्तम स्थान में रहकर सप्तमेश से इत्थशाल करता हो तो नष्ट धन मिल जाता है । यदि अष्टमेश लगन में हो तो चोर स्वयं ही धन दे जाता है ।। ९० — ९१ ।।

रविरश्मिगे धनेशे वाऽस्तमिते तस्करस्य लाभः स्यात् ।
लग्नेशदशमपत्योर्मुथशिलतः प्राप्यते स्ववान् चौरः ।। ९२ ।।

लग्नेशदृष्ट्यभावे चौरः सह मात्रया याति ।
अस्ताधिपतौ दग्धे रविरश्मिगतेऽथ लभ्यते चौरः ।। ९३ ।।

कुन्तला — वा धनेशे = द्वितीयेशे, रविरश्मिगते = अस्तङ्गते, वा, अस्तगते तदा तस्करस्य लाभः स्यात् । लग्नेशदशमपत्योः = लग्नेशदशमेशयोः, मुथशिलतः, स्ववान् = धन सहितः चौरः प्राप्यते = गृह्यते । तत्र लग्नेशदृष्ट्यभावे सति चौर्यार्थं मात्रया सह चौरः याति । अस्ताधिपतौ = सप्तमेशे दग्धे = अस्तङ्गते च सति चौरो लभ्यते = गृहपतिना परिगृह्यते ।। ९२ — ९३ ।।

ज्योति — यदि धनेश सूर्य के साथ हो अथवा अस्तङ्गत हो तो चोर पकड़ जाता है । यदि लग्नेश और दशमेश का इत्थशाल हो तो धन सहित चोर मिल जाता है । यदि सप्तम भाव पर लग्नेश की दृष्टि न हो तो चोर धन सहित स्वयं चला आता है । यदि सप्तमेश दग्ध तथा अस्तङ्गत हो तो चोर पकड़ जाता है ।। ९२ — ९३ ।।

लग्नपकृतेत्थशाले राजभयाद्धनमिदं स्वयं दत्ते ।
लग्नास्तपयोर्न स्याद्यदि दृष्टिर्लग्नपस्तथा विकलः ।। ९४ ।।

तत्तस्करोऽस्य हस्ताद्दाति चौर्यं हि राजकुले ।
लग्नपमध्यपयोगे राजकुलं प्राप्य लभ्यते चौर्यम् ।। ९५ ।।

कुन्तला — उक्तयोगे लग्नपकृतेत्थशाले राजभयात् राजदण्डभयात् स्वयमात्मना एवागत्य इदं धनं दत्ते । लग्नास्तपयोर्यदि मिथो दृष्टिः न स्यात्तथा लग्नपः विकलः स्यात्, तदा तस्करः = चौरः, अस्य = गृहपतेः हस्तात् आदाय राजकुले चौर्यं = चोरितधनं ददाति । लग्नप—मध्यपयोगे = लग्नेशदशमेशयोर्योगे राजकुलं प्राप्य, चौर्यं = चोरितद्रव्यं लभते ।। ९४ — ९५ ।।

ज्योति — यदि लग्नेश का सप्तमेश के साथ इत्थशाल हो तो राजा के भय से चोर धन दे देता है । यदि लग्नेश तथा सप्तमेश की दृष्टि न हो और यदि लग्नेश बलहीन हो तो चोर अपने हाथ से राजसभा में चोरी का धन उपस्थित कर दे देता है। यदि लग्नेश तथा दशमेश एक साथ हों तो चोरी गया हुआ माल राजद्वार से मिल जाता है ।। ९४ — ९५ ।।

रन्ध्रं चौरस्य धनं धनपे तत्राथ सप्तमे नाप्तिः ।
रन्ध्रपतौ धनपस्य तु मुथशिलयोगे च प्राप्यते वित्तम् ॥ ९६ ॥

कुन्तला — चौरस्य धनं रन्ध्रम् = अष्टमस्थानम् बोध्यम्, अथ धनपे = द्वितीयेशे तत्र = अष्टमे, अथ सप्तमे स्थिते, तदा आप्तिः = चौरधनप्राप्तिः, न स्यात् । रन्ध्रपतौ = अष्टमेशे धनपस्य = द्वितीयेशस्य मुथशिलयोगे सति वित्तं धनं प्राप्यते ॥ ९६॥

ज्योति — यदि अष्टम भाव में धनेश हो अथवा धनेश सप्तम में हो तो धन नही मिलता है । यदि अष्टमेश धनेश के साथ इत्थशाल करता हो तो धन मिल जाता है ॥ ९६॥

रन्ध्रपतौ दशमपतेर्मुथशिलगे चौरपक्षकृभ्दूपः ।
धनपे विलग्नपे सति दृष्टिविहीने श्रुतिर्भवति नाप्तिः ॥ ९७ ॥

कुन्तला — वा रन्ध्रपतौ = अष्टमेशे दशमपतेः मुथशिलयोगे चौरपक्षकृत् भूपः वेद्यः । धनपे विलग्नपे च दृष्टिविहीने मिथो दृष्टिवर्जिते सति, श्रुतिः = चोरितद्रव्यस्य श्रवणमात्रमेव भवति, आप्तिः = प्राप्तिः न भवति ॥ ९७ ॥

ज्योति — यदि अष्टमेश और दशमेश का परस्पर इत्थशाल हो तो राजा चोर का पक्ष लेता है । यदि लग्नेश तथा धनेश एक ही हो और लग्न व धनस्थान पर दृष्टि न हो तो चोरों की वस्तु सुनने में आती है, किन्तु प्राप्त नही होती है ॥ ९७॥

चौरज्ञानप्रश्ने लग्नर्रावशशिदृशा स्वगृहचौरः ।
अनयोरेकदृशा गृहसमीपवर्ती वसत्येषः ॥ ९८ ॥

कुन्तला — चौरज्ञानप्रश्ने = कुत्रत्यः कीदृशः कश्च चौरः? इति प्रश्ने, लग्नरविशशिदृशा = लग्नोपरि रविचन्द्रयोर्दृष्ट्या स्वगृहचौरः = स्वपरिवार एव चौरः स्यात् । अनयोः = रविचन्द्रयोः, एकदृशा = लग्नोपरि रविदृशा, वा लग्नोपरि चन्द्रदृशा एषः = चौरः गृह समीपवर्त्ती वसति ॥ ९८॥

ज्योति — यदि चौरज्ञान के प्रश्नसमय लग्न में सूर्य तथा चन्द्रमा की दृष्टि हो तो अपने ही घर में कोई चोर है । यदि इनमें से किसी एक की ही दृष्टि हो तो अपने को चोर के समीपवर्ती समझना चाहिए ॥ ९८ ॥

लग्नस्थे लग्नपतावस्तपयुक्ते च गृहगतश्चौरः ।
अस्ताधिपतावन्त्ये सहजे वा स्वीयभृत्योऽयम् ॥ ९९॥

कुन्तला — लग्नपतौ = लग्नेशे, लग्नस्थे, अस्तपयुक्ते = सप्तमेशसहिते, च सति तदा चौरः = धनापहर्त्ता गृहगत एव जनो वेद्यः । वा अस्ताधिपतौ = सप्तमेशे, अन्त्ये = द्वादशे वा सहजे = तृतीये, तदा अयं चौरः स्वामिभृत्यः = स्वामिसेवक एव विज्ञेयः ॥ ९९॥

ज्योति — यदि सप्तमेश सहित लग्नेश लग्न में हो तो घर ही में चोर को समझना चाहिए । यदि सप्तमेश बारहवें या तीसरे स्थान में हो तो सेवक को चोर जानना चाहिए ।। ९९।।

अस्तेशे तुङ्गस्थे स्वगृहे वा तस्करः प्रसिद्धः स्यात् ।
लग्नदशमास्तभावाः क्रमेण वीक्ष्याः स्वतुङ्गभवनादौ ।
यः खेटः स्याद्बलवान् स ज्ञेयस्तस्करस्य बली ।। १००।।

कुन्तला — अस्तेशे = सप्तमेशे, तुङ्गस्थे उच्चस्थे वा स्वगृहे = स्वभवने सति तस्करः = धौरः, प्रसिद्ध = सकललोकविदितः स्यात् । एवं लग्नदशमास्तभावाः वीक्ष्याः = विचारणीयाः, यः बलवान् खेटः = ग्रहः स्वतुङ्गभवनादौ = स्वोच्चराश्यादौ भवेत् स एव तस्करस्य = चौरस्य बली = सहायकः ज्ञेयः ।। १००।।

ज्योति — यदि सप्तमेश अपने उच्च में वा अपने घर में हो तो चोर को प्रसिद्ध समझना चाहिए । लग्न, दशम तथा सप्तम यह भाव क्रमशः देखें । यदि इन भावों में से कोई उच्चादि बली ग्रह हो तो वह चोर का बल जानना चाहिए और उनके अनुसार फल कहना चाहिए ।। १००।।

एवं योगं तु विना द्यूनेशस्यैव बलमभिग्राह्यम् ।
इत्थं चौरज्ञाने चौरः सूर्ये, गृहेश्वरस्य पिता ।। १०१।।

कुन्तला — एवं योगं तु बिना, एतदुक्तसकलयोगघटनाभावे द्यूनेशस्य = सप्तमेशस्य बलम् अभिग्राह्यं = ग्राह्यम् । इत्थं चौरज्ञाने सूर्ये नीचे (तुले) सति गृहेश्वरस्य पिता एव चौरः स्यात् ।। १०१।।

ज्योति — पूर्वोक्त योग के सिवाय सप्तमेश ही का बल ग्रहण करना चाहिए । उसी ग्रह के अनुरूप चोर की जाति तथा रूप कहना चाहिए । यदि योगकर्ता सूर्य हो तो घर के स्वामी के पिता को चोर समझना चाहिए ।। १०१।।

चन्द्रे माता, शुक्रे भार्या, मन्दे सुतो भवेन्नीचे ।
जीवे गृहप्रधानं भौमे पुत्रोऽथ वा भ्राता ।। १०२।।

कुन्तला — चन्द्रे नीचे = वृश्चिके सति, तदा गृहपतेर्माता = जननीचौरः । शुक्रेनीचे (कन्यायां) गृहपतेर्भार्या = चौरः, अत्र यदि गृहे प्रधाना स्त्री स्यात्तदा तत्पतिरेव चौरः स्यात् । मन्दे = शनौ नीचे = मेषस्थे सति सुतः = पुत्रः, चौरः भवेत् । जीवे = गुरौ नीचे = मकरस्थे सति गृहप्रधानः = गृहमुख्यो जनश्चौरः स्यात् । भौमे = कुजे, नीचे = कर्कस्थे सति पुत्रः वा भ्राता चौरः स्यात् ।। १०२।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा हो तो माता, शुक्र हो तो स्त्री, शनि हो तो पुत्र तथा सेवक, बृहस्पति हो तो घर का प्रधान, मङ्गल हो तो पुत्र अथवा भाई को चोर समझना चाहिए ॥ १०२॥

ज्ञे स्वजनी मित्रं वा ज्ञात्वेत्थं पुण्यसहममादेश्यम् ।
तस्मिन् क्रूरादृष्टे पुरा न चौरोऽन्तपे पुराऽपि स्यात् ॥ १०३॥

कुन्तला — ज्ञे = बुधे, नीचे = मीनस्थे सति स्वजनः, वा मित्रं = सुहृत्, चौरः, इत्थं विचार्य पुण्यसहमम् अपि विचार्य फलम् आदेश्यम् । तस्मिन् = पुण्यसहमे, क्रूरादृष्टे = पापदृष्टिरहिते सति, पुरा = पूर्वम्, अयं चौरश्चौरो न, वर्त्तमानसमये एवायं चौरः सञ्जातः । अस्तपे = सप्तमेशे क्रूरयुतदृष्टे तदा पुराऽपि अयं चौरः स्यादधुना तु विद्यते एव ॥ १०३॥

ज्योति — यदि बुध हो तो स्वजन अथवा मित्र को चोर जानना चाहिए तथा पश्चात् पुण्यसहम पर विचार करना चाहिए । यदि पुण्यसहम पर क्रूर दृष्टि न हो तो पहले चोर नहीं था और सप्तमेश पापदृष्ट हो तो पहले भी चोर था, ऐसा समझना चाहिए ॥ १०३॥

अस्तेशान्मूसरिफे भौमे चौरः पुराऽपि निगृहीतः ।
सप्तेशे रविपुत्रे चन्द्रदृशा तस्करो हि पाखण्डी ॥ १०४ ॥

कुन्तला — वा भौमे = कुजे, अस्तेशात् = सप्तमेशात्, मूसरीफे = सति पुराऽपि असौ चौरः निगृहीतः स्यात् । सप्तेशे रविपुत्रे = शनौ, चन्द्रदृशा दृष्टे तदा तस्करः = चौरः, पाखण्डी स्यात् ॥ १०४॥

ज्योति — यदि सप्तमेश से मंङ्गल का ईसराफ योग हो रहा हो तो वह चोर पहले भी चोरी में पकड़ा गया था । यदि सप्तमेश शनि हो और उस पर चन्द्रमा की दृष्टि पड़ रही हो तो चोर को पाखण्डी समझना चाहिए ॥ १०४ ॥

जीवो विलोक्य लोकं भौमे खातेन पालकं भक्त्या ।
प्रतिकुञ्चिकयाऽपहतं सितेऽतिथिर्ज्ञे प्रपञ्चकरः ॥ १०५॥

कुन्तला — जीवः = गुरुः, योगकर्त्ता तदा लोकं विलोक्य अपहरति । भौमे = कुजे योगकर्त्तरि सति भक्त्या खातेन = गर्त्तेन, पालकं = धनरक्षकं चौरं जानीयात् । सिते = शुक्रे तु प्रतिकुञ्चिकया अन्यकीलकयन्त्रेण अपहृतम् वाच्यम् । ज्ञे = बुधे तु अतिथिः = अभ्यागतः, प्रपञ्चकरः = चौर्यरचनाकरः स्यात् ॥१०५॥

ज्योति — यदि शनि पर बृहस्पति की दृष्टि पड़ रही हो तो चोर को प्रसिद्ध जानना चाहिए । यदि मंङ्गल सप्तम भाव में हो और चन्द्रमा की दृष्टि पड़ रही हो तो सेंध देकर ताला या जञ्जीर आदि तोड़कर चोर के धन चुराने की बात कहना चाहिए । यदि

सप्तमभाव शुक्र तथा चन्द्रमा से दृष्ट हो तो चोर को नया जानना चाहिए । यदि बुध तथा चन्द्र दृष्ट हो तो चोर प्रपञ्ची जानना चाहिए ॥ १०५॥

चौरस्य वयोज्ञाने सिते युवा, ज्ञे शिशुगुरौ मध्यः ।
तरुणो भौमे, मन्दे वृद्धोऽक स्यादतिस्थचिरः ॥ १०६॥

कुन्तला — अथ चौरस्य वयोज्ञाने, सिते बलवति युवा = समर्थस्तरुण–वयस्कश्चौरः । ज्ञे = बुधे, बलवति शिशुः = बालकश्चौरः । गुरौ बलवति सति मध्यः = मध्यवयस्कः । भौमे = कुजे बलवति तरुणः चौरः । मन्दे = शनौ बलवति वृद्धः चौरः । अर्के = सूर्ये बलवति अतिस्थविरः = वृद्धतमः चौरः स्यात् ॥ १०६॥

ज्योति — लग्नेश शुक्र होने से युवा, बुध होने से बालक, बृहस्पति के होने से मध्य अवस्था, मङ्गल के होने से तरुण, शनि के होने से वृद्ध और सूर्य के होने से अतिशय बूढ़ा समझना चाहिए ॥ १०६॥

रविनभयोः स्वमन्दिरे स्मरभूमिलग्नयोर्मध्यम् ।
चरित रवौ नवमध्यमवृद्धवयोऽतीतकाः क्रमशः ॥ १०७॥

कुन्तला — रवौ = सूर्ये, रविनभयोः द्वादशदशमयोः, स्वमन्दिरे = स्वराशौ, स्मरभूमिलग्नयोः = सप्तमचतुर्थलग्नयोः, मध्यं चरति सति, चौरस्य नवमध्यमवृद्धवयोऽतीतकाः वयसः क्रमशः वेद्याः । यथा रवौ द्वादशदशमयोः स्थिते नववयाश्चौरः, रवौ सिंहे मध्यमवयाः । रवौ सप्तमे सति वृद्धः । रवौ चतुर्थे सवि वयोऽतीतश्चौरः स्यादिति ॥ १०७॥

ज्योति — यदि दशम, लग्न के मध्य में रवि हो तो बालक; सप्तम, दशम के मध्य हो तो युवा, चतुर्थ, सप्तम के बीच में हो तो वृद्ध और लग्न, चतुर्थ के मध्य में सूर्य हो तो अत्यन्त वृद्ध समझना चाहिए ॥ १०७ ॥

नष्टस्थाने प्रश्ने तुर्ये भूम्यग्निवायुजलमध्यात् ।
यां भवति राशिरस्मात्स्थानं ज्ञयं गतधनस्य ॥ १०८॥

कुन्तला — नष्टस्थाने प्रश्ने—तुर्ये = चतुर्थस्थाने, भूम्यग्निवायुजलमध्यात् यो राशिर्भवति । अस्मात् गतधनस्य स्थानं ज्ञेयम् । यथा प्रश्नलग्नाच्चतुर्थस्थाने भूमिचारिराशौ सति भूमौ धनं, चतुर्थेऽग्नितत्त्वराशौ सति अग्नौ, वायुतत्त्वराशौ चतुर्थे सति अन्तरिक्षे चोरितं धनं वाच्यम् । जलतत्त्वात्मके राशौचतुर्थे सति जले धनं निक्षिप्तं वाच्यम् ॥ १०८॥

ज्योति — किस जगह चीज खोयी ? इस प्रश्न में प्रश्न लग्न से चौथे स्थान में यदि भूमि तत्वराशि हो तो भूमिपर, यदि चतुर्थ में अग्नितत्त्व से सम्बन्धित राशि हो, तो अग्नि

के समीप, यदि चतुर्थ में वायुतत्त्व से सम्बन्धित राशि हो, तो आकाश में, यदि जलतत्व से सम्बन्धित राशि हो तो पानी के निकट धन नष्ट हुआ, यह कहना चाहिए ॥ १०८॥

अथ चतुर्थगृहे तुर्येश्वरोऽथ यः स्याद्ग्रहस्ततो ज्ञेयम् ।
मन्दे मलिनस्थाने, चन्द्रेऽम्बुनि, गीष्पतौ सुरारामे ॥ १०९॥

भौमे वह्निसमीपे, रवौ गृहाधीश्वरासनस्थाने ।
तल्पे शुक्रे, सौम्ये पुस्तकवित्तान्नयानपार्श्वे च ॥ ११०॥

कुन्तला — अथ वा चतुर्थगृहे तुर्येश्वरः = चतुर्थेशः, अथवा यः कश्चिद्ग्रहः स्यात् ततोऽपहृतधनस्य स्थानज्ञानम् यथा मन्दे = शनौ, तुर्थेशे, वा तुर्यगते सति मलिनस्थाने तच्चोरितद्रव्यं वर्त्तते । चन्द्रे चतुर्थेशे, वा चतुर्थगते, अम्बुनि = जले, गोष्पतौ = जीवे चतुर्थेशे, वा चतुर्थे सति, सुराराभे = देवमन्दिरे पुष्पवाटिकायां वा धनं विद्यते । भौमे चतुर्थेशे, वा चतुर्थे सति वह्निसमीपे = महानसादौ, रवौ चतुर्थेशे वा चतुर्थे सति गृहाधीश्वरा— सनस्थाने, वा शुक्रे तादृश्यो सति तल्पे = पर्यके, सौम्ये = बुधे तादृशे सति पुस्तकवित्तान्नयानपार्श्वे = पुस्तकमध्ये, वा पुस्तकपेट्यां, वित्तस्य धनस्य रक्षणस्थाने, अन्नरक्षणस्थाने, यानस्थाने, वा एतेषां स्थानानां पार्श्वे = इतस्ततोधनं विद्यते ॥१०९ — ११०॥

ज्योति — अब चतुर्थेश यदि चतुर्थस्थान में हो, तो चतुर्थेश जो ग्रह हो, उसके भेद से चोरी का स्थान कहते हैं । चतुर्थेश शनि हो, तो मलिन जगह में, यदि चन्द्रमा हो, तो जल में, यदि बृहस्पति हो, तो देवमन्दिर, फुलवाड़ी में धन खोया हुआ है । यदि मङ्गल हो तो अग्नि के नजदीक, यदि सूर्य हो तो घर के मालिक के आसन के नजदीक, यदि शुक्र हो तो पलङ्ग पर, बुध योग करे तो पुस्तक, धन, अन्न सवारी के समीप धन खोया है; यह कहना चाहिए ॥ १०९ — ११०॥

अथ चौरोऽयं न वे ति प्रश्ने विचारः —

चौरोऽयमथ न वेति क्रूरेन्द्वोर्मुथशिले च चौरः स्यात् ।
सौम्यशशिमुथशिले खलु न भवति चौरः प्रवक्तव्यम् ॥ १११॥

कुन्तला — अयं जनः चौरः अस्ति न वा ? इति प्रश्ने क्रूरः = पापः, इन्दुः = चन्द्रः, अनयोर्मुथशिले सति अवश्यमयं चौरः वाच्यः । सौम्यशशिमुथशिले = शुभग्रहेण चन्द्रस्येथशाले सति अयं सन्दिग्धो जनः, चौरः न भवति, इति प्रवक्तव्यम् ॥ १११॥

ज्योति — अमुक व्यक्ति चोर है या नहीं ? इस प्रश्न में यदि चन्द्रमा पापग्रह से इत्थशाल योग करता हो तो वह चोर है । यदि शुभग्रह से इत्थशाल हो तो वह चोर नहीं है ॥ १११॥

किमनेन तस्करत्वं कदाऽपि विहितं न वेति पृच्छायाम् ।
लग्नपशशिनोरेकस्मादपि मूसरिफेऽस्तपे विहितम् ॥ ११२॥

कुन्तला — किम् अनेन कदाऽपि तस्करत्वं विहितं = कृतं न वा कृतम् ? इति पृच्छायां = प्रश्ने लग्नपशशिनोः = लग्नेश चन्दयोरेकस्मादेकतरेण अस्तपे = सप्तमेशे, मूसरिफे = कृते सराफे सति, तेन तस्करत्वं विहितं = कृतम् इति वाच्यम् ॥ ११२॥

ज्योति — इस पुरुष ने कभी चोरी की है या नहीं ? इस प्रश्न में यदि लग्नेश या चन्द्रमा से सप्तम स्थान का स्वामी ईसराफ योग करता हो तो उसने पहले भी चोरी की है, ऐसा कहना चाहिए ॥ ११२॥

चौरः स्त्री पुरुषो वा पृच्छायामस्तपे स्त्रियो राशौ ।
स्त्रीखेटे स्त्रीदृष्टे चौरः स्त्री व्यत्ययात्पुरुषः ॥ ११३॥

कुन्तला — चौरः स्त्री, वा पुरुषः अस्ति इति पृच्छायां, अस्तपे = सप्तमेशे स्त्रियो राशौ = समराशौ सति स्त्रीखेटे = स्त्रीग्रहे सप्तमेशे सति, वा स्त्रीग्रहदृष्टे सति तदा चौरः स्त्री स्यात् । व्यत्ययात्, किन्तु, सप्तमेशे पुंग्रहे पुरुषराशौ, पुंग्रहयुक्तदृष्टे सति चौरः पुरुषः स्यात् ॥ ११३॥

ज्योति — 'चोर स्त्री है या पुरुष' इस प्रश्न में यदि सप्तमेश स्त्री राशि में हो, स्त्री ग्रह हो या किसी स्त्रीसंज्ञक ग्रह की दृष्टि पड़ रही हो तो चोरी स्त्री ने की है, ऐसा जानना चाहिए । यदि इससे विपरीत हो और सप्तमेश पुरुष राशि में रहता हुआ पुरुष ग्रह और पुरुषग्रह की दृष्टि से युक्त हो तो चोर को पुरुष समझना चाहिए ॥ ११३॥

लग्नेश्वरनवमांशतो वयःप्रमाणजातयो ज्ञेयाः ।
चौरोऽयमिहानन्तं शास्त्रं कथितोऽयमुद्देशः ॥ ११४॥

कुन्तला — लग्नेश्वरनवमांशतः = लग्नेशनवमांशराशिस्वरूपात्, वयः प्रमाणजातयः ज्ञेयाः । अयं जनश्चौर इत्यत्र अनन्तं शास्त्रम् अस्ति । अयमुद्देशः कथितः ॥ ११४॥

ज्योति — लग्न नवांशेश से चोर की अवस्था और जाति का विचार करना चाहिए । लग्न में स्थित द्रेष्काणवश से रूप, रंग तथा आकृति का विचार करना चाहिए । विशेष विचार करने के अनन्त शास्त्र हैं । यहाँ बुद्धिमानों के निश्चयार्थ उद्देशमात्र का वर्णन किया गया है ॥ ११४॥

अथ विशेषतः सन्तानप्रश्नः —

लग्नेश्वरेणाथ निशाकरेण यदीत्थशालं कुरुते सुतेशः ।
शुभः शुभैः संयुत ईक्षितः स्यात् स सन्ततिं प्रष्टुरसौ विदध्यात् ॥ ११५॥

कुन्तला — यदि सुतेशः = पञ्चमेशः शुभग्रहः लग्नेश्वरेण = लग्नेशेन, अथ निशाकरेण = चन्द्रेण इत्थशालं कुरुते, तथा शुभैः संयुतः ईक्षितः = दृष्टः च स्यात्, तदा स ग्रहः प्रष्टुः = प्रच्छकस्य सन्तति = अपत्यं, विदध्यात् कुर्यात् ॥ ११५॥

ज्योति — यदि सन्तानप्रश्न में लग्नेश अथवा चन्द्रमा से पंचमेश इत्थशाल करे तथा पंचमेश शुभग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो प्रश्नकर्ता को सन्तति प्रदान करते हैं ॥ ११५ ॥

पुंस्त्रीग्रहाः पुत्रगृहं विलग्नात्पश्यन्ति यावन्ति इहातिवीर्याः ।
तत्संख्यकाः स्युस्तनयाश्च कन्याः शुभेशयोगात्सुतभांशतुल्याः ॥ ११६॥

कुन्तला — इह अतिवीर्याः = बलाधिकाः यावन्तः = यत्संख्यकाः पुंस्त्रीग्रहाः विलग्नात् पुत्रगृहं = पञ्चमस्थानं पश्यन्ति, तत्संख्यकाः तनयाः कन्याश्च स्युः । शुभेशयोगात् = शुभग्रहपञ्चमेशसंयोगात् सुतभांशतुल्याः = पञ्चमभावनवांशसंख्यकाः तनयाः कन्याश्च वाच्याः ॥ ११६॥

ज्योति — जितने भी पुरुषसंज्ञक ग्रह बलवान् होकर पंचम भाव को देखते हों, उतने पुत्र और जितने स्त्री ग्रह बली होकर देखें उतनी ही कन्यायें होंती हैं । पंचम भाव में जितने नवांश हों उतनी ही संख्या की सन्तानें होती हैं । किन्तु यह फल अपने स्वामी के शुभयुक्त में ही घटता है ॥ ११६॥

लग्नेशपुत्राधिपती परस्परं न पश्यतश्चदुदयं च पञ्चमम् ।
पापेत्थशालौ सुतलग्नपौ च प्रष्टुसतदा सन्ततिनास्तितां वदेत् ॥ ११७॥

कुन्तला — लग्नेशपुत्राधिपती परस्परं न पश्यतः, उदयं = लग्नं, पञ्चमं च तौ न पश्यतः वा सुतलग्नपौ = पञ्चमेशलग्नेशौ पापेत्थशालौ = पापग्रहेण मुथशिलौ च भवतः, तदा प्रष्टुः = प्रश्नकर्त्तुः, सन्ततिनास्तितां = अपत्याभावतां वदेत् ॥ ११७॥

ज्योति — यदि लग्नेश और पंचमेश ये दोनों परस्पर एक दूसरे को तथा लग्न और पंचम भाव को भी न देखें और लग्नेश तथा पंचमेश पापग्रह से इत्थशाली हों तो सन्तति नहीं होगी, ऐसा कहना चाहिए ॥ ११७॥

पुत्रालये सिंहवृषालिकन्याः प्रश्नोदयाज्जन्मभतस्तथेन्दोः ।
अल्पप्रजः सन्ततिपृच्छकः स्यात् पापैः सुतर्क्षे सहितेक्षिते वा ॥ ११८॥

कुन्तला — यदि पुत्रालये = पञ्चमभावे, सिंहवृषालिकन्याः राशयः स्युः, तथा प्रश्नोदयात् = प्रश्नलग्नात्, जन्मभतः = जन्मलग्नात्, इन्दोश्चद्राक्रान्तराशितः च सुतर्क्षे = पुत्रभावे = पञ्चमस्थाने, पापैः = पापग्रहैः = शनिरविकुजैः, सहितेक्षिते = युतेक्षिते तदा सन्ततिपृच्छकः जनः अल्पप्रजः = परिमितापत्यवान् स्यात् ॥ ११८॥

ज्योति — यदि सिंह, वृष, वृश्चिक तथा कन्या ये राशियाँ पंचम भाव में हों तो प्रश्न कर्ता को थोड़ी सन्तानें होंती हैं । पंचम भाव पापग्रहों से युक्त दृष्ट होने में भी यही फल होता है ॥ ११८॥

स्वर्क्षं स्थितौ रन्ध्रगतौ यमार्कौ प्रष्टुः स्त्रियं संदिशतश्च बन्ध्याम् ।
छिद्रस्थितौ चन्द्रबुधौ सदोषां वा काकवन्ध्यां तनयाप्रसूतिम् ॥ ११९॥

कुन्तला — यमार्कौ = शनिरवी, स्वर्क्षस्थितौ = स्वराशिगतौ, छिद्रगतौ = अष्टमस्थानगतौ भवतः, तदा प्रष्टुः = प्रश्नकर्त्तुः, स्त्रियः = भार्या वन्ध्यां = अपत्योत्पत्तिसम्भवशून्यां सन्दिशतः = कथयतः । वा चन्द्रबुधौ छिद्रस्थितौ = अष्टमस्थितौ भवतस्तदा सदोषां = प्रदरादिरजोदोषयुक्तां कुरुतः । वा काकवन्ध्यां = एकापत्यां, वा तनयाप्रसूतिम् = कन्याजननीम्, कुरुतः ॥ ११९॥

ज्योति — यदि शनि और सूर्य अपनी राशि में स्थित आठवें स्थान में हों तो प्रश्नकर्ता की स्त्री को वन्ध्या समझना चाहिए । यदि चन्द्रमा और बुध अष्टम स्थान में स्थित हो तो दोष युक्त या एक पुत्र होने के बाद वह स्त्री वन्ध्या हो जाती है अथवा कन्या ही कन्या उत्पन्न होती रहती है ॥ ११९॥

मृतप्रजा छिद्रगयोः सितेज्ययोर्गर्भस्रवां भूमिसुतेऽष्टमर्क्षम् ।
छिद्रेश्वरे छिद्रगतेऽतिवीर्ये पुष्पं न विन्दत्यबला सुतप्रदम् ॥ १२०॥

कुन्तला — सितेज्ययोः = शुक्रजीवयोः, छिद्रगयोः = अष्टमस्थयोः प्रष्टुः स्त्री मृतप्रजा = नष्टापत्या भवति । वा अष्टमर्क्ष गते भूमिसुते = भूमिजे सति गर्भस्रवा भवलि । अतिवीर्ये, छिद्रेश्वरे = अष्टमेशे छिद्रगते तदा अबला = स्त्री, सुतप्रदं = पुत्रप्रदं पुष्पं = रजः, न विन्दति = धारयति ॥ १२०॥

ज्योति — यदि शुक्र तथा गुरु अष्टम भाव में हों तो मरी संतानें उत्पन्न होंती हैं । यदि मङ्गल अष्टम भाव में हों तो गर्भ ही गिर जाता है । यदि अष्टमेश अष्टम भाव में बलवान् हो तो स्त्री का पुत्रदायक रज ही नहीं आता है ॥ १२०॥

शुक्रार्कयोरष्टमसंस्थयोर्वा क्रूरैर्धनान्त्याष्टमराशिसंस्थैः ।
जातः पुरस्तान्म्रियते प्रजा वै प्रष्टुर्न चाग्रे शुभसन्ततिः स्यात् ॥ १२१॥

कुन्तला — शुक्रार्कयोः = शुक्रसूर्ययोः, अष्टमसंस्थयोः, वा क्रूरैः = पापैः, धनान्त्याष्टमराशिसंस्थितैः = द्वितीयद्वादशाष्टमस्थानस्थैः सद्भिः, तदा पुरस्तात् = अग्रे जाता प्रजा = सन्ततिः म्रियते, प्रष्टुः = प्रच्छकस्य अग्रे शुभसन्ततिः = चिरायुरपत्यं च न स्यात् ॥ १२१॥

ज्योति — यदि शुक्र तथा सूर्य अष्टम स्थान में हों और पापग्रह दूसरे, बारहवें तथा आठवें हों तो प्रश्नकर्ता को सन्तानें हो होकर मरती जाती हैं और भविष्य में भी उसे संतान सुख प्राप्त नहीं होता है ॥ १२१॥

रिष्फेशवरे केन्द्रगते च सौम्यैर्युतेक्षिते जीवति बालकश्च ।
आपूर्यमाणे शुभयुक्त इन्दौ केन्द्रे शिशुर्जीवति दीर्घकालम् ॥ १२२॥

कुन्तला — रिष्फेशवरे = द्वादशेशे केन्द्रगते, सौम्यैः = शुभैः, युतेक्षिते, तदा बालकः जीवति । आपूर्यमाणे = परिपूर्णे, शुभयुक्ते इन्दौ = चन्द्रे, केन्द्रगते, सौम्यैः = शुभैः, युतेक्षिते, तदा शिशुः = बालः, दीर्घकालं = चिरं जीवति ॥ १२२॥

ज्योति — यदि द्वादशेश केन्द्र स्थान में हो और शुभग्रह से युक्त हो अथवा उनसे दृष्ट हो तो बालक जीता है । यदि पूर्ण चन्द्रमा शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट होकर केन्द्र में स्थित हो तो बालक चिरकाल तक जीवित रहता है ॥ १२२॥

तथाच पुत्रविचारः प्रश्नचिन्तामणौ —

पञ्चमेशोऽथ लग्नेशो विषमर्क्षगतौ यदा ।
पुत्रजन्मप्रदौ ज्ञेयौ कन्यानां समराशिगौ ॥ १२३॥

कुन्तला — यदा पञ्चमेशः, तथा लग्नेशः एतौ विषमर्क्षगतौ = विषमराशिगतौ भवतः, तदा पुत्रजन्मप्रदौ भवतः । यदि तौ लग्नेशपञ्चमेशौ समराशिगौ, तत्र— कन्यानां जन्मप्रदौ भवतः ॥ १२३॥

ज्योति — यदि पञ्चमेश अथवा लग्नेश विषम स्थान में हो तो इन्हें पुत्र को जन्म देने वाला समझना चाहिए । यदि पञ्चमेश तथा लग्नेश सम राशि में हों तो कन्या को जन्म देते हैं ॥ १२३॥

सुताधिपे नृराशिस्थे पुंराशिस्थोऽपि लग्नपः ।
वीक्ष्यते पत्रदः प्रोक्तो युग्मराशौ च दारिकाः ॥ १२४॥

कुन्तला — सुताधिपे = पञ्चमेशे नरराशिस्थे = पुरुषराशिस्थे सति लग्नपः = लग्नशः पुंराशिस्थः = पुरुषराशिगतः, पुंग्रहेण वीक्ष्यते च तदा पुत्रदः प्रोक्तः । वा सुताधिपे समराशिस्थे, लग्नेशे अपि समराशिगते, स्त्रीग्रहेण वीक्षिते तदा दारिकाः = कन्यकाः उत्पद्यन्ते ॥ १२४॥

ज्योति — पञ्चमेश और लग्नेश भी पुरुष राशि में हो, या पुरुषग्रह से देखे जायँ, तो पुत्र को देते हैं, समराशि में हों, तो कन्या का जन्म देते हैं ॥ १२४॥

युग्मराशिगते लग्ने यदा तत्र शुभग्रहाः ।
गर्भेऽपत्यद्वयं वाच्यं दैवज्ञेन विपश्चिता ॥ १२५॥

कुन्तला — लग्ने युग्मराशिगते = समराशिगते, यदा शुभग्रहाः तत्र = लग्ने स्थिताः, तदा विपश्चिता = विदुषा, दैवज्ञेन = ज्योतिर्विदा गर्भे अपत्यद्वयं = यमलं वाच्यम् ॥ १२५॥

ज्योति — यदि लग्न सम राशि की हो और उसमें शुभग्रह बैठे हों तो गर्भ में दो सन्तान की स्थिति समझनी चाहिए, ऐसा विद्वान् दैवज्ञजनों का कथन है ॥ १२५॥

विषमोपगतो लग्नाच्छनिः पुत्रसुखप्रदः ।
सममे योषितां जन्म विशेषो जातकोक्तिवत् ॥ १२६॥

कुन्तला — वा लग्नात् शनिः विषमोपगतः = विषमसंख्यकस्थाने स्थितः, पुत्रजन्मप्रदः भवति । तथा लग्नात् शनिः सममे = समसंख्यकस्थाने स्थितः, तदा योषितां = कन्यानां जन्म भवति । अतो विशेषः = अधिकविचारः, जातकोक्तिवत् = जातकीयपञ्चमभावविचार इव बोध्यः ॥ १२६॥

ज्योति — यदि शनि लग्न से विषम स्थान में बैठा हो तो पुत्र सुखदायक होता है । यदि सम राशि में हो तो कन्या को जन्म देता है । विशेष बातें जातकशास्त्र के अनुसार समझनी चाहिए ॥ १२६॥

अथ भोजनचिन्ता (प्रश्नचिन्तामणौ) —

कटुको लवणस्तिक्तो मिश्रितो मधुरो रसः ।
अम्लः कषायः कथिता रव्यादीनां रसा बुधैः ॥ १२७॥

कुन्तला — रव्यादीनां ग्रहाणां क्रमेण कटुकः = मरीचस्वादुवत्, लवणः = क्षारः, तिक्तः = निम्बपत्रस्वादुवत्, मिश्रितः = सकलरसयोगः, मधुरः = मधुवत्, अम्लः = तिन्तिणी–स्वादुवत्, कषायः = धात्रीवत्, एते रसाः बुधैः कथिताः ॥ १२७॥

ज्योति — सूर्य का कटु, चन्द्रमा का खारा, मङ्गल का तीता, बुध का मिश्रित, बृहस्पति का मधुर, शुक्र का खट्टा और शनि का कसैला रस समझना चाहिए ॥ १२७॥

लग्नं पश्यति यः खेटस्तस्य यः कथितो रसः ।
भोजनेऽसौ रसो वीर्यक्रमाद्वाच्याः परे रसाः ॥ १२८॥

कुन्तला — यः खेटः = ग्रहः, लग्नं पश्यति तस्य यः रसः कथितः, असौ रसः, भोजने = अशने वाच्यः । तत्र वीर्यक्रमात् परे अपि रसाः वाच्याः ॥ १२८॥

ज्योति — यदि लग्न को बली ग्रह देखता हो तो उस ग्रह का जो रस ऊपर कहा गया है, वही प्रधान रस कहकर अन्य रसों को कहना चाहिए ॥ १२८॥

चन्द्रो यस्य मुथशिलस्तस्य विशेषं वदेद्बुक्तौ ।
लग्ने राहौ मन्दे रविदृष्टे भोजनाभावः ॥ १२९॥

कुन्तला —— चन्द्रः यस्य मुथशिलः, तस्य ग्रहस्य विशेषं = अधिकं रसं भुक्तौ = भोजने वदेत् । अत्र चन्द्रस्य येन मुथशिलमिति पाठः साधीयान् । राहौ, मन्दे = शनौ वा लग्ने सति तथा रविदृष्टे सति भोजनाभावः = उपवासः स्यात् ।। १२९।।

ज्योति —— चन्द्रमा जिस किसी ग्रह से इत्थशाल योग करता हो, उस ग्रह का रस भोजन में विशेष करके कहना चाहिए । यदि लग्न में राहु तथा शनि हो और उस पर सूर्य की दृष्टि पड़ रही हों तो भोजन का अभाव जानना चाहिए ।। १२९।।

प्रश्नतन्त्रे भोजनचिन्ता ——

कीदृङ्मयाऽद्य भुक्तं ? पृच्छायां यदि भवेत्स्थिरं लग्नम् ।
तद्भुक्तमेकवेलं, द्व्यात्मनि वेलद्वयं, चरे त्वसकृत् ।। १३०।।

चन्द्रे लग्नगते स्यात्क्षारं, भौमे च कटुकमम्लगुरौ ।
मधुरं दिनकृति तिक्तं शुक्रे स्निग्धं बुधे च सर्वरसम् ।। १३१।।

मन्दे कषायमशुभान्मुसरिफे शशिनि मुथशिले शुभेऽरिदृशा ।
उद्वाहात्प्रियदृष्ट्या प्रायणिकत्वात्समागतं भोज्यम् ।। १३२।।

कुन्तला —— अद्य मया कीदृग् अयं भुक्तम् ? इत्येवं पृच्छायां यदि स्थिरं (वृष—सिंह—वृश्चिक—कुम्भानामन्यतमं) लग्नं भवेत् तदा एकवेलं = एकवारह, एवं भुक्तं = भोजनं वाच्यम् । द्व्यात्मनि = द्विःस्वभावलग्ने वेलद्वयं = द्विवारं भोजनम्, चरे = चरे लग्ने, असकृत् = अनेकवारं भोजनं वाच्यम् ।

चन्द्रे लग्नगते सति क्षारं = क्षाररसप्रधानम्, भौमे = कुजे लग्ने सति कटुकं = कटुकरसात्यकं भोजनंवाच्यम् । अम्लगुरौ = गुरौ लग्ने अम्लं = अम्लरसप्रधानं भोजनं, दिनकृति = सूर्ये लग्ने सति मधुररसप्रधानं, शुक्रे लग्नगते तिक्तं, बुधे लग्नगते स्निग्धं = चिक्कणं सर्वरसं च भोजनं वाच्यम् ।

मन्दे = शनौ लग्नगते, सति कषायं = कषायरसात्मकं, भोजनं वाच्यम् । शशिनि = चन्द्रे अशुभान्मूसरिफे, अरिदृशा = शत्रुदृशा शुभे मुथशिले सति, उद्वाहात् = विवाहात् प्रियदृष्ट्या प्रायणिकत्वात् = उपायनरूपतः, समागतं वस्तु भोजनं भवति ।। १३० — १३२।।

ज्योति —— यदि कोई पूछे कि मैंने कितने बार क्या खाया है ? इस समय यदि प्रश्न, लग्न स्थित हो तो एक बार, द्विःस्वभाव हो तो दो बार, चरलग्न हो तो प्रश्नकर्ता ने बहुत बार भोजन किया, ऐसा जानना चाहिए ।

यदि लग्न में चन्द्रमा हो तो क्षार, मङ्गल हो तो कटु तथा खट्टा, बृहस्पति हो तो मुधर, सूर्य हो तो तिक्त, शुक्र हो तो चिकना और बुध हो तो उसने सब रसों का भोजन किया, ऐसा जानना चाहिए ।

यदि शनि लग्न मे हो तो कसैले रस का भोजन मिलता है । यदि चन्द्रमा पापग्रहों के साथ ईसराफ और शुभग्रहों के साथ शत्रुदृष्टि से इत्थशाल योग करता हो तो कष्ट से भोजन मिलता है । मित्रदृष्टि से इत्थशाल हो तो विवाहस्थान से आया हुआ भोजन प्राप्त होता है ।। १३० – १३२।।

अथ भोजनचिन्तामेवाह —

चन्द्रस्य चेत्स्याच्छुभजेत्थशाले पापेसराफे च तदेतदुक्तम् ।
पापेसराफे च शुभेत्थशाले चन्द्रे तु भुक्तं शुममन्नमीशम् ।। १३३।।

कुन्तला — चेत् चन्द्रस्य शुभजेत्थशाले = शुभग्रहकृतेत्थशाले, पापग्रहकृतेसराफे च सति एतत् वक्ष्यमाणं शुभं फलम्, उक्तम् । चन्द्रे पापेसराफे शुभेत्थशाले सति शुभं = प्रशस्तम्, ईशम् = धनिभोगयोग्यं अन्नं भुक्तं वाच्यम् ।। १३३।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा को शुभग्रह से इत्थशाल, पापग्रह से ईसराफ योग होता हो, तो अच्छा भोजन कहना । ऐसे चन्द्रमा को पापग्रह से ईसराफ़योग, शुभग्रह से इत्थशाल योग होता हो; तो अच्छा ही अन्न भोजन में कहना ।। १३३।।

शुभेसराफे स्वशुभेत्थशाले चन्द्रे कदन्नं मधुसर्पिषौ विना ।
पापेत्थशालेऽथ खलेसराफे शक्यं न भोक्तुं परतोऽपि लब्धम् ।। १३४।।

कुन्तला — चन्द्रे शुभेसराफे, अशुभेत्थशाले मधुसर्पिषौ = मुधुघृते विना कदन्नं = कुत्सितमन्नं भुक्तं वाच्यम् । पापेत्थशाले, अथ खलेसराफे = पापेसराफे सति परतः = अन्यतः लब्धं = प्राप्तम् अपि भोज्यं भोक्तुं शक्यं न भवेत् ।। १३४।।

ज्योति — यदि चन्द्रमा का शुभग्रह से ईसराफ और पापग्रह से इत्थशाल योग होता हो तो उसने स्वादहीन और मुधुधृत से रहित अन्न भोजन किया है । यदि शुभग्रह से इत्थशाल हो रहा हो और पापग्रह से ईसराफ योग हो तो किसी दूसरे से भी प्राप्त भोजन नहीं मिलता ।। १३४।।

चन्द्रे स्वनाथदृष्टं सुखभोजनमन्यथा कष्टात् ।
गुरुमुथशिले सगौरवमर्केण मुथशिलेऽतिशुचि तीक्ष्णम् ।। १३५।।

कुन्तला — चन्द्रे, स्वनाथदृष्टे = यद्राशौ चन्द्रस्तिष्ठति तत्स्वामिना विलोकिते तदा सुखभोजनं = आनन्दपूर्वकं भोजनं वाच्यम् । अन्यथा कष्टात् भोजनं वाच्यम् । चन्द्रे गुरुमुथशिले = जीवेत्थशाले सगौरवं भोजनं वाच्यम् । चन्द्रे अर्केण मुथशिले सति अतिशुचि = अतिपवित्रं तीक्ष्णं = कट्वम्लरसोपेतं भोजनं वाच्यम् ।। १३५।।

ज्योति — प्रश्नलग्न यदि चन्द्रमा तथा अपने स्वामी से दृष्ट हो तो भोजन सुखपूर्वक मिले अन्यथा कष्ट से भोजन प्राप्त होता है । यदि बृहस्पति से इत्थशाल

होता हो तो बड़े गौरव से और सूर्य से इत्थशाल हो तो अत्यन्त पवित्र तथा तीक्ष्ण भोजन मिलता है ॥ १३५॥

शुक्रे सुस्वादुरसं सहास्यगीतं बुधे जनाकीर्णम् ।
शास्त्रकथाढ्यं शनिना कुस्थानगतं कुजे चोष्णम् ॥ १३६॥

कुन्तला — शुक्रे = शुक्रकृतेत्थशाले चन्द्रे सुस्वादुरसं भोजनम्, बुधे = बुधकृते चन्द्रस्येत्थशाले जनाकीर्ण = बहुललोकपरिवृतं सहास्यगीतम्, भोजनं श्वशुरालयभोजनं शास्त्रकथाढ्यं च भवति । शनिना कृतेत्थशाले चद्रे कुस्थानगतं भोजनम्, कुजे = कुजकृतेत्थशाले चन्द्रे सति उष्णं भोजनं वाच्यम् ॥ १३६॥

ज्योति — इसी तरह शुक्र से स्वाद तथा बुध से हास्य व गीतादि होते हुए बहुत जनों के साथ उत्तम भोजन प्राप्त होता है । इसी तरह शनि से शास्त्र कथायुक्त कुत्सित स्थान में और मङ्गल से गरम भोजन मिलता है ॥ १३६॥

यदि वदति भोजनार्थं निमन्त्रितो यामि ? शशिमहीसुतयोः ।
एकस्थितयोः केन्द्रे मुथशिलयोर्वाऽपि पूर्णता भवति ॥ १३७॥

विधिनाऽनेन शनेः स्यात्कुभोजनं ज्ञसितयोरभीष्टान्नम् ।
जीवस्य तुष्टिजनकं होरेशे तनुखगे स्वयमुपैति ॥ १३८॥

यश्चन्द्रेण मुथशिली तस्मिन्नीशे तनोः स्वगृहभोज्यम् ।
वित्तेशे भृत्यगृहे भातृणां सहजपे तथाऽन्यत्र ॥ १३९॥

कुन्तला — यदि कश्चिज्जनः 'भोजनार्थं निमन्त्रितो भूत्वा यामि' इति वदति, तदा शशिमहीसुतयोः = चन्द्रकुजयोः, केन्द्रे एकस्थितयोः, अपि वा मुथशिलयोश्च सतोः भोजने पूर्णता = पर्याप्तता भवति ।

अनेन विधिना शनेः सकाशात् कुभोजनं भवति । एवं ज्ञसितयोः = बुधशुक्रयोः वशेन अभीष्टान्नं लभ्यते । वा जीवस्य = गुरोः, होरेशे = होरानाथे तनुखगे = प्रथमदशमगते सति, स्वयम् = अप्रयत्नकृतमेव तुष्टिजनकं = तृप्तिसम्पादकं भोजनं भवति ।

चन्द्रेण साकं यः ग्रहः मुथशिली, तस्मिन् ग्रहे तनोर्लग्नस्य ईशे = स्वामिनि सति तदा स्वगृहभोज्यं भवति । अथ वित्तेशे = द्वितीयेशे, चन्द्रेत्थशालकरे भृत्यगृहे = दासगृहे भोजनम् , तथा यदि सहजपे = तृतीयेशे, चन्द्रेत्थशालकरे तदा भ्रातृणां गृहे तथा अन्यत्र भोजनं वाच्यम् ॥ १३७ – १३९॥

ज्योति — यदि कोई पृच्छक पूछे कि भोजनार्थ निमन्त्रण में जाता हूँ मुझे कैसा भोजन मिलेगा ? इस प्रश्न में यदि चन्द्रमा और मङ्गल एक राशि में स्थित होकर केन्द्र स्थान में इत्थशाल करते हों तो भोजन पूर्ण रीति से मिलता है ।

यदि शनि हो तो दूषित भोजन और बुध तथा शुक्र हों तो अभीष्ट भोजन मिलता है । यदि बृहस्पति हो तो प्रसन्नताजनक भोजन मिलता है । लग्नेश लग्न या दशम में हो तो अपने आप भोजन प्राप्त हो जाता है ।

जो कोई भी ग्रह चन्द्रमा से इत्थशालयोग करता हो और वह ग्रह यदि लग्नेश स्वयं हो तो अपने घर, धनेश हो तो सेवक के घर, तृतीयभाव का स्वामी हो तो भाई के घर में भोजन प्राप्त होता है ।। १३७ — १३९ ।।

लग्नर्स्थिते सूर्यसुतेऽथ राहौ सूर्येक्षिते वैरिनिमन्त्रितस्य ।
स्याच्छस्त्रघातः शशिभौमयोश्च लग्नस्थयोः सौरिदृशाऽस्ति घातः ।। १४० ।।

जीवे सिते लग्नगते बलाढ्ये चन्द्रे बुधे लग्नगते शुभान्विते ।
त्रिलाभषष्ठास्पदगैश्च पापैः स्यात्प्रेमनिर्वैरकरं सुभोजनम् ।। १४१ ।।

भोज्यं बुभुक्षा भोक्ता च सुखाप्ताङ्गबलक्रमात् ।
लग्नपो भोज्यदस्तेषां बलेन फलमादिशेत् ।। १४२ ।।

तुर्येशलाभाधिपतीत्थशाले शुभग्रहेक्षायुतितः सुभोज्यम् ।
इत्थं खलग्नास्तपतीत्थशाले लाभेश्वरे तत्सुखलाभ ऊह्यः ।। १४३ ।।

कुन्तला — सूर्यसुते = शनौ, अथवा राहौ लग्नस्थिते सति, तथा च सूर्येक्षिते = रविदृष्टे, तथा वैरिनिमन्त्रितस्य = शत्रुजनामन्त्रितस्य जनस्य शस्त्रघातः स्यात् । एवं शशिभौमयोः = चन्द्रकुजयोः लग्नस्थयोः, सौरिदृश्या = शनिदृष्ट्या दृष्टयोः सतोः प्रच्छकस्य घातः = शस्त्राघातः स्यात् ।

एवं जीवे = गुरौ, सिते = शुक्रे लग्नगते, बलाढ्ये च सति, वा चन्द्रे बुधे च लग्नगते, तथा शुभान्विते = शुभयुक्ते च सति, तथा पापैः = शनिरविकुजैः त्रिषष्ठलाभास्पदगैः = ३ । ६ । १० । ११ एतत्स्थानगतैः, तदा प्रेमनिर्वैरकरं सुभोजनं स्यात् ।

सुखभावबलेन भोज्यम्, आयभावबलेन बुभुक्षा, लग्नबलेन भोक्तां = खादकः, भवति । तथा लग्नपः = लग्नेशः भोज्यदः = भोजयिता भवति । एतेषां बलेन फलं शुभाशुभम् आदिशेत् = कथयेत् ।

तुर्येशलाभाधिपतीत्थशाले = चतुर्थेशलाभेशयोर्मुथशिले शुभग्रहेक्षायुतितः = शुभदृष्टियोगात्, सुभोजनं मिलति । इत्थम् = अमुना प्रकारेण, लाभेश्वरे = एकादशभावेशे, खलग्नास्तपतीत्थशाले = दशमेशलग्नेशसप्तमेशग्रहकृतेत्थशाले सति तत्सुखलाभः = भोजनविनोदप्राप्तिर्भवति ।। १४० — १४३ ।।

ज्योति — प्रश्नलग्न में सूर्य से दृष्ट शनि अथवा राहु हो तो निमन्त्रण में शत्रुओं के द्वारा शस्त्र से आघात समझना । इस प्रकार चन्द्रमा और मङ्गल लग्न में हो और शनि से देखे जायँ तो शस्त्र का घात होता है ।

यदि गुरु तथा शुक्र बली होकर चन्द्रमा के घर में बैठे हों और चन्द्रमा वा बुध केन्द्र के शुभ ग्रह से युक्त हो और तीसरे, ग्यारहवें तथा छठें स्थान में पापग्रह हों तो प्रेम से सुन्दर भोजन मिलता है ।

भोज्य पदार्थ, भोजनदाता, भोजनकर्ता, इन्हें क्रम से चतुर्थ, सप्तम और लग्न भाव मानना चाहिए । इनमें से भोजनदाता लग्नेश ही माना जाता है, इसके बल से ही फल कहना चाहिए ।

यदि चतुर्थ भाव का स्वामी तथा लाभेश इन दोनों का इत्थशाल हो और शुभग्रह की दृष्टि पड़ रही हो या शुभग्रह से युक्त हो तो उत्तम भोजन मिलता है । यदि दशमेश, लग्नेश, सप्तमेश को लाभेश से इत्थशाल हो तो सुख प्राप्त होता है ॥ १४० – १४३॥

अथ स्वप्नविचारः —

लग्नेऽर्के नृपतिं वह्निं शस्त्रं पश्यति लोहितम् ।
श्वेतं पुष्पं सितं वस्त्रं गन्धं नारीं च शीतगौ ॥ १४४॥

कुन्तला — अर्के = सूर्ये लग्ने सति नृपतिं = राजानं, वह्निम् = अग्नि, शस्त्रम् = आयुधम्, लोहितम् = रुधिरं पश्यति । शीतगौ = चन्द्रे, लग्ने सति, श्वेतं पुष्पं, सितं = स्वच्छं, वस्त्रं, गन्धं, नारीं = स्त्रियं च पश्यति ॥ १४४॥

ज्योति — रवि लग्न में हो, तो राजा को, आग को, हथियार को और शोणित (खून) को आदमी देखता है । चन्द्रमा लग्न में हो, तो सफेद फूल, सफेद वस्त्र, गन्ध, स्त्री को देखता है ॥ १४४॥

रक्तमांसप्रवालं च सुवर्णं धरणीसुते ।
बुधे खे गमनं जीवे धनं बन्धुसमागमम् ॥ १४५॥

कुन्तला — धरणीसुते = कुजे लग्नगते सति रक्तमांसप्रवालं–रक्तं = शोणितं, मासं, प्रवालम् = विद्रुमं, सुवर्णं च पश्यति । बुधे लग्नगते, खे = आकाशे गमनं = भ्रमणं दृश्यते । जीवे = गुरौ लग्नगते धनं = रूप्यकादि, बन्धुसमागमश्च दृश्यते ॥ १४५॥

ज्योति — यदि मङ्गल लग्न में हो, तो शोणित, मांस, मूंगा, सोना इन सबों को स्वप्न में देखता है । बुध लग्न में हो, तो आकाश में उड़ना देखता है । बृहस्पति यदि लग्न में हो, तो रुपये धन दौलत और बन्धु बान्धव का समागमन देखता है ॥ १४५॥

जलावगाहनं शुक्रे शनौ तुङ्गावरोहणम् ।
लग्ने लग्नांशपवशात्स्वप्नो वाच्योऽथ वा बुधैः ॥ १४६॥

कुन्तला — शुक्रे लग्नगते सति जलावगाहनं = नदीतडागादौ स्नानं, शनौ लग्ने सति तुङ्गावरोहणम् = उच्चभवनवृक्षपर्वतादिषु गमनम् । अथवा लग्ने लग्नांशपवशात् बुधैः = प्राश्निकैर्गणकैः स्वप्नः वाच्यः ॥ १४६॥

ज्योति — शुक्र लग्न में हो, तो नदी, तालाब में स्नान करना देखता है । शनि लग्न में हो, तो ऊँचे मकान, पेड़, पर्वत आदि पर चढ़ने को देखता है । अथवा लग्नगतनवांश के अनुसार पण्डितों को स्वप्न का विचार करना चाहिए ॥ १४६॥

सर्वोत्तमबलाद्वाऽपि खेटाद्बुद्ध्या विचिन्तयेत् ।
बलसाम्ये फलं मिश्रं दुःस्वप्नो निर्बलैः खगैः ॥ १४७॥

कुन्तला — वा सर्वोत्तमबलात् = सकलग्रहेषु यो हि विशेषबलवान्, तस्मात्, वा बुद्ध्या = स्वधिया स्वप्नं विचिन्तयेत् । अथ ग्रहाणां बलसाम्ये मिश्रं = सम्मिलितं फलं वाच्यम् । सकलैः खगैः = ग्रहैः निर्बलैः सद्भिः दुःस्वप्नो वाच्यः ॥ १४७॥

ज्योति — अथवा सबसे बली ग्रह के अनुसार अपनी बुद्धि से स्वप्न का विचार करना चाहिये जहां बहुतेरे ग्रहों के बल समान हों, वहां मिले जुले स्वप्न होते हैं, । जहाँ सभी ग्रह निर्बल हों, वहां खराब स्वप्न कहना चाहिए ॥ १४७॥

अत्रोत्पलः —

रविलग्ने शशिदृष्टे रविशशिसमेतलग्नाद्वा ।
स्वप्नं दुष्टं प्रवदेत्प्रष्टुर्लग्नान्तरात्कालः ॥ १४८॥

कुन्तला — रविलग्ने = रविगतलग्नस्थाने, शशिदृष्टे = चन्द्रदृष्टे सति, वा रविशशिसमेतलग्नात् = रविचन्द्रयुक्तलग्नात् प्रष्टुः = प्रच्छकस्य दुष्टं स्वप्नं प्रवदेत् । लग्नान्तरात् कालः = समयः, स्यात् ॥ १४८॥

ज्योति — रवि लग्न में हो, उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो, तो खराब स्वप्न देखता है । या रवि और चन्द्रमा से युक्त लग्न से भी दुष्ट स्वप्न होता है । लग्न के अन्तर से काल का ज्ञान होता है ॥ १४८॥

अथाखेटकविचारः —

लग्नेशजामित्रपतीत्थशाले सुस्नेहदृष्ट्या त्वनयोर्द्वयोश्च ।
आखेटकः स्यात्सफलोऽरिदृष्ट्यास्यान्निष्फलोवाऽल्पफलोऽतिकष्टात् ॥ १४९॥

कुन्तला — लग्नेशः प्रसिद्धः, जामित्रपतिः = सप्तमेशः, अनयोरित्थशाले सति, अनयोर्द्वयोः लग्नेशसप्तमेशयोः सुस्नेहदृष्ट्या आखेटकः = मृगया = वन्यपशुमारणार्थं विनोदः सफलः स्यात् । तयोररिदृष्ट्या = शत्रुदृष्ट्यानिष्फलः स्याद्वाऽतिकष्टादल्पफलः स्यात् ॥ १४९॥

ज्योति — लग्नेश और सप्तमेश को इत्थशाल होता हो और वे दोनों प्रेम दृष्टि से एक दूसरे को देखे, तो शिकार करना सफल होता है । यदि वे शत्रुदृष्टि से देखें, तो व्यर्थ होता है, या अत्यन्त कष्ट से थोड़ा बहुत कुछ हो जाता है ॥ १४९॥

लग्नेश्वरे द्यूनगते विलग्ने जायेश्वरे स्यान्मृगया प्रभूता ।
जामित्रनाथे हिबुके नभःस्थे चाखेटकः स्वल्पतरोऽपि न स्यात् ॥ १५० ॥

कुन्तला — लग्नेश्वरे = लग्नेशे द्यूनगते = सप्तमगते, जायेश्वरे विलग्ने सति मृगया प्रभूता = बहुला भवति । वा जामित्रनाथे = सप्तमेशे हिबुके = चतुर्थे, नभःस्थे = दशमस्थे सति, स्वल्पतरः अपि आखेटकः = मृगया न स्यात् ॥ १५० ॥

ज्योति — लग्नेश सप्तम में हो, या सप्तमेश लग्न में हो, तो बहुत से शिकार होते हैं । यदि सप्तमेश चौथे, या दशमें हों, तो थोड़ा भी शिकार नहीं होता है ॥ १५० ॥

ज्ञभौमौ सबलौ सिद्धिरस्तांशे मृगयाच्युतिः ।
लग्नाद्द्यूने तत्पती च हेतुस्तैर्जलराशिगैः ॥ १५१ ॥

जलजं खेटकं ब्रूयाद्वन्यर्क्षैर्वनसंभवः ।
क्रूराक्रान्तानि यावन्ति मध्ये भानीन्दुलग्नयोः ।
तावन्तः प्राणिनो वाच्या द्वित्रिघ्नाः स्वांशकादिषु ॥ १५२ ॥

कुन्तला — ज्ञभौमौ = बुधकुजौ सबलौ सन्तौसिद्धिः = मृगयासाफल्यं स्यात् । तौ अस्तांशे = कालांशान्तर्गते सति मृगयाच्युतिः = आखेटकत्यागः स्यात् । वा लग्नात् सकाशात् तत्पती = चतुर्थदशमयोः स्वामिनौ द्यूने = सप्तमे, स्थितौ, तदा हेतुः = आखेटक कारणं भवति । तैर्जलराशिगैः = जलचरराशिगैः जलजं = जलचरजीवः, खेटकं = आखेटकं स्यात् । वा तैर्ग्रहैः, वन्यराशिस्थैः = सिंहादिस्थैस्तदा वनसम्भवः = शूकरहरिणादिजीवः वाच्यः । इन्दुलग्नयोर्मध्ये यावन्ति भानि = भवनानि, क्रूराक्रान्तानि = पापाधिष्ठितानि, भवेयुः तावन्तः प्राणिनः वाच्याः । यदि ते पापाः स्वांशकादिषु = स्वकीय नवांश, द्रेष्काणादिषु स्थितास्तदा द्वित्रिनिघ्नाः प्राणिनः वाच्याः ॥ १५१ – १५२ ॥

ज्योति — बुध और मङ्गल सबल हों, तो शिकार मिलता है । यदि वे दोनों अस्त हो, या सप्तम भाव के नवांश में हों, तो शिकार छूट जाता है । लग्न से सप्तम में यदि चतुर्थेश और दशमेश हों, तो शिकार का कारण होता है । यदि वे ग्रह जलचरराशि में हों, तो वनैले पशु का शिकार कहना चाहिए । चन्द्रमा से लग्न पर्यन्त राशियों में जितने स्थानों में पापग्रह हों, उतने जीव शिकार में मिलते हैं । यदि ग्रह अपने नवांशा आदि में हों, तो द्विगुणित त्रिगुणित शिकार की संख्या कहनी चाहिए ॥ १५१ – १५२ ॥

अथ कलहविचारः—भुवनदीपके —

क्रूरः खचरो लग्ने विवादपृच्छासु जयति विवादं तम् ।
सर्वावस्थासु परं नीचेऽस्ते जयति न द्विषतः ॥ १५३ ॥

कुन्तला — विवादवृच्छासु = विवादे मम जयो भविष्यति न वा ? एवं पृच्छासु = प्रश्नेषु, क्रूरः = पापः खचरः = ग्रहः, लग्ने स्थितस्तदा सर्वावस्थासु तं विवादं जयति । परंतु लग्नेशे नीचे वा अस्ते = अस्तङ्गते सति द्विषतः शत्रून् न जयति ।। १५३।।

ज्योति — यदि लग्न में पापग्रह हो तो सब अवस्था में वादी की विजय होती है, परन्तु यदि नीच ग्रह अस्त तथा नीचगत हो तो शत्रु से विजय नही होती है ।। १५३।।

लग्नद्यूने मुक्त्वा परस्परं क्रूरयोर्झकटदृष्टौ ।
विवदद्वादियुग तच्छुरिकाभ्यां प्रहरति तदैवम् ।। १५४।।

कुन्तला — लग्नद्यूने = प्रथमसप्तमे, मुक्त्वा = त्यक्त्वा, अन्यत्र स्थितयोः क्रूरयोः = पापग्रहयोः, परस्परम् = अन्योन्यं झकटदृष्टौ = शत्रुदृष्टौ सत्यां विवदत् = विवादं कुर्वत्, वादियुगं = वादिद्वयं कर्तृ छुरिकाभ्यां तदा एवं प्रहरति ।। १५४।।

ज्योति — यदि लग्न और सप्तम स्थान को छोड़कर पापग्रह परस्पर शत्रु–दृष्टि से देखते हों तो दोनों वादियों में छूरी चलती है ।। १५४।।

लग्ने द्यूने च यदि क्रूरः खचरो विवादिनोर्न तदा ।
कलहनिवृत्तिः काले जयति हि बलवान् गतबलन्तु ।। १५५।।

कुन्तला — यदि क्रूरः खचरः = पापग्रहः, लग्ने वा द्यूने = सप्तमे भवेत् । तदा विवादिनोः = विवादं कुर्वतोः अनयोः कलहनिवृत्तिः = विरोधशान्तिः न भवति । परन्तु काले = समये उपस्थिते बलवान् वादी गतबलं विवादिनं जयति ।। १५५।।

ज्योति — लग्न तथा सातवें स्थान में यदि पापग्रह हों तो दोनों में कलह की निवृत्ति न हो अथवा बलवान् निर्बल को अधिक काल पश्चात् पराजित कर पाता है ।। १५५।।

लग्नेशसुतदः सौम्याः केन्द्रे सन्धिर्न वाऽन्यथा ।
लग्नद्यूनेशषष्ठेशारित्वेऽप्यन्योन्यविग्रहः ।। १५६।।

कुन्तला — लग्नेशसुतदः = लग्नपतिग्नहः पुत्रप्रदश्च ग्रहः तथा सौम्याः = शुभग्रहाः, केन्द्रे स्थिताः, तदा सन्धिः स्यात् । अन्यथा न सन्धिः । लग्नद्यूनेशषष्ठेशारित्वे = लग्नाद्यो द्यूनेशः तथा षष्ठेशः, अनयोररित्वे = शत्रुत्वे सति, अन्योन्यविग्रहः = परस्परविरोधः स्यादेव ।। १५६।।

ज्योति — यदि लग्नेश और पंचमेश तथा शुभग्रह केन्द्र में हों तो सन्धि हो जाती है । यदि लग्नेश, सप्तमेश तथा षष्ठेश छठें स्थान में बैठे हों तो दोनों में परस्पर द्वन्द्व होता है ।। १५६।।

अथ प्रवासिस्थितिविचारः — भु० दी० —

गृहमागतो न यदसौ किं बद्धः किमथवा हतः? इति प्रश्ने ।
मूर्तौ क्रूरौ यदि तन्न हतो बद्धोऽथवा पुरुषः ॥ १५७॥

कुन्तला — यत् = यस्मात् । असौ परदेशगतो मम जनः गृहम्, न आगतः, अत एव कि स बद्धः = कारागारे यन्त्रितः ? अथवा कि कुत्रापि केनापि जनेन हतः = मारितः ?, इति प्रश्ने यदि क्रूरः = पापः मूर्त्तौ = लग्ने, भवेत्, तदा स हतो न अथवा स पुरुषः बद्धोऽपि न वाच्यः ॥ १५७॥

ज्योति — 'अमुक व्यक्ति जो अपने घर नहीं लौटा तो क्या वह बाँधा गया अथवा मारा गया ?' इस प्रश्न लग्न में यदि पापग्रह हों तो मारा नहीं गया, बल्कि वह पुरुष बाँध लिया गया है, ऐसा समझना चाहिए ॥ १५७॥

त्रिकोणचतुरस्रास्तस्थितः पापग्रहो यदि ।
ग्रहैर्निरीक्षितः पापैर्नूनं बन्धनमादिशेत् ॥ १५८॥

कुन्तला — यदि पापग्रहः, त्रिकोणचतुरस्रास्तस्थितः = ९। ५। ४। ८। ७ स्थाने स्थितः, पापैः ग्रहैः निरीक्षितः = दृष्टः, तदा नूनं = निश्चितं बन्धनम् आदिशेत् ॥ १५८॥

ज्योति — यदि ५। ९। ४। ८। ७ स्थान में पापग्रह हों अथवा इनको पापग्रह देखते रहे हों तो निश्चितरूप से बन्धन में पड़ा समझना चाहिए ॥ १५८॥

सप्तमगोऽष्टमगो वा चेत् क्रूरस्तद्धतेपि वा बद्धः ।
मूर्तौ च सप्तमे वा यद्वा लग्नेऽष्टमेऽपि भवेत् ।
क्रूरस्तदसौ पुरुषो बद्धश्च हतश्च मुच्यते च परम् ॥ १५९॥

कुन्तला — अचेत् = यदि, क्रूरः = पापग्रहः सप्तमगः वा अष्टमगः भवेत्, तदा हतेऽपि बद्धः । वा पापग्रहः मूर्तौ = लग्ने, वा सप्तमे, यद्वा लग्ने वा अष्टमे पापग्रहः स्यात् तदाऽसौ पुरुषः = परदेशी, बद्धः, हतः = ताडितः, परं मुच्यते च ॥ १५९॥

ज्योति — यदि सातवें वा आठवें स्थान में क्रूरग्रह हों तो वह पुरुष मारा गया या बाँधा लिया गया है । यदि लग्न में अथवा सातवें पापग्रह हों और लग्न तथा आठवें भी पापग्रह हों तो वह पुरुष बाँधा लिया गया है और मार खाकर पीछे से छूट जाएगा ऐसा समझना चाहिए ॥ १५९॥

बद्धः सप्ताष्टमे क्रूरे मूर्त्यस्ते चाष्टलग्नगे ।
बद्धो विमुच्यतेऽत्याशु क्रूरः श्रेयांस्तनौ तदा ॥ १६०॥

कुन्तला — क्रूरे = पापग्रहे सप्ताष्टमे, वा मूर्त्यस्ते = लग्ने सप्तमे च, वा अष्टमे भवेत्, तदा आशु = शीघ्र विमुच्यते = कारागारमुक्तो भवति । यदि क्रूरः = पापग्रहः तनौ लग्ने, तदा श्रेयान् = कल्याणं भवति ।। १६०।।

ज्योति — यदि सातवें, आठवें, लग्न, सातवें अथवा आठवें या लग्न में पापग्रह स्थित हों तो बन्धन में पड़ा समझना चाहिए । यदि लग्न में शुभग्रह बैठे हों तो बन्धन में पड़ा मनुष्य भी शीघ्र छूट जाता है ।। १६०।।

अथ बद्धमोक्षप्रश्नः प्रश्नदीपके —

बद्धोऽस्ति तत्किं भवितेति प्रश्ने विमुच्यतेऽसौ खलु मृत्युयोगे ।
कदा विमुच्येदिति पृच्छमाने शुभं कदा भावि च तैर्मृतिः स्यात् ।। १६१।।

कुन्तला — यः जनः बद्धः = राजगृहीतः अस्ति, तद्विषये किं भविता = किं भविष्यति ? इति प्रश्ने मृत्युयोगे = जातकोक्तमृत्युयोगे सति असौ निगड्बद्धः खलु विमुच्यते = मुक्तो भवति । अथ कदा स विमुच्येत् ? इति पृच्छमाने सति, वा कदा शुभं भावि इति प्रश्ने तैः पापयोगैः मृतिः = मरणं स्यात् ।। १६१।।

ज्योति — 'अमुक मनुष्य बद्ध है सो उसका क्या होगा ?' इस प्रश्नलग्न में यदि मृत्युयोग हो तो छूट जायगा । कब छूटेगा ? ऐसे प्रश्न का लग्न में विद्यमान शुभाशुभ ग्रहों के अनुसार फल कहना चाहिए ।। १६१।।

मुक्तिप्रश्ने यदा केन्द्रे केन्द्रेशाः स्युर्न मोक्षदाः ।
तस्मिन्वर्षेऽथ लग्नेशेः पतितः केन्द्रगेन च ।। १६२।।
संबन्धेप्सुः स चेत्क्रूरो मृतीशः स्यात्तदा मृतिः ।
लग्नेशेऽस्तमितेऽम्बुस्थे कुजदृष्टे तदा मृतिः ।। १६३।।

कुन्तला — मुक्तिप्रश्ने = बन्धनाच्च्युतिप्रश्ने यदा केन्द्रेशाः = केन्द्रस्थानस्वामिनः, केन्द्रे १। ४। ७। १० स्थाने स्थिताः स्युस्तदा मोक्षदाः = बन्धनमुक्तिकराः न = नहि स्युः । तस्मिन् वर्षे = वर्षप्रवेशकुण्डल्यां, लग्नेशः = वर्षलग्नस्वामी ग्रहः पतितः = पापयुतदृष्टः केन्द्रगेन = केन्द्रस्थानगतेन ग्रहेण सह सम्बन्धेप्सुः = संयोगेच्छुः चेद् = यदि स मृतीशः = अष्टमेशः क्रूरः = पापग्रहः, तदा मृतिः = मरणं स्यात् । लग्नेशे = लग्नपतौ, अस्तमिते = अस्तङ्गते, अम्बुस्थे = चतुर्थस्थानस्थे, कुजदृष्टे = भौमदृष्टे तदा मृतिः स्यात् ।। १६२ — १६३।।

ज्योति — यदि केन्द्रस्थान का स्वामी केन्द्र में हो और पतित लग्नेश केन्द्र में बैठा हो तो कैदी कदापि नहीं छूटेगा ऐसा कहना चहिए । सम्बन्ध की इच्छा रखने वाला पापग्रह यदि अष्टमेश हो तो मरण होता है । यदि लग्नेश अस्त होकर चतुर्थ स्थान में हो और उस पर मङ्गल की दृष्टि हो तो भी मरण होगा ।। १६२ — १६३।।

चन्द्रश्चाम्बुगपापेन मृत्युनाथेन योगकृत् ।
तदा गुप्त्यां मृतिश्चन्द्रः केन्द्रे मन्दयुगीक्षितः ॥ १६४॥

दीर्घपीडा च भौमेन युग्दृष्टे बन्धताडने ।
दृश्यार्धे लग्नपश्चेत्स्याद्व्ययपेनेत्थशालवान् ॥ १६५॥

पलायते तदा बद्धो व्ययगे लग्नगेऽपि वा ।
तृतीयनवमस्वामी व्ययगो लग्नपेन च ॥ १६६॥

यदीत्थशालयोगेप्सुस्तदाऽपि च पलायते ।
दृश्यार्धे ह्युपचारेण चन्द्रो मुथशिली तदा ॥ १६७॥

बन्धमोक्षस्त्रिधर्मेशः सद्ग्रहः शीघ्रमोक्षकृत् ।
पतितेन्दुस्त्रिधर्मस्थग्रहसम्बन्धकृत्तदा ॥ १६८॥

कुन्तला — चन्द्रः, अम्बुगपापेन = चतुर्थस्थानगतपापग्रहेण, मृत्युनाथेन = अष्टमेशेन च योगकृत् = संयोगकृत्, तदा गुप्त्यां = कारागारे मृतिः स्यात् । चन्द्रः केन्द्रे स्थितः मन्दयुगीक्षितः = शनियुतवीक्षितः तदा दीर्घपीड़ा = चिरकालवेदना वाच्या । वा केन्द्रस्थचन्द्रे भौमेन युग्दृष्टे सति बन्धताडने भवतः । वा लग्नपः = लग्नेशः दृश्यार्धे = लग्नतः पूर्वषड्राश्यन्तरे भवेद्यथा मेषलग्ने वृश्चिकादिषड्राश्यन्तरे भवेत्, व्ययपेन = व्ययेशेन इत्थशालवान्, तथा बद्धः = कारागारवासी जनः पलायते, वा लग्नेशे, व्ययगे अपिवा लग्नगे वा तृतीयनवमस्वामी व्ययगः लग्नपेन यदि इत्थशालयोगेप्सुः = इत्थशालयोगाभिलाषी भवेत् तदा अपि बद्धः पलायते = कारागाराद्बहिर्निर्गच्छति । यदि च चन्द्रः उपचारेण = संचारवशेन दृश्यार्धे स्थितः केनापि ग्रहेण मुथशिली तदा बन्धमोक्षः स्यात् ।

त्रिधर्मेशः = तृतीयनवमेशः, सद्ग्रहः = शुभग्रहः स्यात् तदाऽपि शीघ्रमोक्षकृत् भवति । पतितेन्दुः नीचशत्रुभगश्चन्द्रः त्रिधर्मस्थग्रहसम्बन्धकृत् = तृतीयनवमस्थानस्थग्रहेण सम्बन्धकर्त्ता स्यात्, तदा शीघ्रमोक्षकृत् स्यात् ॥ १६४ – १६८॥

ज्योति — यदि चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में हो और वह पापग्रह तथा अष्टमेश से योग करे अर्थात् युक्त हो तो कारागार में मरण होता है । यदि केन्द्र में शनि से युक्त वा दृष्ट हो तो भी मरण होता है ।

यदि लग्नस्वामी मङ्गल से युक्त अथवा दृष्ट हों या दृश्चचक्रार्ध में हो तथा धनभाव के स्वामी से इत्थशाल करता हो तो बन्धन में पड़ेगा और ताड़ना में बहुत अधिक पीड़ा सहेगा ।

यदि तृतीयेश वा नवमेश बारहवें भाव या लग्न में हों अथवा लग्नेश के साथ बारहवें भाव में हो तो बन्दी भाग जायेगा ।

यदि तृतीयेश तथा नवमेश इत्थशाल योग की इच्छा करने वाले हों तो भी बंदी भाग जायेगा । यदि चन्द्रमा दृश्य चक्रार्ध में रहकर इत्थशाल योग करे तो भी बन्दी भाग जायेगा । यदि तृतीयेश तथा नवमेश का योग हो रहा हो तो बन्दी मुक्त हो जायेगा और पतित चन्द्रमा तीसरे या नवें स्थित ग्रह से सम्बन्ध करे तो भी बन्दी बन्धन से छूट जायेगा, ऐसा समझना चाहिए ।। १६४–१६८।।

केन्द्रस्थत्रिभवेशेन योगेप्सुश्चेत्तदाऽचिरात् ।
यावच्छुक्रो बली लग्ने तावत्कर्त्ता बलाधिकः ।। १६९।।

कुन्तला — यदा पतितेन्दुः केन्द्रस्थत्रिभवेशेन = केन्द्रगततृतीयैकादशपतिनां योगेप्सुः = इत्थशालाभिलाषी स्यात्तदा अचिरात् बन्धमोक्षकृत् स्यात् । यावत्कालं बली शुक्रः लग्ने स्यात्तावत् कर्त्ता = बन्धनदाता, बलाधिकः भवति ।। १६९।।

ज्योति — यदि केन्द्र में स्थित तृतीयेश लाभेश के साथ योग की इच्छा करता हुआ शुक्र हो और लग्न में बली होकर बैठा हो तो जब तक बली शुक्र लग्न में रहे, तब तक कर्ता अधिक बलवान् रहेगा ।। १६९।।

अस्तङ्गते शनौ शुक्रे बद्धमोक्षादिसम्भवः ।
म्रियते येन योगेन तेन योगेन मुच्यते ।। १७०।।

कुन्तला — अथ शनौ शुक्रे अस्तङ्गते = रविसान्निध्याल्लुप्तकिरणे सति बन्ध–मोक्षादिसम्भवः भवति । येन एव योगेन लोकः म्रियते, तेनैव योगेन मुच्यते = बन्धनात् त्यज्यते।। १७०।।

ज्योति — यदि शुक्र लग्न में अस्तङ्गत हो तो बन्दी का छूटना सम्भव है । जन्म कालिक मृत्युयोगप्रश्नकाल में हो तो बन्दी मुक्त होता है ।। १७० ।।

मेषे तुले च शीघ्रं स्यात्कर्के नक्रे सकष्टता ।
स्थिरेऽचिराद्द्विदेहस्थे मोक्षो मध्यमकालतः ।। १७१।।

कुन्तला — शुक्रे शनौ वा मेषे तुले सति शीघ्रं बन्धनान्मुक्तिः स्यात् । शुक्रे शनौ वा कर्के नक्रे = मकरे सति सकष्टता = मुक्तौ क्लेशः स्यादित्यर्थः । स्थिरे शुक्रे शनौ वा सति अचिरान्मुक्तिः, द्विदेहस्थे = द्विःस्वभावराशिस्थे शुक्रे शनौ वा सति मध्यमकालतः = न चिरात् न शीघ्रात्, अर्थाच्चिरशीघ्रकालयोर्मध्यमकालेन मोक्षः स्यात् ।। १७१।।

ज्योति — यदि मेष और तुला लग्न हों तो शीघ्र छूटता है, कर्क व मकर लग्न में कष्ट से छूटता है, स्थिर लग्न में बहुत समय बाद छूटता है और द्विःस्वभाव में कुछ दिन बाद छूटता है ।। १७१।।

अथ नौकाप्रश्नः —

क्षेमायतं वहित्रस्य मज्जनं वपनं जले ।
पण्यव्यवहतौ लाभो वाऽपि प्रश्नचतुष्टयम् ॥ १७२॥

कुन्तला — वहित्रस्य = नौकायाः क्षेमायतं, वा क्षेमाय = कुशलाय तं ब्रूहि, वा तस्य जले मज्जनं, = जलमध्ये प्रबूड़नम्, वपनं = स्खलनं वा पण्यव्यवहतो = क्रयविक्रयव्यवहारे, लाभः । एतत् प्रश्नचतुष्टयं भवति ॥ १७२॥

ज्योति — नौका के विषय में चार प्रकार के प्रश्न होते हैं — (१) सकुशल नाव का आना (२) जल में डूब जाना (३) जल में तैरती रहना और (४) व्यापार में लाभ ॥ १७२॥

नौर्लाभदा स्यान्मम नेति पृष्ठे केन्द्रे शुभाश्चेदितरेषु पापाः ।
बलोज्झिताः क्षेमजयार्थदा नौर्भावीति वाच्यं विदुषा विमृश्य ॥ १७३॥

कुन्तला — नौः = नौका, मम लाभाय = व्यापारे प्राप्तिदात्री स्यान्न वा ? इति पृष्टे सति शुभाः = शुभग्रहाः केन्द्रेषु स्थिताः, पापाः = शनिरविकुजाः, इतरेषु = त्रिषड़ायेषु स्थितास्तथा बलोज्झिताः = बलहीनाः स्युस्तदा नौः = नौका, क्षेमसुखार्थदा = कुशल—मनोविनोद—धनलाभदा, भावी = भविष्यति, इति विमृश्य = विचार्य, वाच्यम् = वक्तव्यम् ॥ १७३॥

ज्योति — यदि कोई पूछे कि नाव के व्यापार में हमको लाभ होगा या नहीं ? इस समय यदि केन्द्र में शुभ और शेष स्थानों में बलवान् ग्रह हों तो वे क्षेम, जय तथा अर्थ देने वाले होते हैं, नौकाप्रश्न में इस प्रकार पण्डित को कहना चाहिए ॥ १७३॥

लग्नाधिपे वक्रिणि चांशनाथे व्यावृत्य नौरेति च मार्गतः सा ।
चेत्सौम्यदृष्टः कुशलेन पापैर्दृष्टस्तदा वस्तु विनेति वाच्यम् ॥ १७४॥

कुन्तला — लग्नाधिपे = लग्नेशे, च = पुनः अंशनाथे = लग्ननवांशनाथे वक्रिणि सति तदा सा नौः = नौका, मार्गतः = वाटतः, व्यावृत्य = परावर्त्य, एति = आयाति । चेत् वक्री लग्नेशः, वा वक्री लग्ननवांशेशः सौम्यदृष्टः, तदा कुशलेन नौकाऽऽगमनम् । चेत्तादृशे लग्नेशो वा लग्ननवांशेशः पापैः दृष्टः, तदा वस्तु = वाणिज्यपदार्थ विनैव नौका एति, इति वाच्यम् ॥ १७४॥

ज्योति — यदि लग्नेश वक्रगामी हो और उसके स्थान का स्वामी तथा चतुर्थेश शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो तो नाव लाभ करके कुशलपूर्वक लौटेगी और यदि पापयुत अथवा दृष्ट हो तो बिना वस्तु के नौका लौटा आवेगी ॥ १७४॥

विलग्नरन्ध्राधिपती स्वगेहे प्रवेक्ष्यतश्चेद्व्यवहारलाभः ।
यदाऽष्टमे सौम्यखगा बलाढ्यास्तदा तरी लाभसुखप्रदा स्यात् ॥ १७५॥

कुन्तला — यदि विलग्नरन्ध्राधिपती = लग्नेशाष्टमेशौ स्वगेहे = स्वराशौ प्रवेक्ष्यतः = प्रवेष्टुमभिलषन्तौ भवतः, तदा व्यवहारतो लाभः स्यात् । यदा वा बलाढ्याः सौम्यखगाः = शुभग्रहाः अष्टमे स्थाने स्युः, तदा तरी = नौका लाभसुखप्रदा = सकुशलप्राप्तिदायिनी स्यात् ।। १७५।।

ज्योति — यदि लग्नेश और अष्टमेश अपने घर में हों अथवा अपने स्थान को देखते हों तो व्यवहार से लाभ हो । यदि आठवें स्थान में बलवान् शुभ ग्रह बैठे हों तो नाव लाभ व सुखदायक होती है ।। १७५।।

कुशलाऽऽयाति पृच्छायां मृत्युयोगे समागते ।
तदा नौरेति शीघ्रेण लाभाद्यं चान्ययोगतः ।। १७६।।

कुन्तला — नौका कुशला = सकुशला, आयाति न वा ?, इति पृच्छायां = प्रश्ने मृत्युयोगे समागते घटिते, सति तदा नौः = तरिः, शीघ्रेण एति = आयाति, परन्तु लाभाद्यं तु अन्ययोगतः विचार्यम् ।। १७६।।

ज्योति — 'हमारी नाव सकुशल आवेगी' इस प्रश्न में यदि मृत्युयोग हो तो नौका शीघ्र लौटेगी । यदि अन्य लाभादिक योग हो तो लाभ सहित लौटेगी ।। १७६।।

लग्नेशं चन्द्रनाथं वा चन्द्रं वा मृत्युपो यदि ।
पश्येत्क्रूरदृशा नावा समं नश्यति नौपतिः ।। १७७।।

कुन्तला — यदि मृत्युपः = अष्टमेशः, लग्नेशं, वा चन्द्रनाथं = चन्द्राश्रयराशिपति, वा चन्द्रं क्रूरदृशा = शत्रुदृष्ट्या पश्येत्, तदा नावा = नौकया समं = सह एव, नौपतिः = नौकानाथः, नश्यति = जले मज्जतीति भावः । ''इदानीं नौकया सार्धं कथं सोऽभूदलक्षितः'' इतिवत् ।। १७७।।

ज्योति — यदि लग्नेश, चन्द्रराशि के स्वामी अथवा चन्द्रमा इनको अष्टमेश क्रूरदृष्टि से देखे तो नौका समेत स्वामी का नाश हो जाता है ।। १७७।।

लग्नेशोऽष्टपतिः स्वस्वगेहं नालोकते यदि ।
तदा यानेऽस्य वक्तव्यं निश्चितं मज्जनं बुधैः ।। १७८।।
तावुभौ सप्तमस्थौ चेज्जले वापनिकां वदेत् ।

कुन्तला — यदि लग्नेशः वा अष्टपतिः = अष्टमेशः, स्वस्वगेहम् = लग्नं, अष्टमं च क्रमेण न आलोकते = न पश्यति, तदा अस्य याने = प्रस्थाने बुधैः निश्चितं मज्जनं वक्तव्यं = वाच्यम् । तौ उभौ = लग्नेशाष्टमेशौ सप्तमस्थौ, तदा जलेवापनिकां = वस्तुमात्रनिमज्जनं वदेत् ।। १७८।।

ज्योति — यदि लग्नेश और अष्टमेश ये अपने स्थान को न देखें तो नौका डूब जायगी, ऐसा निश्चय करके कह देना चाहिए । यदि लग्नेश और अष्टमेश सप्तम स्थान में हों तो द्रव्य सहित नौका जल में डूब जायेगी ॥ १७८॥

तथाचोक्तं यवनाचार्यैः —

द्यूने वापनिकां कृत्वा यानमायाति मन्दिरम् ॥ १७९॥

कुन्तला — लग्नेशाष्टमेशौद्यूने = सप्तमे स्थितौ तदा वापनिकां कृत्वा यानं सत्त्वरं मन्दिरम् आयाति ॥ १७९॥

ज्योति — लग्नेश और अष्टमेश यदि सप्तम में हों, तो वस्तु मात्र डूब जाता है और नाविक नाव लेकर शीघ्र घर आता है ॥ १७९॥

लग्नचन्द्रपती क्रूरदृष्ट्याऽन्योन्यं यदीक्षितौ ।
तदा पोतजनानां च मिथः कलहमादिशेत् ॥ १८०॥

कुन्तला — लग्नेशः, चन्द्रपतिः = चन्द्राश्रयराशीशः, एतौ यदि क्रूरदृष्ट्या = शत्रुदृष्ट्या, अन्योन्यं = परस्परं, लग्नेशचन्द्रराशीशं, चन्द्रेशो लग्नेशं एवम् ईक्षितौ = दृष्टौ, तदा पोतजनानां = नाविकानां, मिथः = परस्परं, कलहं = झकटकम् आदिशेत् = कथयेत् ॥ १८०॥

ज्योति — यदि लग्नेश और चन्द्रमा की राशि का स्वामी, ये दोनों पापदृष्टि से एक दूसरे को देखते हों तो नाववालों में ही परस्पर कलह हो जाता है ॥ १८०॥

अथ किंवदन्ती (जनश्रुतिः) किं सत्या भवति ? न वा ? इति प्रश्ने —

लग्नन्तु लग्नेश्वरशीतगूदयैः शुभान्वितैः केन्द्रगतैस्तु सत्या ।
शुभदृग्योगतः सौम्यां वार्ता सत्यां विनिर्दिशेत् ॥ १८१॥

पापदृग्योगतो दुष्टा वार्ता सत्येति कीर्त्यते ।
लग्नेश्वरे भाविवक्रं मिथ्या वार्ता भविष्यति ॥ १८२॥

कुन्तला — लग्नं शुभान्वितदृष्टम्, तथा लग्नेश्वरशीतगूदयैः = लग्नेशचन्द्रलग्नैः शुभान्वितैः = शुभग्रहयुक्तैः केन्द्रगतैः सद्भिः, वार्त्ता = परदेशिनः कुशलाकुशलवार्त्ता सत्या वाच्या । तथा शुभदृग्योगतः वार्त्ता सौम्याम् = अनुकूलां सत्यां च विनिर्दिशेत् = कथयेत् । पापदृग्योगतः वार्त्ता दुष्टा = प्रतिकूला, असत्या च इति कीर्त्यते = कथ्यते । लग्नेश्वरे भाविवक्रे = अग्रकाले वक्रसम्भवे सति वार्त्ता मिथ्या = असत्या भविष्यति॥ १८१ — १८२॥

ज्योति — लग्न यदि शुभ–युत–दृष्ट हो, और लग्नेश, चन्द्रमा, लग्न, ये सब शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हों, केन्द्रगत हों, तो समाचार सत्य निकला है, यह कहना चाहिए ।

शुभ ग्रह की दृष्टि और संयोग से वार्त्ता सत्य और अनुकूल होती है । पापग्रह के योग दृष्टि से अशुभ और झूठी भी होती है । यदि लग्नेश वक्री होनहार हो, तो वार्ता झूठी होती है ॥ १८१ – १८२॥

अथ क्रयविक्रयिणोर्विचारः —

क्रेता लग्नपतिर्ज्ञेयो विक्रेताऽग्रपतिः स्मृतः ।
गृह्णाम्यहमिदं वस्तु प्रश्नं एवंविधे सति ॥ १८३॥

बलशालि विलग्नं चेद्गृह्यते तत्क्रयाणकम् ।
तस्मात्क्रयणकाल्लाभः प्रष्टुर्भवति निश्चितम् ॥ १८४॥

कुन्तला — मम क्रयविक्रये क्रियमाणे लाभो भविष्यति न वा ? इति प्रश्ने लग्नपतिः = तात्कालिकलग्नेशः क्रेता = क्रयकारकः, अग्रपतिः = द्वितीयेशः, लाभेशो वा, विक्रेता = विक्रयकारकः, स्मृतः = कथितः । अहम्, इदं वस्तु गृहणामि ?, एवंविधे प्रश्ने सति विलग्नं बलशालि = बलयुक्तं, चेत् स्यात् तदा क्रयाणकं गृह्यते । तस्मात् = क्रयाणकात् प्रष्टुः = प्रच्छकस्य निश्चितं लाभः भवति ॥ १८३ – १८४॥

ज्योति — लग्नेश खरीदार और लाभस्वामी विक्रेता कहा गया है । मैं यह वस्तु खरीद करूँगा, इस प्रश्न के अवसर पर यदि लग्न बलवान् हो तो वह वस्तु खरीद ले । इस समय खरीदने से लाभ होगा, ऐसा पृच्छक से कह देना चाहिये ॥ १८३ – १८४॥

विक्रीणाम्यमुकं वस्तु प्रश्न एवंविधे सति ।
आयस्थाने बलवति विक्रेतव्यं क्रयाणकम् ॥ १८५॥

कुन्तला — अहम्, अमुकं वस्तु विक्रीणामि? एवंविधे प्रश्ने सति, यदि आयस्थाने = एकादशस्थाने बलवति ग्रहे सति क्रयाणकं = क्रय्यं वस्तु विक्रेतव्यम्, मूल्यमादाय ग्राहकाय वस्तु दातव्यमिति ॥ १८५॥

ज्योति — 'मैं अमुक वस्तु बेचूँगा, इसमें लाभ या हानि क्या फल होगा ?' ऐसे प्रश्न में यदि ग्यारहवाँ स्थान बलवान हो तो वह वस्तु बेचने से लाभ होगा । इसलिये बेच डालने का अनुमति दे देनी चाहिए ॥ १८५॥

अथ सस्यंनिष्पत्तिविचारः —

दिशि कस्यां भवेत्सस्यनिष्पत्तिः क्व च सा नहि ।
पूर्वं देशस्य भङ्गो हिं क्व दिशि क्वतमे नहि ॥ १८६॥

चतुर्णामपि केन्द्राणां मध्ये यत्र शुभग्रहः ।
तस्यां च सस्यनिष्पत्तिः स्वस्थं चैव भविष्यति ॥ १८७॥

यस्यां दिशि शनिः पापैर्युतो वाऽप्यवलोकितः ।
दिशि तस्यां च तत्स्वास्थ्यं दुभिक्षं च भविष्यति ॥ १८८॥

कुन्तला — कस्यां दिशि सस्यनिष्पत्तिः = उत्पत्तिः भवेत्, तथा कस्यां दिशि सा सस्यनिष्पत्तिः नहि भवेत् ? इति प्रश्ने तथा पूर्वे = प्रथमं क्व दिशि कस्य देशस्य भङ्गः = नाशः, क्वक्तमे देशे भङ्गः नहि ?, इति प्रश्ने च चतुर्णां केन्द्राणां मध्ये यत्र स्थाने शुभग्रहः भवेत्, तस्यां दिशि सस्यनिष्पत्तिः भवति, वा स्वस्थं = सकुशलं च भवति । यस्यां दिशि शनिः पापैः = पापग्रहैः युतः, वा अवलोकितः = दृष्टः, तस्यां दिशि तत् स्वास्थ्यं वाच्यं, दुर्भिक्षं च भविष्यति ॥ १८६ – १८८॥

ज्योति — धान्य की उत्पत्ति के प्रश्न में यदि कोई पूछे कि 'किस दिशा में धान्य उत्पन्न होगा और किस दिशा में नहीं ?' 'किस देश का भङ्ग, किसका भोग और किस की वृद्धि होगी ?' ऐसे प्रश्नों के अवसर पर चारों केन्द्र स्थानों को देंखना चाहिए । जिस केन्द्रस्थान में शुभग्रह हों उस दिशा में धान्य उत्पन्न होगा और स्वस्थता भी रहेगी । जिस किसी दिशा में शनैश्चर पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो उस दिशा में रोग और दुर्भिक्ष होगा ॥ १८६ – १८८॥

दिशि तस्यां रविस्तत्र धान्यनाशो नृपाद्भवेत् ।
यत्रापि मङ्गलस्तत्र धान्यनाशोऽग्निभीस्तथा ॥ १८९॥

यस्यां दिशि शुभाः खेटाः समस्तबलशालिनः ।
निष्पन्ना सैव विज्ञेया सस्यस्वास्थ्यं च तत्र हि ॥ १९०॥

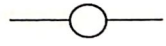
कुन्तला — यस्यां दिशि रविः स्यात्, तत्र नृपात् = भूपात् धान्यनाशः = सस्यक्षयः स्यात् । यत्र = यस्यां दिशि मङ्गलः स्यात् तत्र धान्यनाशः तथा अग्निभीः = अग्निभयं च स्यात् । यस्यां दिशि समस्तबलशालिनः = पूर्णबलिनः शुभाः = शुभग्रहाः स्युः, तत्र = तस्यां दिशि सस्यनिष्पत्तिः निष्पन्ना = सम्पन्ना वाच्या । शस्यस्वास्थ्यं च जायते ॥ १८९ – १९०॥

ज्योति — जिस दिशा में सूर्य पाप ग्रह युक्त तथा दृष्ट हो उस दिशा में राजा के उपद्रव से अन्न का नाश होता है । जिस दिशा में मङ्गल पापग्रह युक्त तथा दृष्ट होता हुआ स्थित हो, वहाँ अन्न का नाश और अग्नि का भय होता है । जिस दिशा में शुभग्रह बलयुक्त होकर स्थित हों, उस दिशा में सब अन्न अच्छे प्रकार से उत्पन्न होते हैं और स्वस्थता भी उसी दिशा में होती है ॥ १८९ – १९०॥

केन्द्रेषु सर्वतः पापाः समस्तबलसंयुताः ।
देशस्तदा विनष्टोऽसौ ज्ञातव्यः शास्त्रकोविदैः ॥ १९१॥

कुन्तला — केन्द्रेषु सर्वतः = स्थानतुष्टयेषु यदि समस्तबलशालिनः = पूर्णबलयुक्ताः पापाः स्युः, तदा असौ देशः शास्त्रकोविदैः = पिण्डतैः विनष्टः विज्ञेयः ।। १९१ ।।

ज्योति — यदि सब केन्द्रस्थानों में पापग्रह पूर्ण बलरहित स्थित हों तो उस देश का नाश होगा, ऐसा शास्त्रज्ञ पण्डितों को जानना उचित है ।। १९१ ।।



अथ प्रकीर्णकाध्यायः *(भुवनप्रदीपे)*

लग्नपो मृत्युपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्प्रष्टुर्लाभस्तदा ध्रुवम् ।। १ ।।

कुन्तला — लग्नपः = लग्नेशः, च = पुनः मृत्युपः = अष्टमेशः अपि यदि मृत्यौ = अष्टमभावे स्यातां, वा एकस्मिन् द्रेष्काणे स्थितौ, तदा प्रष्टुः ध्रुवं लाभः स्यात् ।। १ ।।

ज्योति — लाभालाभसम्बन्धी प्रश्न में यदि लग्नेश तथा अष्टमेश ये दोनों अष्टम स्थान और एक ही द्रेष्काण में बैठे हों तो प्रश्नकर्ता को अवश्य लाभ होता है।। १ ।।

एवं द्वादशभावेषु द्रेष्काणैरेव केवलम् ।
बुधो विनिश्चयं ब्रूयाद्योगेष्वन्येषु निःस्पृहः ।। २ ।।

कुन्तला — एवम् = अमुना प्रकारेण द्वादशभावेषु, द्रेष्काणैः, एव केवलं विनिश्चयं = फलस्य निर्णयं ब्रूयात् । अन्येषु योगेषु निःस्पृहः = निरीहः, उपेक्षादृष्टिवान् स्यात् ।। २ ।।

ज्योति — इस तरह बारहों भावों का फलाफल द्रेष्काण ही से कहना चाहिए, अन्य योगों की अपेक्षा नही करना चाहिए ।। २ ।।

प्रश्नकाले सौम्यवर्गे लग्ने यदधिको भवेत् ।
ग्रहभावानपेक्षेण तदाऽऽख्येयं शुभं फलम् ।। ३ ।।

कुन्तला — प्रश्नकाले यदि लग्ने सौम्यवर्गः अधिकः भवेत्, तदा ग्रहभावानपेक्षेण शुभं फलम् आख्येयम् ।। ३ ।।

ज्योति — प्रश्न के समय लग्न में शुभ ग्रहों के वर्ग में जो कोई ग्रह अधिक बली हो तो ग्रहभाव की अपेक्षा न करके शुभ ही फल कहना चाहिए ।। ३ ।।

लग्नाधिपश्च लाभस्याधीशश्च दायको भवेत् ।
लग्नाधिपस्य योगो लाभाधीशेन लाभकरः ॥ ४ ॥

कुन्तला — लग्नाधिपः = लग्नेशः, लाभस्याधिपः = एकादशेशः च दायकः = दाता भवति । लग्नाधिपस्य ग्रहस्य लाभाधीशेन योगः लाभकरः स्मृतः ॥ ४ ॥

ज्योति — लग्नेश और लाभेश को लाभदायक समझना चाहिए । लग्नेश का लाभेश के साथ उत्पन्न योग हर तरह से लाभदायक होता है ॥ ४ ॥

भवति परलाभकरस्तदैव स यदि चन्द्रदृग्लाभे ।
योगाः सर्वेऽप्यफलाश्चन्द्रमृते व्यक्तमेतच्च ॥ ५ ॥

धर्माधीशेन नवमं कर्माधीशेन च निवृत्त्यधीशेन ।
मृत्युपतिना च योगे लाभाधीशस्य वक्तव्यम् ॥ ६ ॥

कुन्तला — परन्तु स लग्नेशो लाभेशश्च तदैव परलाभकरः = परमलाभकरः भवति यदि च चन्द्रदृग्लाभे, सति, अर्थात् लग्नेशे लाभेशे च चन्द्रदृष्टे विशेषलाभकरो योगः इति । चन्द्रं = चन्द्रसम्बन्धम् ऋते = विना, एते सर्वे योगा अपि अफलाः = व्यर्थाः भवन्ति । एतद्व्यक्तमस्ति । कर्माधीशेन नवमं, युतदृष्टं तदा शुभप्रदो योगः । वा कर्माधीशेन, निवृत्त्य–धीशेन = व्ययेशेन, मृत्युपतिना च लाभाधीशस्य योगे सति फलं वक्तव्यम् ॥ ५ — ६ ॥

ज्योति — यदि लग्नेश लाभ स्थान में बैठकर चन्द्रमा से दृष्ट हो तो अवश्य लाभ होता है, क्योंकि सब योग चन्द्रमा के बिना निष्फल हो जाते हैं ।

इस प्रकार धर्मेश, कर्मेश, निवृत्ति स्थानेश और अष्टमेश से लाभेश के योग होने पर फल कहना चाहिए ॥ ५ — ६ ॥

तत्तत्स्थानेक्षणतः पुण्यविवृद्धिश्च कर्मवृद्धिश्च ।
विबुधैस्तदा निवृत्तिर्मृत्युर्भावा परेऽप्येवम् ॥ ७ ॥

कुन्तला — तत्तस्थानेक्षणतः पुण्यविवृद्धिः, कर्मवृद्धिः च = पुनः, निवृत्तिः, मृत्युश्च विबुधैः वक्तव्यः एवं परे अपि भावाः विचार्याः ॥ ७ ॥

ज्योति — यहाँ नवमभाव से पुण्यवृद्धि तथा दशम भाव से कर्म की वृद्धि जानना चाहिए । इसी प्रकार निवृत्ति से निवृत्ति और अष्टमेश से मृत्यु इसी तरह सब भावों का फल विचार कर कहना चाहिए ॥ ७ ॥

लग्नेशो यदि षष्ठः स्वयमेत्य रिपुर्भवत्यात्मा ।
मृत्युकृदष्टमगोऽसौ व्ययगोऽसौ सततं व्ययं कुरुते ॥ ८ ॥

कुन्तला — लग्नेशः = लग्नपतिः, यदि षष्ठे स्थितः तदा स्वयम् आत्मा एत्य रिपुः = शत्रुः भवति । असौ लग्नेशः अष्टमगः, तदा मृत्युकृत्, भवति । असौ लग्नेशः व्ययगः तदा सततं व्ययं कुरुते ॥ ८ ॥

ज्योति — यदि लग्नस्वामी छठें भाव में हो तो अपनी आत्मा ही शत्रु हो जाती है । यदि लग्नेश अष्ट हो तो मृत्यु और बारहवें हो तो बहुत व्यय होता है ॥ ८॥

लग्नस्थं चन्द्रजं चन्द्रः क्रूरो वा यदि पश्यति ।
धनलाभो भवत्याशु किंत्वनर्थोऽपि पृच्छतः ॥ ९ ॥

कुन्तला — यदि चन्द्रः वा क्रूरः = पापग्रहः लग्नस्थं चन्द्रजं = बुधं पश्यति, तदा आशु = शीघ्रं धनलाभः भवति । किन्तु पृच्छतः अनर्थः अपि भवति ॥ ९ ॥

ज्योति — यदि लग्न में बुध को चन्द्रमा का पापग्रह देखते हों तो शीघ्र लाभ होता है । किन्तु प्रश्नकर्ता के लिये कुछ अनर्थ होने की भी सम्भावना रहती है ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतो भावविचारः —

इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं च कुसुमप्रभम् ।
फलेन सदृशोंऽशश्च भावः स्वादुसमप्रभः ॥ १०॥

कुन्तला — इन्दुः = चन्द्रः, सर्वत्र बीजाभः = बीजसदृशः, लग्नं च कुसुमप्रभम् = पुष्पसमम् । अंशः = लग्ननवांशः फलेन सदृशः । भावः, स्वादुसमप्रभः विज्ञेयः ॥ १०॥

ज्योति — अब साधारण रीति से भावसम्बन्धी विचार करते हुए कहते हैं ग्रह विचार में सर्वत्र चन्द्रमाबीज, फल, अंश लग्न फल तथा भाव स्वाद के समान जानना चाहिए ॥ १०॥

लग्नपतिर्यदि लग्नं कार्याधीशश्च वीक्षते कार्यम् ।
लग्नाधीशः कार्य कार्येशः पश्यति विलग्नम् ॥ ११॥

लग्नेशः कार्येशं विलोकयेल्लग्नपं च कार्येशः ।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्ण कार्यसंसिद्धिः ॥ १२॥

कुन्तला — लग्नपतिः = लग्नेशः, यदि लग्नं पश्यति कार्याधीशः = दशमेशः कार्य = दशमं वीक्षते वा लग्नाधीशः कार्य = दशमं, कार्येशः विलग्नं पश्यति, वा लग्नेशः कार्येशं कार्येशः लग्नपं च विलोकयेत् = पश्येत्, सर्वत्र शीतगुदृष्टौ = चन्द्रदृष्टौ सस्यां कार्यसंसिद्धिः परिपूर्णा भवति ॥ ११ — १२॥

ज्योति — यदि लग्नेश लग्न को, कार्येश कार्य को और लग्नेश कार्यभाव को और कार्येश लग्न को देखता हो और लग्नेश कार्येश को कार्येश लग्नेश को तथा इन सब को चन्द्रमा देखता हो तो कार्य की पूर्ण सिद्धि होती है ॥ ११ – १२॥

कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्यो न यल्लग्नम् ।
लग्नाधिपं च पश्यति शुभग्रहश्चार्धयोगोऽत्र ॥ १३ ॥

एकः शुभो ग्रहो यदि पश्यति लग्नाधिपौ विलोकयति ।
पादोनयोगमाहुस्तदा बुधाः कार्यसंसिद्धिः ॥ १४ ॥

कुन्तला —सौम्यः = शुभग्रहः यल्लग्नं न पश्यति तं पादयोगं = चतुर्थांशयोगं कथयन्ति । यदि शुभग्रहः लग्नाधिपं पश्यति तदाऽयमर्धयोगः भवति । एकः शुभग्रहः यदि लग्नाधिपौ = लग्नलग्नेशौ विलोकयति तदा तं बुधाः पादोनयोगम् आहुः । तदा कार्यसंसिद्धिः स्यात् ॥ १३ – १४॥

ज्योति — यदि लग्नेश लग्न को न देखे और शुभ ग्रह देखता हो तो चतुर्थांश योग जानना चाहिए । यदि केवल लग्नेश को शुभग्रह देखे तो केवल आधा योग होता है । यदि केवल एक शुभग्रह लग्न या लग्नेश को देखता हो तो बुधजन उसे कार्यसिद्धि के लिये एक चौथाई से हीनयोग कहते हैं ॥ १३ – १४॥

अथ लाभादौ कालावधिनिर्णय उक्तो भट्टोत्पलेन —

उदयोपगतं राशिं तञ्च कलीकृत्य लिप्तिका गुणयेत् ।
छायाङ्गुलैश्च कुर्यात् हृत्वा मुनिभिस्ततः शेषम् ॥ १५॥

ग्रहगुणकारो ज्ञेयो दैवविदा पञ्च विंशतिः सैका ।
मनवोऽङ्काष्टौ त्रितयं भवाश्च ५। २१। १४। ९। ८। ३। ११ सूर्यादितो ज्ञेयाः ॥ १६ ॥

गुणयित्वैवं प्राग्वत् हृत्वा सौम्यस्य यदि भवेदुदयः ।
कार्यप्राप्तिः प्रष्टुर्वक्तव्या नेतरैर्ग्रहैर्भवति ॥ १७ ॥

गुणकारैक्यविभक्तः कार्यः सूर्यादिगुणकसंशुद्धः ।
यस्य न शुद्ध्यति वर्गो विज्ञेयस्तद्वशात्कालः ॥ १८॥

कुन्तला — उदयोपगतं राशिं = राश्यादिलग्नमानम् यत्तत्कलीकृत्य, राशि–स्थानीयाङ्क त्रिंशद्भिः संगुण्य तदग्रिमावयवेन अंशेन योजनीयम्, तदङ्कमानं षष्ट्या संगुण्य कलाभिर्योज्यम्, तदा कलात्मकं जातम् । एवं लिप्तिकाः = कलाः छायाङ्गुलैः गुणयेत् ताःमुनिभिः = सप्तभिः, हृत्वा ततः शेषं कुर्यात् । तच्च शेषं ग्रहगुणकारः = ग्रहाणां रव्यादीनां

गुणकारः दैवविदा = ज्योतिर्विदा ज्ञेयः । तत्र सूर्यादितः ग्रहात् क्रमेण पञ्च, सैका विंशतिः, मनवः, अङ्काः, अष्टौ, त्रितयं, भवाः एते गुणकारा ज्ञेयाः । एवं गुणयित्वा प्राग्वत् = पूर्ववत् हृत्वा यदि सौम्यस्य = शुभस्य उदयः भवेत् तदा प्रष्टुः कार्यप्राप्तिः वक्तव्या । इतरैर्ग्रहैः = पापग्रहैः शुभं न भवति । गुणकारैक्यविभक्तः सूर्यादिगुणकसंशुद्धः यस्य गुणकारः न शुद्ध्यति, तस्य वर्गः विज्ञेयः । तद्वशात् कालः विज्ञेयः ।। १५ – १८ ।।

ज्योति — प्रश्नकाल में इष्टवश राश्यादिक लग्न जो हो, उसको कलात्मक बनाएँ अथवा राशिस्थानीय अङ्क को तीस से गुणा करके अंशस्थानीय अङ्क जोड़ दें, फिर उस अङ्क को साठ से गुणा करके कलास्थानीय अङ्क जोड़े यही कलात्मक प्रश्नलग्न हुआ । अब जिस समय में प्रश्न हुआ है, उस काल में द्वादशाङ्गुल शङ्कु को समतल भूमि में लम्बरूप रखकर जो अङ्गुलात्मक छाया होगी, उस छायाङ्गुल संख्या से कलात्मक लग्न मान को गुणा करे, गुणनफल को सात से भाग देने पर जो शेष बचेगा, वह ग्रह का गुणकार होगा । अर्थात भिन्न–भिन्न ग्रहों के भिन्न–भिन्न गुणकार हैं, जैसे सात से भाग देने पर यदि १ शेष हुआ, तो रवि का गुणकार ५ हुआ । यदि २ शेष बचा तो चन्द्रमा हुआ, उसका गुणकार २१ है । ऐसे ३ रहने से मंगल, इसका गुणकार १४ है । ऐसे ही और ग्रहों के समझने चाहिए ।

अब पूर्वोक्त लग्न के कलापिण्ड को उस ग्रह के गुणकांक से गुणा करें और गुणनफल को इष्ट ग्रह के गुणकांक पर्यन्त जो गुणकों के योग हो, उससे भाग दें, तो जो शेष बचे, उसमें रव्यादिक ग्रहों के गुणकांक को घटावें जिस ग्रह का गुणकांक नहीं घटे, उसी ग्रह का उदय हुआ यह जानना चाहिए । यहाँ यदि शुभ ग्रहों का उदय हो तो कार्यसिद्धि कहना चाहिए । यदि पापग्रहों का उदय हो तो कार्य विफल कहना चाहिए ।। १५ – १८ ।।

आरदिवाकरशेषे दिवसाः पक्षाश्च भृगुशशिनोः ।
गुर्ववशेषे मासा ऋतवः सौम्ये शनैश्चरेऽब्दाः स्युः ।। १९ ।।

कुन्तला — आरदिवाकरशेषे = कुजरविशेषे भृगुशशिनोः = शुक्रचन्द्रयोश्च शेषे पक्षाः = पञ्चदश दिवसाः । गुर्ववशेषे मासाः त्रिंशद्दिनात्मकाः । सौम्ये = बुधे, ऋतवः = षट्, शनैश्चरे = शनौ, अब्दाः = वर्षाणि स्युः ।। १९ ।।

ज्योति — यदि मङ्गल तथा सूर्य का गुणक अङ्क नहीं घटे तो उतने दिन, शुक्र और चन्द्रमा का न घटे तो पक्ष, बृहस्पति से महीना, बुध से ऋतु तथा शनि से वर्ष जानना चाहिए ।। १९ ।।

आधानेऽथ प्राप्तौ गमनागमने पराजये विजये ।
रिपुनाशे वा काले पृच्छायां निश्चितं ब्रूयात् ।। २० ।।

अकचटतपयशवर्गा रविकुजसितसौम्यजीवसौराणाम् ।
चन्द्रस्य च निर्दिष्टास्तैः स्युः प्रथमोद्भवैर्वर्णैः ।। २१ ।।

ज्ञात्वा तस्माल्लग्नं विज्ञाय शुभाशुभं च वदेत् ।
वर्गादिमध्यमान्त्यैर्वर्णैः प्रश्नोद्भवैर्विषमराशिः ।। २२।।

रात्रौ लग्नं प्रवेदत्पृच्छायुग्मं कुजज्ञजीवानाम् ।
सितरविजयोश्च नैवं रविशशिनोरेकराशित्वात् ।। २३।।

तस्मात्प्राग्वत्प्रवदेत्पृच्छासमये शुभाशुभं सर्वम् ।
कालस्य च विज्ञानादेतच्चिन्त्यं बहुप्रश्ने ।। २४।।

कुन्तला — अथ आधाने = गर्भाधाने, प्राप्तौ = धनप्राप्तौ, गमनागमने, पराजये, विजये, वा रिपुनाशे काले, पृच्छायां निश्चितं कालं ब्रूयात् । रविकुजसितसौम्यजीवसौराणां चन्द्रस्य च, अकचटतपयशवर्गाः निर्दिष्टाः । तैः प्रथमोद्भवैः वर्णैः लग्न विज्ञाय तस्मात् = लग्नात् शुभाशुभं च वदेत् । प्रश्नोद्भवैः वर्गादिमध्यमान्त्यैर्वर्णैः विषमराशिः रात्रौ लग्नं प्रवदेत् । तत्र कुजज्ञजीवानां सितरविजयोश्च पृच्छायुग्मं भवति, तेषां राशिद्वयाधिपत्वात् । रविशशिनोः = सूर्यचन्द्रयोः एकराशित्वात् एवं न वाच्यमर्थादेकमेव प्रश्नरूपं वाच्यम् । तस्मात् प्राग्वत् पृच्छासमये सर्वशुभाशुभं बोध्यम् । कालस्य विज्ञानात् बहुप्रश्ने एतच्चिन्त्यम् ।। २१ — २४।।

ज्योति — गर्भाधान तथा धन आदि की प्राप्ति अप्राप्ति, गमनागमन, जय–पराजय आदि में इस प्रकार समय का निश्चय करना चाहिए । अवर्ग का सूर्य, कवर्ग का मङ्गल, चवर्ग का शुक्र, टवर्ग का बुध, तवर्ग का गुरु, पवर्ग का शनि; यवर्ग का चन्द्रमा ये क्रम से वर्गों के अधिपति हैं । जहाँ लग्न न जाना जा सके अथवा दो तीन प्रश्न एक साथ में हो तो वर्ग से लग्न का निश्चय करें । वर्गों के स्वामी बता चुके हैं । अतएव लग्न को जानकर ही शुभाशुभ फल कहें । प्रश्न का प्रथम अक्षर जिस वर्ग का हो उसके स्वामी की राशि को लग्न समझें । जैसे – 'अ' वर्ग हो तो उस का स्वामी सूर्य है अतः सिंह लग्न समझना चाहिए । और 'य' वर्ग का स्वामी चन्द्र है इसलिये कर्क लग्न समझना चाहिए । और मंगलादि पाँच ग्रह 'क' वर्गादि पाँच वर्ग के स्वामी हैं, उनमें आदि–मध्य–अन्त अर्थात् (१, ३, ५) हो तो उसकी विषम राशि को लग्न समझना अन्य अक्षर से सम राशि समझना चाहिए । अतएव प्रश्नकर्ता से सब शुभाशुभ फल और काल का निश्चय करना चाहिए । इस प्रकार विचारना तथा समय के विज्ञान से एक साथ होने वाले बहुत से प्रश्नों में भी यह सब विचार करना चाहिए ।। २० – २४।।

अथ मानसचिन्तामाह पृथुयशाः —

स्वांशं विलग्ने यदि वा त्रिकोणे स्वांशे स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम् ।
परांशकस्थाश्च करोति जीवं मूलं परांशोपगतः परांशम् ।। २५ ।।

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विन्द्यादेतदेव प्रतीपम् ।
लग्ने योऽशस्तत्क्रमाद्गण्यमेवं संक्षेपोऽयं विस्तरात्तत्प्रभेदः ।। २६ ।।

कुन्तला — स्वांशे = स्वनवांशे स्थित: कश्चिदपि ग्रहो विलग्ने वा त्रिकोणे (५।१) स्वांशं = स्वनवांशं पश्यति तदा धातुचिन्तां ब्रूयात् । परांशकस्थ: = अन्यनवांशे स्थितो ग्रहो लग्ने त्रिकोणे वा गतं स्वांशं पश्यति तदा जीवं = जीवचिन्तां करोति । अथ परांशोपगतो ग्रहो लग्ने त्रिकोणे वा परांशं पश्यति तदा मूलं करोति । अत्रैतदुक्तं भवति । य: कोऽपि ग्रहस्तत्काले स्वनवांशे विद्यमानेनो लग्नपञ्चमनवमान्यतमगतं स्वनवांशं पश्यति तदा प्रष्टुर्धातुचिन्तां करोति । परनवांशोपगत: सन् लग्नपञ्चमनवमान्यतमगतं स्वांशं पश्यति तदा जीवचिन्तामेवं परांशोपगतो ग्रहो लग्नपञ्चमनवमान्यतमगतं परनवांशं पश्यति तदा मूलचिन्तां करोतीति ।

अथ प्रकारान्तरमाह = धातुमिति । ओजराशौ = विषम (१। ३। ५। ७। ९। ११) राशौ प्रश्नलग्ने क्रमेण धातुं, मूलं, जीवं विन्द्यात् । युग्मे = समे (२। ४। ६। ८। १० । १२) राशौ लग्नगते प्रतीपं = व्यत्यासेन एतदेवार्थाज्जीवं, मूलं, धातुमिति विन्द्यात् । अथात्र यदुक्तं धातुं, मूलं, जीवमिति कस्तं गणयेदित्याह लग्ने योंऽशस्तत्क्रमाद्गण्यमिति। अर्थाल्लग्ने प्रथमनवांशे धातु, द्वितीये मूलं, तृतीये जीवमेवं विषमे लग्ने १। ४। ७। नवांशे धातुं, २। ५। ८ नवांशे मूलं ३। ६। ९। नवांशे जीवं विजानीयात् । समे लग्ने १। ४। ७ नवांशे जीवं, २। ५। ८ नवांशे मूलं, ३। ६। ९ नवांशे धातुं विन्द्यादिति । अवांशशब्देन द्रेष्काणग्रहणमसङ्गंत स्यादंशशब्देन सर्वत्रैव नवांशस्य ग्रहणात् । अयं किल संक्षेप उक्त: । तत्प्रमेदो विस्तरादपि वर्त्तते इति ।। २५ — २६।।

ज्योति — किसी मूकप्रश्न अथवा मुष्टिगत प्रश्न में लग्नेश तथा चन्द्रमा यदि अपने नवांश या लग्न में अथवा त्रिकोण ९। ५ में हो या अपने नवांश में रहकर लग्न को देखते हों तो धातुचिन्ता कहना चाहिए । यदि दूसरे के नवांश में बैठकर लग्न तथा चन्द्रमा को देखे तो जीव चिन्ता । यदि दूसरे के नवांश में बैठकर दूसरे के नवांश में स्थित लग्न या चन्द्रमा को देखे तो मूल चिन्ता की बात कहनी चाहिए । यदि विषम राशि लग्न हो तो प्रथम नवांश से धातु, दूसरे से मूल, तीसरे से जीव, चौथे से धातु, पाँचवें से मूल, छठें से जीव, सातवें से धातु, आठवें से मूल, नवमें से जीव जानना चाहिए । यदि सम राशि की लग्न हो तो विपरीत अर्थात् १। ४। ७ नवांश से जीव, २। ५। ८ से मूल और ३। ६। ९ नवांश से धातुचिन्ता की बात कहनी चाहिए ।। २५ — २६।।

उत्पल: —

बलिनौ केन्द्रोपगतौ रविभौमौ धातुकरौ प्रश्ने ।
बुधसौरी मूलकरौ शशिगुरुशुक्रा: स्मृता जीवा: ।। २७ ।।

कुन्तला — प्रश्ने बलिनौ = बलयुक्तौ रविभौमौ केन्द्रोपगतौ धातुकरौ = धातु—चिन्ताकरौ भवत: । बलिनौ बुधसौरी केन्द्रोपगतौ, तदा मूलकरौ = मूलचिन्ताकरौ भवत: । बलिन: = शशिगुरुशुक्रा: केन्द्रगतास्तदा जीवा: = जीवचिन्तायोगकरा भवन्ति ।। २७।।

ज्योति — यदि सूर्य तथा मङ्गल बली होकर केन्द्र में हो तो धातुचिन्ता, बुध, अथवा शनि हो तो मूलचिन्ता, चन्द्र, गुरु और शुक्र हों तो जीवचिन्ता की बात कहनी चाहिए ॥ २७ ॥

मेषालिसिंहलग्ने कुजार्कयुक्ते निरीक्षितेऽथ्यथवा ।
धातोश्चिन्तां प्रवदेद्युगघटकन्यागतैर्लग्नैः ॥ २८ ॥

बुधरविजयुतैर्मूलं वृषतुलहरिमीनचापकर्कटकैः ।
चन्द्रगुरुशुक्रयुक्तैर्दृष्टैर्जीवो विनिर्देश्यः ॥ २९॥

कुन्तला — अथवा मेषालिसिंहलग्ने कुजार्कयुक्ते वा कुजार्काभ्यां निरीक्षिते = दृष्टे तदा धातोश्चिन्तां प्रवदेत् । युगघटकन्यागतैः = मिथुनकुम्भकन्यालग्नैः बुधैविजयुतैः तैर्दृष्टैर्वा मूलं = मूलचिन्तात्मकं प्रश्नं वदेत् । वृषतुलहरिमीनचापकर्कटकैः = वृषः प्रसिद्धः, तुला प्रसिद्धा, हरिः = सिंहः, मीनः, चापः = धनुः, कर्कटक एतैर्लग्नैः चन्द्रगुरुशुक्रयुक्तैः सद्भिः जीवः = जीवचिन्तात्मकः प्रश्नो विनिर्देश्यः ॥ २८ — २९॥

ज्योति — यदि मेष, वृश्चिक तथा सिंह लग्न हो और लग्न में मङ्गल तथा सूर्य एक साथ बैठें हों या लग्न को देखते हों तो धातुचिन्ता की बात कहना चाहिए । यदि मिथुन, कुम्भ तथा कन्या लग्न हो और लग्न में शनि के साथ बुध बैठा हो तो मूलचिन्ता, वृष, तुला, सिंह, मीन, धन एवं कर्क इन लग्नों में से कोई लग्न हो और चन्द्र, गुरु, तथा शुक्र ये ग्रह बैठे हों या देखते हों तो जीवसम्बन्धी प्रश्न कहना चाहिए ॥ २८ — २९॥

लग्नलाभपयोः प्राणितयोर्यद्भावगः शशी ।
तस्य भावस्य या चिन्ता प्रष्टुः सा हृदि वर्तते ॥ ३०॥

एवं बलाधिकाच्चन्द्राल्लग्ननाथो यतः स्थितः ।
दैवज्ञेन विनिर्णेयः प्रश्नसद्भावसम्भवः ॥ ३१॥

कुन्तला — प्राणितयोः बलवतोः लग्नलाभपयोः = लग्नेशैकादशेशयोः सकाशात्, शशी = चन्द्रः यद्भावगः = यस्मिन् भावे गतः तस्य भावस्य विषयिणी या चिन्ता पूर्व मुक्ता सा प्रष्टुः = प्रश्नकर्तुः हृदि वर्त्तते । एवममुना प्रकारेण बलाधिकात्—चन्द्रात् लग्ननाथः = लग्नस्वामी, यतः = यस्मिन् भावे स्थितः तद्भावविषयकः प्रश्नसद्भावसंभवः दैवज्ञेन विनिर्णेयः कार्यः ॥ ३० — ३१॥

ज्योति — लग्नेश तथा लाभेश में जो बलवान् हो उससे जितने संख्यक भाव में चन्द्रमा बैठा हो उस भावसम्बन्धी जो चिन्ता हो, वही पृच्छक के हृदय में रहती है ।

बलवान् चन्द्रमा से जितनी संख्या के भाव में लग्नेश बैठे हों, ज्योतिषी उस भावसम्बन्धी प्रश्न को पृच्छक के हृदय में रहने की बात कहनी चाहिए ॥ ३० — ३१॥

अथ पृथुयशाः (षट्पञ्चाशिकायाम्) —

आत्मसमं लग्नगतैस्तृतीयगैर्भ्रातरः सुतं सुतगैः ।
माता वा भगिनी वा शत्रुगतैः शत्रुभार्या स्यात् ॥ ३२ ॥

सप्तमसंस्थैर्नवमैर्धर्माश्रितयुग्गुरुर्दशमैः ।
स्वांशपतिमित्रशत्रुषु तथैव वाच्यं बलयुतेषु ॥ ३३ ॥

कुन्तला — लग्नगतैर्ग्रहैः आत्मसमं = स्वसमानम्, तृतीयगतैः ग्रहैः भ्रातरः, सुतगैः = पञ्चमभावगतैः ग्रहैः सुतं = पुत्रं, शत्रुगतैर्ग्रहैः — माता = जननी, वा भगिनी, वा शत्रुभार्या = वैरिनारी स्यात् । सप्तमसंस्थैः ग्रहैः, नवमैः = नवस्थानस्थितग्रहैः, धर्माश्रितयुक जनः, दशमैः = दशमस्थग्रहैः गुरुः = गुरुजनः, विचार्यः । स्वांशपतिशत्रुषु बलयुतेषु सत्सुतथैव फलं वाच्यम् ॥ ३२ — ३३॥

ज्योति — यदि उत्तम बली ग्रह तथा तात्कालिक लग्न का नवांश शेष लग्न में हो तो शारीरिक, तीसरे में हो तो भ्राता, पञ्चम भाव में हो तो पुत्र, चौथे भाव में हो तो माता अथवा बहन और छठें में हो तो शत्रुसम्बन्धी प्रश्न पृच्छक के हृदय में जानना चाहिए ।

इसी प्रकार सप्तम भाव में हो तो स्त्री, नवम भाव में हो तो धर्म, दशम भाव में हो गुरु तथा राजा सम्बन्धी प्रश्न कहना चाहिए । यदि लग्न का नवांशेश बलवान् होकर मित्र की राशि में बैठा हो तो मित्र और शत्रु की राशि में हो तो पृच्छक के मन में शत्रु सम्बन्धी प्रश्न जानना चाहिए । इनमें जो बली हो उसी से प्रश्न का निर्णय करना चाहिए ॥ ३२ — ३३॥

चरलग्ने चरभागे मध्याद्भ्रष्टे प्रवासचिन्ता स्यात् ।
भ्रष्टः सप्तमभवनात्पुनर्निवृत्तो यदि न वक्री ॥ ३४ ॥

कुन्तला — चरलग्ने चरभागे = चरराश्यंशे, मत्याद् दशमाद् भ्रष्टे प्रवासचिन्ता = परदेश विषयणी चिन्ता स्यात् । यदि सप्तमभवनाद् भ्रष्टः पुनर्निवृत्तः, अतएव वक्री ग्रहः स्यात्तदाऽपि प्रवासचिन्ता स्यात् ॥ ३४॥

ज्योति — चरराशि की लग्न में यदि चर नवांश का मध्य अर्थात् पंचम खंड १६। ४० से ऊपर हो तो प्रवास का प्रश्न जानना चाहिए । यदि चरराशि के नवांश में सप्तम भाव से ऊपर अर्थात् सप्तम, अष्टम तथा नवम भाव में वक्रताहीन ग्रह हो तो प्रवास से लौटने की बात कहना चाहिए । यदि वक्री ग्रह हो तो विपरीत प्रश्न कहना चाहिए ॥ ३४ ॥

मया का स्त्री उपभुक्ता, मनसि चिन्तिता कीदृशी वा इति प्रश्ने —

अस्ते रविसितवक्रैः परजायां स्वां गुरौ बुधे वेश्याम् ।
चन्द्रे च वयः शशिवत् प्रवदेत्सौरेऽन्त्यजादीनाम् ॥ ३५॥

कुमारिकां बालशशी बुधश्च वृद्धां शनिः सूर्यगुरु प्रसूताम् ।
स्त्री कर्कशां भौमसितौ च धत्ते एवं वयः स्यात्पुरुषेषु चैवम् ॥ ३६ ॥

कुन्तला — रविसितवक्रैः = सूर्यशुक्रकुजैः, अस्ते = सप्तमे स्थितैः सद्भिः, पराजायां चिन्तयति । गुरौ अस्ते सति, स्वां = स्वकीयां स्त्रियं चिन्तयति । बुधे अस्तस्थिते सति वेश्याम् = गणिकां चिन्तयतीति वाच्यम् । चन्द्रे च सप्तमे सति गणिकां चिन्तयति । शशिवद्वयः स्त्रिया अवश्यं कथयेत् । सौरे अस्तस्थे तदाऽन्त्यजादीनां = नीचजातीनां स्त्रियं चिन्तयतीति ज्ञेयम् । बालशशी = दर्शादितः शुक्लपञ्चमीपर्यन्तकश्चन्द्रो बाल उच्यते, तादृशो यदि स्यात्तदा कुमारिकां चिन्तयति । बुधो यदि सप्तमस्थस्तदाऽपि कुमारिकामेव चिन्तयति । शनिः सप्तमस्थः तदा वृद्धां स्त्रियं चिन्तयति । सूर्यगुरू सप्तमस्थौ तदा प्रसूतां चिन्तयति । भौमसितौ सप्तमस्थौ तदा कर्कशां = कलहप्रियां नारीं चिन्तयति । एवं पुरुषेषु अपि वयः = वयः प्रमाणं, जातिं च विचारयेत् ॥ ३५ — ३६॥

ज्योति — यदि सप्तम भाव में सूर्य, शुक्र तथा मङ्गल बलवान् होकर बैठे हों तो परस्त्री, बृहस्पति हों तो अपनी स्त्री, बुध हो तो वेश्या, चन्द्रमा हो तो सुरूपा और शनि हो तो हीनजाति की स्त्रीसम्बन्धी प्रश्न पृच्छक के चित्त में समझना चाहिए । यदि बाल चन्द्रमा अथवा बुध हो तो कुमारी कन्या, शनि हो तो वृद्धा स्त्री, सूर्य तथा गुरु हो तो प्रसूता, मङ्गल तथा शुक्र हो तो कठोर स्वभाव की स्त्री संबंधी प्रश्न जानना चाहिए । इसी प्रकार पुरुष की अवस्था का भी विचार करना चाहिए ॥ ३५ — ३६॥

अथ सुरतप्रश्नः —

शुभेत्थशाले हिमगौ चतुष्टये सौख्यातिरेकः सविलासहासः ।
क्रूरेत्थशाले हिमगौ सरोषे क्रूरान्वितेऽभूत्कलहो नृवध्वाः ॥ ३७ ॥

पीडाऽथवाऽऽसीत्सुरते युवत्या रजो यथाऽस्तर्क्षमुपैति तद्वत् ।
लग्ने सुरेज्ये भृगुजे कलत्रे तुर्ये हिमांशौ सविलासहासम् ॥ ३८ ॥

कुन्तला — हिमगौ चन्द्रे, शुभेत्थशाले, चतुष्टये = केन्द्रे च सति तदा सविलासहासः सौख्यातिरेकः = आनन्दातिशयः स्यात् । हिमगौ चन्द्रे क्रूरेत्थशाले = पापग्रहमुथशिले सति सरोषः = सक्रोधः सङ्गः स्यात् । हिमगौ क्रूरान्विते = पापसहिते सति नृवध्वोः = दम्पत्योः, पुरुषस्त्रियोः कलहः अभूत् अथ वा सुरते = मैथुने युवत्याः पीड़ा आसीत् । यथा अस्तर्क्ष = सप्तमगृहम्, उपैति, तद्वत् युवत्या रजः = कामोपचारो ज्ञेयः । तथोक्तं वराहेण — "यथाऽस्तराशिर्मिथुनं समेति तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः । असद्ग्रहालोकितसतुतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः ॥ बृहज्जातके । सुरेज्ये = गुरौ, लग्ने, भृगुजे = शुक्रे कलत्रे, हिमांशौ = चन्द्रे, तुर्ये = चतुर्थस्थाने सति सविलासहासः सुरतप्रयोगः वाच्यः ॥ ३७ — ३८॥

ज्योति — यदि शुभग्रह केन्द्रस्थित चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो सुखपूर्वक हास विलास तथा मुथशिली चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो तो स्त्री पुरुषों में कलह होता है और सुरत से स्त्री को पीड़ा होती है । सप्तम भाव की राशि का जीव जिस प्रकार रति करता हो उसी प्रकार की की रति कहना चाहिए और यदि लग्न में बृहस्पति, सप्तम में शुक्र और चौथे में चन्द्रमा हो तो हास्य–विलासपूर्वक रतिक्रीड़ा होने की बात कहना चाहिए ।। ३७ – ३८।।

शुभग्रहोत्थे च कबूलयोगे युतो रजः पुष्पसुगन्धयुक्तम् ।
स्वर्क्षोच्चगे हर्म्यरतं निगद्यं स्थिते द्विदेहे वनिता स्वकीया ।। ३९ ।।

चरोदये सा रमिते परस्त्री केन्द्रे शनौ सा सुरजा दिवारतिम् ।
निशोदयेशे त्रिखगे च रात्रौ दिवानिशं तद्बलिनोर्द्विखेटयोः ।। ४० ।।

कुन्तला — वा शुभग्रहोत्थे कम्बूलयोगे युतश्चन्द्रः स्यात्तदा पुष्पसुगन्धयुक्तं रजः वाच्यम् । स्वर्क्षोच्चगे चन्द्रे सति हर्म्यरतं कथनीयम् प्रासादभवने सङ्गं वदेत् । द्विदेहे = द्विःस्वभावलग्ने तु स्वकीया वनिता = स्त्री वाच्या । चरोदये = चरलग्ने सति रमिते = रमणे सा परस्त्री स्यात् । शनौ केन्द्रे सति सा सुरजा, तथा दिवोदयेशे त्रिखगे दिवारतिं वदेत् । निशोदयेशे त्रिखगे = ग्रहत्रये सति रात्रौ रतिं वदेत् । बलिनोः द्विखेटयोः = द्विग्रहयोः दिवानिशं रतिं वदेत् ।। ३९ – ४०।।

ज्योति — यदि लग्नेश तथा सप्तमेश का शुभग्रहों के साथ कम्बूलयोग हो तो रज पुष्प–सुगन्धि से युक्त हो, पापग्रह के साथ कम्बूल होने से दुर्गन्धि युक्त रज जानना चाहिए । यदि उक्त ग्रह अपनी राशि या उच्च में हो तो अच्छे घर में सुरत होता है । द्विःस्वभाव राशि में अपनी स्त्री के साथ सुरत होता है ।

यदि किसी चरसंज्ञक राशि की लग्न हो तो पराई स्त्री से, शनि केन्द्र में हो तो रजस्वला नारी से, दिवाबली लग्न हो तो दिन में, रात्रिबली लग्न हो तो रात्रि में, सन्ध्या–बली लग्न हो तो सायङ्काल में और द्विःस्वभाव लग्न हो तो दिन–रात्रि सदा सुरत होने की बात कहनी चाहिए ।। ३९ – ४०।।

अथ महर्घ चिन्ता —

मेषे वृषे च मिथुने शुभयुक्तदृष्टे न ग्रैष्मिकं तु सुलभं भविता पृथिव्याम् ।
सूर्ये धनुर्मृगघटेषु च सारधान्यंकुर्यात्समर्घमशुभैः सहितोऽसमर्घम् ।। ४१।।

लग्ने बलाढ्ये निजनाथसौम्यैर्युक्तेक्षिते केन्द्रगतैः शुभैश्च ।
सर्वैः समर्घ विबलैविलग्ने केन्द्रेषु पापैः सकलं समर्घम् ।। ४२ ।।

राकाकुहूशशिपभास्वदजप्रवेशे लग्नेश्वराः शुभखगैर्युतवीक्षिताश्चेत् ।
तद्वत्सरे जगति सौख्यमलं प्रकुर्युः पापादिते गदनरेन्द्रभयं प्रजानाम् ।। ४३।।

मेषप्रवेशोदयतः स्वराशिः केन्द्रेषु पापोडुपतीत्थशाले ।
पापग्रहैर्दृष्टयुतेऽथ तस्मिन् वर्षे गदातिः प्रियमन्नमुर्व्याम् ।। ४४ ।।

भानोर्मेषप्रवेशोदयभवनपतिः सद्ग्रहः स्वोच्चसंस्थः
स्वर्क्षस्थो वाऽपि केन्द्रे शुभगगनचरैर्दृष्टयुक्तो बलाढ्यः ।
तस्मिन्वर्षे विदध्याज्जगति शुभसुखं भूरिसस्यं सुवृद्धिः
क्रूरः क्रूरादितो वा दिशति नृपभयं कष्टमन्नं महर्घम् ।। ४५।।

कुन्तला — प्रश्नलग्ने मेषे वृषे मिथुने च सति, तथा शुभयुक्तदृष्टे च सति पृथिव्यां ग्रैष्मिकं = ग्रीष्मर्तुजात सस्यं सुलभं न स्यात् । सूर्ये धनुर्मृगघटेषु स्थिते, तदा सार– धान्यम् समर्घ कुर्यात् । अथवा तादृशे सूर्ये अशुभैः सहिते तदा तत् असमर्घ = महर्घ स्यात् । लग्ने बलाढ्ये, निजनाथसौम्यैः युक्तेक्षिते, तथा केन्द्रगतैः सर्वैः शुभैश्च युतेक्षिते, तदा समर्घ कुर्यात् । सा विबलैः = दुर्बलैः सर्वैः ग्रहैः विलग्ने स्थितैः पापैः = पापग्रहैः केन्द्रेषु स्थितैः तदा सकलं सस्यजातं समर्घ वाच्यम् ।

राकाकुहूशशिपभास्वदप्रवेशे = राका = पूर्णिमा, कुहूः = अमावास्या, तयोः शशिपः = चन्द्रराशीशः, भास्वान् = सूर्यः अनयोरजप्रवेशे = मेषराशिसंक्रान्तौ, चन्द्रस्य सूर्यस्य च मेषसञ्चारे चेत् = यदि लग्नेश्वराः = शुभखगैः युतवीक्षिताः स्युः, तदा तद्वत्सरे = तद्वर्षे जगति = संसारे, अलं = पूर्ण, सौख्यं प्रकुर्युः । तथा लग्नेशे पापार्दिते = पापपीड़िते सति प्रजानां = जनानां, गदनरेन्द्रभयं = रोगभयं राजभयं च वाच्यमिति ।

मेष प्रवेशोदयतः = मेषे रविर्यस्मिन् समयेऽभूतत्समये यल्लग्नं स्यात्तस्मात् सकाशात् स्वराशिः = स्वजन्मराशिः केन्द्रेषु = १। ४। ७। १० एतेषु भवेत्, तस्मिश्च पापोडुपतीत्थशाले सति = पापग्रहचन्द्राभ्यामित्थशालयोगे च सति, तथा पापग्रहैर्दृष्टयुते च सति, तदा तस्मिन् वर्षे प्रजानां गदार्त्तिः = रोगपीड़ा, उर्व्यां प्रियं यथेष्टमन्नं च वाच्यम् ।

भानोः = सूर्यस्य, मेषप्रवेशोदयभवनपतिः = मेषप्रवेशकालिक लग्नेशः, सद्ग्रहः = शुभग्रहः स्यात्, स च स्वोच्चसंस्थः स्यात्, अपि वा स्वर्क्षस्थः स्यात्, वा केन्द्रे स्यात्, तथा शुभगगनचरैः = शुभग्रहैः, दृष्टयुक्तः स्यात्, तथा बलाढ्यः = बलाधिकयुक्तः स्यात्, तदा तस्मिन् वर्ष जगति = संसारे शुभसुखं, भूरि = प्रचुरं, सस्यं च विदध्यात् = कुर्यात् । तथा सुवृद्धिः = सकलपदार्थानामुत्तमसमृद्धिः स्यात् । यदि मेष प्रवेशकालिकलग्नेशः क्रूरः = पापः स्यात्, वा क्रूरार्दितः = पापयुदृष्टः स्यात्, तदा संसारे नृपभयं= राजोपद्रवं, कष्टं= रोगादिकं, महर्घम् =अधिकमूल्यलब्धम्, अन्नं च दिशति ।। ४१ – ४५।।

ज्योति — यदि मेष, वृष और मिथुन, ये राशियाँ शुभग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हों तो ग्रीष्म ऋतु की फसल अच्छी नही होती है । यदि धन, मकर, कुम्भ ये राशियाँ शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हों तो शरद ऋतु की फसल अच्छी होती हैं । यदि लग्न लग्नेश तथा चन्द्रमा शुभग्रह युक्त अथवा दृष्ट हों तो समय अच्छा होता है और पापग्रह ये

युक्त तथा दृष्ट हो तो मँहगाई आती है । यदि लग्न बलवान् हो और अपने शुभग्रह स्वामी से युक्त हो और केन्द्र में शुभग्रह हों तो सब अन्न सस्ता होता है । यदि लग्न बलहीन हो और केन्द्र में पाप ग्रह हों तो अन्नादि मँहगे हो जायेगें, ऐसा समझना चाहिए ।

पूर्णान्त दर्शान्तकालिक लग्नेश और चन्द्रराशीश तथा सूर्य के मेषप्रवेशकालिक लाग्नेश ये शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो उस वर्ष में लोगों में सर्व प्रकार का सुख एवं यदि पाप ग्रहों से युत दृष्ट हों तो रोग तथा राजा से भय समझना चाहिए ।

मेष प्रवेशकालिक लग्न से सप्तमेश केन्द्र में पापग्रह और क्षीण चन्द्र से इत्थशाली हो या पापग्रह से युक्त दृष्ट हो तो उस वर्ष में रोगभय तथा महर्घता होती है ।

मेष प्रवेशकालिक लग्नेश शुभग्रह हो, अपने उच्च या गृह में हो अथवा केन्द्र में हों शुभग्रह से युत दृष्ट और बलवान् हो तो उस वर्ष संसार (पृथ्वी) में अनेक प्रकार के उत्सव, सुख और सर्वान्न की वृद्धि होती है । यदि वह पापग्रह हो तथा पाप युत–दृष्ट हो तो राज भय, कष्ट और सब प्रकार के अन्न महर्ष होते हैं ॥ ४१ – ४५॥

अथ मनुष्याणां जन्मलग्नात् प्रतिवर्ष शुभाशुभज्ञानम् —

जन्मोदयाद्भास्वदजप्रवेशलग्नं हि यद्भावगतं शुभान्वितम् ।
तद्भाववृद्धिं विदधाति तस्मिन् वर्षे नृणां पापयुतं तदन्यथा ॥ ४६ ॥

कुन्तला — जन्मोदयात् = जन्मलग्नात्, भास्वजप्रवेशलग्नं = भास्वान् सूर्यस्तस्य यत् अजप्रवेशलग्नं = मेषप्रवेशकालिकलग्नं, तत् यद्भावगतं जन्मकुण्डल्यां वा वर्षकुण्डल्यां यद्भावगतं भवेत्तथा शुभान्वितं = शुभग्रहयुक्तं च भवेत् तस्मिन् वर्षे नृणां तद्भाववृद्धिं विदधाति = करोति । सूर्यस्य मेषप्रवेशक्षणलग्नं पापग्रहयुतं सत् यद्भावगतं, तदन्यथा = तद्भावहानिं करोति ॥ ४६॥

ज्योति — सूर्य के मेषार्कप्रवेश कालिक–लग्न जन्मलग्न से जिस किसी भाव में बैठा हो और शुभग्रह से युत हो तो उस वर्ष में उस भाव की वृद्धि होती है । यदि पाप ग्रह से युत हो तो भाव की हानि होती है ॥ ४६॥

जन्मोदये देहसुखं धनेऽर्थलाभस्तृतीये च कुटुम्बवृद्धिः ।
तुर्ये सुहृत्यसौख्यमथात्मजाप्तिः पुत्रेऽथ षष्ठेऽरिपराजयः स्यात् ॥ ४७ ॥

स्त्रीसौख्याप्तिर्भवति मदने भृत्युरुग्भीश्च रन्ध्रे
धर्मार्थाप्तिस्तपसि दशमे वित्तसौख्यास्पदाप्तिः ।
लाभे लाभः सुखधनचयो दुःखदारिद्र्यमन्त्ये
पुंसो मेषे प्रविशति रवौ जन्मलग्नाद्विलग्ने ॥ ४८॥

कुन्तला — तत्र पृथक् स्पष्टार्थं तत्फलं कथयति—जन्मोदये = जन्मलग्ने यदि मेषसंक्रान्तिस्तदा देहसुखम्, धने = जन्मलग्नाद्द्वितीयभावे यदि मेषसंक्रान्तिलग्नं स्यात् तदाऽर्थलाभः = धनलाभः । तृतीये यदि मेषप्रवेशलग्नपतिः, तदा कुटुम्बवृद्धिः भवति । तुर्ये = जन्मलग्नतश्चतुर्थे सुहृत्सौख्यम् = मित्रविनोदः । पुत्रे = पञ्चमभावे, आत्मजाप्तिः = पुत्राप्तिः । षष्ठे = जन्मलग्नात् षष्ठभावे यदि मेषप्रवेशलग्नं स्यात् तदा अरिपराजयः = शत्रुपराभवः स्यात् । मदने = सप्तमभावे यदि मेषप्रवेशलग्नं स्यात् तदा स्त्रीसौख्याप्तिः स्यात् । रन्ध्रे = अष्टमे तु मृत्युरुग्भीः = मृत्युभयं रोगभयञ्च स्यात् । तपसि = जन्मलग्नान्नवमभावे मेष प्रवेशलग्ने पतिते सति धर्मार्थाप्तिः स्यात् । दशमे तु चित्तसौख्यास्पदाप्तिः = चित्तसौख्यं = मनोविनोदः, आस्पदाप्तिः = स्थानलाभः स्यात् । लाभे = एकादशस्थाने यदि मेषप्रवेशलग्नं स्यात् तदा लाभः, सुखधनचयः स्यात्, मेषे रवौ प्रविशति सति विलग्ने पुंसः जन्मलग्नात् अन्त्ये = द्वादशे सति दुःखदारिद्र्यं भवति ।। ४७ – ४८ ।।

ज्योति — यदि लग्न में मेषार्क का प्रवेश हो तो देहसुख, दूसरे भाव में हो तो अर्थ लाभ, तृतीय भाव में हो तो कुटुम्ब की वृद्धि, चौथे हो तो मित्रसुख, पंचम भाव में पुत्र सुख और छठें भाव में हों तो पराजित हो जाते हैं । सप्तम भाव से स्त्री सुख, अष्टमभाव में मृत्यु तथा रोगभय, नवम भाव में धर्मलाभ, दशम भाव में धनसुख और एकादश भाव में लाभ, सुख तथा धन संचय, द्वादश भाव में दुःख तथा दरिद्रता होती है । इस तरह मेषार्क का प्रवेश होने पर जन्म लग्न से जिस लग्न में प्रवेश हो, उस भाव सम्बन्धी शुभाशुभ फल कहना चाहिए ।। ४७ – ४८ ।।

अथ ताजिकमतानुसारेण प्रश्नाद्युपयोगिन इत्थशालादयो योगाः कतिपया निरूप्यन्ते —

नवपञ्चमयोर्दृष्टिः पादोना सर्वदृष्टितः सबला ।
मेलापकदृष्टिरियं प्रत्यक्षस्नेहदृष्टिरिति ।। ४९ ।।

तृतीयैकादशयोर्दृष्टौ यो वीक्षते तृतीयदृशा ।
तद्दृष्टिस्त्र्यंशोना नान्यत्र तु षड्भागदृष्टिश्च ।। ५० ।।

अनयोर्गुप्तस्नेहा दृष्टिः सर्वत्र कार्यसिद्धकरी ।
दशमचतुर्थजवृष्टिः पादोना दुर्जना ख्याता ।। ५१ ।।

कुन्तला — नवपञ्चमयोः स्थानयोः दृष्टिः पादोना = चतुर्थांशोना ००° ४५, भवति । सा सर्वदृष्टितः = सकलस्थानगतदृष्ट्यपेक्षया सबला = प्रबला भवति । इयं मेलापकदृष्टिः, जातकमतेन शत्रुत्वभावप्राप्तयोरपि ग्रहयोगेलापककरी दृष्टिः अस्ति । वा प्रत्यक्षस्नेहदृष्टिः प्रौढा स्त्रीव भवति, इत्यपि कथ्यते । तृतीयैकादशयोः स्थानयोर्दृष्टौ यः ग्रहः तृतीयदृशा वीक्षते = पश्यति, तद्दृष्टिः त्र्यंशोना = ४०' कथिता =

$$१-\frac{१}{३}=\frac{२}{३}=\frac{६०\times २}{३}=४०^{\circ}$$ । अन्यत्र = एकादशस्थाने षड्भागदृष्टि: =

$$\frac{१}{६}=\frac{६०'}{३}=१०'$$ भवति । अनयोस्तृतीयैएकादशस्थायो: दृष्टि: गुप्तस्नेहा = गुप्तस्नेहकरी नवोढेय भवति सर्वत्र कार्यसिद्धिकरी च उच्यते । दशमचतुर्थजदृष्टि: पादोना

$$१^{\circ}-\frac{१}{४}=\frac{२}{४}=\frac{३\times ६०}{४}=०।४५'$$ भवति सा दुर्जना क्षुताख्या ख्याता ।

यत्र उभयसप्तमके भवेत् तत्र प्रत्यक्षदुर्जना दृष्टि: स्यात् सा तु पूर्णैव भवति । पूर्वमपि ''दृष्टि: स्यान्नवपञ्चमे बलवती'' इतयादि तथा 'दृष्टि:' पादमिता चतुर्थदशमे गुप्तारिभावा स्मृता'' इत्यादि च संज्ञातन्त्रे उक्तं बोध्यम् ।। ४९ – ५१ ।।

ज्योति — नवम पञ्चम दृष्टि ०।४५' पौने एक अंश अर्थात् पैंतालिस कला होती है । यह सब स्थानों की दृष्टि से प्रबल होती है । यह मेलापक दृष्टि कहलाती है । या प्रत्यक्षस्नेह दृष्टि भी कहलाती है ।

तीसरे स्थान की दृष्टि या एकादश स्थान की दृष्टि में जो तीसरे स्थान की दृष्टि है वह तृतीयांशेन एक अंश अर्थात् ४०' कला परिमित दृष्टि होती है । और ११ एकादश स्थान की दृष्टि एक अंश का षष्ठांश अर्थात् १०' दश कला परिमित होती है । ये दोनों दृष्टि गुप्तरूप से स्नेह (प्रेम) करती है । कार्य की सिद्धि करने वाली है । और दशम चतुर्थ स्थान की जो दृष्टि सो पौने अंश अर्थात् ०।४५ कला होती है, यह दुर्जन दृष्टि शत्रु दृष्टि है । तथा प्रथम, सप्तम, या परस्पर सप्तम दृष्टि भी शत्रु दृष्टि है । यह पूरा एक अंश होती है ।। ४९ – ५१ ।।

सर्वाश्चैता हि दृशो द्वादशभागान्तरे भवेयुश्चेत् ।
सर्वविशेष: प्रोक्तो दृष्ट्यनुसारात्फलं चिन्त्यम् ।। ५२ ।।

सूर्य: पञ्चदशांशैरिन्दुर्द्वादशभिरवनिजोऽष्टाभि: ।
सप्तांशैर्बुधशुक्रौ गुरुमन्दौ नवभिरीक्षेते ।। ५३ ।।

कुन्तला — एता: सर्वाश्च दृश: चेत् द्वादशभागान्तरे भवेयुस्तदा सर्वविशेष: प्रोक्त: दृष्ट्यनुसारात् फलं चिन्त्यम् । तत्र सूर्य: पञ्चदशांशै:, इन्दु: = चन्द्र: द्वादशभि: अंशै:, अवनिज: = कुज:, अष्टाभि:, बुधशुक्रौ सप्तांशै:, गुरुमन्दौ = जीवशनी नवभि: अंशै: ईक्षेते = पश्यत: । स्वस्वदीप्तांशै: सर्वे पश्यन्ति स्वस्वदीप्तांशन्तर्गतमेव पश्यन्तीति भाव: ।। ५२ – ५३ ।।

ज्योति — ये सब दृष्टियाँ यदि बारह अंश के अन्दर ही में हों तो विशेष फल कहते हैं । दृष्टि के अनुसार ही फल विचारना चाहिए ।

सूर्य १५, चन्द्रमा १२, मङ्गल ८, बुध और शुक्र ७, बृहस्पति और शनि ९, अंशों से देखते हैं । अपने अपने दीप्तांशा के अन्दर ही सब ग्रह देखते हैं ॥ ५२ — ५३॥

अथेत्थशालयोगोदाहरणकथनम् —

यदि शीघ्रः स्वल्पांशः पश्चान्मन्दं घनांशमुपगम्य ।
स्वदीप्तभागमस्मै दत्ते ध्रुवमित्थशालयोगोऽयम् ॥ ५४॥

लिप्तार्धविलिप्तिकाभ्यां यदि हीनो मन्दतोऽप्यतुल्यः स्यात् ।
तत्पूर्णमित्थशालं मुथशिलमपि कथ्यते तज्ज्ञैः ॥ ५५ ॥

कुन्तला — यदि शीघ्रः = शीघ्रगतिग्रहः, स्वल्पांशः, पश्चात् घनांशम् = अधिकांशं मन्दं = मन्दगतिग्रहम्, उपगम्य स्वदीप्तभागम् = स्वदीप्तांशम् अस्मै = शीघ्रगतिग्रहाय दत्ते = ददाति, तदाऽयं ध्रुवं = निश्चितम् इत्थशालः स्यात् । लिप्तार्धविलिप्तिकाभ्यां यदि मन्दतः = मन्दगतिग्रहात् शीघ्रगतिग्रहः हीनः = न्यूनः अपि अतुल्यः स्यात्, तदा तत् पूर्णम् इत्थशालं, तथा मुथशिलमपि तज्ज्ञैः = विज्ञैः कथ्यते ॥ ५४ — ५५॥

ज्योति — यदि शीघ्रगतिग्रह कुछ कम अंश से हो, उस से कुछ अधिक अंश से मन्दगति ग्रह हो, अर्थात् मन्दगति ग्रह आगे हो शीघ्रगतिग्रह पीछे हो, तो साधारण इत्थशाल योग होता है । वहां यदि शीघ्रगतिग्रह से १ अंश आगे मन्दगति ग्रह हो, तो निश्चय इत्थशाल योग होता है । यदि आधी कला (३० विकला) अथवा एक विकला भी यदि मन्दगति ग्रह से शीघ्र गति ग्रह हो, तो पूरा इत्थशाल योग होता है । इत्थशाल ही को मुथशिल योग कहते हैं ॥ ५४ — ५५॥

अथ शीघ्रो मन्दगतैरपि भागैकं समुत्तरत्यग्रे ।
तदिहेसराफसंज्ञो मूसरिफः कथ्यतेऽत्यशुभः ॥ ५६॥

यद्युभयदृष्टिरहितो यद्यन्यः शीघ्रगोऽन्तरे भूत्वा ।
पश्चाच्च तदन्यस्मै ददाति तेजः स नक्तसंज्ञः, स्यात् ॥ ५७॥

कुन्तला — अथ शीघ्रः = शीघ्रगतिग्रहः, मन्दगतेः = मन्दगतिग्रहात्, भागैकं = एकांशं, अग्ने समुत्तरति तदा तद् ईसराफसंज्ञः योगः । स एव मूसरिफसंज्ञः योगः कथ्यते । स अति अशुभः = अशुभ फलप्रदः भवति ।

यदि उभयोः = लग्नाधीशकार्याधीशयोर्दृष्टिरहितः अन्यः शीघ्रगः ग्रहः अन्तरे = मध्ये भूत्वा पश्चात् = पृष्ठस्थग्रहात् तेजः आदाय अन्यस्मै = अग्रवर्तिने ग्रहाय ददाति तदा स ईदृशो योगः नक्तसंज्ञः स्यात् ॥ ५६ — ५७॥

ज्योति — यदि शीघ्रगतिग्रह मन्दगति ग्रह से एक भी अंश आगे बढ़ जाय तो ईसराफ योग होता है । वही मूसरिफ योग कहलाता है । यह अत्यन्त अशुभप्रद होता है ।

यदि लग्नाधीश कार्याधीश की दृष्टि से हीन कोई दूसरा शीघ्र गति ग्रह उन दोनों के बीच में होकर पीछे के ग्रह से अर्थात् शीघ्र गति ग्रह से तेज लेकर आगे वाले मन्दगति ग्रह को दें, तो नक्त योग होता है ॥ ५६ – ५७ ॥

अथोदाहरणम् —

स्त्रीलाभस्य प्रश्ने कन्यालग्ने बुधः पतिः सिंहे ।
मीने च तत्पतिर्गुरुस्तत्रानयोर्नत्वस्ति दृष्टिस्तु ॥ ५८॥

शीघ्रश्चन्द्रो द्वाभ्यां दृष्टो बुधात्तन्महो नीत्वा ।
जीवाय ददौ तद्वत्परहस्ताद्योषितः प्राप्तिः ॥ ५९॥

अथ यदि मंदोऽन्तःस्थो द्वावपि पश्यति निजोक्तदीप्तदृशा ।
तेजो नीत्वा शीघ्राद्दाति मन्दाय तद्यमया ॥ ६०॥

उभयेत्थशालयोगे यदि चन्द्रोऽप्यत्र मुथशलिविधायी ।
तत्कम्बूलं हि भवेदुत्तममध्याधमैर्भेदैः ॥ ६१॥

यदि लग्नेशकार्येशयोरित्थशालयोगः तौ चेत्स्वगृहे स्वोच्चे वा चन्द्रोऽपि स्वर्क्षोच्चगतस्तदोत्तमं कम्बूलम् । यदि चन्द्रः स्वर्क्षादौ न तदोत्तममेव । यदि त्रैराशिकहद्दामुसल्लहाद्यधिकारवांस्तदा मध्यमम् । पञ्चाधिकाररहितत्वमुभयोश्च तदाऽथमम् । उभयोर्नीचारिराशिगतत्वेऽधमाधममिति विकल्पना । एते चेत्थशालादयो दृष्टिस्थानदीप्तांश कान्तरे द्वादशान्तरे वा ज्ञेया न केवल मेकराश्यंशस्थान एवेति ज्ञेयम् । एतच्चास्मत्कृते ताजिकरत्ने स्पष्टतरं प्रपञ्चितमेवावधारणीयम् । स्वगृहोच्चनवांशनिरूपणं जातकावसरे निरूपितम्, नवांशक एव मुसल्लहो वाच्यः । त्रैराशिकपदेन द्रेष्काणेशाः यथा—मेषादेः षट्त्रिंशद्द्रेष्काणानामंधीश्वरा ज्ञेयाः । प्रथमो भौमस्तस्मात्षष्ठश्च भौमान्तम् । हद्दपदेन त्रिंशांशा उच्यन्ते । यथा—मेषे षडङ्कवसुशरबाणः ६।६।८।५।५ गुरुसितज्ञ–कुजमन्दाः । वृषभे वसुरसवसुशरशिखिनः ८।६।८।५।३ शुक्रज्ञजीवमन्दाराः । मिथुने षडङ्कशरनगषण्णां ६।६।५।७।६ बुधशुक्रजीवकुजसौराः । कर्केऽद्रिरसषडद्रिश्रुतिषु च ७।६।६।७।४ कुजशुक्रसौम्यगुरुमंदाः । सिंहेऽङ्कबाणशैलाङ्काङ्क ६।५।७।६।६ देवेज्यशुक्रार्कबुधाराणाम् । युवतौ शैलाशाब्ध्यद्र्यक्षिः ७।१०।४।७।२ ज्ञसितजीवकुज–शनीनाम् । तुले रसाष्टाद्रिनगाक्षिभागाः ६।८।७।७।२ शनिबुधगुरुसिताराश्च, अलिन्यद्र्यंबुधिगजबाणाङ्काः ७।४।८।५।६ भूसुतशुक्रसौम्यगुरुमन्दाः । चापे रविबाण–ब्धिशरवेदाः १२।५।४।५।४ देवगुरुसितज्ञकुजसूर्यजाः । मकरेऽद्र्यद्रिनागाब्धिवेदाः ७।७।८।४।४ बुधेज्यदैत्यगुरुशनिभौमाः, कुम्भेऽद्र्यङ्गाद्रिबाणबाणः ७।६।७।५।५ बुधसितेज्यकुजमन्दाः । मीनेऽर्काब्ध्यग्निनन्दाहिः १२।४।३।९।८ सितगुरुज्ञकुजसौराः ।

इति श्रीदैवज्ञानन्तसुतश्रीदैवज्ञनीलकण्ठविरचितायां ।
श्रीनीलकण्ठ्यां प्रश्नतन्त्रं तृतीयं समाप्तम् ।। ३ ।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।। शुभमस्तु ।

कुन्तला — स्त्रीलाभस्य प्रश्ने कन्यालग्ने तत्पतिः बुधः सिंहे, मीने च तत्पतिः = तत्स्त्रियाः भावस्य सप्तमस्य पतिः गुरुः तिष्ठति, अत्रानयोर्दृष्टिर्न वर्त्तते बुधादष्टमे गुरोर्वर्त्तमानत्वात् द्वितीयद्वादशयोः षट्काष्टमयोर्दृष्ट्यभावात् । अत्र शीघ्रः = शीघ्रगतिग्रहः चन्द्रः धनुषि वा वृषे स्थितः, द्वाभ्य बुधगुरुभ्यां दृष्टः, बुधात्तन्महः = तेजः आदाय जीवाय ददौ तद्वत् परहस्ताद्योषितः स्त्रियाः प्राप्तिः = लाभः स्यात् । अत्र को ग्रहः कियद्भिरंशैर्वर्त्तते, चन्द्रः कुत्रराशौ वर्त्तते इति नास्ति, स्फुटतया 'संज्ञातन्त्रे 'स्त्रीलाभपृच्छा — तनुरस्ति कन्या स्वामी बुधः सिंहगतौ रसांशैः' इत्यादिश्लोके तद्विषयोऽस्ति । द्रष्टव्यं तत्रैवेति । अथ यदि मन्दः = मन्दगतिग्रहः लग्नाधीशकार्याधीशयोरन्तर्मध्ये स्थितः, निजोक्तदीप्तदृशा द्वौ लग्नेशकार्येशौ यदि पश्यति, शीघ्रात् = शीघ्रगतिग्रहात् तेजः मीत्वा मन्दाय = मन्दगतिग्रहाय ददाति, अतस्तद्यमया योगः प्रदिष्टः ।

यदि उभयोरित्थशालयोगे सति, अत्र यदि चन्द्रः अपिमुथशिलविधायी = इत्थशालकर्त्ता भवेत्तदा उत्तममध्याधमैर्भेदैः कम्बूलं भवेत् ।

विशेषोऽस्य भेदः संज्ञातन्त्रे द्रष्टव्यः । किमत्र पुनः पिष्टपेषणेन ।। ५८ — ६१ ।।

ज्योति — स्त्रीलाभ के प्रश्न में कन्यालग्न है, लग्नेश बुध सिंह में (१२ वें) है, सप्तमेश गुरु मीन (७ वें) में हो ऐसी हालत में इन दोनों को (बु० बृ०) परस्पर दृष्टि नहीं है और इन दोनों से शीघ्रगति चन्द्रमा बुध से तेज लेकर गुरु को देता है इसलिये यहाँ दूसरे के द्वारा स्त्री की प्राप्ति कहनी चाहिए ।

यदि लग्नेश और कार्येश के मध्य में मन्दगति ग्रह स्थित होकर अपने दीप्तांशा से दोनों को देखे और शीघ्रगतिग्रह से तेज लेकर मन्दगति ग्रह को देवे तो यह 'यमया' योग होता है ।

लग्नेश और कार्येश को परस्पर इत्थशाल होता हो यदि वहाँ चन्द्रमा भी मुथशिली होवे तो 'कम्बूल' योग होता है । इसके उत्तम, मध्यम, और अधम ये तीन भेद हैं ।। ५८ — ६१ ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठज्योतिर्वित्कृत प्रश्नतन्त्रे ज्योतिषाचार्य डा० रामचन्द्रपाठकेन कृता संस्कृत 'कुन्तला' — 'ज्योति' हिन्दी टीका समाप्ता ।।

।। इति श्रीनीलकण्ठ्यां प्रश्नतन्त्रम् ।।

।। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।।

।। अथ परिशिष्टम् ।।

परिशिष्ट १ :

मुद्दादशा एवं त्रिपताकीचक्रसाधनविचारः

तत्र प्रथमं मुद्दादशासाधनविचार –

जन्मर्क्षसंख्या सहिता गताब्दा द्दगूनिता नन्दहृताऽवशेषात् ।
आंचङ्कुराजीशबुकेशुपूर्वाः मुद्दादशा स्यात्किल वर्षवेशे ।।

ज्योतिषशास्त्र के जातक ग्रन्थों में अनेक प्रकार की दशाओं का वर्णन किया गया है । उन दशाओं के अनुसार शुभाशुभ फल का विचार किया गया है ।

विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी योगिनी, कालचक्री तथा जैमिनी सूत्र में चर–स्थिर आदि राशि दशा, स्वर शास्त्रों में द्वादश वार्षिनी, अर्द्धवार्षिकी दिन घटी तक सूक्ष्म दशाओं के आधार पर जातक का शुभाशुभ फल का विचार किया गया है ।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर इस नीलकण्ठी ग्रन्थ में मूल में तो मुद्दादशा उपलब्ध नहीं है । किन्तु इस ग्रन्थ के विभिन्न उपलब्ध प्रतियों में एक ही वर्ष के लिए सूर्यादि नवग्रहों की दशा का विचार मिलता है । वर्ष फल निर्माण में 'पात्यंशी' दशानुसार ही १ वर्ष का शुभशुभ फल कथन की विधियाँ आचार्य ने पूर्व में कह दी है । किन्तु सारे ज्योतिष जगत् में १ वर्ष के लिए मुद्दा दशा के द्वारा शुभाशुभ फल विचार की सुप्रसिद्ध पद्धति यत्र तत्र सर्वत्र उपलब्ध होने से मुद्दा दशा का साधन विचार अत्यावश्यक है ।

वर्ष फलानयन में मुद्दा दशा के लिए जन्म नक्षत्र संख्या में गत वर्ष की संख्या जोड़कर उसमें २ घटाकर ९ (नौ) से भाग देने पर १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, या ० शेष क्रम से सु० च० मं० रा० गु० श० बु के शु की मुद्दा दशा होगी ।

जैसे गतवर्ष संख्या = ६७, जन्म नक्षत्र पू० फा० की संख्या = ११

६७ + ११ – २ ÷ ९ = ४, उक्त क्रम से राहु की मुद्दादशा हुई ।

मुद्दादशा का आनयन

महादशा वर्ष × ३ = दिनात्मक मुद्दा दशामान । जैसे सूर्य की महादशा = ६ वर्ष अतः ६ × ३ = १८ यह सूर्य का मुद्दादशा भाग हुआ । इसी प्रकार १० × ३ = ३० दिन अर्थात् १ माह चन्द्रमा की मुद्दा दशा हुई ।

इसी प्रकार सभी ग्रहों की मुद्दा दशा का मान नीचे के चक्र में दिया जा रहा है।

रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	मं०	ग्रह
१ २४	१ १८	१ २७	१ २१	० २१	२ ०	० १८	१ ०	० २१	मा० दि०
२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४८	२०४९
० १०	२ ४	३ २२	५ १९	७ १०	८ १	१० १	१० १९	११ १९	० १०

विशेष – प्राचीन आचार्य मुद्दा दशा का भुक्त भोग्य नहीं निकालते, परन्तु नवीन आचार्य वर्षफल की सूक्ष्मता के लिए वर्षकालिक नक्षत्र के भयात, भभोग पर से दिनादि दशा निकाल कर उस ग्रह की दशा के मान में से घटा कर भोग्य निकाल लेते हैं । यह प्रक्रिया जातकक्रोड तथा हायनरत्न में उल्लिखित है ।

मुद्दान्तरदशानयन

$$\frac{\text{दिनादि मुद्दादशा} \times \text{दिनादि मुद्दादशा}}{३६०} = \text{दिनादि घट्यात्मक मुद्दान्तर}$$

= दिनादि घट्यात्मक मुद्दान्तर दशा । जेसे सूर्य का मुद्दा दशा मान १८ दिन है ।

अतः $\frac{१८ \times १८}{३६०} = \frac{३२४}{३६०}$

३६०) ३२४ (० दिन
×६०
१९४४० (५४ घटी
१८००
१४४०
१४४०
×

अतः = ०। ५४ सूर्य मुद्दादशा में सूर्यान्तर ।
इसी प्रकार सभी ग्रहों अन्तर दशा मान निकल आयेगा ।

सूर्यमुद्दान्तरदशाचक्रम्

सू०	च०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	ग्रहाः
०	१	१	२	२	२	२	१	३	दि०
५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	३	०	घं०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	प०

चन्द्रमुद्धान्तरदशाचक्रम्

च०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्रहाः
२	१	४	४	४	४	१	५	१	दि०
३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	घं०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	प०

कुजमुद्धान्तरदशाचक्रम्

मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्रहाः
१	३	२	३	२	१	३	१	१	दि०
१३	९	४८	१९	५८	१३	३०	३	४५	घं०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प०

राहुमुद्धान्तरदशाचक्रम्

रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	ग्रहाः
८	७	८	७	३	९	२	४	३	दि०
६	१२	३३	३९	९	०	४२	३०	९	घं०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	प०

गुरुमुद्धान्तरदशाचक्रम्

गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	ग्रहाः
६	७	६	२	८	२	४	२	७	दि०
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घं०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	प०

शनिमुद्धान्तरदशाचक्रम्

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	गु०	ग्रहाः
१	८	३	९	२	४	३	८	७	दि०
१	४	१९	३०	५१	४५	१९	३३	३६	घं०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

बुधमुद्दान्तरदशाचक्रम्

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	गु०	श०	ग्रहाः
७	२	८	२	४	२	७	६	८	दि०
१३	५८	३०	३३	५१	४५	१९	३३	३६	घं०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

केतुमुद्दान्तरदशाचक्रम्

के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	ग्रहाः
१	३	१	१	१	३	२	३	२	दि०
१३	३०	३	४५	१३	९	४८	१९	५८	घं०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प०

शुक्रमुद्दान्तरान्तरदशाचक्रम्

शु०	सू०	च०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	ग्रहाः
१०	३	५	३	९	८	९	८	३	दि०
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घं०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	प०

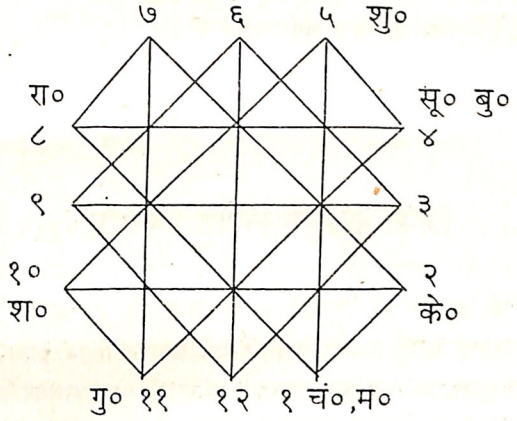
त्रिपताकी चक्र एवं उसका फलविचार

रेखात्रयं तिर्यगवोर्ध्वसंस्थमन्योन्यविद्धाग्रगमेककोणात् ।
स्मृतं बुधैस्तत् त्रिपताकिचक्रं प्राङ्मध्यरेखाऽग्रवर्षलग्नात् ।।
न्यसेद्भचक्रं किल तत्र सैकां याताब्दसंख्यां विभजेन्नभोगैः ।
शेषोन्मिते जन्मगचन्द्रराशेस्तुल्ये च राशौ विलिखेच्छशाङ्कम् ।।
परे चतुर्भाजितशेषतुल्ये स्थाने स्वराशौ खचरास्तु लेख्याः ।
स्वर्भानु विद्धे हितुगौ तु कष्टं तापोऽर्कविद्धेरुगितात्मजेन ।।
महीजविद्धे तु शरीरपीड़ा, शुभैश्च विद्धेजयसौख्यलाभः ।
शुभाशुभव्योमगवीर्यतोऽत्र फलं च वर्षस्य वदेत् सुधीमान् ।।

समानान्तर तीन खड़ी रेखा खींचकर बीचवाली रेखा के मध्य बिन्दु पर लम्ब करके एक तिर्यग् रेखा खींचे और जितना ही अन्तर देकर तीन खड़ी रेखा खींची गई हैं उतना ही अन्तर देकर बीच वाली तिर्यक् लम्ब रेखा के ऊपर और नीचे भी एक–एक रेखा खीचें । इस प्रकार तीन रेखायें खड़ी और तीन रेखायें तिरश्चीन हुई । बाद में एक के अग्र से दूसरे के अग्र पर्यन्त परस्पर रेखा बाँधने से यह वर्ष पताकी चक्र बन जायेगा।

त्रिपताकी चक्र की बीच वाली रेखा के शीर्ष पर वर्ष प्रवेश लग्न की संख्या लिखें। इसके बाद गत वर्ष में १ जोड़कर ९ से भाग देने पर जो शेष बचे उसके तुल्य ही जन्मकालिक चन्द्र राशि से गिनने पर जो राशि होगी उसमें चन्द्रमा को लिखना चाहिए ।

त्रिपताकी चक्र

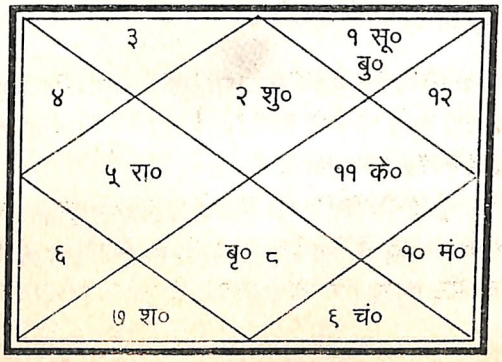


जैसे गत वर्ष = ६७ + १ = ६८ ÷ ९ = शेष = ५ । जातक की जन्म राशि धनु है । अत: धनु से पञ्चम मेष राशि में चन्द्रमा को लिखना चाहिए ।

अन्य ग्रहों के आनयन के लिए गत वर्ष में जोड़कर १ से भाग देने पर जो शेष बचे उतनी संख्या जन्मकालिक ग्रह को आगे बढ़ा कर लिखना चाहिए ।

जैसे – ग० व० ६७ + १ = ६८ ÷ ४ = शेष = ० अर्थात ४ । प्रसंगानुसार जन्माङ्ग चक्र यहाँ दिया जा रहा है –

जन्माङ्गम्



इस जन्माङ्ग चक्र में सूर्य, बुध, मेष राशि में है । अत: मेष से चतुर्थ कर्क राशि में इन दोनों ग्रहों को त्रिपताकी चक्र में लिखना चाहिए । इसी प्रकार मंगल मकर में है । अत: मकर से चतुर्थ मेष में मंगल लिखा जायेगा । गुरु वृश्चिक में है । अत: वृश्चिक से चतुर्थ कुम्भ में गुरु लिखा जायेगा । शुक्र वृष में है अत: वृष से चतुर्थ सिंह में एवं शनि तुला से चतुर्थ मकर तथा राहु सिंह से चतुर्थ वृश्चिक में लिखा जायेगा ।

फल – यदि चन्द्रमा त्रिपताकी चक्र में राहु से विद्ध हो तो कष्ट, सूर्य से विद्ध हो तो ज्वर (संताप), शनि से रोग (वायु बिकार), मंगल से शरीर पीड़ा (व्रण, शस्त्र, दण्ड, वह्नि इत्यादि) भय, तथा शुभ ग्रहों से विद्ध होने पर जय सौख्य लाभ होता है ।

प्रस्तुत त्रिपताकी चक्र में चन्द्रमा राहु से विद्ध है तथा मंगल से युत है । अत: शारीरिक कष्ट तथा चोट–चपेट का भय वर्ष पर्यन्त है ।

परिशिष्ट २ :

विदेश कुण्डली निर्माण प्रकरणम्

इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही वर्ष प्रवेश निकालने की विधि "गतासमापादयुता" इत्यादि श्लोकानुसार बताई गई है । वही घटीपल वर्ष प्रवेशकालिक इष्टकाल होता है । इसी प्रसंग में जन्मकालिक इष्टकाल तथा भयातभभोग, स्पष्टग्रह, लग्नानयन इससे सम्बंन्धित नत, परनत, अयनांश लंकोदय उदयमान, चरखण्ड, पलभा, आनयन की सारी विधियां विस्तृत दी गई है । परन्तु विधियाँ केवल भारत वर्ष के लिए ही बताई गई है । आज संसार एक परिवार है । विज्ञान युग होने के कारण देश–विदेश में सर्वत्र जाना आना सुगम है । विदेशों से बैठे–बैठे टेलीफोन तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों द्वारा हम जानकारी प्राप्त कर ले रहे हैं । चूकि हमें भारतवर्ष की जन्म, पत्रिका, वर्ष पत्रिका बनाने की विधि पूर्ण मालूम है, परन्तु विदेश की विधि इस विधि से कुछ दुरूह है । इसी विषय को ध्यान में रखकर, विद्यार्थियों की सुगमता के लिए विदेश कुण्डली निर्माण की विधि भी इस परिशिष्ट में बता देना उचित समझता हूँ ।

विदेशीय कुण्डली निर्माणविधि –

विदेश की कुण्डली बनाते समय सर्वप्रथम यह ध्यान देना चाहिए कि जिस देश की कुण्डली बनानी है वह देश किस गोल में स्थित है । उत्तर गोल एवं दक्षिण गोल के भेद से संस्कार में किञ्चित् परिवर्तन करना पड़ता है ।

विदेश की कुण्डली निर्माण मे दो प्रक्रियाओं को लागू किया जाता है । पहली प्रक्रिया में जिस देश के पञ्चाङ्ग से विदेशीय कुण्डली का निर्माण किया जा रहा है, उस पञ्चाङ्ग के सभी तिथि नक्षत्र योग करण एवं स्पष्ट ग्रहादि के गणितीय अवयवों को स्थानीय बनाया

जाना । दूसरी प्रक्रिया स्थानीय पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र योग करणादि) को पञ्चाङ्ग देशीय बनाया जाना अर्थात् जिस स्थान के पञ्चाङ्ग से अभीष्ट देश की कुण्डली का निर्माण करना है। उसके ग्रहादिक मान को पञ्चाङ्ग देशीय बनाया जाना ।

विदेश की कुण्डली निर्माण में भी स्वदेशीय चरानयन विधि की तरह विदेश का चरानयन करना पड़ता है । इसमें ६ घंटा जोड़ने पर उत्तरा क्रान्ति में सूर्यास्त तथा दक्षिण क्रान्ति में सूर्योदय आता है । १२ (बारह) घंटा में सूर्योदय को घटाने पर सूर्यास्त तथा उसी बारह घंटा में सूर्यास्त को घटाने पर सूर्योदय निकल आता है ।

पञ्चाङ्गदेशीय दिनमान और अभिष्ट देशीय दिनमान के अन्तर का आधा यानी चरान्त का देशान्तर में संस्कार करने से फलघटी (इष्टघटी) निकल आती है । इस फलघटी का पञ्चाङ्ग (तिथि, नक्षत्र योग करणादि) में संस्कार कर स्थानीय पञ्चाङ्ग बनाया जाता है । ग्रह साधन में फलघटी का संस्कार विपरीत होता है । इसका पूर्ण विवरण स्वदेशीय कुण्डली निर्माण में किया जा चुका है ।

अब यहाँ विदेश की कुण्डली की निर्माण विधि का उदाहरण दिया जा रहा है । जैसे १ मार्च सन् १९९१ ई० को किसी का जन्म इंग्लैण्ड के लन्दन शहर में स्टैण्डर्ड समयानुसार दिन में १०।५५ पर हुआ ।

लंदन का अक्षांश ५१।३० और १ मार्च १९९१ ई० को रवि क्रान्ति दक्षिणा ७।५३ और लंदन का रेखांश (देशान्तर) ३।१२ है । काशी का रेखांश ८३।० है ।

काशी ग्रीनवीच से पूर्व में स्थित है । एवं लंदन पश्चिमस्थ है । इसलिए दोनों रेखांशों का योग किया जायेगा । यहाँ विशेष ध्यान देने की बातर है कि अभीष्ट स्थान और पञ्चाङ्ग देशीय स्थान यदि ग्रीनवीच से एक दिशा में स्थित हो तो रेखांशों का अन्तर होगा । यदि दोनों स्थान भिन्न दिशा में स्थित हो तो रेखांशो का योग होगा । इस उदाहरण में ग्रीनवीच से लंदन पश्चिम तथा काशी (भारत) पूर्व स्थित होने से दोनों ग्रीनवीच से भिन्न देशीय हुए। अतः रेखाशों का योग किया जायेगा ।

८३। ० रेखांश काशी (भारत)
३।१२ रेखांश लंदन
८६।१२ = रेखांश योग

रेखांश योग को ४ से गुणा कर घंटादि देशान्तर मान लाया जाता है ।

८६ ।१२
× ४
३४४ ।४८

अर्थात् ५।४४।४८ घंटादि देशान्तर (ऋणात्मक) । इसका घटीपल ५।४४।४८ × २$\frac{१}{२}$ = १४ । २२। ० घट्यादि ऋणात्मिका ।

अशांश ५१।३० तथा रविक्रान्ति दक्षिणा ७।५३ का फल = ४०।३ आया । इस मिनटादि चर में ६: घंटा जोड़ने पर ६।४०।३ (दक्षिणा क्रान्ति होने से) लंदन का सूर्योदय हुआ । १२ — ६।४०।३ = ५।१९।५७ सूर्यास्त । सूर्यास्त × ५ = दिनमान ।

५।१९।५७ × ५ = २६।४० स्वल्पान्तर से लंदन का दिनमान हुआ ।

काशी का दिनमान २८। ४५
लंदन का दिनमान २६। ४०
दोनों का अन्तर २। ५ इसका आधा १। ३ हुआ । इसका संस्कार देशान्तर से किया तो — १४। २२ देशान्तर घंटादि
— १। ३
— १५। २५

यही इष्टघटी या फलघटी हुई जिसका संस्कार पञ्चाङ्गस्थ तिथि, नक्षत्र योग करण में करना चाहिए ।

नोट — बहुत से पञ्चाङ्गों के चरान्तर सारिणी दी रहती है उसके अनुसार भी इष्टघटी (फलघटी) निकाली जा सकती है । चरसारिणी की तरह ही अक्षांश और क्रान्ति से चरान्तर सारिणी के द्वारा फलानयन करेंगे । जो उपलब्ध होगा उसे काशी के दिनमान के द्विगुणित चरान्तर का संस्कार करने से इष्टदेशीय दिनमान होगा । दिनमान × ५ = सूर्यास्त । १२ — सूर्यास्त = सूर्योदय निकल जायेगा ।

लंदन का इष्टकाल

६। ४०। ३ सूर्योदय लंदन शहर का
१२। ३८ वेलान्तर
६। ५२। ४१
०। २० रेखान्तर मिनटादि (ग्रीनवीच से लंदन का रेखान्तर)
६। ५३। १ स्पष्ट सूर्योदय

अब जन्म समय १०। ५५। ०
६। ५३। ९
४। १। ५९
४। १। ५९
२। १। ०
१०। ४। ५८ इष्टकाल

द्वितीय उदाहरण —

किसी बालक का जन्म ३० अप्रैल १९९४ ई० को कैलिफोर्निया में १८। १५ स्टै० टाइम के अनुसार हुआ । यहाँ का अक्षांश ३४। ३ रविक्रान्ति उत्तरा १४।३४ रेखांश ११८। १७

अब ११८। १७ रेखांश कैलिफोर्निया
८३। ०० रेखांश काशी
२०१। ९७
४
८०४। ६८ = १३। २५। ८

१३। २५। ८ घंटादि × २$\frac{१}{२}$
१३। २५। ८
१३। २५। ८
६। ४२। ३४
३३। ३२। ५० देशान्तर घटी

अब क्रान्ति अक्षांश से फल = ३८। ४४ इसमें ६ घंटा जोड़ने से ६। ३८। ४४ सूर्यास्त हुआ । इसको १२ घंटा में घटाया तो १२ — ६ । ३८ । ४४ = ५ । २१ । १६ । इसको ५ से गुणा किया ।

```
      ६।  ३८। ४४
                ५
  ---------------
     ३०। १९०। २२०
      ३।    ३। १८०
  ---------------
     ३३। १९३।  ४०
        १८०
      -----
        ९३
```

स्वल्पान्तरात् ३३। १४ दिनमान कैलिफोर्निया का हुआ ।

```
अब,      ३३। १४   दिनमान कैलिफोर्निया
         ३२। २१   दिनमान काशी
         -------
वेलान्तर  ०। ५३   अन्तर
```

इसका आधा ०। २६। ३० चरान्तर

```
      ३३। ३२। ५०  देशान्तर घटी
       ०। २६। ३०
      ----------
      ३३।  ६। २०  इष्टघटी
```

इसी को कुछ लोग फलघटी भी कहते है । इसी फलघटी का संस्कार तिथि, नक्षत्र योग करणादि में करने से स्थानीय अर्थात् कैलिफोर्निया का तिथ्यादि मान हो जायेगा ।

```
सूर्योदय   ५। २१। १६
सूर्यास्त   ६। ३८। ४४
अब सूर्योदय      ५। २१। १६
वेलान्तर            ४। ४४
                  ----------
                  ५। २६। ००
                     ६। ५२ (रेखान्तर मिनटादि ग्रीनवीच और कैलिफोर्निया)
                  ---------
                  ५। १९।  ८ स्पष्ट सूर्योदय
```

```
  १८। १५ जन्म स्टैं० टाइम
   ५। १९ स्प० सूर्योदय
  ---------
  १२। ५६
  १२। ५६
   ६। २८
  ---------
  ३०। १४०
   २। १२०
  ---------
  ३२।  २०      = ३२। २० इष्टम् ।
```

विदेश कुण्डली में ग्रहसाधन —

काशी के सूर्योदय से लाए गये इष्टकाल पर से पञ्चाङ्गस्थ ग्रह पंक्ति द्वारा ग्रह स्पष्ट करना चाहिए । कहने का अभिप्राय यह कि पञ्चाङ्ग जिस नगर का हो उस नगर के सूर्योदय से बने इष्टकाल द्वारा भयात् भभोग स्पष्ट ग्रह साधन करना चाहिए । इसके लिए जन्म स्थान

के सूर्योदय से बने इष्टकाल की आवश्यकता नहीं है । जन्म भूमि के इष्टकाल से लग्न दशम लग्न का साधन करना चाहिए ।

इसी प्रसंग में १ उदाहरण द्वारा इष्टकाल भयात, भभोग का आनयन किया जा रहा है — किसी बालक का जन्म १३ अक्टूबर १९९२ ई० को दिवा १४। ३० बजे हास्टन टेक्सास (अमेरिका) में हुआ । उस दिन रवि क्रा० द० ७। ४४ अक्षांश ३० रेखांश = ९० है । अक्षांश क्रान्ति के अनुसार सूर्योदय = ६। २८। ३७ सूर्यास्त ५। ४१। २३ ।

५। ४१ सूर्यास्त × ५ = २८। २५ टेक्सास अमेरिका

अब, २८। ४७
२८। २५
०। २२ इसका आधा ० । ११ चरान्तर हुआ ।

९०
८३
१७३
४
६०) ६९२ (११
६०
९२
६०
३२ = ११। ३२। ० × २ $\frac{१}{२}$

= २८। ५० देशान्तर में ०। ११ चरान्तर का संस्कार करने पर

२८। ५०
०। ११
२९। १ इष्टघटी (फलघटी)

इष्टकालानयनम् —

१४। ३०
१६ वेलान्तर
१४। ४६
६। १९
८। २७
८। २७
४। १४
२१। ०८ इष्टम् । टेक्सास (अमेरिका) का भयातभभोगानयनम् —

यह बताया जा चुका है कि भयात भभोग लाने के लिए विदेश (जन्मस्थान) के इष्टकाल को पञ्चाङ्गदेशीय बना कर भयात् भभोग तथा स्पष्ट ग्रहानयन करना चाहिए ।

अब इष्टकाल २१।८ में फलघटी (इष्टघटी) का विपरीत संस्कार करने पर पञ्चाङ्ग (काशी) का इष्टकाल हो जायेगा । यथा —

२१। ०८ इष्टकाल रेक्सास (अमेरिका)
२९। १
५०। ९ = काशी का इष्टकाल

६०
१२।४२
४७।१८
५०। ९
३७। २७ भयातम्

६०।००
१२।४२
४७।१८
१४।५५ (वर्तमान नक्षत्र भरणी मानम्)
६२।१३ भभोग

इसी भयात भभोग से दशामान तथा चन्द्रमा का भी मान निकल जायेगा । परन्तु यह भयात् भभोग दशामान तथा चन्द्रमा इष्टदेशीय अर्थात् टेक्सास (अमेरिका) का हो गया । विद्यार्थियों के सामने यहाँ भी प्रश्न खड़ा है कि फलघटी २९।१ है । जो पञ्चांग में दिया गया नक्षत्र मान से अधिक हैं तो गत नक्षत्र और वर्तमान नक्षत्र का मान कैसे निकलें । इसके लिए निम्नलिखित विधि को उपयोग करने से गतनक्षत्र और वर्तमान नक्षत्र मान निकल जायेगा ।

''अत गतर्क्षनाडी स्वरयेषु शुद्धा—सूर्योदयान्दिष्टघटीषु युक्ता ।
भयात संज्ञा भवतीह तस्य निजर्क्ष नाड़ी सहितो भभोगः ।।''

उपरोक्त सूत्र का उपयोग करना चाहिए । अतः पहले गतनक्षत्र और वर्तमान नक्षत्र का मान निम्न लिखित विधि से करना चाहिए —

६०।००
१२।४२ अश्विनीमानम्
४७।१८
१४।५५ भरणीमानम्
६२।१३
१२।४२ अश्विनीमानम्
७४।५५
२९। १ फलघटी
४५।५४ यही टेक्सास में भरणी नक्षत्र जो वर्तमान हैं उसका मान हुआ । दूसरी विधि यह है कि ६० — २९।१ (फलघटी) = भरणीमान ।

६०।००
२९। १
३०।५९
१४।५५
४५।५४

दोनों विधियों से तुल्य ही मान आया ।

स्पष्ट ग्रहानयन : —

मिश्रमान में फलघटी का विपरीत अर्थात् फलघटी धन हो तो ऋण यदि फलघटी ऋण हो तो धन करना चाहिए । यहाँ फलघटी २९।१ ऋणात्मिका है । अतः उस दिन के मिश्रमान में जोड़ देने से जन्मदेशीय मिश्रमान हो जायेगा । इसके बाद मिश्रमान और इष्टकाल के संस्कार

से चालन आनयन कर स्पष्ट ग्रहानयन कर लेना चाहिए । यह विधि उदाहरण सहित स्वदेशीय कुण्डली निर्माण प्रसंग में इस ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में दिया जा चुका है ।

लग्न और दशम लग्नानयनती उस अक्षांश के सारणियों द्वारा स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट इष्टकाल के द्वारा आनयन कर लेना चाहिए । यह विधि भारतीय कुण्डली विज्ञान में दी गई है। परन्तु इष्ट स्थान वा पलभा, चर–खण्ड उदयमान, अयनांशादि जानकारी कर ''तात्काले सामनार्कस्य .....'' विधि के द्वारा भी लग्न, तथा दशम लग्नानयन किया जा सकता है । ये अर्थात् लग्न, दशम लग्नानयन विधि पुस्तक के आरम्भ में ही लग्न दशम लग्नानयन प्रसंग में स्पष्ट दिया गया है । वही विधि यहाँ भी उपयोग में लाना चाहिए । जहाँ जहाँ कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उन बिन्दुओं पर विचार कर सोदाहरण स्पष्टीकरण किया जा चुका है । अपने विवेक को ध्यान में रखते हुए विदेश कुण्डली निर्माण करें तो कोई कठिनाई नहीं होगी । अभ्यास आवश्यक है । ''अनाभ्यासे विषं विद्या''– अतः बार–बार अभ्यास आवश्यक है ।

विशेष ध्यान देने योग्य विषय — ऊपर बताया जा चुका है कि फलघटी (इष्टघटी) का संस्कार तिथि नक्षत्र योगादि के करने से स्थानीय तिथि नक्षत्र एवं योग एवं करण के मान उपलब्ध हो जाता है ।

कभी–कभी एक विषम परिस्थिति उपस्थित हो जाती है कि इष्टघटी (फलघटी) से पञ्चाङ्ग में तिथ्यादि के घटी पल कम रहे तो विद्यार्थियों के सामने कठिनाई उपस्थित हो जाती है । उस परिस्थिति में बुद्धि से काम करना चाहिए । यह समस्या पीछे उदाहरण में आ चुकी है । इसके लिए एक कल्पित उदाहरण दे कर पुनः विचार किया जाता है । इससे और स्पष्ट हो जायेगा । कल्पना किया कि जातक का जन्म लंदन में हुआ था इष्टघटी १५। २५ है । परन्तु उस दिन तिथि नक्षत्र का मान उक्त इष्टघटी से कम है ।.इस मान में फलघटी नही घटेगी । इस स्थिति में सबसे पहले उदयकाल में जो तिथि आदि है उससे आगे के तिथि नक्षत्रादि का भोग मान लाना चाहिए । उस भोग मान में उदयकालिक तिथि नक्षत्र का मान जोड़कर योगफल में स्पष्टदेशान्तर यानी इष्टघटी (फलघटी) घटाने से शेष घटी पल सूर्योदय कालिकतिथि नक्षत्रादि से आगे के तिथि नक्षत्रादि के मान होंगे जैसे उस दिन पञ्चमी तिथि का घटी मान ५। २ है । अतः षष्ठी तिथि का भोग मान साधन करना है — ६० — ५। २ = ५२। ५८, इसमें षष्ठी घटी १। २५ मिलाने से षष्ठी भोग ५४। २३ हुई । षष्ठी ५४। २३ + पञ्चमी (५। २) = ६०। २५

अब ६०। २५ से इष्टघटी १५। २५ घटाने से = ६०। २५
१५। २५
४५। ०

अर्थात् जातक के जन्म दिन लंदन में षष्ठी तिथि ४५। ० रहेगा । ध्यान देने की बात है कि तिथि बदल गई परन्तु दिन वही रहेगा । उसी दिन आर्द्रा १४। २५ है । स्पष्ट देशान्तर यानी (फलघटी) (इष्टघटी) १५। २५ से कम है । अतः आर्द्रा का भोग ज्ञात करना है । ६०–१४ । २५ = ४५। ३५ इसमें पुनर्वषु का मान ११। ४१ जोड़ने से पुनर्वषु का भोग ५७।

१६ हुआ । इसमें आर्द्रा का मान १४। २५ जोड़ने से योग ७१। ४१ में इष्ट घटी १५। २५ घटाने से =

७१। ४१
१५। २५
५६। १६

यही पुनर्वसु का मान षष्ठी गुरुवार के दिन रहेगा ।

उस दिन योग का २२। ४५ इसमें स्पष्ट देशान्तर यानी इष्टघटी (फलघटी) घटाने से

२२। ४५
१५। २५
७। २० लंदन में शोभन योग का मान रहेगा ।

इस प्रकार विदेश कुण्डली निर्माण में जगह–जगह अनेकों कठिनाइयाँ उपस्थित होती है । अपने बुद्धि द्वारा उनका समाधान कर गणितीय क्रिया करनी चाहिए ।

लग्नानयन और दशमलग्नानयन पुस्तकों मे दी गई प्रत्येक अक्षाशों की सारणियों के द्वारा उस स्थान का लग्न दशम लग्नानयन करना चाहिए ।

परिशिष्ट ३ :

।। अथ ज्यौतिषयोगमाला संग्रहः ।।

१. अथ श्रीनाथयोगः

कामेश्वरे कर्मगते, स्वतुङ्गे–कर्माधिपे भाग्यपसंयुते च ।
श्रीनाथयोगः शुभदस्तदानीं जातो नरः शक्रसमो नृपालः ।।

सप्तमेश कर्म में हो और कर्मेश अपनी उच्च राशि में स्थित होकर भाग्येश के साथ हो तो ''श्रीनाथ'' योग होता है । इस योग का जातक इन्द्र के समान राजा होता है ।

२. अथ शारदायोगः

योगः शारदसंज्ञकः सुतगते कर्माधिपे चन्द्रजे ।
केन्द्रस्थे दिननायके निजगृहप्राप्तेऽतिवीर्यान्विते ।।

चन्द्रात् कोणगते पुरन्दरगुरौ सौम्यत्रिकोणे कुजे ।
लाभे वा यदि देवमन्त्रिणि बुधात्तच्छारदासंज्ञकः ।।

१. यदि कर्मेश पञ्चम में हो, बुध केन्द्र में हो, अत्यन्त बलवान् सूर्य सिंह राशि का हो, या २. चन्द्रमा से त्रिकोण में गुरु हो, बुध से त्रिकोणमें मङ्गल हो, बुध से बृहस्पति लाभ में हो तो ये दोनों 'शारदा योग' होते हैं ।

स्त्रीपुत्रबन्धुसुखरूपगुणानुरक्ताः भूपप्रिया गुरुमहीसुरदेवभक्ताः ।
विद्याविदोदरतिशीलतपोबलाढ्याः जाताः स्वधर्मनिरता भुवि शारदाख्ये ।।

शारदा योग का जातक स्त्री–पुत्र–बन्धु–सुख–गुण में अनुरक्त, राजा के प्रिय, गुरु–ब्राह्मण देवता का भक्त, विद्याविनोदी, कामुक, तप, तथा बल से युत, अपने धर्म में लीन रहने वाले होते हैं ।

३. अथ मत्स्ययोग:

लग्नधर्मगते पापे पञ्चमे सदसद्युते ।
चतुरस्त्रं गते पापे योगोऽयं मत्स्यसंज्ञक: ।।

लग्न से धर्म ९ भाव पाप ग्रह से युक्त हो पञ्चमभाव पापग्रह और शुभग्रह से युक्त हो, चौथे या आठवें पापग्रह हो तो 'मत्स्य' योग होता है ।

कालज्ञ: करुणासिन्धुर्गुणधीबलरुपवान् ।
यशोविद्यातपस्वी च मत्स्ययोगसमुद्भव: ।।

मत्स्य योग का जातक काल का ज्ञाता, अत्यन्त दयालु, गुणवान्, बुद्धिमान् रूपवान्, यशस्वी, विद्वान्, तथा तपस्वी होता है ।

४. अथ कूर्मयोग:

कलत्रपुत्रारिगृहेषु सौम्या: स्वतुङ्गमित्रांशकराशियाता: ।
तृतीयलाभोदयगास्त्वसौम्या मित्रोच्चसंस्था यदि कूर्मयोग: ।।

यदि अपने उच्च का, या मित्रांश, या स्वकीय राशि का शुभग्रह सप्तम, पञ्चम और षष्ठगृह में हों और पाप ग्रह तृतीय, लाभ और लग्न में अपने मित्रगृह या उच्चमें हो तो "कूर्म" योग होता है ।

विख्यातकीर्तिर्भुवि राजभोगी धर्माधिक: सत्त्वगुणप्रधान: ।
धीर: सुखा वागुपकारकर्ता कूर्मोद्भवो मानवनायको वा ।।

कूर्म योग में उत्पन्न जातक पृथ्वीपर विख्यात कीर्तिवाला, राज–सुख का भोगी, धर्मात्मा, सात्त्विक गुणवाला, धैर्यवान् सुखी, वक्ता, परोपकारी, या मनुष्यों का नायक (राजा) होता है ।

५. अथ खड्गयोग:

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोग इतीरित: ।।

यदि भाग्येश धन भाव में हो, धनेश भाग्य राशि में हो और लग्नेश केन्द्र या कोण में स्थित हो तो खड्ग योग होता है ।

वेदार्थशास्त्रनिखिलागमतत्त्वयुक्तिबुद्धिप्रतापबलवीर्य सुखानुरक्ता: ।
निर्मत्सराश्च निजवीर्यमहानुभावा: खड्गे भवन्ति पुरुषा: कुशला: कृतज्ञा: ।।

इस खड्ग योग में उत्पन्न जातक वेद के अर्थ को जानने वाला, सभी शास्त्रों तथा ज्योतिष और तन्त्रों के तत्त्व को जानने वाला होता है । बुद्धि, प्रताप, बल तथा पराक्रम से सुखी रहता है । मत्सरता रहित और अपने पराक्रम से श्रेष्ठ होता है । खड्गयोग में उत्पन्न पुरुष कार्यकुशल, तथा कृतज्ञ होता है ।

६. अथ श्रीलक्ष्मीयोगः

केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे ।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोग इतीरितः ।।

यदि भाग्येश परमोच्च में या मूल त्रिकोण में होकर केन्द्र में स्थित हो और लग्नेश बलवान् हो तो वह 'लक्ष्मीयोग' होता है ।

गुणाभिरामो बहुदेशनाथो विद्यामहाकीर्तिरनङ्गरूपः ।
दिगन्तविश्रान्तनृपालवन्द्यो राजाधिराजो बहुदारपुत्रः ।।

इस लक्ष्मी योग में जातक सुन्दर गुणवाला, बहुत देश का स्वामी, विद्या और कीर्ति से युक्त तथा कामदेव के सदृश सुन्दर रूपवाला, दश दिशाओं में राजों से पूजनीय, श्रेष्ठ राजा और बहुत स्त्री तथा पुत्रवाला होता है ।

७. अथ कुसुमयोगः

स्थिरलग्ने भृगौ केन्द्रे त्रिकोणेन्दौ शुभेतरे ।
मानस्थानगते सौरे योगोऽयं कुसुमो भवेत् ।।

स्थिर लग्न में शुक्र केन्द्र में हो, चन्द्रमा शुभेतर त्रिकोण में हो याने ५ वें भाव में हो और शनि दशवें हो तो यह "कुसुम" योग होता है ।

दाता महीमण्डलनाथवन्द्यो भोगी महावंशजराजमुख्यः ।
लोके महाकीर्तियुतः प्रतापी नाथो नराणां कुसुमोद्भवः स्यात् ।।

कुसुम योग में उत्पन्न जातक दानी, राजा से पूजित, भोगी, उत्तम कुल में उत्पन्न, राजों में मुख्य, समस्त लोको में यशस्वी, प्रतापी राजा होता है ।

८. अथ पारिजातयोगः

विलग्ननाथस्थितराशिनाथस्थानेश्वरो वाऽपि तदंशनाथः ।
केन्द्रत्रिकोणोपगतो यदि स्यात्स्वतुङ्गगो वा यदि परिजातः ।।

लग्नेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी जिस राशि में हो उसका स्वामी या उसका नवांशपति यदि केन्द्र या त्रिकोण में प्राप्त हो, अथवा अपनी उच्च राशि में हो तो "पारिजात" योग होता है ।

मध्यान्तसौख्यः क्षितिपालवन्द्यो युद्धप्रियो वारणवाजियुक्तः ।
स्वकर्मधर्माभिरतो दयालुर्योगो नृपः स्याद्यदि पारिजातः ।।

पारिजात योग में उत्पन्न जातक मध्य और अन्त्य अवस्था में सौख्य युक्त, राजाओं से पूजित, युद्धप्रिय, हाथी–घोड़ों से युक्त अपने धर्म–कर्म में रत और दयालु राजा होता है ।

९. अथ कलानिधियोगः

द्वितीये पञ्चमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते ।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स्यात्स कलानिधिः ।।

यदि बृहस्पति दूसरे या पांचवे भाव में बुध और शुक्र से युक्त हो या देखा जाता हो, अथवा उन्हीं के गृह में प्राप्त हो तो वह 'कलानिधि योग' होता है ।

कामी कलानिधिभवः सगुणाभिरामः संस्तुयमानचरणो नरपालमुख्यैः ।
सेनातुरङ्गमदवारणशङ्खभेरीवाद्यान्वितो विगतरोगभयारिसङघः ।।

इस कलानिधि योग में उत्पन्न बालक कामी, सुन्दर गुणवाला, बड़े बड़े राजाओं से पूजित, सेना घोड़े मतवाले हाथी से युत होता है, तथा नित्य उसके यहाँ शंख और भेरी बजती रहती है । वह रोग रहित तथा शत्रुगणों से निर्भय रहता है ।

१०. अथ अंशावतारयोगः

केन्द्रगौ सितदेवेज्यौ स्वोच्चे केन्द्रगतेऽर्कजे ।
चरलग्ने यदा जन्म योगोऽयमवतारजः ।।

यदि शुक्र और बृहस्पति केन्द्र में हो, शनैश्चर अपने उच्च का होकर केन्द्र में स्थित हो और चरलग्न में जन्म हो तो यह 'अवतार' योग कहा जाता है ।

पुण्यश्लोकस्तीर्थचारी कलाज्ञः कामासक्तः कालकर्ता जितात्मा ।
वेदान्तज्ञो वेदशास्त्राधिकारी जातो राजश्रीधरोंऽशावतारे ।।

अंशावतार योग में उत्पन्न जातक पुण्यचरित्रवाला, तीर्थसेवी, कलावित् काम में आसक्त, सामयिक, जितेन्द्रिय, वेद के तत्त्व को जानने वाला, वेद और शास्त्र का अधिकारी और राज्यश्रीवाला पुरुष होता है ।

११. अथ हरि–हर–विधियोगाः

वित्तेशाद्धनरिःफरन्ध्रभवनप्राप्ताश्च सौम्यग्रहाः,
कामेशात् सुखभाग्यरन्ध्रगृहगा जीवाब्जचन्द्रात्मजाः ।
देहेशाद्यदि बन्धुमानभवगा सूर्यास्फुजिद्भूमिजाः
प्रोक्तास्तत्र पुरातनैर्हरिहरब्रह्माख्यायोगा इमे ।।

द्वितीयेश से २ ।१२। ८ स्थानों में शुभग्रह हों तो 'हरि' योग होता है । सप्तमेश से ४। ९।८ स्थानों में यथा सम्भव गुरु, चन्द्रमा और बुध हों तो 'हर' योग होता है । लग्नेश से ४। १०। ११ स्थानों में यथा सम्भव सूर्य, शुक्र और मङ्गल हों तो 'ब्रह्मा' योग होता है ऐसा प्राचीन आचार्यों का मत है ।

निखिलनिगमविद्यापारगः सत्यवादी सकलसुखसमेतश्चारुवाक् कामशीलः ।
जितरिपुकुलसङ्घः सर्वजीवोपकारी हरिहरविधियोगे सम्भवः पुण्यकर्मा ।।

इन तीनों हरि–हर तथा विधि योगों में उत्पन्न हुआ जातक सभी शास्त्रों को जानने वाला सत्यवादी, सकल सुख का भोगी, प्रियवादी, कामशील, सब शत्रुओं को जीतने वाला, सब जीवों का उपकारकर्त्ता तथा पुण्य कर्म करने वाला होता है ।

१२. अथ नाभसयोगाः

यूपेषुशक्तियवदण्डगदासमुद्रच्छत्रार्द्धचन्द्रशकटाम्बुजपक्षियोगाः ।
नौचक्रवज्रहलकार्मुककूटवापीश्रृङ्गाटकाश्च विविधाकृतिविंशतिः स्युः ।।

रज्जुर्नलश्च मुसलस्त्रितयाश्रयाख्याः स्त्रग्भोगिनौ तु दलयोगभवौ भवेताम् ।
वीणादयश्च कथिता वरदामपाशकेदारशूलयुगगोलकसप्तसङ्ख्याः ।।

१. यूप, २. इषु, ३ शक्ति, ४ यव, ५ दण्ड, ६ गदा, ७ समुद्र, ८ छत्र, ९, अर्धचन्द्र, १० शकट, ११ अम्बुज, १२ पक्षि, १३ नौ, १४ चक्र, १५ वज्र, १६ हल, १७ कार्मुक, १८ कूट, १९ वापी और २० श्रृङ्गाटक इस प्रकार विविध आकृति के बीस योग हैं । १ रज्जु, २ नल और ३ मुसल ये तीन आश्रय योग हैं । १ स्त्रक् और २ सर्प, ये दो दल योग हैं, और १ वीणा, २ वरदाम, ३ पाश, ४ केदार, ५ शूल, ६ युग, ७ गोलक ये सात 'संख्या योग हैं ।

१३. अथ क्लीबत्वकरा योगाः

अन्योन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ ।
युग्मौजर्क्षगतावपीन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ
पुंभागे सितलग्नशीतकिरणाः षट् क्लीबयोगास्त्विमे ।।

सूर्य और चन्द्रमा में परस्पर दृष्टि हो (१) या शनि और बुध में परस्पर दृष्टि हो (२) या विषमराशि का मङ्गल, समराशिगतसूर्य इनमें परस्पर दृष्टि हो (३) या चन्द्रमा और लग्न विषम राशि के हों, उन्हें मङ्गल देखता हो (४) या चन्द्रमा सम और बुध विषम राशि के हों, उन्हें मङ्गल देखता हो (५) या शुक्र, लग्न और चन्द्रमा पुरुष (विषम) नवांश में हों तो (६) ये छः प्रकार के नपुंसक योग होते हैं, अर्थात् इन योगों में जन्म लेने वाले नपुंसक होते हैं ।

१४. अथ यमलादिजनिकरा योगाः

युग्मे चन्द्रसितौ तथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदयाः
लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः ।
कुर्युस्ते मिथुनं गृहोदयगतान्द्व्यंगांशकान्पश्यति
स्वांशे ज्ञे त्रितयं ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्वमिश्रैः समम् ॥

समराशि में चन्द्रमा और शुक्र हों तथा विषमराशि में बुध, मङ्गल, बृहस्पति और लग्न ये हों तो मिथुन (एक पुत्र और एक कन्या) का जन्म कहना चाहिए । समराशि में लग्न और चन्द्रमा हों, उन्हें पुरुषग्रह (सु० – मं० – बु०) में से कोई देखे तो भी एक पुत्र और एक कन्या का जन्म कहना चाहिए । समराशि में बलवान् पूर्वोक्त बुध, मङ्गल, बृहस्पति और लग्न हों तो भी वही फल जानना चाहिए और द्विस्वभाव के नवांश में पूर्वोक्त ग्रह और लग्न वर्त्तमान हों, उन्हें अपने (३।६) नवांशगत बुध देखता हो तो गर्भ में तीन बच्चे होते हैं । यहां बुध के स्थितिवश युग्म कहना अर्थात बुध यदि नर (मिथुन) नवांश में हो तो दो लड़के एक लड़की, यदि बुध स्त्री (कन्या) नवांश में होकर द्विस्वभावांश गत ग्रहोदयों को देखे तो २ लड़की १ लड़का कहना चाहिए । समान अंश में अर्थात बुध मिथुनांश में होकर मिथुन और धनु के अंशगत ग्रहों को देखे तो ३ पुरुष, एवं बुध कन्या नवांश में स्थित होकर कन्या तथा मीन के नवांशगत ग्रहों को देखे तो २ लड़कियां कहनी चाहिए ।

१५. अथ त्र्यधिकजननयोगः

धनुर्धरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदशोपगतैर्बलिष्ठैः ।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्थाः ॥

धनु राशि के अन्त्य नवांश का लग्न हो, पूर्वोक्त योग कारक ग्रह धनु के नवांश में हों और लग्न को बलवान् बुध और शनि देखें तो गर्भ में तीन से अधिक बच्चे जानना चाहिए । परन्तु मनुष्य योनि में ऐसे गर्भ का प्रसव होना असम्भव है, इसलिये आधान में जो ग्रह बलहीन हो उसके महीने में गर्भस्राव कहना चाहिए ।

द्विशरीरांशसंयुक्तान् ग्रहान् लग्नं च पश्यति ।
कन्यांशकागतश्चान्द्रिर्गर्भस्थं त्रितयं वदेत् ॥

कन्या राशि के नवांश में गत बुध यदि द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशि के नवांश में प्राप्त ग्रहों और लग्न को देखता हो तो गर्भ में ३ बच्चे, जिनमें २ पुत्री और १ पुत्र होती हैं ।

युग्मांशकस्तु कन्यैका द्वौ पुमांसौ च गर्भजाः ।
युग्मांशगान्विलग्नं च गर्भस्थाः पुरुषास्त्रयः ॥

यदि बुध मिथुन नवांश होकर उन्हें देखे तो एक पुत्री और २ पुत्र गर्भ में कहना चाहिए । यदि बुध मिथुनांशगत होकर मिथुनांशगत ग्रह और लग्न को देखे तो तीनों पुत्र होते हैं ।

कन्यायुग्मांशकोपेतांस्तथा युग्मांशगो बुधः ।
कन्यानवांशकः सौम्यस्तिस्त्रो गर्भगताङ्गनाः ।।

कन्या और मिथुननवांशगत ग्रहों तथा लग्न को मिथुनांशगत बुध देखे तो ३ पुत्र, यदि कन्यांशगत बुध देखे तो ३ लड़कियां कहनी चाहिए ।

द्विस्वभावगतावर्कगुरु बुधनिरीक्षितौ ।
पुंयुग्मं कुरुतस्तद्वत् शशिशुक्रमहीसुताः ।।
कुर्वन्ति स्त्रीयुगं तत्र बलाबलविशेषतः ।
स्त्रीनपुंसकदश्चन्द्रिः पुंनपुंसकदोऽर्कजः ।।

द्विस्वभाव राशि के अंश में स्थित सूर्य और गुरु यदि बुध से दृष्ट हों तो द्रो पुरुष का जन्म कारक होते हैं । एवं चन्द्र, शुक्र और मङ्गल द्विस्वभाव में हों तो दो कन्या की उत्पत्ति करते हैं । दोनों योगों की प्राप्ति में बलाबल देखकर अधिक बलवाले का पक्ष कहना चाहिए । बुध कन्या नपुंसक को उत्पन्न करने वाला होता है, शनि पुरुष नपुंसक उत्पन्न करने वाला होता है ।

निषेककाले चन्द्रार्कावन्योन्यं यदि पश्यतः ।
तथैव चन्द्रमन्दौ वा क्लीबजन्मप्रदौ तथा ।।

गर्भाधान के समय चन्द्रमा और सूर्य यदि परस्पर देखते हों, इसी प्रकार चंद्र और शनि भी तो नुपंसक को उत्पन्न करते हैं ।

निषेके भ्रातृलग्नेशयोगे यमलसम्भवः ।
लग्नेशे भ्रातृपक्षस्थे स्वोच्चे वा यमलोद्भवः ।।

गर्भाधान के समय भ्रातृस्थानेश और लग्नेश का योग हो तो यमल (दो) का जन्म होता है । लग्नेश भ्रातृस्थान में हो, या उच्चस्थान में हो तो यमल होता है ।

षष्ठेशो देहसम्बन्धी बुधः षष्ठगतो यदि ।
बुधक्षेत्रे च जननं यस्य स स्त्रीनपुंसकः ।।
बुधस्थानेन शनिना पुंनपुंसकता भवेत् ।
निषेकलग्नेशतृतीयनाथौ लग्नस्थितौ चेद्यमलोद्भवः स्यात् ।।

निषेचनकाल में या जन्मकाल में षष्ठेश लग्न का सम्बन्धी हो (लग्न में प्राप्त हो या लग्न को देखता हो) बुध ६ वें भाव में हो और बुध के क्षेत्र अर्थात लग्न (३। ६) में जिसका जन्म हो उसकी स्त्री नपुंसक होती है । यदि यहां बुध के साथ शनि हो तो पुरुष नपुंसक होता है । आधानलग्न का स्वामी और तृतीयेश लग्न में स्थित हो तो यमल का जन्म होता है ।

१६. अथ पितुरसन्निधौ जन्मयोगाः

पितुर्जातः परोक्षस्य लग्नमिन्दावपश्यति ।
विदेशस्थस्य चरभे मध्याद्भष्टे दिवाकरे ।।

यदि जन्मकुण्डली में चन्द्रमा लग्न को न देखे तो उस बालक का पिता उस समय परोक्ष में था । सूर्य चरराशि में तथा ८।९।११।१२ स्थान में से किसी स्थान में हो तो पिता को विदेश में जानना चाहिए । यदि चन्द्रमा लग्न को न देखता हो और सूर्य स्थिरराशि में तथा ८।९।११।१२ स्थानों में किसी में हो तो पिता को उसी देश में परोक्ष में जानना चाहिए । चन्द्रमा लग्न को न देखता हो और सूर्य द्विस्वभाव राशि में तथा ८।९।११।१२ स्थानों में से किसी स्थान में स्थित हो तो स्वदेश परदेश के मध्य में पिता को जानना चाहिए ।

उदयस्थेऽथवा मन्दे कुजे वाऽस्तं समागते ।
स्थिते वाऽन्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ।।

अथवा शनि लग्न में हो तो पिता को परोक्ष में जानना चाहिए, या मङ्गल सप्तम में हो तो पिता को परोक्षे में जानना चाहिए, या बुध और शुक्र के मध्य में चन्द्रमा (चन्द्रमा से एक दूसरे, एक १२ वें) हो तो पिता के परोक्ष में जन्म जानना चाहिए ।

१७. अथ जारजत्वसाधका योगाः

परस्परक्षेत्रगतौ तु होरारसातलेशौ यदि जन्मलग्नात् ।
लग्नेश्वरो वा हिबुकेश्वरो वा ध्वजाहियुक्तो जननं परेण ।।

जन्मलग्न से १।४ भावों के स्वामी परस्पर अर्थात लग्नेश चतुर्थश के क्षेत्र में और चतुर्थेश लग्नेश के क्षेत्र में हों, अथवा लग्नेश या चतुर्थेश राहु या केतु से युक्त हो, तो जातक को दूसरे (परपुरुष) से जन्म हुआ समझना चाहिए ।

लग्नं शशाङ्कं सुरराजमन्त्री न वीक्षते नैकगृहस्थितौ वा ।
न जीववर्गेण युतौ तदानीं जातं वदेदन्यसमागमेन ।।

बृहस्पति, लग्न तथा चन्द्रमा को न देखता हो, वा लग्न तथा चन्द्रमा एक घर में न हों, बृहस्पति के वर्ग में भी न हों, तब दूसरे पुरुष के समागम से जन्म कहना चाहिए ।

स्वातीद्वितीया रविवारयुक्ता ससप्तमी सोमजरेवती च ।
सद्वादशीभानुसुतश्रविष्ठा चैतेषु जातः परतो वदन्ति ।।

द्वितीया तिथि स्वाती नक्षत्र और रविवार से युक्त हो, सप्तमी बुधवार रेवती नक्षत्र से युक्त हो और द्वादशी रविवार धनिष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो इन योगों में जायमान जातक को अन्य के वीर्य से उत्पन्न जानना चाहिए ।

भद्राख्यतिथियुक्तेषु त्रिपादर्क्षान्वितेषु च ।
मन्दार्कभौमवारेषु जातमन्योद्भवं विदुः ।।

शनि, रवि और मंगल दिनों में भद्रा तिथि (२। ७। १२) और ३ चरणवाले (पुनर्वसु, विशाखा और पूर्वभाद्रपद) नक्षत्रों के योग में जन्म लेने वाला परजात कहा गया है ।

न लग्नमिन्दु च गुरुनिरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समागतम् ।
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ।।

जन्मलग्न और चन्द्रमा को बृहस्पति न देखता हो तो बालको जारोत्पन्न जानना चाहिए । यदि गुरु के नवांश का लग्न हो तो उसे जारपुत्र नही समझना चाहिए । सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर हों, उन्हें बृहस्पति न देखता हो तो जारपुत्र जानना चाहिए । एक राशि में सूर्य और चन्द्रमा होकर शनि या मंगल से युत हो तो भी जारपुत्र ही समझना चाहिए ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते चान्यराशिगे ।
तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते ।।

चन्द्रमा बृहस्पति की राशि में हो, अथवा बृहस्पति के साथ किसी दूसरी राशि में हो, अथवा चन्द्रमा बृहस्पति के द्रेष्काण या नवांश में हो तो परजात योग होते हुये भी वह परजात नहीं होता ।

१८. पञ्चमहापुरुषलक्षण

स्वगेहतुङ्गाश्रयकेन्द्रसंस्थैरुच्चोपगैर्वावनिसूनुमुख्यैः ।
क्रमेण योगा रुचकाख्यभद्रहंसाख्यमालव्यशशाभिधानाः ।।

भौमादि पाँच ग्रह अपनी–अपनी राशि में या अपनी उच्चराशि में स्थित होकर केन्द्र स्थानों (१, ४, ७, १०) में गये हों तो प्रत्येक ग्रह द्वारा क्रम से रुचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश नामक पाँच महा पुरुषयोग होते हैं । अर्थात् केन्द्र में स्थित मंगल मेष, वृश्चिक या मकर राशि में हो तो रुचक, बुध, मिथुन, कन्या में हो तो भद्र, गुरु, कर्क, धनु और मीन में हो तो हंस, शुक्र, वृष, तुला और मीन में हो तो मालव्य, शनि, तुला, मकर और कुम्भ में हो तो शश नामक योग होता है ।

विशेष *– यदि बलवान मङ्गल मूल त्रिकोण, स्वगृह, उच्चगृह में प्राप्त हो कर केन्द्र में स्थित हो तो 'रुचक' योग होता है । यदि बुध हो तो ''भद्र'' योग होता है । बृहस्पति हो तो ''हंस'' योग होता है । शुक्र हो तो ''मालव्य'' योग और शनि हो तो ''शश'' योग होता है । इन्हीं ५ ग्रहों से ५ प्रकार के ये योग पञ्चमहापुरुष योग कहलाते हैं ।*

(अ) रुचक योग का फल

दीर्घायुः स्वच्छकान्तिर्बहुरुधिरवलः साहसप्राप्तसिद्धि
श्चारुभ्रू नीलकेशः समकरचरणो मन्त्रविच्चारुकीर्त्तिः ।
रक्तः श्यामोऽतिशूरो रिपुबलमथनः कम्बुकण्ठो महौजाः
क्रूरो भक्तो नराणां द्विजगुरुविनतः क्षामजानूरुजंघः ।।

रुचक नामक योग में उत्पन्न दीर्घायु, निर्मलकान्ति, अधिक रक्त एवं बल से युक्त, साहस के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाला, सुन्दर, भौं, नीले रंग के बाल, सुन्दर सुगठित हाथ–पैरों वाला, मन्त्र का ज्ञाता, सुन्दर यश से सम्पन्न, रक्त–श्याम वर्ण वाला, अत्यधिक बलवान्, शत्रुओं की सेना को रौंदने वाला, शंख की तरह कण्ठ, महान आत्मा, स्वभाव से क्रूर, भक्त, ब्राह्मण और गुरु के प्रति विनम्र तथा कृश, दुर्बल उरु, घुटना और जाँघो वाला होता है ।

विशेष *– इस योग में उत्पन्न जातक की आयु ६० वर्ष की होती है ।*

खष्ट्वाङ्गपाशवृषकार्मुकचक्रवीणा विज्ञाङ्कहस्तचरणः सरलाङ्गुलिः स्यात् ।
मन्त्राभिचारकुशलास्तुलयेत्सहस्रं मव्यं च तस्य गदितं मुखदैर्ध्यतुल्यम् ।।

(रुचक योग में उत्पन्न व्यक्ति के) हाथ और पैर में खट्वाङ्ग (मुखाकृति सदृश अस्त्र), पाश, बैल, धनुष, चक्र, अथवा वीणा के स्पष्ट चिह्न होते हैं । अँगुलियाँ सीधी, मन्त्रविद्या एवं अभिचार (मारण–उच्चाटन आदि) क्रियाओं का ज्ञाता, हजारों व्यक्तियों की तुलना स्वयं अकेले करने वाला, मुख की लम्बाई तुल्य मध्य भाग (कटि प्रदेश) वाला होता है ।

सह्यस्य विन्ध्यस्य तथोज्जयिन्याः प्रभुः शरत्सप्ततिरायुरस्य ।
शस्त्राग्निचिन्हो रुचकाभिधाने देवालयान्ते निधनं प्रयाति ।।

रुचक नामक योग में उत्पन्न व्यक्ति, सह्य पर्वत, विन्ध्यपर्वत तथा उज्जैन के (आसन्न) प्रदेश का राजा (अथवा स्वामी), शस्त्र एवं अग्नि के चिन्हों से युक्त होता है तथा ७० वर्ष की आयु में देवालय (तीर्थ स्थान) में मृत्यु होती है ।

(ब) भद्रयोग का फल

शार्दूलप्रतिमाननो द्विपगतिः पीनोरुवक्षःस्थलो
रम्या पीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यगात्रोच्छ्रयः ।
कामी कोमलसूक्ष्मरोमनिचयैः संरुद्धगण्डस्थलः
प्राज्ञः पङ्कजगर्भपाणिचरणः सत्त्वाधिको योगवित् ।।

भद्र योग में उत्पन्न व्यक्ति का मुख व्याघ्र की तरह, गति हाथी की तरह, विशाल वक्षस्थल, सुन्दर, दृढ़ गोलाकार दोनों बाहु, दोनों भुजाओं के तुल्य ऊँचाई, कामी, कोमल पतले रोम समूह के ढके कपोलों वाला, बुद्धिमान, कमल नाल की तरह हाथ–पैरों वाला, सत्त्वगुण प्रधान तथा योगशास्त्र का ज्ञाता होता है ।

शङ्खासिकुञ्जरगदाकुसुमेषुकेतुचक्राब्जलांगलविचिह्नितपाणिपादः ।
यात्रागजेन्द्रमदवारिकृतार्द्रभूमिः सत्कुङ्कुमप्रतिमगन्धतनुः सुघोषः ।।

भद्र योग में उत्पन्न व्यक्ति के हाथों एवं पैरों में शंख, तलवार, हाथी, गदा, पुष्प, बाण, पताका चक्र, कमल तथा हल का चिह्न होता है । उसके शरीर से उत्तम कुंकुम के समान सुगन्ध निकलती है तथा उसकी वाणी बहुत मधुर होती है । उसके यात्रा काल में

गजेन्द्रों के मदश्राव से भूमि आर्द्र (गीली) हो जाती है (अर्थात् उसके साथ हाथियों का समूह चलता है) ।

संभ्रूयुगोऽतिमतिमान् खलु शास्त्रवेत्ता मानोपभोगसहितोऽपि निगूढगुह्यः ।
सत्कुक्षिधर्मनिरतः सुललाटपट्टो धीरो भवेदसितकुञ्चितकेशपाशः ।।

दोनों भौंह (भ्रुव) सुन्दर, अत्यन्त बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, सम्मान और उपभोग की सुविधाओं से सम्पन्न होते हुए अपने रहस्यों को गुप्त रखने वाला, सुन्दर पार्श्व भाग से युक्त, धर्म में संलग्न, सुन्दर ललाट वाला, धैर्यवान् तथा काले घुँघराले बालों से युक्त भद्र पुरुष होता है ।

स्वतन्त्रः सर्वकार्येषु स्वजनं प्रति न क्षमी ।
भुज्यते विभवस्तस्य नित्यमर्थिजनैः परैः ।।

भद्र पुरुष सभी कार्यों में स्वतन्त्र, आत्मीय जनों को क्षमा न करने वाला होता है परन्तु अन्य धन के इच्छुक लोग उसकी सम्पत्ति का उपभोग करते हैं ।

भारं तुलायां तुलयेत्प्रयत्नैः श्रीकान्यकुब्जाधिपतिर्भवेत्सः ।
भद्रोद्भवः पुत्रकलत्रसौख्यो जीवेन्नृवालः शरदामशीतिम् ।।

भद्रयोग में उत्पन्न व्यक्ति कान्यकुब्ज (कन्नौज) का अधिपति होता है तथा प्रयत्नपूर्वक भार (सोने की विशेष मात्रा) को तराजू में तौलता है । पुत्र एवं स्त्री के सुखों से सम्पन्न उस राजा की आयु ८० वर्ष होती है ।

(स) हंसयोग का फल

रक्तास्योन्नतनासिकासुचरणो हंसप्रसन्नेन्द्रियो
गौरः पीनकपालरक्तकरजो हंसस्वनः श्लैष्मिकः ।
शङ्खाब्जाङ्कुशमत्स्यदामयुगकैः खट्वाङ्गमालाघटै
श्चञ्चत्पादकरस्थलो मधुनिभे नेत्रे सुवृत्तं शिरः ।।

हंस योग में उत्पन्न व्यक्ति का लालिमा युक्त मुख, ऊँची नासिका, सुन्दर चरण, हंस के समान प्रफुल्लित इन्द्रियाँ, गौर वर्ण, विस्तीर्ण ललाट, लाल रंगी सी अँगुलियाँ, हंस के समान वाणी, कफ प्रधान प्रकृति, शंख, कमल, अंकुश, मछली युगलवीणा, खट्वाङ्ग, माला एवं घड़ा के चिह्नों से सुशोभित हाथ–पैर, मधु के समान लाल नेत्र तथा गोल सिर होता है ।

जलाशयप्रीतिरतीव काममी न याति तृप्ति वनितासु नूनम् ।
औच्च्यं रसाष्टाङ्गुलसम्मितं तत्तनोस्तथायुर्मितिरत्र षष्टिः ।।

जलाशय में अधिक आनन्द अनुभव करने वाला, अत्यधिक कामी, स्त्रियों से कभी तृप्त न होने वाला, ८६ अंगुल ऊँची शरीर वाला हंस पुरुष होता है । इसकी आयु ६० वर्ष होती है ।

वाह्लीकदेशादरशूरसेनगान्धर्वगङ्गायमुनान्तरालान् ।
भुक्त्वा वनान्ते निधनं प्रयाति हंसोऽयमुक्तो मुनिभिः प्रमाणैः ।।

बाह्लीक, शूरसेन, गन्धर्व प्रदेशों का, गंगा–यमुना के मध्यवर्ती भागों का उपभोग कर लेने (इन प्रदेशों में निवास करने अथवा इन स्थानों का अधिपति होने) के पश्चात् हंस पुरुष का घोर वन में निधन होता है ऐसा मुनियों का प्रमाणवचन है।। ५५।।

(द) मालव्य योग का फल

अस्थूलौष्ठोऽप्यविषमवपुर्नैव रक्ताङ्गपन्धि
र्मध्ये क्षामः शशिधररुचिर्हस्तिनासः सुगण्डः ।
सद्दीप्ताक्षः समितिविदितो जानुदेशाप्तपाणि
र्मालव्योऽयं विलसति नृपः सप्ततिवंत्सराणाम् ।।

मालव्य योग में उत्पन्न व्यक्ति का ओष्ठ पतला, सुडौल शरीर, अङ्गों की सन्धियाँ लालिमा रहित, मध्य भाग (कटि) पतला, चन्द्रमा के समान कान्ति, हस्ती के समान दीर्घनासिका, सुन्दर कपोल, सुन्दर तीक्ष्ण आँखें, संगठन या संस्थाओं के माध्यम से सुविख्यात तथा जानुपर्यन्त लम्बी भुजायें होती हैं । इस प्रकार मालव्य राजा ७० वर्ष तक आनोन्दोपभोग करते हैं (अर्थात् इनकी आयु ७० वर्ष की होती है) ।

वक्त्रं त्रयोदशमितांगुलमस्य दीर्घं तिर्यग्दशांगुलमितं श्रवणान्तरालम् ।
मालव्यसञ्ज्ञनृपतिः ससुतो भुनक्ति लाटांश्च मालवससिन्धुसुपारियात्रान् ।।

मालव्य पुरुष के मुख की लम्बाई १३ अंगुल, कानों के मध्य का तिर्यक् अन्तर १० अंगुल होता है । मालव्य संज्ञक राजा अपने पुत्र के साथ लाट, मालवा, सिन्धु, एवं पारियात्र देशों का उपभोग (प्रशासन) करता है ।

(य) शशक योग का फल

लघुर्द्विजास्योऽद्रिगताः सकोपः शठोऽतिशरो विजनप्रचारः ।
वनाद्रिदुर्गेषु नदीषु सक्ताः प्रियातिथिर्नातिलघुः प्रसिद्धः ।।

शशक योग में उत्पन्न व्यक्ति के मुख एवं दाँत छोटे होते हैं । पर्वत में निवास करने वाला, क्रोधी, शठ, अत्यन्त बलवान्, निर्जन स्थानों में भ्रमण करने वाला, वन, पर्वत, नदी और किला में अधिक रुचि रखने वाला, अतिथियों का प्रेमी, मध्यम कद का विख्यात पुरुष होता है ।

नानासेनानिचयनिरतो दन्तुरश्चापि किञ्चि
द्धातोर्वादे भवति कुशलश्चञ्चलो लोलनेत्रः ।
स्त्रीसंसक्तः परधनहरो मातृभक्तः सुजंघो
मध्ये क्षामः सुललितमती रन्ध्रवेदी परेषाम् ।।

(शशक योग में उत्पन्न पुरुष) अनेक प्रकार की सेनाओं के संग्रह में तत्पर, कुछ–कुछ बड़े दाँतों वाला, धातुओं (लोहा, ताँबा, कासा आदि) के व्यवहार में निपुण, चञ्चल प्रकृति एवं नेत्रों वाला, स्त्री में आसक्त, पराये धन का अपहरण करने वाला, माता का भक्त, सुन्दर सुडौल जंघा और कृश कटि से युक्त, सुबुद्ध तथा दूसरों के रहस्य (या दोष) को जानने वाला होता है ।

पर्यङ्कशङ्खशरशस्त्रमृदङ्गमाला वीणोपमाःखलु करे चरणे च रेखाः ।
वर्षाणि सप्ततिमितानि करोति राज्यं प्राप्तं शशाख्यनृपतिः कथितो मुनीन्द्रैः ।।

शश नामक योग में उत्पन्न राजा के हाथ और पैर में पर्यङ्क (पलंग), शङ्ख, बाण, शस्त्र, मृदङ्ग, माला, वीणा का रेखा चिह्न होता है । तथा वह ७० वर्ष तक राज्य करता है । अर्थात् ७० वर्ष की आयु होती है ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है ।

१९. अनफादि योगों के लक्षण –

रविवर्ज्जं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगैः सुनफा ।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञको योऽन्यः ।।

चन्द्रमा से द्वादश भाव में सूर्य को छोड़कर कोई भी ग्रह हो तो अनफा, द्वितीय भाव में सूर्यरहित कोई ग्रह हो तो सुनफा तथा चन्द्रमा से दोनों तरफ अर्थात् द्वितीय और द्वादश दोनों भावों में सूर्यरहित ग्रह हों तो दुरुधरा योग होता है । इससे भिन्न स्थिति में अर्थात् चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश में यदि कोई भी ग्रह न हों तो केमद्रुम नामक योग होता है ।

(अ) सुनफा योग का फल –

भौमादीनां फलं यत् स्याज्ज्ञात्वा त्वविकलं बुधः ।
प्राज्ञाय प्रवदेत्सम्यक् सुनफादिकृतं फलम् ।।

भौमादि पाँच ग्रहों को जो फल पहले बताया गया है उनको भली–भाँति जानकर सुनफादि योगों का फल विद्वान् पुरुष को करना चाहिए ।

पाँच ग्रहों से पञ्च महापुरुष योग बनते हैं परन्तु उच्च और केन्द्रस्थ होने पर उसी अनुपात में उससे कुछ न्यून उक्त पाँच ग्रहों का फल सुनफादि योगों में होता है ।

विक्रमवित्तप्रायो निष्ठुरवचनश्च भूपतिश्चन्द्रे ।
हिंस्त्रो नित्यविरोधी सुनफायां भौमसंयोगे ।।

यदि चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में मंगल स्थित होकर सुनफा योग बना रहा हो तो जातक, पराक्रमी, निष्ठुर वचन बोलने वाला, राजा, हिंसक (जीवों का वध करने वाला) तथा नित्य लोगों से विरोध करने वाला होता है ।

श्रुतिशास्त्रगेयकुशलो धर्मरतः काव्यकृन्मनस्वी च ।
सर्वहितो रुधिरतनुः सुनफायां सोमजे भवति ।।

यदि बुध सुनफा योग कारक हो तो वेद, शास्त्र और गान विद्या में निपुण, धार्मिक, काव्यकर्त्ता, स्वाभिमानी, सबकी भलाई करने वाला, लाल (कोमल) शरीर वाला होता है ।

नानाविद्याचार्य ख्यातं नृपति वृषप्रियं चापि ।
सकुटुम्बधनसमृद्धं सुनफायां सुरगुरुः कुरुते ।।

बृहस्पति से उत्पन्न सुनफा योग में उत्पन्न व्यक्ति विविध विषयों का प्रामाणिक विद्वान्, विख्यात, राजा, न्यायप्रिय तथा कुटुम्बियों के साथ धन सम्पन्न होता है ।

स्त्रीक्षेत्रगृहपतिश्चतुष्पदाढ्यः सुविक्रमोभवति ।
नृपसत्कृतः सुवेषो दक्षःशुक्रेण सुनफायाम् ।।

यदि शुक्र सुनफा योग कारक हो तो स्त्री, क्षेत्र (खेत) एवं गृह का स्वामी, पशुओं का पालन करने वाला, पराक्रमी, राजा से सम्मानित, सुन्दर वेष–भूषा धारण करने वाला तथा चतुर व्यक्ति होता है ।

निपुणमतिर्ग्रामपुरैर्नित्यं सम्पूजितो धनसमृद्धः ।
सुनफायां रवितनये क्रियासु गुप्तो भवेन्मलिनः ।।

शनि से सुनफा योग हो तो कुशल बुद्धिमान्, नगर एवं ग्राम में निरन्तर पूज्य (सम्मानित), धन से सम्पन्न, गुप्त रूप से कार्य करने वाला तथा मलिन स्वभाव से युक्त होता है ।

(ब) अनफा योग का फल –

चौरस्वामी दृप्तः स्ववशी मानी रणोत्कटः सेर्ष्यः ।
क्रोधात्सम्पत्साध्यः सुतनुर्नम्रः कुजेऽनफायां च ।।

भौम कृत अनफा योग में चोरों का सरदार, तेजस्वी, आत्मसंयमी, स्वाभिमानी, युद्ध का अभिलाषी, ईर्ष्यालु, क्रोध से सम्पत्ति सिद्ध (अर्जित) करने वाला, शरीर से सुन्दर तथा विनम्र व्यक्ति होता है ।

गन्धर्वो लेख्यपटुः कविः प्रवक्ता नृपाप्तसत्कारः ।
रुचिरः सुभगोऽपि बुधे प्रसिद्धकर्माऽनफायां हि ।।

बुध अनफा योगकारक हो तो गन्धर्व (गीत–वाद्य–नृत्य आदि कलाओं का ज्ञाता), चित्रकला में निपुण, कवि, विशिष्ट वक्ता, राजा से सम्मान पाने वाला, सुन्दर तथा सौभाग्यशाली पुरुष होता है ।

गम्भीरः सन्मेधाचानुयुतो बुद्धिमान् नृपाप्तयशाः ।
अनफायां त्रिदशगुरौ सञ्जातः सत्कविभवति ।।

बृहस्पति अनफा योगकारक हो तो जातक गम्भीर, सद्बुद्धि से युक्त, बुद्धिमान् (चतुर), राजा से सम्मान प्राप्त तथा उच्चकोटि का कवि होता है ।

युवतीनामतिसुभगः प्रणयी क्षितिपस्य गोपतिः कान्तः ।
कनकसमृद्धश्च पुमाननफायां भार्गवे भवति ।।

शुक्र से अनफा योग हो तो स्त्रियों का प्रिय राजा का प्रियपात्र, गौओं का पालन करने वाला, आकृति से सुन्दर एवं स्वर्ण सञ्चय से धनवान् पुरुष होता है ।

विस्तीर्णभुजः सुभगो गृहीतवाक्यश्चतुष्पदसमृद्धः ।
दुवनितागणभोक्ता गुणसहितः पुत्रवान् रविजे ।।

शनि अनफा योगकारक हो तो जातक लम्बी भुजाओं वाला, सुन्दर, अपने वचन पर दृढ़ रहने वाला, पशुओं से सम्पन्न (अधिक संख्या में पशु पालन करने वाला), कुत्सित स्त्रियों के साथ सहवास करने वाला तथा गुणवान् होता है ।

(स) दुरुधरा योग का फल –

अनृत के बहुवित्तो निपुणोऽतिशठो गुणाधिको लुब्धः ।
वृद्धस्त्रीषु प्रसक्तः कुलाग्रणीः शशिनि भौमबुधमध्ये ।।

चन्द्रमा मंगल और बुध के मध्य में (चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश में मंगल और बुध) हों तो मिथ्यावादी, अधिक धनवान्, चतुर, अत्यन्त दुष्ट, अधिक गुणवान्, लोभी, वृद्धा स्त्रियों में आसक्त तथा अपने कुल में श्रेष्ठ होता है ।

ख्यातः कर्मसु कितवो बहुधनवैरस्त्वमर्षणो धृष्टः ।
आरक्षकः कुजगुर्वोर्मध्यगते शशिनि संग्राही ।।

यदि मंगल और गुरु दुरुधरा योगकारक हों अर्थात् मंगल और गुरु के मध्यम में चन्द्रमा हों तो अपने कार्यों से प्रसिद्ध, धूर्त्त, अधिक धनवान्, शत्रुता, क्रोधरहित, धृष्ट–ढीठ), तथा सुरक्षा करने वाला होता है ।

उत्तमरामः सुभगो विषादशीलोऽस्त्रविद्धवेच्छूरः ।
व्यायामी रणशीलः सितारयोर्मध्यगे चन्द्रे ।।

शुक्र और मंगल के मध्य में यदि चन्द्रमा हो अर्थात् इन तीनों ग्रहों से दुरुधरा योग बन रहा हो तो जातक युद्ध प्रिय, व्यायाम करने वाला, शूर, अस्त्र सञ्चालन में दक्ष, दुःखी एवं सुन्दर होता है । उसकी स्त्री उत्तम (सभ्य, सुन्दरी एवं पतिव्रता) होती है ।

उत्तमसुरतो बहुधनसञ्चयकारी व्यसनसक्तश्च ।
क्रोधी पिशुनो रिपुमान् यमारयोः स्याद्दुरुधरायाम् ।।

शनि और मंगल से दुरुधरा योग हो तो जातक रति कला में कुशल, अत्यधिक धनसंग्रह करने वाला, व्यसन में आसक्त, क्रोधी, चुगलखोर तथा शत्रुओं से युक्त होता है ।

धर्मरतः शास्त्रज्ञो वाचि पटुः सर्ववर्द्धनसमृद्धः ।
त्यागयुतो विख्यातो गुरुबुधमध्यस्थिते चन्द्रे ।।

गुरु और बुध के बीच में चन्द्रमा हो तो धर्म में संलग्न, शास्त्रों का ज्ञाता, बात–चीत में निपुण, सभी प्रकार की सम्पत्तियों की वृद्धि से सम्पन्न, त्यागी तथा विख्यात व्यक्ति होता है ।

प्रियवाक्सुभगः कान्तः प्रवृत्तगो यदि सुकृतवान्नृपतिः ।
सौख्यं शूरो मन्त्री बुधसितयार्मध्यगे च हिमकिरणे ।।

बुध और शुक्र के मध्य में चन्द्रमा हो तो जातक प्रियवादी, सुन्दर, मनोहर, सुख सम्पन्न, शूर तथा मन्त्री होता है । यदि उसकी सत्कर्म में प्रवृत्ति हो जाती है तो वह यशस्वी राजा होता है ।

देशे देशे गच्छति वित्तवशे नास्ति विद्यया सहितः ।
चन्द्रेऽन्येषां पूज्यः स्वजनविरोधी ज्ञमन्दयोर्मध्ये ।।

बुध और शनि के मध्य में यदि चन्द्रमा हो तो वह व्यक्ति देश–विदेश में अर्थ लाभ हेतु भ्रमण करता है तथा विद्या से हीन होता है । ऐसे लोग दूसरों से पूज्य तथा आत्मीयजनों के विरोधी होते हैं ।

धृतिमेधः स्थैर्ययुतो नितिज्ञः कनकरत्नपरिपूर्णः ।
ख्यातो नृपकृत्यकरो गुरुसितयोर्दुरुधरायोगे ।।

गुरु और शुक्र से दुरुधरा योग बन रहा हो तो जातक धैर्यवान्, मेधावी, स्थिर चित्तवाला, नीति का ज्ञाता, सोना और जवाहरात से परिपूर्ण, विख्यात, राजा का कार्य (राजकीय सेवा) करने वाला होता है ।

सुखनयविज्ञानयुतः प्रियवाग्विद्वान् धुरन्धरो मर्त्यः ।
ससुतो धनी सुरूपश्चन्द्रे गुरुभार्गवान्तरगे ।।

शुक्र और बृहस्पति के मध्य में चन्द्रमा हो अर्थात् उक्त ग्रहों से (दुरुधरा योग) हो तो सुख, राजनीति और विज्ञान से युक्त, प्रियवादी, विद्वान्, धुरन्धर (निर्भीक एवं बलवान्), पुत्रवान्, धनी तथा सुन्दर होता है ।

वृद्धवनितं कुलाढ्यं निपुणं स्त्रीवल्लभं धनसमृद्धम् ।
नृपसत्कृतं बहुज्ञं कुरुते चन्द्रः सितार्कज़योः ।।

शुक्र और शनि के मध्य में चन्द्रमा हो तो उस मनुष्य की स्त्री वृद्धा (अधिक आयु वाली) एवं कुलीन होती है तथा वह निपुण, स्त्री का प्रेमी, धनवान्, राजा से सम्मानित, बहुत विषयों (अथवा कलाओं) का ज्ञाता होता है ।

(द) केमद्रुम योग का फल –

केमद्रुमे भवति पुत्रकलत्रहीनो देशान्तरे व्रजति दुःखसमाभितप्तः ।
ज्ञातिप्रमोदनिरतोमुखरः कुचैलो नीचः सदा भवति भीतियुतश्चिरायुः ।।

केमद्रुम योग (चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश भाव ग्रह हीन हो) में उत्पन्न व्यक्ति पुत्र और स्त्री से हीन अपने देश को छोड़कर दूसरे देश में जाने वाला, वर्षों तक दुःख से सन्तप्त रहने वाला, जाति–बन्धुओं के आमोद–प्रमोद में संलग्न, मुखर (अधिक बोलने वाला), मलिन वस्त्रों को धारण करने वाला, नीच, सदैव भयभीत रहने वाला तथा दीर्घायु होता है ।

दुरुधरा एवं केमद्रुम का फल –

उत्पन्नभोगसुखभुग्धनवाहनाढ्यस्त्यागान्वितो दुरुधराप्रभवः सुभृत्यः ।
केमद्रुमे मलिनदुः खितनीचनिः स्वाः प्रेष्याश्च तत्र नृपतेरपि वंशजाताः ।।

दुरुधरा योग में उत्पन्न व्यक्ति भौतिक साधनों से उत्पन्न समस्त सुखों का उपभोग करने वाला, धन एवं वाहन से युक्त, त्यागी प्रवृत्ति वाला तथा अच्छे सेवकों से युक्त होता है ।

केमद्रुम योग में उत्पन्न व्यक्ति मलिन (गन्दे) आचरण वाला, दुःखी, नीच, निर्धन तथा सेवाकार्य करने वाला होता है चाहे वह राजा के कुल में ही क्यों न उत्पन्न हो ।

केमद्रुम भङ्गयोग –

हित्वार्क सुनफानफा दुरुधरा स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः
शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ ।
केन्द्रे शीतकरेऽथ वा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते
केचित्केन्द्रनवांशकेष्विति वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते ।।

सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रहों में से कोई भी ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय भाव, द्वादश भाव तथा चन्द्रमा से दोनों तरफ (द्वितीय और द्वादश दोनों भावों) में हो तो क्रम से सुनफा, अनफा, दुरुधरा योग होते हैं । इससे विपरीत अर्थात् चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश दोनों भाव ग्रह से रहित हो तो केमद्रुम नामक योग होता है । बहुत से आचार्यों का मत है कि चन्द्रमा केन्द्र में हो अथवा किसी ग्रह से युत हो तो केमद्रुम योग भङ्ग हो जाता है । कुछ आचार्यों का मत है कि चन्द्रमा केन्द्र नवांश में अर्थात् केन्द्रस्थ राशियों के नवमांश में हो तो केमद्रुम योग भङ्ग होता है । परन्तु यह कथन प्रसिद्ध नहीं है ।

कुमुदगहनबन्धुर्वीक्षमाणः समस्तै
र्गगनगृहनिवासैर्दीर्घजीवी स जातः ।
फलमशुभसमुत्थं यच्च केमद्रुमोक्तं
स भवति नरनाथः सार्वभौमो जितारिः ।।

केमद्रुम योग होते हुये भी चन्द्रमा को यदि समस्त ग्रह देख रहे हों तो वह व्यक्ति दीर्घजीवी होता है । केमद्रुम योग से उत्पन्न होने वाले समस्त अशुभ फल उसे प्राप्त नहीं होते । वह सार्वभौम राजा तथा शत्रुओं को जीतने वाला होता है ।

पूर्ण शशी यदि भवेच्छूभसंस्थितो वा सौम्यामरेज्यभृगुनन्दनसंयुतश्च ।
पुत्रार्थ सौख्यजनकः कथितो मुनीन्द्रैः केमद्रुमे भवति मङ्गलसुप्रसिद्धिः ।।

पूर्ण चन्द्रमा यदि शुभग्रह की राशि में स्थित हो अथवा बुध, गुरु और शुक्र से युक्त हो तो केमद्रुम योग होने पर भी मनुष्य पुत्र–धन और सुख को उत्पन्न करने वाला एवं कल्याणकारी प्रसिद्धि (यश) को प्राप्त करने वाला होता है ऐसा मुनियों का कथन है ।

२०. वोशि–वेशि योग –

सूर्याद्व्ययगे वोशिर्द्वितीयगैश्यचन्द्रवर्जितैर्वेशिः ।
उभयस्थितैर्ग्रहगणैरुभयचरीनामतः प्रोक्तः ।।

सूर्य से बारहवें भाव में चन्द्रममा को छोड़कर अन्य कोई भी ग्रह स्थित हो तो वोशि तथा सूर्य से द्वितीय भाव में चन्द्रातिरिक्त कोई ग्रह हो तो वेशि योग होता है । सूर्य से दोनों तरफ द्वितीय और द्वादश भावों में ग्रह हों तो उभयचारी नामक योग होता है ।

(अ) वोशि योग का फल –

मन्ददृशं स्थिरवचनं परिभूरिश्रमं नतार्द्धतनुम् ।
कथयति गणिताधिपतिर्वेशिसमुत्थं त्वधोदृष्टिम् ।।

वोशि योग में उत्पन्न व्यक्ति की दृष्टि मन्द, वाणी स्थिर, होती है । शरीर आधा झुका हुआ तथा नीचे की तरफ दृष्टि रखने वाला होता है ऐसा गणितज्ञों का कहना है ।

बहुसंचयी विनतदृक् वोशौ पुरुषो भवेद्गुरोर्जातः ।
भीरुः कामविलीनो लघुचेष्टो भृगुसुते पराधीनः ।।

गुरु से वोशि योग बन रहा हो अर्थात् सूर्य से बारहवें भाव में गुरु हो तो पुरुष अधिक सञ्चय करने वाला दिन के समान स्वच्छ हृदय वाला होता है । यदि बारहवें भाव में शुक्र हो तो डरपोक, कामासक्त, स्वल्प अभिलाषा करने वाला तथा पराधीन होता है ।

परतर्कितो दरिद्रो मृदुर्विनीतो बुधो विगतलज्जः ।
मातृघ्नः क्षितिपुत्रो परोपकारी नरो वोशौ ।।

यदि वोशि योग बुध द्वारा बन रहा हो तो जातक दूसरों की दृष्टि में चर्चा का विषय, दरिद्र, कोमल प्रकृति वाला विनम्र तथा लज्जा से रहित होता है । यदि मंगल से बनता हो तो माता की हत्या करने वाला तथा परोपकारी पुरुष होता है ।

परदाररतस्तन्द्री वृद्धाकारो घृणी भवेन्मनुजः ।
जातः सदाप्तजन्मा वोशौ योगे शनैश्चरेण युते ।।

यदि शनि द्वारा वोशि योग बना हो तो जातक परस्त्रीगामी, आलसी, वृद्ध की तरह आकृति वाला, घृणित, सदैव जन्म की सफलता प्राप्त करने वाला (सन्तुष्ट) होता है ।

(ब) वेशि योग का फल –

उच्चेष्टवचाः स्मृतिमान् भोगयुतो निरीक्षते तिर्यक् ।
पूर्वशरीरे पृथुलस्तुच्छगतिः सात्त्विकी वेशौ ।।

वेशि योग में उत्पन्न होने वाले उच्चस्तर की अनुकूल एवं उचित बात बोलने वाले, याद रखने वाले (स्मरणशक्ति युक्त), सुख भोग करने वाले, तिरछी दृष्टि वाले

(अगल–बगल देखने वाले) होते हैं । उनके शरीर का अग्रभाग मोटा होता है तथा अत्यल्प गति से चलने वाले होते हैं ।

धृतिसत्यबुद्धियुक्तो भवति गुरुर्वेशिगो रणे शूरः ।
ख्यातो गुणवानार्यः शूरो वै भार्गवे पुरुषः ।।

गुरु यदि वेशियोग कारक (सूर्य से द्वितीय भाव में गुरु) हो तो धैर्यवान्, बुद्धिमान्, सत्यवादी तथा संग्राम में पराक्रमी होता है । यदि सूर्य से द्वितीय भाव में शुक्र हो तो विख्यात, गुणवान्, श्रेष्ठ तथा पराक्रमी पुरुष होता है ।

प्रियभाषी रुचिरतनुर्वेशौ स्याद्वा बुधे पराज्ञकृन्मनुजः ।
संग्रामे विख्यातो भूमिसुते सूतगुणवानपि ख्यातः ।।

बुध वेशियोग कारक हो तो मनुष्य प्रिय बोलने वाला, सुन्दर शरीर वाला, दूसरों को मूर्ख बनाने वाला होता है ।

यदि भौम वेशियोग कारक हो तो संग्राम में प्रसिद्ध तथा सूतकर्म (रथ संचालन, ड्राइविंग) में निपुण होता है ।

वणिक्कलास्वभावः स्यात् परद्रव्यापहारकः ।
गुरुद्वेषी शनिः सूर्यो सोमे वेशिः शनैश्चरे ।।

सूर्य से द्वितीय स्थान में शनि हो तो जातक व्यापार की कला में कुशल दूसरों के धन का अपहरण करने वाला तथा गुरु का द्वेषी होता है ।

२१. उभयचरी योग का फल –

सर्वसहः सुसमदृक्समकायः सुस्थितो निपुणसत्त्वः ।
नात्युच्चः परिपूर्णग्रीवो भवेदुभयचर्यायाम् ।।

उभयचरी योग में (सूर्य से द्वितीय और द्वादश में चन्द्ररहित कोई भी ग्रह हों तो उसमें) उत्पन्न व्यक्ति सब कुछ सहन करने वाला, समान दृष्टि एवं समान शरीर वाला, स्थिरमिति, निपुण एवं शक्ति–सम्पन्न, अधिक उन्नत नहीं (अर्थात् मध्यम कद) तथा मांटी गर्दन वाला होता है ।

सुभगो बहुभृत्यजनो बन्धूनामाश्रयो नृपतितुल्यः ।
नित्योत्साही हृष्टो भुनक्ति भोगानुभयचर्यायाम् ।।

उभयचरी योग में उत्पन्न व्यक्ति सुन्दर स्वरूप वाला, बहुत सेवकों से युक्त, बन्धुओं का आश्रयदाता, राजा के समान वैभव युक्त, निरन्तर उत्साहयुक्त, शरीर से स्वस्थ तथा भोगों का उपभोग करने वाला होता है ।

२२. सिंहासन योग –

षष्ठाष्टमे द्वादशे च द्वितीये च यदा ग्रहाः ।
सिंहासनाख्ययोगोऽयं राजसिंहासनं विशेत् ।।

(जन्म लग्न से) छठें, आठवें, बारहवें तथा दूसरे भावों में ग्रह हों तो सिंहासन नामक योग होता है । इस योग में उत्पन्न व्यक्ति राजसिंहासन पर बैठता है (अर्थात् अधिकार प्राप्त करता है) ।

२३. ध्वजयोग —

अष्टमस्था यदा क्रूराः सौम्या लग्ने स्थिता ग्रहाः ।
ध्वजयोगोऽत्र जातस्तु स पुमान्नायको भवेत् ।।

अष्टम भाव में सभी क्रूर ग्रह तथा लग्न में सभी शुभग्रह स्थित हों तो ध्वज योग होता है । इस योग में उत्पन्न व्यक्ति नायक होता है ।

२४. हंसयोग —

त्रिकोणे सप्तमे लग्ने भवन्ति च यदा ग्रहाः ।
हंसयोगं विजानीयात्स्ववंशस्यैव पालकः ।।

त्रिकोण (पञ्चम, नवम), सप्तम और लग्न स्थानों में यदि ग्रह स्थित हों तो हंसयोग होता है । इस योग में जन्म लेने वाला अपने वंश (कुल) का पालन करने वाला होता है ।

२५. कारिका योग —

एकादशे यदा सर्वे ग्रहाः स्युर्दशमेऽपि च ।
लग्नस्य सम्मुखे वापि कारिकापरिकीर्तिता ।।

ग्यारहवें, दशवें तथा लग्न के सम्मुख (सप्तम भाव) में सभी ग्रह हों तो कारिका योग होता है ।

उत्पन्नः कारिकायोगे नीचोऽपि नृपतिर्भवेत् ।
राजवंशेसमुत्पन्नो राजा तत्र न संशयः ।।

कारिका योग में उत्पन्न नीच व्यक्ति भी राजा होता है यदि राज कुल में ही उत्पन्न हो तो निःसन्देह राजा होता है ।

२६. एकाबली योग —

लग्नतश्चान्यतो वापि क्रमेण पतिता ग्रहाः ।
एकाबली समाख्याता महाराजो भवेन्नरः ।।

जन्म लग्न से अथवा किसी अन्य भाव से क्रमानुसार सभी ग्रह पड़े हों तो एकाबली योग होता है । इस योग में उत्पन्न व्यक्ति महाराजा होता है । (इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी स्थान से क्रम से एक–एक ग्रह अगले भावों में स्थित हों तो एकाबली योग होता है) ।

२७. चतुःसागर योग —

चतुर्षु केन्द्रसंज्ञेषु सौम्यपापग्रहाः स्थिताः ।
चतुःसागरयोगोऽयं राज्यदो धनदो भवेत् ।।

चारों केन्द्रस्थानों में सभी शुभ और पापग्रह स्थित हों तो चतु:सागर योग होता है । यह योग राज्य और धन देने वाला होता है ।

कर्कटे मकरे मेषे तुलायां च ग्रहे स्थिते ।
चतु: सागरयोग: स्यात्सर्वारिष्टनिषूदन: ।।

कर्क, मकर, मेष और तुला इन चार राशियों में ही समस्त ग्रह पड़े हों तो वह चतु:सागर योग होता है जो समस्त अरिष्टों का नाशक है ।

चतु:सिन्धौ नरो जातो बहुरत्नसमन्वित: ।
गजवाजिधनै: पूर्णो धरणीशो भवेन्नर: ।।

चतु:सागर योग में उत्पन्न व्यक्ति बहुत रत्नों से सम्पन्न, हाथी घोड़े और धन से परिपूर्ण एवं भूमि का स्वामी (राजा) होता है ।

२८. गर्भाधानयोग्यऋतुयोग —

कुजेन्दुहेतु: प्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ ।
अतोऽन्यथास्ते शुभपुंग्रहेक्षिते नरेण संयोगमुपैति कामिनी ।।

महीने—महीने में स्त्रियों के रजस्वला होने का कारण चन्द्रमा और मङ्गल हैं । जब चन्द्रमा स्त्रियों के जन्मराशि से तीसरी, छठी, दशवीं और ग्यारहवीं राशि को छोड़ अन्य राशियों में जाता है तब उनके गर्भाधान के लायक ऋतु होता है । इसका भावार्थ यह है कि जब चन्द्रमा उक्त स्थानों को छोड़ अन्य स्थानों में कहीं स्थित हो और उसे मङ्गल देखता हो तब स्त्रियाँ रजस्वला होती हैं और तभी उनके गर्भ की योग्यता होती है । परन्तु बाल, वृद्ध, रोगिणी और बन्ध्या स्त्री को छोड़कर यह योग जानना चाहिए ।

२९. गर्भसम्भवयोग

रवीन्दुशुक्रावनिजै: स्वभागगैर्गुरो त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा ।
भवत्यपत्यं हि विवीजिनामिमे कला हिमांशोर्विदृशामिवाफला: ।।

जब सूर्य, चन्द्रममा, शुक्र और मङ्गल से ग्रह किसी भी राशि के अपने नवांशों में स्थित हों तो गर्भाधानकाल में सन्तति की योग्यता होती है । कदाचित् सब ग्रह अपने नवांशों में न स्थित हों तो पुरुष की जन्मराशि से तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित सूर्य, शुक्र ये अपने ही नवांश में स्थित हों और स्त्री की जन्मराशि से तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित चन्द्रमा, मङ्गल ये अपने ही नवांश में स्थित हों तो अवश्य ही सन्तान की योग्यता होती है । अथवा बृहस्पति नवें, पाँचवें और लग्न में स्थित हो तो भी गर्भ का योग होता है परन्तु इन योगों के रहते भी हिजरों के निष्फल हो जाते हैं । जैसे चन्द्रमा की किरणें अन्धों को फलदायक नहीं होती हैं ।

३०. *गर्भिणीमरणयोग* —

अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भि र्मरणमेति शुभदृष्टिमयाते ।
उदयराशिसहिते च यमे स्त्री विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे ।।

पापग्रह गर्भाधानकालिक लग्न की इच्छा करते हों अर्थात् बारहें स्थान में पापग्रह स्थित हों और लग्न में शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो गर्भिणी स्त्री का मरण होता है और गर्भाधानकालिक लग्न में स्थित शनैश्चर को क्षीण चन्द्रमा और मंगल देखता हो तो भी गर्भिणी स्त्री मरण को प्राप्त होती है ।

३१. *गर्भस्रावयोग* —

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं वदेत्तदा ।
मासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं स्त्रवणं समादिशेत ।।

गर्भाधान के समय में लग्न में मंगल और सातवें सूर्य हो तो शस्त्र से गर्भिणी स्त्री का मरण होता है । गर्भाधानकाल में जो ग्रह किसी ग्रह से पीड़ित हो तो उसके महीने में अवश्य गर्भ गिरेगा यह कहना चाहिए । मंगलादि से संयुक्त ग्रह युद्ध में निपीड़ित और केतु से संयुक्त अभिधूमित और राहु के ग्रहण करने से सूर्य और चन्द्रमा निपीड़ित कहा जाता है ।

३२. *गर्भपुष्टियोग* —

शशाङ्कलग्नोपगतैः शुभग्रहै स्त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थितैः ।
तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी सगर्भो रविणा च वीक्षितः ।।

चन्द्रमा जिस स्थान में स्थित हो उस स्थान में अथवा लग्न में अथवा दोनों में अथवा चन्द्रमा और लग्न से अथवा दोनों से पाँचवें, नवें, सातवें, दूसरे, चौथे और दशवें स्थान में शुभग्रह हों और लग्न से या चन्द्रमा से अथवा दोनों से तीसरे या ग्यारहवें स्थान में पापग्रह हों और लग्न को तथा चन्द्रमा को अथवा दोनों को सूर्य देखता हो तो गर्भ पुष्ट कहना चाहिए ।

३३. *पुत्र कन्याज्ञान* —

ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः
पुंजन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः ।
गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं
द्व्यङ्गस्था बुधवीक्षणाच्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ।।

आधान काल में या प्रश्न लग्न ममें बलवान् लग्न, सूर्य बृहस्पति और चन्द्रमा ये सब विषमराशि में या विषमराशि के नवांश में स्थित हों तो गर्भगत पुरुष और जो यही सब समराशि में अथवा समराशि के नवांश में स्थित हों तो गर्भवती स्त्री कहना चाहिए । अथवा

सबल बृहस्पति और सूर्य विषमराशि में स्थित हों तो पुरुष और चन्द्रमा, शुक्र तथा मंगल ये सब सबल होकर समराशि में स्थित हों तो गर्भगत स्त्री और यही चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति और सूर्य द्विस्वभाव राशियों के नवांश में स्थित हों और उन्हें बुध देखता हो तो ये अपने पक्ष में यमज (जोरिया) पुरुष या स्त्रीकारक होते हैं अर्थात् मिथुन, कन्या, धन और मीन ये चार द्विस्वभाव हैं; इनमे मिथुन, धन ये दो पुरुष और कन्या, मीन ये दो स्त्रीसंज्ञक हैं । अब मिथुन, धन में कहीं सूर्य, बृहस्पति स्थित हों और उन्हें बुध देखता हो तो जोरिया दो पुरुष और कन्या, मीन में कहीं चन्द्रमा, शुक्र और मंगल स्थित हों और उन्हें बुध देखता हो तो जोरिया दो स्त्री और दोनों योग मिले हुए हों तो पुरुष स्त्री जोरिया के होते हैं और पूरे दोनों योग हों तो दो पुरुष और दो स्त्री गर्भ में कहना चाहिए ।

३४. *मूकयोग* —

अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः । शुभेक्षितश्चेत्कुरुते गिरञ्चिरात् ।।

चन्द्रमा वृषराशि में स्थित हो तथा पापग्रह कर्क, वृश्चिक और मीन इन राशियों के नवें नवांश में स्थित हों तो गर्भ में मूक अर्थात् वाणीहीन सन्तान कहना चाहिए ।

बहुत दिन पर बोलने का योग —

पूर्वोक्त योग रहते चन्द्रमा को शुभग्रह देखते हों तो गर्भ में बहुत दिन पर बोलने वाला सन्तान कहना चाहिए । तथा पापग्रह मिले शुभग्रह देखते हों तो भी उक्त फल होता है और सब पाप ग्रह ही देखते हों तो पूर्वोक्त फल जानना चाहिए ।

३५. *सदन्तयोग* —

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत्सदन्तोऽत्र जातः
कुब्जस्स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे ।
पंगुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे
सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत्सौम्यदृष्टः ।।

गर्भाधानकाल में अथवा प्रश्नकाल में कन्या, मिथुन इन राशियों में अथवा इन राशियों के नवांशों में शनैश्चर और मंगल दोनों स्थित हों तो गर्भ में दाँतवाला सन्तान कहना चाहिए ।

३६. *कूबरयोग* —

अपनी राशि अर्थात् कर्क ममें स्थित चन्द्रमा लग्न में स्थित हो और उसे शनैश्चर तथा मंगल ये दोनों ग्रह देखते हों तो गर्भ में कुबरा सन्तान कहना चाहिए ।

३७. *पंगुलायोग* —

मीन राशि लग्न में स्थित हो और उसे शनैश्चर, चन्द्रमा और मंगल ये ग्रह देखते हों तो गर्भ में पैर रहित सन्तान कहना चाहिए ।

३८. जड़योग —

कर्क, वृश्चिक और मीन इन राशियों के नवें नवांश में पापग्रह युक्त चन्द्रमा स्थित हो और उन्हें कोई शुभग्रह न देखता हो तो गर्भ में बहिरा सन्तान कहना चाहिए ।

३९. वामनयोग —

सौरिशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने ।
धीनवमोदयगैश्च दृकाणैः पापयुतैरभुजार्ङ्ग्रशिराः स्यात् ।।

लग्न में नवें नवांश का उदय हो और यह नवांश मकर राशि का हो उसमें शनैश्चर, चन्द्रमा और सूर्य इन ग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भ में वामनरूप सन्तान कहना चाहिए ।

४०. अन्धादियोग —

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते
नयनरहितस्सौम्यासौम्यैस्सबुद्बुदलोचनः ।
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि
स्त्वशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः ।।

गर्भाधानकाल में सूर्य और चन्द्रमा से संयुक्त सिंह लग्न हो और उसे मंगल देखता हो तो गर्भ में नेत्रहीन सन्तान कहना चाहिए । यह बात तो अर्थ ही से सिद्ध है कि सिंह राशि लग्न में हो और केवल सूर्य से संयुक्त हो और मंगल तथा शनैश्चर से दृष्ट हो तो दाहिनी आँख का काना और चन्द्रमा से संयुक्त हो और मंगल तथा शनैश्चर से दृष्ट हो तो बाँई आँख का काना सन्तान कहना चाहिए । वही सिंह लग्न सूर्य, चन्द्रमा से संयुक्त होकर शुभाशुभ दोनों से दृष्ट हो तो गर्भ में फूलीसंयुक्त आँखवाला सन्तान कहना चाहिए । यहाँ भी दाहिने बाँये का भेद पूर्वोक्तरीति से जानना चाहिए ।

४१. काणयोग —

बारहवें स्थान में स्थित चन्द्रमा बाँई आँख और सूर्य दाहिनी आँख नष्ट करता है, परन्तु ये योगकारक ग्रह किसी शुभग्रह से दृष्ट न हों तो यह फल पूरा होता है और जो कोई शुभग्रह इन्हें देखता हो तो सम्पूर्ण फल नहीं होता है ।

४२. प्रसवकालज्ञान —

तत्कालभिन्दुसहितो द्विरसांशको यस्तत्तुल्यराशिसहिते पुरतः शशाङ्के ।
यावानुदेति दिनरात्रिसमानभाग स्तावद्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म ।।

प्रश्नकाल में अथवा गर्भाधानकाल में जहाँ कहीं जितनी संख्यावाले द्वादशांश में चन्द्रमा स्थित हो उस द्वादशांश राशि से उतनी ही संख्यावाली राशि में जब चन्द्रमा स्थित हो तब दशवें महीने में जन्म कहना चाहिए । और कोई तो ऐसा अर्थ करते हैं कि

गर्भाधानकालिक चन्द्रमा जितनी संख्यावाले द्वांदशांश में स्थित हो मेषादि से उतनी संख्यावाली राशि में दशवें महीने में जब चन्द्रमा स्थित होते हैं तब गर्भस्थ का जन्म कहना चाहिए । यद्यपि इन दोनों अर्थों में प्रमाण मिलता है तथापि विद्वज्जनों की अभिरुचि पूर्वोक्त ही अर्थ में है । नक्षत्र जानने की यह रीति है कि चन्द्रस्थ द्वादशांश प्रमाण से पूरी एक राशि आती है तो चन्द्रभुक्त द्वादशांश प्रमाण से कितनी आवेगी? ऐसा त्रैराशिक कल्पना करके फिर एक राशि को चन्द्रभुक्त द्वादशांश प्रमाण से गुण कर उसमें चन्द्रस्थ द्वादशांश प्रमाण से भाग दे, जो अंशादि लब्ध मिले उसी से जन्मकाल में नक्षत्र की कल्पना करे और प्रश्न अथवा गर्भाधान काल में "गोजाश्विककर्किमिथुना" इस श्लोक में कही हुई रीति से दिनसंज्ञक अथवा रात्रिसंज्ञक जो लग्न हो उसी के अनुसार दिन अथवा रात्रि में गर्भस्थ का जन्म कहना चाहिए और उस लग्न के जितने अंश व्यतीत हुए हों उतने ही अंशों के हिसाब से दिन चढ़े व रात्रि बीते जन्म कहना चाहिए । परन्तु हिसाब की यह रीति है कि जब लग्न के तीस अंश व्यतीत होते हैं तो अमुक दिनमान अथवा रात्रिमान व्यतीत होता है और जब लग्न के अमुक अंश व्यतीत हुए हैं, तो कितना दिन अथवा रात्रि व्यतीत हुई होगी ? ऐसा त्रैराशिक कल्पना करके फिर दिनमान अथवा रात्रिमान को व्यतीत लग्नांशों से गुणकर उसमें तीस का भाग दे, जो लब्ध आवे वही दण्डादि इष्टकाल होगा । फिर उसी पर से जन्म से पहिले ही लग्न, होरा, द्रेष्काणादिकों की कल्पना करे और उक्त नक्षत्र जिस तिथि–वासर में हो उस तिथिवासर को तिथि–पत्र में देकर अथवा सिद्धान्तरीति से जानना चाहिए ।

४३. *वर्षत्रयगर्भधारणयोग* –

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे यदि भवति निषेकस्सूतिरशब्दत्रयेण ।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्यान्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ।।

गर्भाधानकाल ने जो राशि लग्न में स्थित हो उसममें मृदुभांश (मकर और कुम्भ के नवांश) का उदय हो और लग्न से सातवें शनैश्चर स्थित हो तो तीन वर्ष पर गर्भस्थ का जन्म कहना चाहिए ।

४४. *द्वादशवर्षगर्भधारणयोग* –

और जो गर्भाधानकालिक लग्न में कर्क के नवांश का उदय हो और लग्न से सातवें स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो बारह वर्ष पर गर्भस्थ का जन्म कहना चाहिए । इस गर्भाधान के अध्याय में जो जिस तरह से कहा है जन्मकाल से भी वैसे ही कहना चाहिए । प्रश्नकाल से भी ऐसे ही कहना चाहिए परन्तु बुद्धिमानों को उचित है कि सम्भव–असम्भव विचारकर फल कहना चाहिए ।

४५. *जातपितृबन्धनयोग* –

क्रूरर्क्षगतावशोभनौ सूर्यार्द्द्यूननवात्मजस्थितौ ।
बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशादथो पथि ।।

क्रूरग्रहों की राशियों में से किसी राशि में मङ्गल और शनैश्चर ये दोनों स्थित हों और सूर्य से पाँचवें, सातवें या नवें इनमें से किसी स्थान में हों तो पैदा हुए के बाप को बँधुआ जानना । परन्तु सूर्य चरराशि में हो तो परदेश में बँधुआ, स्थिर राशि में सूर्य स्थित हो तो अपने देश में बँधुआ तथा द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो रास्ते में बँधुआ जानना चाहिए ।

४६. नौकास्थजन्मज्ञान —

पूर्णे शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे ।
लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोतगता प्रसूयते ।।

पूर्ण चन्द्रमा कर्कराशि में स्थित हो और लग्न में बुध स्थित हो तथा चौथे स्थान में बृहस्पति स्थित हो तो नौका में जन्म जानना । अथवा कर्क, पराद्ध मकर और मीन इन राशियों में से कोई राशि लग्न में स्थित हो और सातवें स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो भी नौका में पैदा हुआ सन्तान जानना चाहिए ।

४७. जलस्थजन्मज्ञान —

आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः समवेक्षितेऽपि वा ।
मेषूरणबन्धुलग्नगः स्यात्सूतिः सलिले न संशयः ।।

कर्क, पराद्ध मकर और मीन इन जलराशियों में से कोई एक राशि लग्न में स्थित हो और चन्द्रमा भी जलराशि ही में स्थित हो तो जल के समीप जन्म कहना चाहिए । अथवा लग्न में स्थित जलराशि को पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा जलराशि में स्थित चन्द्रमा दशवें, चौथे और लग्न में स्थित हो तो निश्चय जल के समीप में पैदा हुआ सन्तान जानना चाहिए ।

४८. कारागृहस्थजन्मज्ञान —

उदयोडुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्याप्यापनिरीक्षिते यमे ।
अलिकर्कयुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे ।।

लग्न और चन्द्रमा ये दोनों एक राशि में स्थित हों और इनसे बारहवें स्थान में पापग्रह से देखा जाता हुआ शनैश्चर स्थित हो तो कारागार में जन्म जानना चाहिए ।

४९. गर्तस्थजन्मज्ञान —

वृश्चिक अथवा कर्क लग्न में स्थित शनैश्चर को चंद्रमा देखता हो तो गड्ढे (खाई) में जन्म जानना चाहिए।

५०. क्रीड़ागृह—देवगृह—ऊषर—भूमिजन्मज्ञान —

मन्देऽब्जगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रमात् ।
क्रीडाभवने सुरालये सोषरभूमिषु च प्रसूयते ।।

शनैश्चर जलराशि का होकर लग्न में स्थित हो और उसे बुध सूर्य तथा चन्द्रमा ये ग्रह देखते हों तो क्रम से बिहार स्थान, देवस्थान और ऊषर भूमि में जन्म जानना अर्थात् जलराशिस्थ लग्नगत शनैश्चर को बुध देखता हो तो बिहारस्थान में और सूर्य देखता हो तो देवस्थान में तथा चन्द्रमा देखता हो तो ऊषर भूमि में जन्म जानना चाहिए ।

५१. श्मशानादिजन्मज्ञान —

नृलग्नगं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे ।
रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति ।।

मनुष्य (मिथुन,कन्या, पूर्वार्द्ध धन, तुला और कुम्भ) राशियों में से किसी राशि में स्थित शनैश्चर लग्न में स्थित हो और उसे मङ्गल देखता हो तो श्मशान (मूर्दा फूँकने की जगह) में, चन्द्रमा या शुक्र देखते हों तो रमणीय स्थान में, बृहस्पति देखता हो तो अग्निशाला में और सूर्य देखता हो तो राजा के घर, देवस्थान अथवा गोशाला में और बुध देखता हो तो शिल्पगृह में जन्म जानना चाहिए ।

५२. जन्मदेशज्ञान —

राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे ।
स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे बलयोगात्फलमंशकर्क्षयोः ।।

तात्कालिक जन्मलग्न में जिस राशि और नवांश का उदय हो उस राशि और नवांश राशि के सदृश जिस स्थान में प्राणी वास करता हो उसी स्थान में जन्म कहना चाहिए और जो वह राशि और नवांशराशि चरसंज्ञक हो तो उसके सदृश प्राणी जिस मार्ग होकर चलता हो उस मार्ग में जन्म कहना चाहिए । ऐसे ही स्थिरसंज्ञक हो तो उसके घर में और द्विस्वभावसंज्ञक हो तो उसके घर से बाहर जन्म कहना चाहिए और जो जन्मलग्नराशि ही के नवांश का उदय हो तो उसके सदृश प्राणी के घर में जन्म कहना चाहिए और जहाँ पर लग्नराशि और नवांशराशि भिन्न भिन्न है वहाँ जो बली हो उसी से विचार करना चाहिए ।

५३. मातृत्यक्त सन्तानज्ञान —

आरार्कजयोस्त्रिकोणगे चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया ।
दृष्टे सुरराजमन्त्रिणा दीर्घायुस्सुखवांश्च च स्मृतः ।।

मंगल और शनैश्चर एक राशि में स्थित हों और उनसे पाँचवें, नवें और सातवें स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो उस पैदा हुए संतान को माता छोड़ देती है और जो ऐसे ही योग में चन्द्रमा को बृहस्पति देखता हो तो माता करके छोड़ा हुआ भी बहुत दिनों तक जीता तथा सुखी होता है ।

५४. मातृत्यक्त मृत्युयोग —

पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथाये ।
सौम्येऽपि पश्यति तथाविधहस्तमेति सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः ।।

पापग्रहों से देखा हुआ चन्द्रमा लग्न में स्थित हो और सातवें स्थान में मंगल स्थित हो तो माता करके छोड़ा हुआ सन्तान मर जाता है । अथवा पापग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा लग्न में स्थित हो और ग्यारहवें स्थान में मंगल और शनैश्चर ये दोनों स्थित हों तो भी माता करके छोड़ा हुआ मर जाता है अथवा पापग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा लग्न में स्थित हो और उसे शुभग्रह भी देखते हों तो माता करके छोड़ा हुआ भी सन्तान देखनेवाले शुभग्रहों के सदृश वर्णवाले किसी मनुष्य के हाथ लगता है अर्थात् चन्द्रममा को देखनेवाला शुभग्रह या पापग्रह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णो में से जिस वर्ण का ईश हो उसी वर्णवाले मनुष्य के अधीन होता है और जहाँ बहुत से देखने वाले ग्रह हों वहाँ जो बलवान् हों उसी के वर्णवाले मनुष्य के अधीन होता है और जो केवल पापग्रह ही चन्द्रमा को देखते हो और बृहस्पति न देखता हो तो पराये हाथ जाकर भी मर जाता है ।

५५. *जन्मगृहज्ञान*

पितृमातृगृहेषु तद्बलात्तरुशालादिषु नीचगैः शुभैः ।
यदि नैकगतैस्तु वीक्षितौ लग्नेन्दू विजने प्रसूयते ॥

पूर्वोक्त पितृसंज्ञक, पितृव्यसंज्ञक, मातृसंज्ञक और मातृष्वसृसंज्ञक इन सब ग्रहों में जो सबसे बलवान् हो उसी के घर में अर्थात् जो पितृ सज्ञकग्रह बलवान् हो तो पिता के घर में, मातृसंज्ञक ग्रह बलवान् हो तो माता के घर में, पितृव्यसंज्ञक ग्रह बलवान् हो तो पिता के भाई के घर में और मातृष्वसृसंज्ञक ग्रह बली हो तो माता की बहिन के घर में जन्म कहना चाहिए अथवा सम्पूर्ण शुभग्रह अपने नीचस्थान में स्थित हों तो वृक्षादि के नीचे, मकान के समीप में या पर्वत–बगीचा इत्यादि के समीप में जन्म कहना चाहिए । अथवा अपने नीचस्थानों में स्थित शुभग्रह एक राशि में स्थित लग्न या चन्द्रमा इन दोनों को न देखते हों तो वन में जन्म कहना चाहिए परन्तु उक्त शुभग्रह तीन से कम न हों ।

५६. *दीपासंभव–संभवज्ञान* –

मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा
तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ ।
यद्वद्राशिर्व्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्
पापैश्चन्द्रात्स्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः ॥

जन्मकाल में चन्द्रमा शनैश्चर के नवांश में स्थित हो तो अंधकार में जन्म जानना चाहिए । अथवा लग्न से चौथे स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो भी अन्धाकर में जन्म जानना चाहिए । अथवा चन्द्रमा को शनैश्चर देखता हो तो अन्धकार में जन्म जानना चाहिए । अथवा कर्क और मीन इन जलराशियों के नवांश में कहीं चन्द्रमा स्थित हो तो भी अन्धकार में जन्म जानना चाहिए । अथवा शनैश्चर संयुक्त चन्द्रमा हो तो भी अन्धकार में जन्म जानना और इन योगों में चन्द्रमा को सूर्य देखता हो तो प्रकाश में जन्म जानना चाहिए । ऐसे ही गर्भाधानकाल में भी अन्धकारादि ज्ञान होता है ।

५७. भूशयनज्ञान —

तीन या अधिक ग्रह अपने नीच स्थान में स्थित हों तो भूमि में शयन जानना चाहिए ।

५८. प्रसवप्रकारज्ञान —

जो लग्न में स्थित राशि जिस तरह उदय को प्राप्त होती हो उसी तरह बालक का जन्म जानना । यथा—शीर्षोदय राशि लग्न में स्थित हो तो उत्तान मुख और पृष्ठोदय राशि लग्न में स्थित हो तो पीठ ऊपर किये पैदा होता है । कोई—कोई कहते हैं कि शीर्षोदय राशि लग्न में स्थित हो तो शिर के बल और पृष्ठोदय राशि लग्न में स्थित हो तो पैर के बल और उभयोदयाराशि लग्न में स्थित हो तो हाथों के बल पैदा हुआ जानना चाहिए ।

५९. प्रसवकालिकमातृकष्टज्ञान —

यदि पापग्रह चन्द्रमा से संयुक्त हों अथवा लग्न से सातवें स्थान में स्थित हों अथवा चौथे स्थान में स्थित हों तो प्रसव होने के समय माता को बहुत क्लेशित जानना ।

६०. दीपज्ञान —

स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्त्ति र्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यः ।
द्वारं च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्य्यसमन्वितैर्वा ।।

जन्मकाल में जिस राशि में चन्द्रमा स्थित हो उसके आदि ही में स्थित हो तो तेल से भरा हुआ दीपक जानना चाहिए । जो मध्य में चन्द्रमा स्थित हो तो आधा भरा हुआ और जो राशि के अन्त में चन्द्रमा स्थित हो तो तेल से खाली दीपक जानना चाहिए । इसी तरह जितने अंश चन्द्रमा भोग कर चुका हो उतने अंश तेल कम कहना चाहिए और लग्न के जितने अंश बीत चुके हों उतनी ही बत्ती जली जानना चाहिए और सूर्य जिस राशि में स्थित हो उसी के अनुसार दीप को जानना अर्थात् चरराशि में सूर्य स्थित हो तो दीप लिये किसी को घूमते जानो और जो सूर्य स्थिरराशि में स्थित हो तो दीप को भी स्थित जानो तथा जो द्विस्वभाव राशि में सूर्य स्थित हो तो चालित या स्थापित जानो । कोई कहते हैं कि जिस राशि में सूर्य स्थित हो वह राशि जिस दिशा का ईश हो उसी दिशा में, जन्मघर में दीप कहना और कोई कहते हैं कि आठ पहर दिन रात्रि के हिसाब से जिस दिशा में सूर्य स्थित हो उस दिशा में दीप का स्थान कहना और कोई कहते हैं कि घर के बाहर खण्ड कल्पना करके पूर्वादि क्रम से मेषादि राशियों का वहाँ न्यास करे जिस राशि में सूर्य स्थित हो उसी खण्ड में दीप या दीप का स्थान जानना चाहिए । लग्न राशि को जो वर्ण अर्थात् रंग पहिले कहा है बत्ती का भी रंग वैसा ही कहना चाहिए ।

६१. सूतिकागृहद्वारज्ञान —

लग्नादि केन्द्रों में स्थित ग्रहों के क्रम से सूतिकाघर का दरवाजा कहना चाहिए अर्थात् केन्द्र में जो ग्रह स्थित हो उस ग्रह की जो दिशा कही है उसी दिशा के सामने सूतिका

घर का दरवाजा कहना चाहिए । जो कदाचित् बहुत से ग्रह केन्द्र में स्थित हों तो उनमें जो बलवान् हो उसकी दिशा के सामने और जो कोई ग्रह केन्द्र में न हों तो लग्नराशि की दिशा के सामने सूतिका घर का दरवाजा कहना चाहिए ।

६२. *सूतिकागृहस्वरूपज्ञान* —

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते तन्नैकशिल्पोद्भवम् ।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत् ॥

सब ग्रहों से बली शनैश्चर हो तो सूतिका घर मरम्मत किया हुआ पुराना जानना और जो सबसे बली मंगल हो तो जला हुआ सूतिका घर और जो चन्द्रमा बली हो तो नया सूतिका घर शुक्लपक्ष में लीपा हुआ और सूर्य बली हो तो पुष्टतारहित बहुत काठ का तथा जो बुध बली हो तो अनेक थवइयों करके बनाया हुआ और जो शुक्र बली हो तो बहुत सुन्दर मन का प्रसन्न करनेवाला, नया और अनेक तसबीरों से संयुक्त सूतिका घर और जो बृहस्पति बली हो तो बहुत पोढ़ा सूतिका घर कहना चाहिए । इन ग्रहों के समीप में जो ग्रह स्थित हो पूर्वोक्त रीति से उसके अनुसार सूतिका गृह के समीपवर्ती मकान आदि जानना चाहिए और फिर जैसा देश काल अवस्था हो उसके अनुसार कहना चाहिए ।

६३. *सूतिकाशयनस्थानज्ञान* —

प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्त्तयः ।
शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत्पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः ॥

सूतिका घर में मेषादि दो दो राशियों के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में सूतिकाशयन और एक एक द्विस्वभाव राशि के क्रम से आग्नेयादि कोणों में सूतिकाशयन कहना चाहिए अर्थात् मेष या वृष राशि लग्न में स्थित हो तो पूर्वदिशा में, मिथुनराशि लग्न में स्थित हो तो आग्नेय कोण में, कर्क और सिंह राशि लग्न में स्थित हो तो दक्षिण दिशा में, कन्या राशि लग्न में स्थित हो तो नैर्ऋत्य कोण में, तुला और वृश्चिक राशि लग्न में स्थित हो तो पश्चिम दिशा में, धन राशि लग्न में स्थित हो तो पश्चिम दिशा में, धन राशि लग्न में स्थित हो तो वायव्य कोंण में, और मकर या कुम्भ राशि लग्न में स्थित हो तो उत्तर दिशा में तथा मीन राशि लग्न में स्थित हो तो ईशान कोण में सूतिका की शय्या कहना चाहिए ।

६४. *खट्वांगज्ञान* —

लग्नादि भावों के क्रमम से पूर्वोक्त रीति से खाट के अंग जानना परन्तु छः, तीन, नव और बारह ये भाव पायों की जगह पर समझे अर्थात् जिस लग्न में जन्म हो उस लग्न राशि की जो दिशा कही है उसी दिशा में शिरहाना जानना चाहिए । लग्न और द्वितीय ये दो भाव खाट के शिरहाने में, तीसरा भाव अगले दक्षिण पाया में, चौथा और पाँचवाँ भाव

दाहिनी पाटी में, छठा भाव पिछले दक्षिण पाया में सातवाँ और आठवाँ ये दोनों भाव पैताने में, और नवाँ भाव पिछले बायें पाया में, दशवाँ और ग्यारहवाँ भाव बाँई पाटी ममें और बारहवाँ भाव शिरहाने के बाँये पाया में न्यास करना चाहिए । प्रयोजन यह है कि जिस स्थान में शुभग्रह की स्थिति दृष्टि आदि हो उस स्थान की पुष्टता और जिस स्थान में क्रूरग्रहादि की स्थित दृष्टि आदि हो उस स्थान की क्षीणता जानना चाहिए ।

६५. *उपसूतिका—संख्याज्ञान* —

चन्द्रलग्नान्तरगतैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकाः । बहिरन्तश्च चक्रार्द्धे दृश्यादृश्येऽन्यथापरे ॥

लग्न और चन्द्रमा के बीच में जितने ग्रह स्थित हों उतनी स्त्रियाँ उस प्रसव करनेवाली स्त्री के पास कहना चाहिए परन्तु वहाँ यह विशेष है कि जो ग्रह अपने स्थान में स्थित हो उसकी द्विगुणी, जो ग्रह अपने उच्च स्थान में स्थित हो अथवा वक्री हो उसकी तिगुणी कहना चाहिए । और ग्रह के तुल्य रूप, गुण, वर्ण, रंग, वस्त्र और भूषणवाली स्त्रियाँ कहना चाहिए । जितने ग्रह दृश्चक्रार्द्ध अर्थात् सप्तमभाव से लग्नपर्य्यन्त में स्थित हों उतनी स्त्रियाँ सूतिकाघर से बाहर और जितने ग्रह अदृश्य चक्रार्द्ध अर्थात् लग्न से सप्तमभाव पर्य्यन्त में स्थित हों उतनी स्त्रियाँ सूतिका घर के भीतर कहना चाहिए । यद्यपि अन्य आचार्य उक्त रीति से विपरीत अर्थात् जितने ग्रह दृश्यचक्रार्द्ध में स्थित हों उतनी स्त्रियाँ सूतिका घर के भीतर और जितने ग्रह अदृश्यचक्रार्द्ध में स्थित हों उतनी स्त्रियाँ सूतिका घर के बाहर कहते हैं परन्तु इस ग्रन्थकार का यह अभिप्राय नहीं है ।

६६. *बालस्वरूपज्ञान* —

जन्मकालिक लग्न में जो नवांश उदित हो उसके स्वामी के समान रूप, गुण और वर्णवाला अथवा सब ग्रहों में जो ग्रह बलवान् हो उसी के समान रूप—देहादिवाला अथवा चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में स्थित हो उस या नवांश राशि के स्वामी के समान रूपादिवाला सन्तान होती है ।

६७. *ह्रस्वदीर्घाङ्गज्ञान* —

जैसे कालांगचक्र में राशियों के स्थान में शिर आदि अंगों की कल्पना किया है वैसे ही लग्नादि बारह भावों में भी कल्पना करनी चाहिए । यथा—लग्नस्थान में शिर, दूसरे स्थान में मुख, तीसरे स्थान में जठर, चौथे स्थान में हृदय, पाँचवें स्थान में कोखी, छठे स्थान में करिहाँव, सातवें स्थान में बस्ति अर्थात् लिंग और नाभि का बीच, आठवें स्थान में लिंग, नवम स्थान में अण्डकोश, दशमस्थान में ऊरू अर्थात् पैर की सन्धि, ग्यारहवें स्थान में जानु अर्थात् पैर के बीच की गाँठियाँ, बारहवें स्थान में जंघा अर्थात् फीली या पैर की कल्पना करना चाहिए । प्रयोजन यह है कि (पूर्वार्द्धे विषयादयः) इस श्लोक में ह्रस्व या दीर्घ जो राशियों का प्रमाण कहा है उसी के अनुसार ह्रस्व राशीश या दीर्घराशीश जिस राशि में जो ग्रह स्थित हों और वहाँ ही जिस अंग का न्यास हो उस राशि या उस राशीश के समान उस

अंग का प्रमाण होता है । जो बहुत से ग्रह स्थित हों तो जो बली हो उसके अनुसार तथा वहाँ कोई भी ग्रह न हो तो राशि के अनुसार प्रमाण होता है और जो राशि तथा वहाँ स्थित अन्य राशीश ये दोनों भिन्न–भिन्न प्रमाण वाले हों तो मध्य प्रमाण अंग और जो दोनों तुल्य प्रमाणवाले हों तो अति ह्रस्व या अति दीर्घादि अंग जानना चाहिए ।

६८. *राज्यप्राप्ति–कालज्ञान* –

कर्मलग्नयुतपाकदशायां राज्यलब्धिरथवा प्रबलस्य ।
शत्रुनीचगृहजातदशायां छिद्रसंश्रयदशा परिकल्प्या ।।

राजयोगकारक ग्रहों में से जो ग्रह जन्मकालिक लग्न में या दशवें स्थान में स्थित हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में राज्य की प्राप्ति होती है और जो उक्त दोनों स्थानों में राजयोगकारक ग्रह स्थित हों तो उनमें जो बलवान् हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में और जो उक्त स्थानों में बहुत राजयोगकारक ग्रह स्थित हों तो भी उनमें जो ग्रह सबसे बलवान् हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में तथा जो उक्त दोनों स्थानों में कोई ग्रह न स्थित हो, तो राजयोग कारक ग्रहों में सबसे बली हो उसी की दशा या अर्न्दशा में राज्य की प्राप्ति होती है । यद्यपि उस राज्य देनेवाले ग्रह की बहुत–सी अन्तर्दशाएँ होंगी परन्तु उनमें भी जिस दशा या अन्तर्दशाकाल में राज्य देने वाला ग्रहगोचर बलसंयुक्त हो उसी दशा या अन्तर्दशा में राज्य की प्राप्ति होती है और जो अपने शत्रु के स्थान या नीच स्थान में स्थित होकर बलवान् हो तो उसकी दी हुई दशा या अन्तर्दशा में उक्त प्राप्त भी राज्य छूट जाता है और जो यही शत्रु के स्थान अथवा नीचस्थान में स्थित ग्रह निर्बल हो तो उसकी दी हुई दशा या अन्तर्दशा में उक्त प्राप्त राज्य छूटकर अन्य राजादि की सहायता से फिर राज्य मिल जाता है ।

६९. *भोगयोग* –

गुरुसितबुधलग्ने सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे वियति दिवसनाथे भोगिनां जन्मम विन्द्यात् ।
शुभबलयुतकेन्द्रैः क्रूरभस्थैश्च पापैर्व्रजति शबरदस्युस्वामितामर्थभाक् च ।।

जिसके जन्मकाल में बृहस्पति, शुक्र और बुध ये तीनों ग्रह लग्न में, शनैश्चर सातवें स्थान में और सूर्य दशवें स्थान में स्थित हो तो वह सदा भोगी होता है । और कोई (गुरुसितबुधलग्ने) इस पद का अर्थ करते हैं कि गुरु, शुक्र और बुध इन ग्रहों की राशि अर्थात् धन–मीन, वृष–तुला, मिथुन–कन्या इनमें से कोई लग्न में स्थित हो, क्योंकि जब दशवें स्थान में सूर्य रहेंगे तो बुध और शुक्र इन दोनों की लग्न में स्थित होने की सम्भावना भी नहीं हो सकती है । परन्तु आचार्य गार्गि पूर्वार्थ ही को स्वीकार करते हैं ।

७०. *शबर–दस्यु–स्वामियोग* –

जिसके जन्मकाल में शुभग्रहों की राशियों की स्थिति केन्द्र में हो और पापग्रह क्रूरग्रहों की राशियों में स्थित हों, तो वह भिल्ल या चोरों का राजा होता है और धनवान् तथा भोगी होता है ।

७१. *अर्धचन्द्रयोग* —

केन्द्रादि स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों में नावादि योगों की तरह अर्थात् पणफर और आपोक्लिम स्थानों से सात–सात स्थानों में निरन्तर ग्रहों के स्थित होने से अर्धचन्द्रनाम योग होता है । वह अर्धचन्द्र आठ प्रकार का है । यथा–दूसरे स्थान से लेकर आठवें स्थान पर्यन्त निरन्तर सम्पूर्ण ग्रह स्थित हों तो एक; तीसरे स्थान से लेकर नवें स्थान पर्यन्त सम्पूर्ण ग्रह स्थित हों तो दो; पाँचवें स्थान से लेकर ग्यारहवें स्थान पर्यन्त तीन; छठे से लेकर बारहवें पर्यन्त सम्पूर्ण ग्रह स्थित हों तो चार; इन चार प्रकार का अर्धचन्द्र नाम योग हुआ और ऐसे ही चार और भी जानना चाहिए ।

७२. *जात–स्वभावज्ञान* —

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।
अह्नि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात्सुखी च ।।

जिसके जन्मकाल में सूर्य के स्थान से चन्द्रमा केन्द्र में स्थित हो तो उसके शुभ शील, धन, शास्त्रज्ञान, बुद्धि और चातुर्य ये अधम अर्थात् नहीं होते हैं । पणफर में स्थित हो तो सम अर्थात् थोड़े और आपोक्लिम में स्थित हो तो वरिष्ठ अर्थात् उत्तम होते हैं ।

७३. *धनसुखयोग* —

जिसका जन्मां दिन ममें हुआ हो और उस काल में चन्द्रमा जिस किसी राशि में अपने या अधिमित्र के नवांश में स्थित हो और उसे बृहस्पति देखता हो तथा रात्रि में जन्म हुआ हो और उसे शुक्र देखता हो तो वह प्राणी धनवान् तथा सुखी होता है ।

७४. *बन्ध्यापतियोग* —

कोणोदये भृगुतनयेऽस्तचक्रसन्धौ बन्ध्यापतिर्गदि न सुतर्क्षमिष्टयुक्तम् ।
पापग्रहैर्व्ययमदलग्नराशिसंस्थैः क्षीणे शशिन्यसुतकलत्रजन्मधीस्थे ।।

जिसके जन्मकाल में शनैश्चर लग्न में स्थित हो और शुक्र लग्न से सातवें स्थान में रहते हुए कर्क, वृश्चिक और मीन इनके अन्तिम नवांश में स्थित हो और यदि लग्न से पाँचवाँ स्थान शुभग्रहयुक्त न हो तो वह प्राणी बन्ध्या स्त्री का स्वामी होता है अर्थात् उसकी विवाहिता स्त्री के लड़का नहीं होता है ।

७५. *अपुत्रकलत्रयोग* —

जिसके जन्मकाल में पापग्रह बारहवें, सातवें या लग्न में स्थित हों और क्षीण चन्द्रमा लग्न से पाँचवें स्थान में स्थित हो तो वह प्राणी पुत्र तथा स्त्रीरहित होता है ।

७६. *वृद्धस्त्रीपुरुषयोग* —

जिसके जन्मकाल में कहीं एकत्र स्थित पुरुषसंज्ञक और स्त्री संज्ञक ग्रहों से सातवें स्थान में शुभग्रहों करके दृष्ट शनैश्चर और मंगल हों तो वह वृद्धावस्था में वृद्धा स्त्री को प्राप्त होता है ।

७७. *वंशच्छेदयोग* —

वंशच्छेत्ता खमदसुखगैश्चन्द्रदैत्येज्यपापैः शिल्पी त्र्यंशे शशिसुतयुते केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे ।
दास्यां जातो दितिसुतगुरौ रिष्फगे सौरभागे नीचोऽक्रेन्द्वोर्मदनगतयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन ।।

जिसके जन्मकाल में दशवें, सातवें और चौथे इन स्थानों में क्रम से चन्द्रमा और शुक्र तथा सूर्य, मंगल और शनैश्चर ये ग्रह स्थित हों अर्थात् दशवें में चन्द्रमा, सातवें में शुक्र तथा चौथे में सूर्य, मंगल और शनैश्चर हों तो वह वंश का नाशक होता है ।

७८. *शिल्पीयोग* —

जिसके जन्मकाल में जिस राशिसम्बन्धी द्रेष्काण में बुध स्थित हो वह राशि केन्द्र में स्थित शनैश्चर करके दृष्ट हो तो वह शिल्पी (चित्र—कर्म आदि से जीविका करने वाला) होता है ।

७९. *दासीजातज्ञान* —

जिसके जन्मकाल में शनैश्चर के नवांश में स्थित होकर शुक्र लग्न से बारहवें स्थान में स्थित हो तो वह दासी का पुत्र होता है ।

८०. *वातरोगयोग* —

पापालोकितयोः सितावनिजयोरस्तस्थयोर्वातरुक
चन्द्रे कर्कटवृश्चिकांशकगते पापैर्युतै गुह्यरुक् ।
शिवत्री रिष्फधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्ते रवौ
चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेशिगः ।।

जिसके जन्मकाल में पापग्रहों करके दृष्ट शुक्र और मंगल लग्न से सातवें स्थान में स्थित हों तो वह वातरोगी होती है और कोई वार्द्धरुक् अर्थात् बढ़े हुए अण्डकोशवाला कहते हैं ।

८१. *गुह्यरोगयोग* —

जिसके जन्मकाल में चन्द्रमा वृश्चिक या कर्क के नवांश में स्थित होकर पापग्रहों से युक्त हो तो वह गुप्तरोगी होता है ।

८२. *कुष्ठयोग* —

चन्द्रेऽश्विमध्यझषकर्किमृगाजभागे कुष्ठी समन्दरुधिरे तदवेक्षिते वा ।
यातैस्त्रिकोणमलिकर्किवृषैर्मृगे च कुष्ठी च पापसहितैरवलोकितैर्वा ।।

जिसके जन्मकाल में धनराशि के पाँचवें नवांश में स्थित चन्द्रमा, शनैश्चर और मंगल इन दोनों से अथवा एक से संयुक्त हो या दृष्ट हो तो वह कुष्ठी होता है अथवा किसी राशि में मीन, कर्क, मकर और मेष इनके नवांशों में कही स्थित होकर चन्द्रमा,

शनैश्चर या मंगल से युत अथवा दृष्ट हो तो भी कुष्ठी होता है । यदि यही चन्द्रमा शुभग्रह दृष्ट हो तो कुष्ठी नहीं, किंतु कण्डू रोगवाला होता है और यदि वृश्चिक, कर्क, वृष और मकर इन राशियों में से कोई पाँचवें या नवें स्थान में स्थित हो और वह पापग्रहों से युत अथवा दृष्ट हो तो भी वह कुष्ठी होता है ।

८३. खल्वाटयोग —

विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाजहयोदये खलतिरशुभक्षेत्रे लग्ने हये वृषभेऽपि वा ।
नवमसुतगे पापैर्दृष्टे रवावदृढेक्षणो दिनकरसुते नैकव्याधिः कुजे विकलः पुमान् ।।

जिसके जन्मकाल में वृष, मेष और धन इनमें से कोई लग्न में हो और पापग्रहों करके दृष्ट हो तो उसके दाँत अच्छे नहीं होते हैं ।। और मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर, कुम्भ, वृष और धन इन राशियों में से कोई लग्न में हो और पापग्रहों करके दृष्ट हो तो वह खलति (खल्वाट) अर्थात् चंदुले मुण्डेवाला होता है ।

८४. बन्धनयोग —

व्ययसुतधनधर्मगैरसौम्यैर्भवनसमाननिबन्धनं विकल्प्यम् ।
भुजगनिडपाशभृद्दृकाणै र्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत् ।।

जिसके जन्मकाल में बारहवें, पाँचवें, दूसरे और नवें इन स्थानों में पापग्रह स्थित हों तो वह प्राणी बाँधा जाता है, परन्तु वह बन्धन राशिबोधक—पदवाच्य प्राणी के बन्धन के सदृश होता है अर्थात् मेष, वृष, धन ये लग्न में स्थित हों तो रस्सी से बन्धन और मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ ये लग्न में स्थित हों तो बेड़ी इत्यादि से बन्धन और कर्क, मकर, मीन ये लग्न में स्थित हों तो गढ़ी इत्यादि में घिरे रहना और वृश्चिक राशि लग्न में स्थित हो तो किसी गड्ढे इत्यादि में घिरे रहना होता है । और यदि जन्मकालिक द्रेष्काण सर्प, निगड़संज्ञक अथवा पाशभृत्संज्ञक हो और (प्रथमपञ्चनवानाम्) इस रीति से जिस राशिसंबन्धी हो और वह राशि बली होकर किसी पापग्रह से दृष्ट न हो तो उस राशि के तुल्य बन्धन होता है ।

८५. वैधव्यादियोग —

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरोंऽशे यस्य स्थितो वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।
सत्स्वर्स्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दौ ।।

जिस स्त्री के जन्मकालिक लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह स्थित हो और उस आठवें स्थान का स्वामी जिस ग्रह के नवांश में स्थित हो उस ग्रह की दशा अथवा अन्तर्दशा में वह स्त्री विधवा होती है और यदि लग्न से आठवें स्थान में क्रूरग्रह स्थित हो और दूसरे स्थान में कोई शुभग्रह स्थित हो तो स्वामी से पहिले उस स्त्री ही का मरण होता है । और जिस स्त्री के जन्मकाल में कन्या, वृश्चिक, वृष या सिंह इन राशियों में से किसी राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो उस स्त्री के पुत्र थोड़े होते हैं ।

८६. स्त्री–प्रव्रज्यायोग –

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन ।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले पृच्छायामपि सकलं विधेयमेतत् ।।

जिस स्त्री के जन्म–काल में लग्न से सातवें स्थान में पापग्रह स्थित हो तब नवें स्थान में जो ग्रह हो उसी के तुल्य, पूर्वोक्त प्रव्रज्याध्याय में कथित के अनुसार, निःसंदेह वह स्त्री संन्यास को प्राप्त होती है । इस स्त्रीजातक–प्रकरण में जितने योग कहे गये हैं उन सबको स्त्रियों के विवाहकाल में, कन्यावरणकाल में, कन्यादान में और प्रश्नकाल में भी विचारना चाहिए ।

८७. अथ अङ्गहीनयोग –

मेषे वृषे चापधरे विलग्ने विकारदन्तो यदि पापदृष्टे ।
मन्दे मदस्थेऽहियुते कुजे वा बलैर्विहीनेऽङ्गविहीनवान् स्यात् ।।

मेष, वृष या धनु लग्न में हो उसे पापग्रह देखता हो तो जातक के दाँत में विकार होता है । शनि सप्तम में हो या मङ्गल राहु के साथ निर्बल होकर ९ वें में हो तो अङ्गहीन होता है ।

८८. सर्पदंश योग –

लग्नाच्च सप्तमस्थाने शन्यर्कौ राहुसंयुतौ ।
सर्पेण पीडा तस्योक्ता शय्याया स्वपतोऽपि च ।।

लग्न से सप्तम भाव में शनि, सूर्य और राहु स्थित हों तो विस्तर पर सोते हुये भी सर्प से पीडित होता है। अर्थात् सोते हुये सर्पदंश होता है ।

८९. व्याघ्र से घातयोग –

गुरुस्थानगते सौम्ये शनिस्थानगते कुजे ।
पञ्चविंशतिवर्षेण च वने व्याघ्रेण हन्यते ।।

जिसके जन्म समय में गुरु के स्थान (धनु और मीन) में बुध तथा शनि के स्थान (मकर, कुम्भ) में मंगल स्थित हो उसकी पच्चीस वर्ष की आयु में वन में व्याघ्र द्वारा मृत्यु होती है ।

९०. असिघात योग –

शुक्रस्थानगते चन्द्रे चन्द्रस्थानगते शनौ ।
अष्टाविंशति वर्षे च असिघातेन मृत्युदः ।।

चन्द्रमा यदि शुक्र के क्षेत्र (वृष, तुला) में हो तथा चन्द्रस्थान (कर्क) में शनि हो तो अट्ठाइसवें वर्ष में असि (तलवार) के आघात से मृत्यु होती है ।

९१. *शरघात योग* –

धर्मस्थानगते भौमे शन्यर्कौ राहुसंयुतौ ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति शरक्षेपेण हन्यते ।।

नवम भाव में मंगल हो, शनि और सूर्य राहु से युक्त हों तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो बाण के आघात से मृत्यु होती है ।

९२. *ब्रह्महत्या योग* –

रविणा सहितौ भौमः शनिर्वा जीवसंयुतः ।
अष्टाविंशतिवर्षे च ब्रह्मघाती न संशयः ।।

सूर्य के साथ मङ्गल अथवा बृहस्पति के साथ शनि जिसके जन्म समय में हो वह २८ वर्ष की आयु में ब्राह्मण की हत्या करता है, इसमें सन्देह नहीं ।

९३. *सन्तानहानि योग* ––

रविस्थानगते चन्द्रे गुरुः स्वस्थानगो यदा ।
सागरे च स्थिते लग्ने पञ्चापत्यविनाशकृत् ।।

सूर्य के स्थान (सिंह) में चन्द्रमा, गुरु अपने स्थान (धनु और मीन) में स्थित हों तथा लग्न सागर योग से युक्त हो तो पाँच सन्तान नष्ट होती है ।

९४. *दोला योग* –

मीने मेषे तथा चापे स्थिताः स्थानत्रये ग्रहाः ।
दोलासंज्ञकयोगः स्याद्राज्यदोऽयमुदाहृतः ।।

मीन, मेष और धनु इन्हीं तीन स्थानों (राशियों) में समस्त ग्रह हों तो दोला नामक योग होता है । यह योग राज्य सुख प्रदान करने वाला कहा गया है ।

९५. *पदविच्छेद योग* –

लग्नस्थानगतो भौमो राहुशन्यर्कवीक्षितः ।
योगः पदकविच्छेदो यदि शक्रसमो भवेत् ।।

लग्न स्थान में स्थित मंगल को राहु, शनि और सूर्य देखते हो तो पदक विच्छेद योग होता है । इस योग में इन्द्रतुल्य व्यक्ति भी पद से च्युत हो जाता है ।

९६. *इच्छित मृत्यु योग* –

केन्द्रस्थानगते भौमे सैंहिकेये च सप्तमे ।
यदि तस्य विजानीयादिच्छामृत्युस्तदा भवेत् ।।

केन्द्र स्थान में मंगल, सप्तम भाव में राहु हो तो अपनी इच्छा से मरने का योग समझना चाहिये । अर्थात् योजनाबद्ध आत्महत्या का योग होता है ।

९७. चन्द्राधियोग —

सौम्यैः स्मरारिनिघनेष्वधियोग इन्दोस्तस्मिश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म ।
सम्पत्तिसौख्यविभवा हतशत्रवश्च दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाताः ।।

यदि चन्द्रमास से छठें, सातवें या आठवें भवन में शुभग्रह हों तो 'अधियोग' होता है । इस योग में सेनापति, राज्यमंत्री और राजा का जन्म होता है । इसमें जन्म लेने वाले सम्पत्ति—सौख्य—विभव युत, शत्रु रहित, रोगरहित और भयरहित होते हैं ।

९८. गजकेसरीयोग —

केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्योगस्तदाहुर्गजकेसरीति ।
दृष्टे सितार्येन्दुसुतैः शशाङ्के नीचास्तहीनैर्गजकेसरी स्यात् ।।

चन्द्रमा से केन्द्र में बृहस्पति हो तो ''गजकेसरी'' योग होता है । शुक्र—गुरु—बुध—नीच राशि में तथा अस्त न हों इनसे चन्द्रमा देखा जाता हो तो ''गजकेसरी'' योग होता है ।

गजकेसरिसञ्जातस्तेजस्वी धनधान्यवान् ।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो भवेत् ।।

जिस मनुष्य का जन्म गजकेसरी योग में हो वह तेजस्वी, धन—धान्य वाला, मेधावी, गुणसम्पन्न और राजा का प्रियकर होता है ।

९९. अमलायोग —

यस्य जन्मसमये शशिलग्नात् सद्ग्रहो यदि च कर्मणि संस्थः ।
तस्य कीर्तिरमला भुवि तिष्ठेदायुषोन्तमविनाशनसम्पत् ।।

जिसके जन्मसमय चन्द्रमा से दशवें शुभग्रह हो उसकी स्वच्छ कीर्ति, भूमि में विद्यमान रहती है और जीवन भर उसे अविनाशी धन रहता है ।

लग्नाद्वा चन्द्रलग्नाद्वा दशमे शुभसंयुते
योगोऽयममला नाम कीर्त्तिराचन्द्रतारकी ।
राज्यपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः
परोपकारी गुणवान् अमलायोगसम्भवः ।।

लग्न से या चन्द्रमा से दशवाँ स्थान शुभग्रह से युत हो तो 'अमला' नामक योग होता है । इस योग में उत्पन्न हुए मनुष्य की कीर्त्ति जब तक चन्द्रमा और तारे रहें तब तक अचल रहती है । वह राजपूज्य, महाभोगी, दाता, बन्धुजनों का प्रिय, परोपकारी और गुणवान् होता है ।

१००. वास्यादियोग —

व्ययधनयुतखेटैर्वासिवेशी दिनेशादुभयचरिकयोगश्चोभयस्थानसंस्थैः ।
निजगृहसुहृदुच्चस्थानतैश्च जाता बहुधनसुखयुक्ता राजतुल्या भवन्ति ।।

सूर्य से बारहवें ग्रह हो तो 'वासी' योग, दूसरे हो तो 'वेशि' योग, एवं बारहवें और दूसरे दोनों स्थानों में ग्रह हों तो उभयचरिक योग होता है । वे ग्रह यदि स्वगृही के, मित्रगृही के या उच्चस्थानीय हों तो इनमें उत्पन्न हुए व्यक्ति बहुत धन और सुख से युक्त राजा के तुल्य होते हैं ।

१०१. सुखयोग —

वर्गोत्तमादिशुभवर्गयुतेऽमरेज्ये लग्ने रसातलगते यदि वा बलाढ्ये ।
वित्तायवृद्धिगृहगेषु वियच्चरेषु लग्नाधिपे बलयुते सुखमेति जातः ।।

यदि बृहस्पति वर्गोत्तम आदि शुभ वर्ग में होकर लग्नमें, या चौथे में हो, या बलवान् हो और ग्रह सब द्वितीय, एकादश, चतुर्थ गृह में प्राप्त हों और लग्नाधिप बलवान् हो तो जातक को अनेक प्रकार का सुख होता है ।

१०२. हृदयशूलरोगयोग —

हृच्छूलरोगमुपयाति सुखे फणीशे पापेक्षिते गतबले यदि लग्ननाथे ।
शूलामयं तनुपतौ रिपुनीचराशौ भौमे सुखे रविसुते यदि पापदृष्टे ।।

यदि राहु सुख (४) में हो और लग्ननाथ पापदृष्ट और बलहीन हो तो हृदय—शूल रोग होता है। लग्नेश शत्रुगृह में, या नीच राशि में हो और मंगल चौथे हो, शनि यदि पापग्रह से देखा जाता हो तो शूलरोग होता है ।

१०३. उन्मादरोगयोग —

लग्ने रवौ भूमिसुते कलत्रे सून्मादभाक् तत्र नरो हि जातः ।
उन्मादबुद्धिं समुपैति लग्ने शनौ कलत्रे सकुजे त्रिकोणे ।।

लग्न में सूर्य हो, सप्तम में मंगल हो तो मनुष्य उन्माद भागी (पागल) होता है । लग्न में शनि, सप्तम, या त्रिकोण में मंगल हो तो मनुष्य की उन्माद बुद्धि होती है ।

१०४. लक्ष्मीयोग —

केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे ।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोग इतीरितः ।।

इस लक्ष्मीयोग में जातक सुन्दर गुणवाला, बहुत देश का स्वामी, विद्या और कीर्ति से युक्त तथा कामदेव के सदृश सुन्दर रूपवाला, दश दिशाओं में राजों से पूजनीय, श्रेष्ठ राजा और बहुत स्त्री तथा पुत्रवाला होता है ।

गुणाभिरामो बहुदेशनाथो विद्यामहाकीर्तिरनङ्गरूपः ।
दिगन्तविश्रान्तनृपालवन्द्यो राजाधिराजो बहुदारपुत्रः ।।

यदि भाग्येश परमोच्च में या मूलत्रिकोण में होकर केन्द्र में स्थित हो और लग्नेश बलवान् हो तो वह 'लक्ष्मीयोग' होता है ।

१०५. अभिचारकृतरोगयोग —

चरे विलग्ने रिपुनाथदृष्टे कुजे च लाभे स्थिरगे च धर्मे ।
द्वन्द्वेऽस्तराशौ प्रवदेन्नराणां रोगं रिपूणां कृतमाभिचारम् ॥

चर राशि का लग्न हो षष्ठेश उसको देखता हो, या मङ्गल लाभ में हो, या धर्म में स्थिर राशि हो, सप्तम द्विस्वभाव हो तो शत्रुओं के किये हुए अभिचार (प्रयोग) से रोग होता है ।

१०६. मालिकायोग —

लग्नादिसप्तगृहगा यदि सप्त खेटा जातो महीपतिरनेकगजाश्वनाथः ।
वित्तादिगो निधिपतिः पितृभक्तियुक्तो धीरोऽग्ररूपगुणवान् नरचक्रवर्ती ॥

किसी भी भाव से ७ भावों में ७ ग्रह हों तो उस भाव सम्बन्धी मालिका योग होता है । जैसे लग्नादि सात गृह में यदि सात ग्रह हों तो "लग्नमालिका" योग होता है । इस योग में जायमान नर राजा, अनेक हाथी–घोड़ों का स्वामी होता है । धनादि सात भावों में हो तो धनवान्, पिता की भक्ति में युक्ति, धीर, सुरूप, गुणवान् और मनुष्यों में चक्रवर्ती होता है ।

जातो यदा विक्रममालिकायां भूपः स शूरो धनिकश्च रोगी ।
सुखादिकश्चेद् बहुदेशभाग्यभोगी महादानपरो महीपः ॥

यदि विक्रम मालिका में उत्पन्न हो तो पराक्रमी राजा, धनी और रोगी होता है । यदि सुखादि में सप्त ग्रह हों तो बहुत देशों में भाग्यवान् और बहुत बड़ा दान करने वाला राजा होता है ।

पुत्राद्या यदि मालिका नरपतिर्यज्वाऽथवा कीर्तिमान्
जातः षष्ठगृहात् कचिद् धनसुखप्राप्तो दरिद्रो भवेत् ।
कामादिग्रहमालिका यदि बहुस्त्रीवल्लभो भूपतिः
दीर्घायुर्धनवर्जितो नरवरस्त्रीनिर्जितश्चाष्टमात् ॥

यदि पुत्रादि मालिका में उत्पन्न हो तो यज्ञ करने वाला राजा या कीर्तिमान होता है । यदि षष्ठ गृह में मालिका हो उसमें उत्पन्न मनुष्य हो तो कभी धन सुख प्राप्ति हो और कभी दरिद्र होता है। कर्मादि (७ भावादि) मालिका में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य बहुत स्त्रियों का स्वामी और राजा होता है । अष्टम भावकी मालिका में उत्पन्न मनुष्य दीर्घायु, दरिद्र, नर–श्रेष्ठ और स्त्री से निर्जित होता है ।

धर्मादिग्रहमालिका गुणनिधिर्यज्वा तपस्वी विभुः
कर्माद्या यदि धर्मकर्मनिरतः सम्पूजितः सज्जनैः ।
लाभाद्राजवराङ्कनामणिपतिः सर्वक्रियादक्षको
जातो रिःफगृहाब्दहुव्ययकरः सर्वत्र पूज्यो भवेत् ॥

धर्मादि मालिका में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य गुण का निधान, यज्ञ करनेवाला, तपस्वी, और समर्थ होता है । कर्मादि मालिका में जायमान मनुष्य धर्म–कर्म में निरत और

सज्जनों से अच्छी तरह पूजित होता है । लाभ मालिका में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य राज्य—स्त्री—मणिका स्वामी, सर्वक्रिया मे दक्ष होता है। रिस्फ मालिका में जायमान मनुष्य बहुत खर्च करनेवाला और सर्वत्र पूज्य होता है ।

१०७. पर्वत योग —

सौम्येषु केन्द्रगृहगेषु सपत्नरन्ध्रे शुद्धेऽथवा शुभयुते यदि पर्वतः स्यात् ।
लग्नान्त्यपौ यदि परस्परकेन्द्रयातौ मित्रेक्षितौ भवति पर्वतनाम योगः ।।

शुभग्रह केन्द्र में हों, षष्ठ और अष्टमस्थान शुद्ध हों, या शुभयुत हों तो "पर्वत" योग होता है । लग्नेश और व्ययेश यदि परस्पर केन्द्र में प्राप्त हों मित्र से दृष्ट हों तो "पर्वत" योग होता है ।

भाग्यान्वितः पर्वतयोगजातो विद्याविनोदाभिरतः प्रदाता ।
कामी परस्त्रीजनके लिलोलस्तेजोयशस्वी पुरनायकः स्यात् ।।

पर्वत योग में उत्पन्न होनेवाल पुरुष भाग्ययुक्त, विद्याविनोद में लीन, दाता, कामी, परस्त्री से रमण करने में चञ्चल, तेजस्वी, यशस्वी और ग्राम का प्रधान नायक होता है ।

१०८. शुभादियोग —

शुभाशुभाढये यदि जन्मलग्ने शुभाशुभाख्यौ भवतस्तदानीम् ।
व्ययस्वगैः पापशुभैर्विलग्नात पापाख्यसौम्यग्रहकर्त्तरी च ।।

यदि जन्म लग्न शुभ ग्रहसे युक्त हो तो शुभ योग और यदि पापग्रह से युक्त हो तो अशुभ योग होता है। लग्न से बारहवें और दूसरे दोनों स्थानों में पापग्रह हों तो पाप — कर्तरिक और सौम्य हों तो सौम्य—कर्तरिक योग होता है ।

शुभयोगभवो वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः ।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थभुक् ।।

शुभ योग में उत्पन्न हुआ नर, खूब बोलनेवाला (वक्ता) रूप, शील, सदाचार तथा गुण से पूर्ण रहता है और पाप योग में उत्पन्न नर कामी, पापी तथा दूसरों का पैसा खानेवाला होता है ।

शुभकर्तरिसञ्जातस्तेजोवित्तबलाधिकः ।
पापकर्त्तरिके पापी भिक्षाशी मलिनो भवेत् ।।

शुभ—कर्त्तरी योग में उत्पन्न जातक तेजस्वी, धनी और अधिक बलवान होता है तथा पाप—कर्त्तरिक में उत्पन्न जातक पापी, भिक्षुक, और मलिन चित्त वाला होता है ।

१०९. राजयोग —

दक्षिणांशे ग्रहाः सर्वे दीप्तानस्तमितेक्षणाः ।
तस्य त्रिंशत्तमे वर्षे गजो द्वारेऽवतिष्ठति ॥

जन्म चक्र के दक्षिण भाग में यदि सभी ग्रह तेजस्वी और बलवान होकर पड़े हो तो जातक की ३० वर्ष की आयु होने पर उसके दरवाजे पर हाथी विराजमान हो जाता है । अर्थात् सप्तम से लग्न पर्यन्त सभी ग्रहों की स्थिति हो तो जातक ३० वर्ष की आयु में ही (राजा के समान) धनवान हो जाता है ।

चतुःसागरगे चन्द्रे कोणे चैव दिवाकरे ।
अपि दासकुले जातः सोऽपि राजा भविष्यति ॥

केन्द्र स्थानों में यदि चन्द्रमा तथा त्रिकोण भाव में यदि सूर्य हो तो जातक दास कुल में भी उत्पन्न हो तो वह राजा होता है ।

त्रिभिः स्वस्थैर्भवेन्मन्त्री त्रिभिरुच्चैर्नराधिपः ।
त्रिभिर्नीचैर्भवेद्दासस्त्रिभिरस्तङ्गतैर्जडः ॥

तीन ग्रह स्वक्षेत्री (अपनी—अपनी राशि में स्थित) हों तो जातक मन्त्री, तीन ग्रह उच्चराशि में हो तो राजा, तीन ग्रह नीच के हों तो दास (नौकर) तथा तीन ग्रह अस्तंगत हो तो जातक जड़ होता है ।

॥ अथ ज्यौतिषयोगमालिका समाप्तः ॥



प्रधान कार्यालय :-

फोन (का.) ३३३४४५
(घर) ३३५६३०

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

पोस्ट बाक्स नं० ११३६
के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदागिन)
वाराणसी – २२१००१ (भारत)